# उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

## मानविकी विद्याशाखा

### गद्य साहित्य -2 एवं प्रयोजनमूलक हिन्दी

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

**विशेषज्ञ समिति**

प्रो.एच.पी. शुक्ला
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही'
निदेशक, महादेवी वर्मा सृजन पीठ,
रामगढ़, नैनीताल

प्रो.एस.डी.तिवारी
विभागाध्यक्ष, हिन्दी
गढवाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल

डा. जितेन्द्र श्रीवास्तव
हिंदी विभाग,
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि.दिल्ली

प्रो.डी.एस.पोखरिया
विभागाध्यक्ष, हिन्दी
कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,

प्रो.नीरजा टंडन
हिन्दी विभाग
कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,

**पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन**

डा.शशांक शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डा.राजेन्द्र कैड़ा
अकादमिक परामर्शदाता, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण: 2015
सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
ISBN - 978-93-84632-64-9

| इकाई लेखक | इकाई संख्या |
|---|---|
| डा. सविता मोहन,<br>निदेशक,<br>उत्तराखण्ड भाषा संस्थान,<br>देहरादून | 1,2,3,4,5 |
| डा. प्रभा पंत<br>हिंदी विभाग<br>एम.बी.पी.जी. कॉलेज,<br>हल्द्वानी | 6,7,8 |
| डा. राजेन्द्र कैड़ा<br>हिंदी विभाग<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,<br>हल्द्वानी | 9,10,11 |
| डा. शशांक शुक्ला,<br>हिंदी विभाग,<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,<br>हल्द्वानी | 12,13,14,15,19,20 |
| डा.चन्द्र प्रकाश मिश्रा<br>उपाचार्य,मोतीलाल नेहरू कॉलेज<br>दिल्ली विश्वविद्यालय ,दिल्ली | 16,17,18 |
| डा.शीला रजवार<br>नैनीताल, उत्तराखण्ड | 21,22 |

**खण्ड 1 – हिन्दी नाटक** **पृष्ठ संख्या**

इकाई 1 – हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास एवं स्वरूप विवेचन 1-16

इकाई 2 – जयशंकर प्रसाद : परिचय एवं कृत्तित्व 17-26

इकाई 3 – चन्द्रगुप्त : कथावस्तु,परिवेश तथा उद्देश्य 27-41

इकाई 4 – चन्द्रगुप्त में चरित्र चित्रण 42-57

इकाई 5 – भाषा – शैली और रंगमंचीय प्रस्तुति 58-71

**खण्ड 2 – निबंध एवं अन्य गद्य विधाएँ** **पृष्ठ संख्या**

इकाई 6 – हिन्दी निबंध साहित्य का स्वरूप व तात्विक विवेचन 72-88

इकाई 7 – अन्य गद्य विधाओं का स्वरूप व तात्विक विवेचन -1 89-102

इकाई 8 – अन्य गद्य विधाओं का स्वरूप व तात्विक विवेचन-2 103-117

**खण्ड 3 – हिन्दी निबंध : पाठ एवं आलोचना** **पृष्ठ संख्या**

इकाई 9 – करूणा : परिचय,पाठ एवं आलोचना 118-140

इकाई 10 – पंडितों की पंचायत : परिचय, पाठ एवं आलोचना 141-160

इकाई 11 – उत्तराखण्ड में संत मत और संत साहित्य :

परिचय, पाठ एवं आलोचना 161-174

**खण्ड 4 – अन्य गद्य विधाएँ : पाठ एवं आलोचना** **पृष्ठ संख्या**

इकाई 12 – आत्मकथा-अपनी खबर : परिचय, पाठ एवं आलोचना 175-194

इकाई 13 – जीवनी- निराला : परिचय, पाठ एवं आलोचना 195-215

इकाई 14 – संस्मरण-पथ के साथी : परिचय, पाठ एवं आलोचना 216-236

**खण्ड 5 – प्रयोजनमूलक हिन्दी** **पृष्ठ संख्या**

| | |
|---|---|
| इकाई 15 – प्रयोजनमूलक हिन्दी | 237-249 |
| इकाई 16 – पत्राचार : कार्यालयी पत्र, व्यावसायिक पत्र | 250-276 |
| इकाई 17 – भाषा कम्प्युटनिंग(कम्प्यूटर और हिन्दी ) | 277-293 |
| इकाई 18 – ई-पत्रकारिता | 294-311 |
| इकाई 19 – पत्रकारिता का इतिहास | 312-324 |
| इकाई 20 – संपादन कला | 325-342 |
| इकाई 21 – मीडिया/समाचार लेखन | 343-364 |
| इकाई 22 – अनुवाद | 365-385 |

**पाठ्यक्रम परिचय**

स्नातक उपाधि कार्यक्रम के अंतर्गत आप **गद्य साहित्य II एवं प्रयोजनमूलक** हिंदी शीर्षक द्वितीय प्रश्न पत्र का अध्ययन कर रहे है। यह पाठ्यक्रम अन्य गद्य विधा एवं प्रयोजनमूलक हिंदी पर आधारित है। इस पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य आपको गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के प्रमुख रूपों के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से तो परिचय कराना ही है, साथ-ही-साथ प्रयोजनमूलक हिंदी की अवधारणा से भी परिचित कराना है। इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत हमने नाटक साहित्य के विकास उसके प्रयोगिक पाठ का विवेचन एवं अन्य गद्य विधाओं-निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रावृत्त, डायरी, पत्र के स्वरूप का तात्विक विवेचन किया है। आप निबंध, पत्र, संस्मरण, यात्रासाहित्य से परिचित हैं आपने बचपन से नाटक का का मंचन होते हुए या टेलीविजन पर उनकी प्रस्तुति होते हुए भी देखा है, किन्तु उसकी नाट्य प्रक्रिया एवं मूल्यांकन के तत्वों से अपरिचित हैं। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य नाटक एवं अन्य गद्य विधाओं का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक परिचय कराना है।

यह पाठ्यक्रम गद्य की अन्य विधाओं एवं प्रयोजनमूलक हिंदी पर आधरित है। इस पाठ्यक्रम में आप अन्य गद्य विधाओं एवं प्रयोजनमूलक हिंदी के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक स्वरूप से परिचय प्राप्त करेंगी।

5 खण्डों में विभक्त इस पाठ्यक्रम का विवरण इस प्रकार है

खण्ड 1 : हिंदी नाटक

खण्ड 2 : निबंध एवं अन्य गद्य विधाएँ (तात्विक विवेचन)

खण्ड 3 : हिंदी निबंध : पाठ एवं आलोचना

खण्ड 4 : अन्य गद्य विधाएँ : पाठ एवं आलोचना

खण्ड 5 : प्रयोजनमूलक हिंदी

**खण्ड 1** नाटक साहित्य पर केन्द्रित है। इस खण्ड में नाटक की सैद्धान्तिक अवधारणा एवं उसके इतिहास का तो अध्ययन करेंगे ही साथ-ही-साथ प्रमुख नाटककार जयशंकर प्रसाद के नाटक चन्द्रगुप्त की नाट्क विशेषताओं से भी परिचित होंगे। यह खण्ड जहाँ नाटक के तत्वों का सैद्धान्तिक ज्ञान कराता है वहीं व्यावहारिक आलोचना भी करता है।

**खण्ड 2** निबंध एवं अन्य गद्य विधाओं पर केंद्रित है। गद्य साहित्य के वर्गीकरण के क्रम में आप अध्ययन करेंगे कि निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रासाहित्य, रिपोतार्ज, डायरी, पत्र लेखन, आलोचना जैसी विधाएँ आधुनिक काल में अस्तित्व लेती हैं। इस खण्ड में आप इन विधाओं के तात्विक स्वरूप से परिचय प्राप्त करेंगे।

**खण्ड 3** का संबंध हिंदी निबंध के अध्ययन क्रम में आप रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के निबंधों का मूल पाठ का अध्ययन करेंगे तथा उसकी आलोचना से भी परिचित होगें। निबंध को गद्य साहित्य की कसौटी कहा गया है, इस दृष्टि से इस खण्ड में आप निबंध विधा के महत्व को व्यावहारिक धरातल पर समझेंगे।

**खण्ड 4** अन्य गद्य विधाओं (डायरी, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, व्यंग्य, पत्र इत्यादि) के पाठ एवं आलोचना से संबंधित है। अन्य गद्य विधाएँ दिन-प्रतिदिन जटिल होते जा रहे समाज को अभिव्यक्त करने के क्रम में विकसित हुई हैं। इस दृष्टि से इनके स्वरूप को आत्मसात करने के लिए मूल पाठ एवं आलोचना दी गई है जिससे आप स्वयं इनकी विशेषताओं को समझ सकें।

**खण्ड 5** प्रयोजनमूलक हिंदी पर आधारित है। प्रयोजनमूलक हिंदी बोलचाल की हिंदी एवं साहित्यिक हिंदी से भिन्न व्यावसायिक प्रयोजनों को अपने भीतर समेटे हुए है। इसमें वाणिज्य-व्यापार, कार्यालय, बैंक, कचहरी, खेल, मीडिया इत्यादि क्षेत्रों से जुड़ी भाषा का अध्ययन किया जाता है।

# इकाई 1 हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास एवं स्वरूप विवेचन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नाटक का स्वरूप
1.3.1 नाटक के तत्व
1.4 हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास एवं परिचय
1.4.1 भारतेन्दु युग
1.4.2 प्रसाद युग
1.4.3 प्रसादोत्तर युग
1.4.4 स्वातन्त्र्योत्तर युग
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

आपको ज्ञात होगा कि सूर और तुलसी का भक्ति काल में जो स्थान है वही स्थान जयशंकर प्रसाद में आधुनिक साहित्य में है, प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य को व्यापक दृष्टिकोण और नवीन विषय प्रदान किया। प्रसाद जी ने द्विवेदी युगीन काव्यादर्श के विरूद्ध विद्रोह कर नवीन काव्य-धारा और गद्य विधाओं का लेखन प्रारम्भ किया, समकालीन समस्याओं के निराकरण के लिए प्राचीन भारतीय इतिहास का आश्रय लिया है। जयशंकर प्रसाद कि गणना आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जाती है, प्रसाद मूलतः कवि है परन्तु उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा की रचना की है।कवि के पश्चात उनका नाटककार स्वरूप सर्वाधिक चर्चित रहा है।

भारतीय साहित्य के इतिहास में ‘नाटक’ को पूर्ण साहित्य की गरिम दी गयी है कहानी, कविता, नाटक में स्वतः ही समाहित हो जाते हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में ‘नाटक’ की विस्तृत

व्याख्या की गयी है, इस इकाई में आपको नाटक के स्वरूप, हिन्दी नाटक के इतिहास की विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

## 1.2 उद्देश्य

इस तथ्य से आप परिचित की सांस्कृतिक चेतना का उत्कृष्ट रूप काव्य है और काव्य के उत्कृष्टतम रूप को नाटक कहा जाता है। कहा भी गया है की 'काव्येषु नाटक रम्यम्' अर्थात काव्य में नाटक सबसे अधिक रमणीय होता है। इसे विद्वानों ने नाट्य वेद की संज्ञा दी है। सामाजिक संबंधों की दृष्टि से साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक का जीवन से अभिन्न संबंध है। इसका समर्थन करते हुए भरत मुनि ने कहा था- नानाभावोपसम्पन्न नानावस्थान्तरात्मकम्, लोकवृत्तानुकरण नाट्यमेतन्मयाकृतम् (1/112 नाटयशास्त्र), नाटक के माध्यम से एक साथ सभी वर्गों का मनोरंजन एवं चित्तवृत्ति का संस्कार होता है, जबकि साहित्य की अन्य विधाओं के लिए साक्षर होना, एवं साहित्य का ज्ञान होना आवश्यक है। नाटक समस्त सामाजिकों के लिए लिखा जाता है जिसमें कविता, वास्तु, संगीत, शिल्प आदि विविध कलाओं का समावेश होता है। है।

हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास एवं स्वरूप को सम्यक रूप से जानने का उद्देश्य यह है की इसके माध्यम से हम हिन्दी भाषा की विकास यात्रा, हिन्दी साहित्य की विकास यात्रा के साथ- साथ भारतीय समाज में होने वाले सामाजिक, राजनैतिक, एवं आर्थिक परिवर्तन का ज्ञान प्राप्त कर सकते है। जैसा की उपर स्पष्ट किया जा चुका है की नाटक साहित्य की सबसे सशक्त विधा है अतः सपष्ट ही है कि नाटक के विवेचन के मध्य सम्पूर्ण साहित्य का विवेचन भी हो जाता है।

## 1.3 नाटक का स्वरुप

संस्कृत के आचार्यो ने नाटक के स्वरूप पर विस्तार से विचार किया है। भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' में कहा गया है- जिसमें स्वभाव से ही लोक का सुख-दुःख समन्वित होता है तथा अंगों आदि के द्वारा अभिनय किया जाता है, उसी को नाटक कहते हैं। अभिनव गुप्त ने लिखा है- नाटक वह दृश्य-काव्य है जो प्रत्यक्ष कल्पना एवं अध्यवसाय का विषय बन सत्य एवं असत्य से समन्वित विलक्षण रूप धारण करके सर्वसाधारण को आनन्दोपलब्धि प्रदान करता है। महिम भट्ट के अनुसार- अनुभाव- विभावादि के वर्णन से जब रसानुभूति होती है तो उसे काव्य कहते हैं और जब काव्य को गीतादि से रंजित एवं अभिनेताओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तो वह नाटक का स्वरूप धारण कर लेता है। रामचन्द्र, गुणचन्द्र के अनुसार- जो प्रसिद्ध आद्य (पौराणिक एवं ऐतिहासिक) रामचरित पर आधारित हो, जो धर्म, काम एवं अर्थ का फलदाता हो और जो अंक , आय (पाँच अर्थ-प्रकृति) दशा (पंचावस्था) से समन्वित हो, उसे नाटक कहा जाता है। भारतीय आचार्य रस- निष्पत्ति को उद्देश्य मानते हुए ही नाटक का स्वरूप निर्धारित करते हैं, जबकि पाश्चात्य आचार्यों ने 'कार्य' को महत्व देते हुए, संघर्ष, संकलन त्रय, दुःखान्त, सुखान्त आदि लक्षणों को प्रमुखता दी है।

### 1.3.1 नाटक के तत्व

संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक के तीन मूलभूत तत्व माने हैं- वस्तु, नेता और रस। और इन्हीं तीनों का विस्तृत निरूपण किया है। पाश्चात्य काव्य शास्त्र में नाटक के छः तत्व माने गए हैं । आज यही छः तत्व हिन्दी नाट्यकला के प्रमुख तत्वों के रूप में ग्रहण किए गए हैं- 1. कथावस्तु 2. पात्र या चरित्र-चित्रण 3. कथोपकथन या संवाद 4. देशकाल या वातावरण 5. भाषा- शैली 6. उद्देश्य ।

**वस्तु अथवा कथावस्तु-** नाटक की मूल कथा को ही वस्तु, कथानक या कथावस्तु आदि नामों से पुकारा जाता है। कथावस्तु दो प्रकार की होती है- 1. आधिकारिक अर्थात् मुख्य 2. प्रासंगिक अथवा प्रसंगवश् आई हुई गौण कथाएं। यह मुख्य कथा के विकास और सौन्दर्यवर्द्धन में सहायक होती है। आधार के भेद से कथावस्तु तीन प्रकार की होती है- 1. प्रख्यात, जिसका आधार इतिहास, पुराण या जनश्रुति होता है। 2. उत्पाद्य, जो नाटककार की अपनी कल्पना होती है। 3. मिश्रित, जिसमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण होता है। नाटक को कथावस्तु में कार्य-व्यापार की दृष्टि से पाँच अवस्थाएँ मानी गयी हैं- 1. आरम्भ, 2. विकास, 3. चरमसीमा, 4. उतार, 5. अंत या समाप्ति। भारतीय प्राचीन आचार्यों का वर्गीकरण भी इसी प्रकार का है, केवल नाम का भेद है, जो इसी क्रम में इसी प्रकार है, 1. आरम्भ, 2. प्रयत्न, 3. प्रात्याशा, 4. नियताप्ति, 5. फल। कथानक की पाँचों अवस्थाऐं मूलक हैं। पाश्चात्य नाटक में संघर्ष को महत्व प्राप्त है, जबकि भारतीय नाटक में नेता और उसके आदर्श को। भारतीय नाटको में भी संघर्ष देखा जा सकता है किन्तु उसकी स्थिति सीधी और स्पष्ट होती है।

**पात्र और चरित्र चित्रण-** सम्पूर्ण नाटक पात्र और उनकी गतिविधियों पर ही आधारित होता है। पात्र ही कथानक को आगे बढ़ाता हुआ अन्त की ओर ले जाता है। वही कथा का संवाहक भी होता है। पाश्चात्य नाट्य कला में भारतीय नाट्य कला की भांति नायक का कोई सुनिश्चित स्वरूप नहीं है, वह साधारण और असाधारण, किसी भी स्थिती का हो सकता है। आधुनिक नाटको में पात्रों का चरित्र-चित्रण आर्दश से हटकर यथार्थवादी पद्धति पर किया जा रहा है। पात्रों को व्यक्ति पात्र, प्रतिनिधि पात्र इन दो भेदो में विभक्त किया जा सकता है। नाटक के नायकों के चार प्रकार मानें हैं- धीरोदात्त , धीर-ललित, धीर-प्रशांत , और धीरोद्धत। नाटको में भी चरित्र- चित्रण उपन्यास की हीं भांति होता है। परन्तु उपन्यासकार की भांति नाटक का विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष रूप से चरित्र-चित्रण नहीं कर सकता, उसे परोक्ष या अभिनयात्मक ढंग से काम लेना पड़ता है। कथावस्तु, घटनाओं और कथोपकथनों के द्वारा नाटकीय पात्रों के चरित्र का उद्घाटन होता है।

**कथोपकथन-** नाटक संवादों के माध्यम से ही लिखा जाता है, पात्र का चरित्र- चित्रण में, कथा का विकास, रोचकता और वातावरण सृजन सभी संवादों से ही होता है। संवाद अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक का अधिक प्राण तत्व होता है। संवाद की प्रसंग- परिस्थिति, पात्रानुरूपता उसका मूल

तत्व है। संवाद जिसके सार्थक, संक्षिप्त, वक्र और अन्तः शक्ति सम्पन्न होते हैं, नाटक उतना ही सफल होता है। नाटक में संवादों की भाषा सरल, सरस और प्रभावपूर्ण होनी चाहिए।

**देश काल वातावरण: संकलनत्रय-** नाटक में देशकाल का निर्वाह आवश्यक है। युगीन सन्दर्भो को रूपायित करने के लिए नाटक में देशकाल के अनुरूप ही पात्र की वेषभूषा, परिस्थितियों, आचार-विचार आदि होने चाहिए। इसके सफल निर्वाह से पात्र सजीव प्रतीत होते हैं। कथा-युग के अनुरूप ही समाज राजनीति और परिस्थितियों का अंकन भी होना चाहिए। सफल नाटककार दृश्य विधान, मंच व्यवस्था, वेशभूषा और अभिनय आदि के द्वारा सजीव वातावरण की सृष्टि कर लेता है। प्राचीन ग्रीक आचार्यो ने देश तथा काल की समस्या पर विचार कर, 'संकलन त्रय' का विधान किया है। इसके अनुसार स्थल, कार्य तथा काल की एकता पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। उनका मत है कि किसी नाटक में घटी घटना किसी एक ही कृत्य से, एक ही स्थान से सम्बन्धित हो और एक ही दिन में घटी हो। ऐसा करने से देश- काल और वातावरण का सुसंगत चित्रण करने में कोई बाधा नहीं आ पाती।

**भाषा-शैली-** नाटक एक दृश्य काव्य है। दर्शक संवादों के द्वारा ही कथ्य को ग्रहण करता है, अभिनय उसे हृदय में उतार देता है, अतः भाषा सरल, स्पष्ट और सजीव होने पर ही दर्शक और श्रोता को रसानुभूति कराने में समर्थ होती है। इसलिए नाटक में शब्दा, वाक्य और भाषा का ऐसा प्रयोग होना चाहिए, जो सहज ग्राहय हो। नाटक के लिए भाषा-शैली की सरसता अनिवार्य है। भाषा-शैली विषयानुकूल, प्रसाद, ओज और माधुर्य गुण युक्त होनी चाहिए, साथ ही प्रभावपूर्ण भी होनी चाहिए।

**उद्देश्य-** नाट्य शास्त्र में पुरूषार्थ- चतुष्ट्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को नाटक का उद्देश्य माना गया है। इसी के साथ रसानुभूति को भी नाटक का प्रयोजन माना गया है। आज के नाटक जीवन का चित्रण करते हैं, अतः जीवन की समस्याओं की प्रस्तुति और उनकी व्याख्या तथा समाधान नाटकों का उद्देश्य है। नाटककार इस उद्देश्य की सिद्धि पात्रों के संवाद, उनके कार्य- कलाप और नाना घटनाओं द्वारा करता है। नाटक में नाटककार जीवन की व्याख्या परोक्ष रूप में व्यंजित करता है। जितना ही उद्देश्य महान होगा, उतनी ही रचना श्रेष्ठ होगी। जो लेखक जितनी अधिक उदात्त मानवीय संवेदना के रूप में अपना जीवनोद्देश्य प्रकट करता है, वह उतना ही महान कलाकार बनता है।

**अभिनेयता एवं रंगमंच-** भारतीय आचार्यों के अनुसार 'अभिनय' नाटक का प्रमुख अंग है। यह नाटक की अभिव्यक्ति का प्रधान साधन है। भरत मुनि ने नाटक के चार प्रकार माने हैं- 1. आंगिक, 2. वाचिक, 3. आहार्य, 4. सात्विक। नाटक की सार्थकता उसके अभिनीत होने में ही है। यद्यपि कुछ नाटक केवल पढ़ने के लिए ही होते हैं, जैसे अधिकांश प्रसाद जी के नाटक। प्राचीन काल में संस्कृत-नाटकों का अभिनय होता था,इसलिए रंगमंच की सुचारू व्यवस्था थी। रंगमंच की लम्बाई , चौड़ाई, ऊँचाई आदि की सीमाएँ निश्चित थी, परन्तु प्राचीन हिन्दी नाटकों का अभाव होने से रंगमंच का कोई विकास नहीं हो पाया। आधुनिक काल में आकर जब नाटकों की रचना आरम्भ हुई तो रंगमंच

अत्यन्त निम्नकोटि का और अव्यवस्थित हो गया था। भारतेन्दु जी ने उसमें कुछ सुधार किए, उसी समय से हिन्दी के रंगमंच का अस्तित्व आरम्भ होता है।

अतः अभिनय या रंगमंच नाटक का अनिवार्य तत्व है। नाटक की सफलता की महत्वपूर्ण कसौटी है। रंगमंच पर अभिनय के द्वारा प्रस्तुत होने पर ही नाटक की सार्थकता सिद्ध होती है, अतः नाटक अभिनय के योग्य होना चाहिए।

## 1.4 हिन्दी नाटय साहित्य का विकास एवं स्वरुप

हिन्दी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग से आरम्भ होता है। सन्1850 से अब तक के युग को हम नाट्य- रचना की दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त कर सकते हैं- (1) भारतेन्दु युग (1857-1900 ई.), (2) प्रसाद युग (1900-1930), और (3) प्रसादोत्तर युग (1930 से अब तक)। इनमें से प्रत्येक युग का परिचय यहाँ कमशः प्रस्तुत किया जाता है।

### 1.4.1 भारतेन्दु युग

स्वयं बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी का प्रथम नाटक अपने पिता बाबू गोपालचन्द्र द्वारा रचित ‘नहुष नाटक’ (सन् 1841 ई.) को बताया है। किन्तु तात्विक दृष्टि से यह पूर्ववर्ती ब्रजभाषा पद्य नाटकों की ही परम्परा है। सन् 1861 ई. में राजा लक्ष्मणसिंह ने ‘अभिज्ञान शाकुन्तल’ का अनुवाद प्रकाशित करवाया। भारतेन्दु जी की प्रथम नाटक ‘विद्या-सुन्दर’ (सन्1868 ई.) भी किसी बंगला के नाटक का छायानुवाद था। इसके अनन्तर उनके अनेक मौलिक व अनुवादित नाटक प्रकाशित हुए जिनमें पाखण्ड-बिडम्बन (1872), वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1872), धनंजय-विजय, मुद्राराक्षस (1875), सत्य- हरीश्चन्द्र (1875), प्रेम योगिनी (1875), विषस्य विषमौषधम् (1876), कर्पूर- मंजरी (1876), चन्द्रावली (1877), भारत दुर्दशा (1876), नील देवी (1877), अंधेर नगरी(1881) और सती- प्रताप (1884) आदि उल्लेखनीय है। भारतेन्दु के नाटक मुख्यतः पौराणिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विषयों पर आधारित है। सत्य हरीश्चन्द्र, धनंजय-विजय, मुद्राराक्षस, कर्पूर-मंजरी ये चारों अनुवादित है। अपने मौलिक नाटकों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों एवं धर्म के नाम पर होने वाले कुकृत्यों आदि पर तीखा व्यंग्य किया है। ‘पाखण्ड- बिडम्बन’, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, इसी प्रकार के नाटक हैं। ‘विषस्य- विषमौषधम्’ में देशी नरेशों की दुर्दशा, राष्ट्रभक्ति का स्वर उदघोषित हुआ है। इसमें ‘अंग्रेज’ को भारत-दुर्देव के रूप में चित्रित करते हुए भारतवासियों के दुर्भाग्य की कहानी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्थान- स्थान पर विदेशी शासकों की स्वेच्छाचारिता, पुलिस वालों के दुर्व्यवहार, भारतीय जनता की मोहान्धता पर गहरे आघात किए गए है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को संस्कृत, प्राकृत, बंगला व अंग्रेजी के नाटक-साहित्य का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने इन सभी भाषाओं में अनुवाद किए थे। नाट्यकला के सिद्धान्तों का भी उन्होंने अध्ययन

किया था, उन्होनें अपने नाटकों में अभिनय की भी व्यवस्था की थी तथा उन्होनें अभिनय में भाग भी लिया था। इस प्रकार नाट्यकला के सभी अंगों का उन्हें पूरा ज्ञान और अनुभव था। यदि हम एक ऐसा नाटकार ढूंढे जिसने नाट्य- शास्त्र के गंभीर अध्ययन के आधार पर नाट्य-कला पर सैद्धान्तिक आलोचना लिखी हो, जिसने प्राचीन और नवीन, स्वदेशी और विदेशी नाटकों का अध्ययन व अनुवाद प्रस्तुत किया हो, जिसने वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं मौलिक नाटकों की रचना की हो ओर जिसने नाटकों की रचना की नहीं, अपितु उन्हें रंग- मंच पर खेल कर दिखाया हो इन सब विशेषताओं से सम्पन्न नाटककार, हिन्दी में ही नहीं- अपितु समस्त विश्व-साहित्य में केवल दो चार ही मिलेंगें ओर उन सब में भारतेन्दु का स्थान सबसे ऊँचा होगा। उनकी शैली सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता गुणों से परिपूर्ण है

भारतेन्दु युग के अन्य नाटककारों में लाला श्रीनिवास दास, राधाकृष्णदास, बालकृष्ण दास भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन', राधाचरण गोस्वामी, प्रताप नारायण मिश्र, प्रभूति का नाम उल्लेखनीय है। लाला श्रीनिवास दास ने -'प्रहलाद चरित्र', रणधीर-प्रेम मोहिनी (1877), और संयोगिता- स्वयंवर (1855), की रचना की। इनमें सर्वश्रेष्ठ रचना 'रणवीर सिंह और प्रेम-मोहनी है। इसका सुसंगठित, चरित्र- चित्रण स्वाभाविक तथा कथोपकथन वाताकुलित एवं परिस्थितियों के अनुसार हैं। लाला जी ने कहीं-कहीं प्रादेशिक भाषाओं का भी प्रयोग वातावरण को यथार्थ रूप देने के लिए किया है। इसे हिन्दी का पहला दुःखान्त नाटक भी माना गया है।

राधाकृष्ण के द्वारा रचित नाटकों में 'महारानी पदमावती (1883), धर्मालाभ (1885), महाराणाप्रताप सिंह तथा राजस्थानकेसरी (1897) उल्लेखनीय हैं। जिसमें महारानी पदमावती का कथानक ऐतिहासिक है। जिसमें सतीत्व के गौरव की व्यंजना की गई है। धर्मालाभ में विभिन्न धर्मो के प्रतिनिधियों का वार्तालाप दिखातें हुए अंत में सभी धर्मों की एकता का प्रतिपादन किया गया है। 'दुखिनी बाला' अनमेल विवाह के परिणामों को व्यक्त करता है। इनका सर्वश्रेष्ठ नाटक 'महाराणाप्रताप सिंह' है जिसमें महाराणा के साहस, शौर्य, त्याग की व्यंजना अन्त्यन्त ओजपूर्ण शैली में की गई है। महाराणा का चरित्र स्वयं उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है-

जब लौं तन प्रराण न तब लौं मुख की मोड़ौं।

जब लौं कर में शक्ति न तब लौं शस्त्रहिं छोड़ौं

जब लौं जिह्वा सरस दीन वच नाहिं उचारौं।

जब लौं धड़ पर सीस झुकावन नाहिं विचारौं।

महाराणा के साथ- साथ अकबर के चरित्र को भी सहानुभूति के साथ उजागर किया है।

बालकृष्ण भट्ट ने लगभग एक दर्जन मौलिक एवं अनुदित नाटक प्रस्तुत किए हैं। उनके मौलिक नाटकों में 'दमयंती स्वयंवर', 'वृहन्नला', 'वेणुसंहार', 'कलिराज', की सभा, 'रेल का विकट खेल', 'बाल विवाह', 'जैसा काम वैसा परिणाम', आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें अन्तिम चार प्रहसन हैं जिनमें अपने युग ओर समाज के विभिन्न वर्गो एंव परिस्थितियों पर व्यंग्य किया गया है। वस्तुतः प्रहसनों की परम्परा को आगे गढ़ाने में भट्ट जी का अद्भुत योगदान है। बद्रीनारायण 'प्रेमघन' ने समाज एवं राष्ट्र की विभिन्न परिस्थियों से प्रेरित होकर 'भरत सौभाग्य' (1888), 'प्रयागरामागमन' (1904), वारांगन-रहस्य' (अपूर्ण), वृद्ध- विलाप' आदि नाटकों की रचना की जो राष्ट्र-सुधार की भावनाओं सं अनुप्राणित है। इसी प्रकार राधाचरण गोस्वामी ने भी अनेक नाटकों की रचना की जैसे- 'सती चन्द्रावली' (1890), 'अमर-राठौर' (1894), 'श्रीदामा' (1904), 'बूढ़े मुंह मुंहासे' (1887), 'भंग-तरंग' (1892),। इनमें प्रथम तीन को छोडकर शेष प्रहसन है। जिनमें अपने युग की सामाजिक एवं धार्मिक बुराईयों की आलोचना व्यंग्यात्मक शैली में की गई है। प्रताप नारायण मिश्र के 'भारत-दुर्दशा' (1902), 'गो-संकट' (1886), ' हठी हमीर', 'कलिकौतुक रूपक', आदि भी राष्ट्र जागरण एवं समाज सुधार की प्रेरणा से रचित हैं, किन्तु नाट्य कला की दृष्टि से साधारण कोटि के हैं। भारतेन्दु युग के अन्य मौलिक नाटक-रचियताओं में देवकीनन्दन त्रिपाठी शालिग्राम, अम्बिकादत्त व्यास, जंगबहादुर मल्ल, बलदेव प्रसाद, तोताराम, ज्वालाप्रसाद मिश्र, दामोदर शास्त्री आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। देवकी नन्दन त्रिपाठी ने अनेक पौराणिक नाटकों एवं प्रहसनों की रचना की थी। उनके पौराणिक नाटक 'सीता-हरण' (1876),'रूक्मणी-हरण' (1876), कंस वध' (1904), आदि हैं तथा प्रहसनों की नामावली इस प्रकार है- 'रक्षा बन्धन' (1878), 'एक-एक के तीन-तीन' (1879), 'स्त्री चरित्र' (1879), 'वेश्य-विलास', 'बैल छः टके को', आदि। त्रिपाठी जी के पौराणिक नाटक उच्च कोटि के नहीं हैं, किन्तु प्रहसनों में व्यग्यात्मक शैली का विकास यथेष्ठ रूप में हुआ है। शालिग्राम ने भी 'अभिमन्यु वध' (1896), 'पुरू-विक्रम' (1906), 'मोरध्वज (1890), आदि पौराणिक तथा 'लावण्यवती-सुदर्शन' (1892), ' माध्वानन्द-कामकंदला' (1904), आदि रोमांटिक नाटकों की रचना की थी, जो कलात्मक दृष्टि से सामान्य कोटि के हैं। अम्बिकादत्त व्यास के दो नाटक-'भारत-सौभाग्य' (1887), 'गो संकट नाटक' (1886), युगीन परिस्थियों पर आधारित है। इनके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित 'ललिता नाटिका', 'मन की उमंग', आदि भी उपल्बध है। इनमें प्रेम और हास्य का सम्मिश्रण हैं। खड्ग बहादुर मल्ल ने भी 'महारास' (1885), 'हर-तालिका' (1887), 'कल्प-वृक्ष' (1887), आदि पौराणिक नाटकों की रचना की हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त उनका एक प्रहसन 'भारते-भारत' (1888) भी उपलब्ध है। बलदेव प्रसाद मिश्र का 'मीराबाई' (1897), भक्ति-भाव से परिपूर्ण है। इसमें बीच-बीच में मीरा के पदों का भी उपयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त तोताराम रचित 'विवाह विडम्बन' (1900), कृष्णदेव शरण सिंह' गोप' का 'माधुरी रूपक' (1888), दामोदर शास्त्री का ' रामलीला नाटक' (1869), ज्वाला प्रसाद मिश्र का 'सीता-बनवास' (1875), काशीनाथ खत्री के 'तीन ऐतिहासिक रूपक' (1884), आदि भी इस युग की उल्लेखनीय कृतियां हैं। प्रहसनों की परम्परा को आगे बढ़ाने की दृष्टि से किशोरी लाल गोस्वामी का 'चौपट-चपेट' (1891), गोपालराम

गहमरी का 'जैसे का तैसा', नवल सिंह का 'वेश्य नाटक', विजया नंद त्रिपाठी का 'महा अंधेर नगरी' (1895), बलदेव प्रसाद मिश्र का ' लल्ला बाबू' आदि उल्लेखनीय है। इनमें समाज के विभिन्न वर्गो की कलुषित प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया गया है।

**अनुवाद-** इस युग में संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद भी बहुत बडी संख्या में प्रस्तुत हुए। संस्कृत के कालिदास, भवभूति, शूद्रक, हर्ष आदि के नाटकों के हिन्दी अनुवाद लाला सीताराम, देवदत्त तिवारी, नन्दलाल, ज्वालाप्रसाद मिश्र ने तथा बंगला के 'पदमावती', 'कृष्णकुमारी', 'वीरनारी' आदि का बाबू रामकृष्ण वर्मा, उदित नारायण लाल, ब्रजनाथ आदि ने प्रस्तुत किए। अंग्रेजी के शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद भी तोताराम, रत्नचन्द्र, मथुराप्रसाद उपाघ्याय आदि के द्वारा किए गए। वस्तुतः 19वीं सदी के अन्त तक विभिन्न भाषाओं के अनेक उत्कृष्ट नाटकों के अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत हो गए थे, जिनकी परवर्ती नाटककारों को बडी प्रेरणा मिली।

### 1.4.2 प्रसाद युग

इस युग के नाटक- साहित्य को भी विषय गत प्रवृत्तियों की दृष्टि से चार वर्गो में विभक्त किए जा सकता है- 1. ऐतिहासिक, 2. पौराणिक, 3. काल्पनिक, 4. अनुदित नाटक। इनमें से प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय यहां क्रमशः दिया जाता है।

**(1) ऐतिहासिक नाटक -** इस युग के सर्व-प्रमुख नाटककार जयशंकर प्रसाद ने मुख्यतः ऐतिहासिक नाटकों की ही रचना की थी। उनके नाटकों का रचना-क्रम इस प्रकार है- 'सज्जन' (1910), 'कल्याणी- परिणय' (1912), 'करूणालय' (1913), 'प्रायश्चित' (1914), 'राजश्री' (1915), 'विशाख' (1921), 'अजातशत्रु ' (1922), 'जनमेजय का नाग-यज्ञ' (1926), 'स्कन्दगुप्त' (1928), ' एक घूँट' (1929), 'चन्द्रगुप्त' (1929), और 'ध्रुवस्वामिनी' (1933)। प्रसाद जी अपने देश वासियों में आत्म-गौरव, स्वाभिमान उत्साह एवं प्रेरणा का संचार करने के लिए अतीत के गौरव पूर्ण दृश्यों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों का कथानक उस बौद्ध-युग से सम्बन्धित है। जबकि भारत की सांस्कृतिक-पताका विश्व के विभिन्न भागों में फहरा रहीं थीं। प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति को प्रसाद ने बड़ी सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है, उसमें केवल उस युग की स्थूल रेखाएं ही नहीं मिलती हैं। धर्म की बाहय-परिस्थितियों की अपेक्षा उन्होंने दर्शन की अन्तरंग गुत्थियों को स्पष्ट करना अधिक उचित समझा है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी उन्होंने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करते हुए उनमें परिस्थिति के अनुसार परिर्वतन व विकास दिखाया हैं। मानव-चरित्र के सत् और असत् दोनो पक्षों को पूर्ण प्रतिनिधित्व उन्होनें प्रदान किया है। नारी-रूप को जैसी महानता, सूक्ष्मता, शालीनता एवं गम्भीरता कवि प्रसाद के हाथों प्राप्त हुई है उससे भी अधिक सक्रिय एवं तेजस्वी रूप उसे नाटककार प्रसाद ने प्रदान दिया है। प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों में किसी न किसी ऐसी नारी-पात्र की अवधारणा हुई है जो धरती के दुःखपूर्ण अन्धकार के

बीच प्रसन्नता की ज्योति की भांति उद्दीप्त है,जो पाशविकता, दनुजता और क्रूरता के बीच क्षमा, करूणा एवं प्रेम के दिव्य संदेश की प्रतिष्ठा करती है जो अपने प्रभाव से दर्जनों को सज्जन, दुराचारियों को सदाचारी, और नृशंस अत्याचारियों को उदार लोक -सेवी बना देती है। 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' की उक्ति को इन दिव्य नायिकाओं पर पूर्णतः लागू होती है।

इस युग के अन्य ऐतिहासिक नाटकों में बद्रीनाथ भट्ट द्वारा रचित' चन्द्रगुप्त' (1915), 'दुर्गावती' (1926), 'तुलसीदास' (1925), सुदर्शन द्वारा रचित ' दयानन्द' (1917), मुंशी प्रेमचन्द का 'कर्बला' (1924), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'महात्मा ईसा' (1922), जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' के 'प्रताप-प्रतिज्ञा' (1928), गोविन्द बल्लभ पंत का 'वरमाला' (1925), चन्द्रराज भण्डारी का 'सम्राट-अशोक' (1923), आदि उल्लेखनीय है। बद्रीनाथ भट्ट के नाटकों में 'दुर्गावती' सर्वश्रेष्ट है। इसकी घटनाऐं ऐतिहासिक है, तथा चरित-चित्रण में स्वाभाविकता है। संवाद एवं भाषा-शैली की दृष्टि से यह उत्कृष्ट रचना है। सुदर्शन का 'दयानन्द' चरित्र प्रधान नाटक है। चरित्र- चित्रण एंव घटना क्रम के विकास की दृष्टि से यह भी एक सफल नाटक है। 'प्रेमचन्द का 'काबा कर्बला' पाठ्य रचना की दृष्टि से तो ठीक है किन्तु अभिनय की दृष्टि से दोष-पूर्ण है। नाटक की असाधारण लम्बाई, पात्रों की अत्यधिक संख्या, युद्ध, मार-काट, सेना के प्रयोग आदि के दृश्यों के कारण यह अनभिनेय बन जाता है। इस वर्ग के अन्य नाटक, महात्मा ईसा, 'प्रताप-प्रतिज्ञा', 'वरमाला' आदि अवश्य उच्च कोटि के नाटक है। इनमें ऐतिहासिकता, स्वाभाविकता, एवं कल्पना का सुन्दर संयोग हुआ है।

**(2) पौराणिक नाटक-** पौराणिक नाटकों की एक सशक्त परम्परा का प्रवर्तन इस युग से बहुत पूर्व ही भारतेन्दु- मण्डल के विभिन्न लेखकों द्वारा हो चुका था, जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। इस युग के पौराणिक नाटकों की एक सूची यहां प्रस्तुत है- 1. गंगाप्रसाद कृत 'रामाभिषेक नाटक' (1910), 2. ब्रजनंद कृत 'रामलीला नाटक' (1908), 3. गिरिधर लाल का 'रामवन यात्रा' (1910), 4. नारायण सहाय का 'रामलीला नाटक' (1911), 5. राम गुलाम का 'धनुष-यज्ञ लीला' (1912), 6. महावीर सिंह का 'नल-दमयन्ती' (1905), 7. गोचरण गोस्वामी का 'अभिमन्यु-वध' (1906), 8. लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी' (1910), 9. शिवनन्दन सहाय का 'सुदामा नाटक' (1907), 10. ब्रजनन्दन सहाय का 'उद्धव' (1909), 11. रामनारायण मिश्र का 'कंस-वध' (1910), 12. परमेश्वर मिश्र का 'रूपवती' (1907), 13. हरिनारायण का 'कामिनी-कुसुम' (1907), 14. रामदेवी प्रसाद का 'चन्द्रकला-भानु कुमार' (1904)। ये नाटक सामान्यतः साधारण कोटि के हैं। इनमें से अनेक पर पारसी रंगमचं की छाप है।

**(3) कल्पनाश्रित नाटक-** जिन नाटकों की कथा वस्तु में इतिहास पुराण और कल्पनामिश्रित होती है उन्हें कल्पनाश्रित नाटक कहा जाता है। इस वर्ग के नाटकों के दो भेद किए जा सकते है- 1. प्रहसन एवं 2. सामाजिक नाटक। प्रहसनों के अन्तर्गत मुख्यतः जे.पी श्रीवास्तव द्वारा रचित 'दुमदार आदमी'

(1919), उलट फेर (1919), 'मर्दानी औरत' (1920), बद्रीनारायण भट्ट द्वारा रचित 'चुगीं की उम्मीदवारी' (1919), 'विवाह विज्ञापन' (1927), बेचेन शर्मा के दो नाटक चार बेचारे सम्मिलित किए जा सकते है। सामाजिक नाटकों के अन्तर्गत मिश्र बन्धुओं के नाटक मुंशी प्रेमचंद का 'संग्राम', लक्ष्मण सिंह का 'गुलामी का नशा' प्रमुख नाटक है।

**(4) अनुदित नाटक-** इस युग में संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी से अनेक नाटकों के अनुवाद किए गए सत्य नारायण भवभूती के नाटकों का, रूपनारायण पाण्डेय ने बंगला के द्विजेन्द्र लाल राय के ऐतिहासिक नाटकों का तथा रविन्द्र नाथ ठाकुर के नाटकों का अनुवाद किया। अंग्रेजी के नाटकों का अनुवाद भी मुंशी प्रेमचन्द्र और ललित प्रसाद शुक्ल द्वारा किया गया।

### 1.4.3 प्रसादोत्तर युग

**(1) ऐतिहासिक नाटक -** इस युग में ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा का विकास हुआ। हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावन लाल वर्मा, गोविन्द बल्लभ पंत, उदय शंकर भटट, इस युग के प्रमुख नाटककार है।हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में रक्षाबंधन (1934), शिव साधना (1937), स्वपन भंग (1940), आहुति (1940), उद्धार (1949), शपथ (1951), भग्न प्राचीर (1954) आदि को सम्मिलित है। प्रेमी जी ने अपने नाटकों में प्राचीन इतिहास को न लेकर मुगल कालीन इतिहास का संदर्भ लिया है और उसके परिपेक्ष में वर्तमान राजनैतिक, साम्प्रदायिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है। वृदांवनलाल वर्मा इतिहास के विशेषज्ञ हैं उनके ऐतिहासिक नाटकों में झासीं की रानी (1948), बीरबल (1950), ललित विक्रम (1953) आदि उल्लेखनीय हैं।

**(2) सामाजिक नाटक -** गोविन्द बल्लभ पंत ने अनेक सामाजिक व ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। उनके 'राज-मुकुट' (1935), 'अन्तःपुर का छिद्र' (1940), आदि ऐतिहासिक नाटक हैं। पहले नाटक में मेवाड़ की पन्ना धाय का पुत्र के बलिदान तथा दूसरे में वत्सराज उदयन के अन्तःपुर की कलह का चित्रण प्रभावोत्पादक रूप में किया गया है। पंत जी के नाटकों पर संस्कृत, अंग्रेजी, पारसी आदि विभिन्न परम्पराओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। अभिनेयता का उन्होंने अत्यधिक ध्यान रखा है। उनकी कला का उत्कृष्टतम रूप उनके सामाजिक नाटकों में मिलता है।

**(3) पौराणिक नाटक -** इस युग में पौराणिक नाटकों की परम्परा का भी विकास हुआ। विभिन्न लेखकों ने पौराणिक आधार को ग्रहण करते हुए अनेक उत्कृष्ट नाटक प्र्रस्तुत किए, सेठ गोविन्द दास का 'कर्तव्य' (1935), चतुरसेन शास्त्री का 'मेघनाद' (1936), पृथ्वीनाथ शर्मा का 'उर्मिला' (1950), सद्गुरूशरण अवस्थी का 'मझली रानी', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'सीता की मां', गोकुल चन्द्र शर्मा का 'अभिनय रामायण', किशोरीदास वाजपेयी का 'सुदामा' (1939), चतुरसेन शास्त्री का 'राधा-कृष्ण', विरेन्द्र कुमार गुप्त का ' सुभद्रा-परिणय', कैलाशनाथ भटनागर के 'भीम-पतिज्ञा' (1934), और 'श्रीवत्स' (1941), उदय शंकर भटट के 'विद्रोहिणी अम्बा' (1935), और 'सगर-

विजय' (1937), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'गंगा का बेटा' (1940), डॉ.लक्ष्मण स्वरूप का 'नल-दमयन्ती' (1941), प्रभुदत्त ब्रह्मचारी का 'श्री शुक' (1944), तारा मिश्रा का 'देवयानी' (1944), गोविन्द दास का 'कर्ण' (1946), प्रेमनिधि शास्त्री का 'प्रणपूर्ति' (1950), उमाशंकर बहादुर का 'वचन का मोल' (1951), गोविन्द बल्लभ पंत का 'ययाति' (1951), डॉ.कृष्ण दत्त भारद्वाज का 'अज्ञातवास' (1952), मोहन लाल 'जिज्ञासु' का 'पर्वदान' (1952), हरिशंकर सिन्हा 'श्रीवास' का 'मां दुर्गे' (1953), लक्ष्मी नारायण मिश्र के 'नारद की वीणा' (1946), और 'चक्रव्यूह' (1954), रांगेय राघव का 'स्वर्ण भूमि का यात्री' (1951), मुखर्जी गुंजन का 'शक्ति-पूजा' (1952), जगदीश का 'प्रादुर्भाव' (1955), सूर्यनारायण मूर्ति का 'महा विनाश की ओर' (1960) आदि। प्राचीन संस्कृति के आधार पर पौराणिक गाथाओं के असम्बद्ध एवं असंगत सूत्रों में सबंधं एवं संगति स्थापित करने का प्रयास पौराणिक नाटक हमें आज के जीवन की व्यापकता एवं विशालता का संदेश देते हैं। रंग-मंच एवं नाटकीय शिल्प की दृष्टि से अवश्य इनमें अनेक नाटक दोषपूर्ण सिद्व होंगे किन्तु गोविन्द बल्लभ पंत, सेठ गोविन्द दास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जैसे मंजे हुए नाटककारों ने इसका कोई संदेह नहीं किया की ये नाटक विषय- वस्तु की दृष्टि से पौराणिक होते हुए प्रतिपादन- शैली एवं कला के विकास की दृष्टि से पौराणिक होते हुए प्रतिपादन- शैली एवं कला के विकास की दृष्टि से आधुनिक है तथा वे समाज की रूचि एंव समस्याओं के प्रतिकूल नहीं हैं।

**(4)कल्पनाश्रित नाटक -** इस युग के कल्पनाश्रित नाटकों को भी उनकी मूल प्रवृत्ति की दृष्टि से तीन वर्गो में विभक्त किया जा सकता है- 1. समस्या-प्रधान नाटक, 2. भाव- प्रधान, 3. प्रतीकात्मक नाटक। समस्या- प्रधान नाटकों का प्रचलन मुख्यतः इब्सन, बर्नार्ड शा आदि पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव से ही हुआ है। पाश्चात्य नाटक के क्षेत्र में रोमांटिक नाटकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यर्थाथवादी नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें सामान्य जीवन की समस्याओं का समाधान विशुद्ध बौद्धिक दृष्टिकोण से खोजा जाता है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या प्रधान नाटकों में 'सन्यासी' (1931), 'राक्षस का मन्दिर' (1931), 'मुक्ति का रहस्य' (1932), 'राजयोग' (1934), 'सिन्दूर की होली' (1934), 'आधीरात' (1937), आदि उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त इन्होने कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे थे। मिश्र जी के इन नाटकों में बौद्धिकतावाद, यर्थाथवाद, एवं फ्रायडवाद की प्रमुखता है। सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में सेठ गोविन्द दास, उपेन्द्र नाथ अश्क, वृंदावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। सेठ गोविन्ददास ने ऐतिहासिक, पौराणिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी अपने अनेक नाटकों में किया है, जिनमें से 'कुलीनता' (1940), 'सेवा-पथ' (1940), 'दुःख क्यों?' (1946), सिद्धांत- स्वातंत्र्य' (1938), 'त्याग या ग्रहण' (1943), 'संतोष कहाँ' (1945), 'पाकिस्तान' (1946), 'महत्व किसे' (1947), गरीबी-अमीरी' (1947), 'बड़ा पापी कौन' (1948) आदि उल्लेखनीय हैं। सेठ जी ने आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। ऊँच-नीच का भेद, 'भ्रष्टाचार एवं राजनीति के आधार पर नाटक लिखे। उपेन्द्र नाथ अश्क

ने राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का चित्रण अपने नाटकों में किया उनके उल्लेखनीय नाटकों में - कैद (1945), उड़ान (1949), छठा बेटा (1955), अलग- अलग रास्ते प्रमुख हैं।

वृंदावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक और सामाजिक नाटक लिखे उनके नाटकों में राखी की लाज (1943), बांस की फांस (1947), नीलकंठ (1951), प्रमुख हैं। वर्मा जी इन नाटकों में विवाह जाति - पाति और सामाजिक बुराइयों का अंकन किया है। इस युग के अन्य सामाजिक नाटकों में उदय शंकर भटट का कमला (1950), हरिकृष्ण प्रेमी का 'छाया', प्रेमचन्द का प्रेम की बेदि (1933), चतुरसेन शास्त्री का पद ध्वनि 1952, शम्भू नाथ सिंह का धरती और आकाश (1954), उल्लेखनीय हैं। प्रतीकवादी नाटकों की परम्परा जयशंकर प्रसाद के कामना से मानी जा सकती है। सुमित्रानन्दन का 'ज्योत्सना' (1934), भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'छलना', सेठ गोविन्द दास का नवरस एवं डॉ. लक्ष्मी नारायण दास का 'मादा कैक्टस' उल्लेखनीय है।

### 1.4.4 स्वातन्त्र्योत्तर युग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हिन्दी नाटक का विकास तेजी से हुआ कुछ लेखकों ने पुरानी परम्परा का ही निर्वाह किया किन्तु कुछ लेखकों ने नए शिल्प का प्रयोग किया। इसे हम तीन वर्गो में विभक्त कर सकता है-

1. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक नाटक -** इस वर्ग में मुख्यतया जगदीश चन्द्र माथुर, नरेश मेहता , विनोद रस्तोगी, डॉ. लक्ष्मी नारायण दास एवं डॉ. शंकर शेष की रचनाएं आती है। जगदीश चन्द्र माथुर ने 'कोर्णाक'(1952), पहला राजा(1969), 'दशरथनन्दन'(1974) में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के विषय में लिखा है। विष्णु प्रभाकर ने डॉ 1958, 'युगे-युगे क्रान्ति', 'टूटते परिवेश' आदि नाटकों में पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया है। नरेश मेहता ने सुबह के घण्टे (1956), और खण्डित यात्राएं (1962) में आधुनिक राजनिति और विसंगतियों पर प्रकाश डाला है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने 50 से अधिक नाटकों की रचना की है- 'अंधा कुआं', 'रात रानी', 'दर्पण', 'कर्फ्यू' , 'अब्दुला दीवाना', 'मि. अभिमन्यू' उनके महत्वपूर्ण नाटक है। डॉ. शंकर शेष ने अपने नाटकों में व्यक्ति समाज और संस्कृति के अन्तर द्वंद्व को उदघाटित किया है। 'बिन बाति के दीप', 'फंदी', 'खजुराहो के शिल्पी', 'एक और द्रोणाचार्य' उनके उल्लेखनीय नाटक है।

2. **व्यक्तिवादी नाटक -** इस वर्ग में मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, रमेश बक्षी, मुद्रा राक्षस की रचनाएं आती है। मोहन राकेश ने अपने तीन नाटकों 'आषाढ एक दिन' (1958), 'लहरों के राजहंस' (1963), 'आधे-अधूरे' (1969), में व्यक्ति एवं समाज के द्वंद्व को प्रर्दशित किया है। सुरेन्द्र वर्मा ने 'द्रोपदी' (1972), 'सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' 1975, और 'आठवां सर्ग' नाटक में परम्परागत मान्यताओं को चुनौती दी है। रमेश बक्षी ने अपने 'देवयानी का कहना है' नाटक में वैवाहिक संस्था की उपयोगिता पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया है, इसी प्रकार मुद्राराक्षस ने 'तिल

चटटा' 1975, में विवाह के संबंध में परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह किया है। इस वर्ग के लेखकों की दृष्टि मुख्यतः व्यक्ति स्वातंत्र्य, अहम, और प्रेम संबंधों पर केन्द्रित रही है।

3. **राजनैतिक नाटक -** राजनीति सदा से ही नाटकों का विषय बनती रहीं हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात राजनीति को आधार बनाकर अनेकानेक नाटक लिखे गए, जिनमें दया प्रकाश सिंन्हा का इतिहास चक्र एवं कथा एक कंश की, विपिन अग्रवाल का 'ऊँची-नीची टांग का जांघिया' , हमीदुल्ला का 'समय संदर्भ' , गिरीराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो', सुशील कुमार सिंह का ‘सिंहासन खाली है’, मणि मधुकर का 'रस-गन्धर्व ' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' विशेष उल्लेखनीय हैं इनमें एक ओर जनता का शोषण करने वाले राजनीतिज्ञों का भण्डाफोड़ किया गया है तो इसमें दूसरी ओर सत्ताधारी वर्ग द्वारा किए जाने वाले अनाचार, दुराचार और भ्रष्टाचार का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त शरद जोशी का अन्धों का हाथी, मन्नू भण्डारी का बिना दिवार का घर, शम्भू नाथ सिंह का ‘धरती और आकाश’ आदि भी उल्लेखनीय रचनाएं है। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में डॉ. कुसुम कुमार का नाम भी महत्वपूर्ण है ‘संस्कार को नमस्कार’, ‘रावण लीला’, इनके महत्वपूर्ण नाटक है।

इस प्रकार हम देखते है की हिन्दी नाटक का विकास अनेक रूपों और अनेक दिशाओं में हुआ है। यद्यपि प्रारम्भ में हिन्दी रंगमंच के अभाव तथा एंकाकी रेडियो रूपों एवं चल चित्रों की प्रतियोगिता के कारण इसकी विकास की गति मंद रही परन्तु कुछ स्वतन्त्र सस्थाओं द्वारा नाटकों का अभिनय किया जाता रहा है , टेलिविजन में दिखाए जाने वाले उबाउ विषयों से दर्शक धीरे-धीरे नाटक देखने की और पुन: उत्सुक हो रहें हैं .आशा है नाटकों का विकास पूर्व की भांति निरन्तर होता रहेगा

## 1.5 सारांश

नाट्य साहित्य के स्वरूप तथा हिन्दी नाटक के विस्तृत इतिहास का अध्ययन करने के पश्चात आप जान गए होंगे की नाट्य विधा साहित्य की सबसे सशक्त विधा है।

नाटक जीवन का ही प्रतिरूप है जीवन के थके हुए क्षणों से बोझिल मनुष्य ने मनोरंजन हेतु नाटक की उत्पत्ति की होगी जो आज तकनीकी विकास के रूप में फिल्म और टेलीविजन के नाटकों के रूप में हमारे समक्ष है।

हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास से भी आप परिचित हो गए है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने सामाजिक विसंगतियों शिक्षा नवजागरण के लिए नाटकों का माध्यम अपनाया, जयशंकर प्रसाद ने भारत के प्राचिन इतिहास को पुनः हमारे समक्ष प्रस्तुत करने के लिए नाटकों की रचना की जिसका की हम आगे आने वाले पृष्ठों पर विस्तृत अध्ययन करेगें।

## 1.6 शब्दावली-

| | | |
|---|---|---|
| नाटय शास्त्र | - | भरत मुनि द्वारा रचित ग्रथं |
| नाटक | - | साहित्य की एक ऐसी विधा जिसे रंगमचं पर अभिनय के माध्यम से पात्र कथोपकथन द्वारा जीवन्तता प्रदान करते हैं। |
| कथा वस्तु | - | नाटक के संदर्भ में कथावस्तु का तात्पर्य उस कथा से है जिसको अभिनय व संवाद के माध्यम से व्यक्त करते हैं। |
| पात्र | - | नाटक की कथा को संवाद और अभिनय के द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत करने वाले अभिनेताओं को नाटक का पात्र कहा जाता है। नाटक में कई प्रकार के पात्र होते हैं जैसे नायक, नायिका, खलनायक, विदुषक, सहनायक, सहनायिका, आदि अनेक सहायक पात्र। |
| संवाद | - | अभिनय करते हुए पात्र जो वार्तालाप करते हैं उसे कथोपकथन या संवाद कहा जाता है। कथावस्तु को गति संवादों के माध्यम से ही मिलती है पात्र विशेष की मानसिक स्थिति का ज्ञान संवाद द्वारा ही होता है। |
| रंगमच | - | नाटक की कथा जिस भूमि, स्थान अथवा मंच पर अभिनय व संवादों के माध्यम से मंचित होती है उसे रंगमंच कहा जाता है। नाट्य शास्त्र में रंगमंच के आकार प्रकार वास्तु रंग संयोजन, की विस्तृत व्याख्या की गयी है। |

## 1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. नाटय शास्त्र किसके द्वारा लिखा गया है ?

उत्तर - भरत मुनि।

प्रश्न 2. साहित्य के कितने स्वरूप होते है ?

उत्तर - साहित्य के दो स्वरूप होते हैं - 1 गद्य, 2 पद्य।

प्रश्न 3. नाटक, साहित्य के किस स्वरूप से सम्बन्धित है ?

उत्तर - नाटक, साहित्य के गद्य रूप से सम्बन्धित है।

प्रश्न 4. हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण कीजिए ?

उत्तर - हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है -

भारतेन्दु युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग, स्वातन्त्रोतर युग।

प्रश्न 5 राधा कृष्ण दास द्वारा रचित नाटकों के नाम बताइये ?

उत्तर - रानी पदमावती, धर्मालाभ, महाराणा प्रताप सिंह , राजस्थान केसरी।

प्रश्न 6. धर्मवीर भारती द्वारा लिखित काव्य नाट्य का नाम बताइये ?

उत्तर - अंधा युग।

प्रश्न 7. लक्ष्मीनारायण लाल ने किस प्रकार के नाटक लिखे हैं ?

उत्तर - लक्ष्मीनारायण लाल ने मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर आधारित नाटक लिखे हैं।

प्रश्न 8. हिन्दी का प्रथम नाटक किसे माना जाता है ?

उत्तर - बाबू गोपालचन्द्र द्वारा लिखित ‘नहुष नाटक’ (1841) को प्रथम नाटक माना जाता है।

प्रश्न 9. 'लहरों का राजहंस', 'आषाढ़ का एक दिन' नाटकों के रचयिता का नाम बताइये?

उत्तर - मोहन राकेश।

प्रश्न 10. वृदांवन लाल वर्मा के सामाजिक नाटकों का नाम बताइयें?

उत्तर - राखी की लाज, बांस की फांस, खिलौने की खोज, केवट, नीलकंठ, सगुन, वृदांवन लाल वर्मा जी के प्रमुख सामाजिक नाटक है।

## 1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्व कोश, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त

2. प्रसाद के नाटक, डॉ. परमेश्वरी लाल

3. प्रसाद के नाटक स्वरूप और संरचना, डॉ. गोविन्द चातक

4. हिन्दी नाटक उदभव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा

5. हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास, डॉ. सोमनाथ गुप्त

## 1.9 निबंधात्मक प्रश्न-

1. नाटक का स्वरूप निर्धारित करते हुए उसके विभिन्न तत्वों पर प्रकाश डालिए?

2. हिन्दी नाटक के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालिए?

# इकाई 2 जयशंकर प्रसाद परिचय एवं कृतित्व

इकाई की रूपरेखा


2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 जयशंकर प्रसाद : परिचय एवं कृतित्व

2.4 जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्त्व

2.4.1 प्रसाद जी का नाट्य-साहित्य

2.5 सारांश

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.9 निबंधात्मक प्रश्न


## 2.1 प्रस्तावना

जयशंकर प्रसाद युग निर्माता थे, उन्होंने अपने साहित्य के परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों को पहचान कर उन्हें युगानुरूप रूपायित करने का स्तुत्य प्रयास किया था। इसलिए वे आधुनिक युग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्यकार माने जाते हैं ।प्रतिभा के धनी जयशंकर प्रसाद जी ने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि सभी साहित्यिक विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। इतिहास एवं प्राचीन दर्शन ग्रंथों के वह प्रकाण्ड विद्वान थे, उनका समस्त साहित्य गम्भीर चिंतन का परिणाम है। उसमें केवल मनोंरजन न होकर गम्भीर शास्त्रों का मंथन है।

प्रस्तुत इकाई में आप महाकवि जयशंकर प्रसाद के सम्पूर्ण जीवन एवं कृतित्त्व का परिचय प्राप्त करेंगे तथा साथ ही साथ उनके सफल नाटककार रूप का गहन विवेचन कर सकेंगे

## 2.2 उद्देश्य

साहित्य और समाज का घनिष्ट सम्बन्ध है समाज की परिस्थियों के अनुसार साहित्य बदलता रहता है, इसका अर्थ यह है कि साहित्य में समाज की सामाजिक, आर्थिक धार्मिक, एवं

राजनैतिक सभी परिस्थितियाँ प्रतिबिम्बित होती है। साहित्य के अनुसार ही समाज का विकास होता है, और समाज की परिस्थियों के अनुकूल ही साहित्य की सृष्टि होती है।

आप लोग जानते ही होगें की साहित्य प्रतिभासम्पन्न रचनाकारों द्वारा लिखा जाता है अतः किसी साहित्यकार के साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व साहित्यकार के जीवन का अध्ययन करना आवश्यक है, क्योकिं व्यक्ति के स्वयं के जीवन का प्रभाव उसके द्वारा लिखे गए साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है।

## 2.3 जयशंकर प्रसादः परिचय एवं कृतित्त्व

**जीवन परिचय -** प्रतिभा के धनी महाकवि जयशंकर प्रसाद का जन्म सम्वत 1946 ई. में काशी तथा मृत्यु संवत् 1994 में हुई। उनका जन्म काशी के प्रसिद्व वैश्य कुल मे हुआ जो साहू संुघनी के नाम से प्रसिद्व था। उनके पिता का नाम श्री देवी प्रसाद एवं पितामह का नाम श्री शिव रत्न साहू था। उनके पिता बड़े दानी और धर्मात्मा व्यक्ति थे। उनके पिता एक कुशल व्यवसायी होने के साथ-साथ अत्यन्त उदार एवं साहित्यिक अभिरूचि के व्यक्ति थे। उनके यहां प्रायः साहित्यिक चर्चाएं होती रहती थीं। इस साहित्यिक वातावरण का प्रभाव बालक जयशंकर प्रसाद पर भी पड़ा और वह लुक- छिपकर कविताएं करने लगे। उनका पालन-पोषण बड़े लाड़ में हुआ। उनकी शिक्षा भी अधिक नहीं हो पायीं थी और अभी वह क्वीन्स कालेज की आठवीं कक्षा तक ही पहुचं पाए थे की उनके पिताजी का देहान्त हो गया, जिससे उन्हें अपनी पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी । बाद में उन्होंने घर पर ही अंग्रेजी, संस्कृत, इतिहास, हिन्दी, आदि का गम्भीर अध्ययन किया। प्रसाद जी सादगी, सौजन्य एवं उदारता की प्रतिमूर्ति थे। वह कसरत और घोड़े की सवारी के शौकिन थे। प्रसाद जी का यौवन काल अनेक विपत्तियों से ग्रस्त रहा। 17 वर्ष की अवस्था में ही उनके भाई का भी देहान्त हो गया था। समस्त परिवार की जिम्मेदारी उन्हीं पर आ पड़ी। प्रसाद जी कुशल व्यवसायी थे उनके यहां सुगधिंत पदार्थों का व्यापार होता था।

**साहित्यिक सेवा -** प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने कविता, कहानी, आलोचना सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। इतिहास और प्राचीन दर्शन के वे प्रकाण्ड विद्वान थें। प्रसाद जी का साहित्यिक जीवन इन्दू पत्रिका से प्रकाश में आया।पत्रिका के विकास के साथ साथ जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक जीवन भी अग्रसर होता चला गया। प्रसाद जी की रचना की सूची उनके प्रकाशन वर्ष के साथ इस प्रकार है-

1. **काव्य -** चित्राधार (1912), कानन कुसुम (1913), करूणालय (1913), महाराणा का महत्त्व (1914), प्रेम पथिक (1914), झरना (1918), आंसू (1925), लहर (1933) कामायनी (1936)

2. **नाटक** - सज्जन (1910), कल्याणी परिणय (1912), राज्यश्री (1914), विशाख (1921), अजात शत्रु (1923), जन्मेजय का यज्ञ नाग (1926), कामना (191), स्कन्दगुप्त (1928), चन्द्रगुप्त (1928), ध्रुवस्वामिनी(1930)

3. **एंकाकी** - एक घूंठ

4. **कहानी संग्रह** - छाया (1912), प्रतिध्वनि (1926), आकाशदीप (1929), आंधी (1933), इन्द्रजाल (1936)

5. **उपन्यास** - कंकाल (1929), तितली (1934), इरावती (अपूर्ण),

6. **निबंध** - काव्य कला तथा अन्य निबंध।

## 2.4 जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व

हिन्दी-साहित्य में प्रसाद जी का व्यक्तित्व युगान्तरकारी माना जाता है। हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों के वे जन्मदाता थे एवं हिन्दी कविता में छायावाद को प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्रसाद जी को ही है। डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना के शब्दों में- ''प्रसाद छायावाद की काव्यधारा के प्रवर्तक ही नहीं हैं, अपितु उसकी प्रौढ़ता, शालीनता, गुरुता, गम्भीरता के भी पोषक कवि हैं। प्रसाद की कविताओं में प्रकृति के सचेतन रूप के साथ-साथ मानव के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन की जैसी रमणीक झाँकी अंकित है, वैसी किसी अन्य कवि की कविता में दृष्टिगोचर नहीं होती।''बहुमुखी प्रतिभा के धनी जयशंकर प्रसाद आधुनिक युग के एक श्रेष्ठ रचनाकार हैं। हिन्दी के काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध को अपनी पारस-प्रतिभा से छू कर उन्होंने स्वर्णिम बना दिया है जिसके आलोक से आज भी प्रकाश ग्रहण किया जा सकता है। प्रसाद के संपूर्ण वाङमय का अध्ययन करके कोई भी व्यक्ति इस सत्य से साक्षात्कार कर सकता है।

प्रसाद मूलतः एक कवि हैं और अपने कवि का उत्तरोत्तर विकास प्रसाद को व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाता है। उनके काव्य की यह एक बड़ी विशेषता है। उनकी कविता निजता के बिंदु से शुरू होकर व्यापकता प्राप्त करती हुई वृहतर समाज से जा जुड़ती है। ये विकास-क्रम उनकी हर कविता में देखा जा सकता है और इसकी पराकाष्ठा, 'कामायनी' में देखी जा सकती है। प्रसाद 'वैयक्तिकता' से 'सामाजिकता' की ओर प्रयाण के कवि हैं। 'विश्व कल्याण' की मानवतावादी भावना इसके मूलक है और भारतीय चिंतन धारा इसका मूल स्रोत हैं। प्रसाद ने द्विवेदी युगीन काव्यधारा की परिपाटी को तोड़ा है और इसमें रस एवं सौंदर्य का समावेश करके भाषा को जो प्राँजलता दी उस पर युग के झीने आवरण तले समष्टि की बात कवि करता है। भारतीय चिंतन-धारा की अनिवार्य परिणति जिस आदर्शवाद में होती है वह प्रसाद के यहाँ अवश्य है। भारतीय दर्शन, संस्कृति और अपने अतीत के

प्रति गहरे सम्मान की भावना जो एक आत्मविश्वास प्रदान करती है प्रसाद ने अपने समाज को देने का प्रयत्न किया है।

भारत की इसी सांस्कृतिक गौरव गरिमा और राष्ट्रीय चेतना को वाणी देने के लिए प्रसाद ने नाटकों का सृजन किया। उन्होंने इतिहास के पृष्ठों से उन अध्यायों को चुना जो सर्वतोन्मुखी विकास के कारण 'स्वर्ण-युग' कहलाते थे और जिनके माध्यम से वे वर्तमान समाज में जन-चेतना को जागृत कर सकते थे। प्रसाद की मानवतावादी-पारस्परिक प्रेम, सौहार्द की भावना इन नाटकों में देखने को मिलती है। प्रसाद के नाटकों में जहाँ-तहाँ उनका कवि झाँकता दिखाई दे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ये कवि कभी पात्रों की कल्पना में, कभी भाषा, कभी भावाभिव्यक्ति तो कभी-गीतों में सक्रिय होता है। प्रसाद के नाटक आज की नई तकनीक से निर्मित रंगमंच पर सुगमता से प्रदर्शित हो सकते हैं- पहले ऐसा संभव नहीं था। हाँ, तत्सम प्रधान भाषा 'हिंग्लिश' वादी युग में जरूर एक समस्या है। प्रसाद की कहानियाँ उनके कवि-मन का सहज उच्छलन तो है ही उनके आदर्शवादी युग का भी परिचय देती हैं। प्रसाद की कहानियों में जहाँ कवि-कल्पना से सृजित कुछ गरिमापूर्ण, उच्चादर्श सम्पन्न पात्र हैं। वहाँ उनकी दृष्टि सामाजिक, रूढ़िवाद, धार्मिक-पाखंड, आर्थिक विषमता, सांमप्रदायिकता नारी शोषण आदि यथार्थवादी समस्याओं पर भी पड़ी है। इन समस्याओं को सुलझाने का उनका अपना ढंग है जो उनके आदर्शवादी, दार्शनिक चिंतन से निसृत हैं। प्रसाद ने कालजयी कहानियाँ हिन्दी कहानी साहित्य को दी। प्रसाद के उपन्यासों को भी इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए। यथार्थ, आदर्श और इतिहास का संयोग प्रसाद के उपन्यासों की अपनी विशेषता है। उपन्यासों की रचना करके उन्होंने यथार्थ की भूमि को अपनाए बिना उपन्यास का सृजन महत्वपूर्ण नहीं हो सकता। उपन्यास यथार्थ की देन है। 'कंकाल' में प्रसाद ने इसका भरपूर लाभ उठाया है। प्रसाद निबंधों में उनके चिंतक के दर्शन होते हैं। उनके द्वारा लिखित भूमिकाएँ उनके गम्भीर अध्येता और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देती हैं- किसी छायावादी कवि ने इस प्रकार इतिहास को नहीं खंगाला। प्रसाद की दृष्टि जन जागरण की थी। उनके निबन्धों में उनकी विद्वता का परिचय तो मिलता ही है, उनकी भारतीय दर्शन के प्रति गहरी आस्था और संलग्नता भी प्रकट होती है। परिणाम में भले ही ये निबंध कम हैं मगर चिंतन में अत्यन्त गहरे हैं। प्रसाद साहित्य अपनी उदात्तता, भारतीय संस्कृति एवं दार्शनिक चेतना से सम्पन्न एक ऐसा प्रकाश स्तंभ है जिसकी चमक और आभा ज्ञान, आस्था एवं उच्चादर्शो के अन्वेषकों का सदैव मार्ग-दर्शन करती रहेगी।

### 2.4.1 प्रसाद जी का नाट्य-साहित्य

जिस प्रकार हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द को मील का पत्थर माना जाता है उसी प्रकार हिन्दी नाट्य-साहित्य में प्रसाद जी को युग-परिवर्तनकारी कहा जाता है। कथा-साहित्य के विकास को प्रायः पूर्व-प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्द युग और उत्तर-प्रेमचन्द युग के रूप में विभाजित किया जाता है। इसी प्रकार हिन्दी नाट्य-साहित्य को पूर्व-प्रसाद युग, प्रसाद युग और प्रसादोत्तर युग के रूप में बाँटा जाता

है। हिन्दी नाटकों में भारतीय और पाश्चात्य नाटय-शिल्प के समन्वय का गौरव प्रसाद जी को ही प्राप्त है। प्रसाद जी ने ठेठ भारतीय नाट्यशास्त्र के आधार पर नाटकों की रचना की। इस दृष्टि से प्रसाद जी का स्थान हिन्दी नाट्य-साहित्य में महत्वपूर्ण है। पाश्चात्य नाट्य-रचना शैली को स्वीकार करते हुए भी प्रसाद जी ने भारतीय नाट्य-रचना-शैली के मूल सिद्धान्त ‘वस्तु नेता रसाः तेषां भेदकाः’ (कथावस्तु, नायक और रस रूपकों के भेदक अर्थात् भिन्न-भिन्न करने वाले हैं) का पालन किया। डॉ. गोविन्द चातक ने प्रसाद जी की नाट्य-कला के विषय में लिखा है- ‘‘प्रसाद जी ने अपने नाट्य-शिल्प के लिए अपने व्यक्तित्व, कथ्य और दर्शन से महत्वपूर्ण उपकरण जुटाए हैं। इसमें कहीं वे अपने पूर्ववर्तियों से जुड़े हैं, किन्तु कहीं वे अपनी जीवन-दृष्टि, इतिहास-प्रेम, रस-सृष्टि, रोमांस आदि बिल्कुल अलग दिखाई देते हैं। उन्होंने परम्परा और प्रयोग दोनों को काव्यात्मक गहराई प्रदान की। इसी काव्य-तत्त्व की प्रधानता के कारण प्रसाद का नाट्य-शिल्प बहुलता से ग्रस्त है। यह बहुलता स्वछंदतावादी प्रवृत्ति के अनुरूप अभिव्यक्ति की तीव्र इच्छा से परिपूर्ण है। सादृश्य और वैषम्य विधान, सत् और असत् के द्वन्द्व, त्रासद तत्व तथा नाटकीय व्यंग्य के माध्यम से प्रसाद के नाटक उस विस्तार को प्राप्त करते हैं, जो उन्हें महाकाव्यात्मक आभास प्रदान करते हैं।’’

प्रसाद का सामयिक परिवेश संक्रान्ति काल कहा जाता है। इस समय में राजनीति, समाज और धर्म सभी में उथल-पुथल मची थी। इस संक्रान्ति काल और उथल-पुथल ने हमें अपने राष्ट्र और संस्कृति के विषय में गम्भीरता का कोई समाधान प्रतीत नहीं हो रहा था। इस परिस्थिति में सच्चे और स्वाभिमानी साहित्यकार का ध्यान भारत के गौरवमय अतीत की ओर जाना स्वाभाविक था। प्रत्येक पददलित, परतंत्र और पराजित जाति को अपना अतीत आकर्षक एवं गौरवपूर्ण जान पड़ता है। प्रसाद जी वैसे भी दार्शनिक स्वभाव के साहित्यकार थे। उनकी मान्यता थी कि दर्शन को चिन्तन तक सीमित न रखकर व्यवहार में लाना चाहिए। प्रसाद जी दर्शनशास्त्र की उपयोगिता इसी में समझते थे। प्रसाद जी शैव-दर्शन के आनन्दवाद में आस्था रखते थे। वैसे भी बनारस को भूतभावन भगवान शिव के त्रिशूल पर बसा माना जाता है। बनारसवासियों का शैव-दर्शन में श्रद्धा रखना स्वाभाविक है। शैव-दर्शन के आनन्दवाद का ही चमत्कार था, कि प्रसाद जी संघर्ष से कभी चिन्तित और भयभीत नहीं हुए। प्रसाद जी भारतीयता का पुनरूत्थान भारत के प्राचीन इतिहास से उज्जवलतम उदाहरण जनसाधारण के सम्मुख रखने में मानते थे। यही कारण है कि प्रसाद जी के नाटकों में ‘कामना’ और ‘एक घूँट’ को छोड़कर शेष सभी का आधार इतिहास है। प्रसाद जी ने ‘विशाख’ नाटक की भूमिका में यह बात स्वयं स्वीकार की है- ‘‘इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है, क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारे जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है, उससे बढ़कर और कोई भी उपयुक्त आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नही, इसमें हमें पूर्ण सन्देह है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने कि हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।’’

प्रसाद जी ने नवीन युग की भी उपेक्षा नहीं की। वे प्राचीन भारत के साथ-साथ नवीन युग को भी साथ लेकर चले। उन्होंने इतिहास के अनुशीलन के साथ नवीन कल्पना का प्रयोग किया। इस प्रकार वे नाट्य-कला में नवीनता की उद्धावना करने में सफल हुए। प्रसाद जी के नाटकों में जो अन्तर्द्वन्द्व पाया जाता है, यह पश्चिम के साहित्य का प्रभाव है। प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास का निर्वाह होते हुए भी आधुनिकता की छाप का यही हेतु है। प्रसाद जी को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ नाटककार घोषित करने में उनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना, दार्शनिक चिन्तन, स्वाभाविक चरित्र-कल्पना, राष्ट्रीयता के प्रति आग्रह, संघर्ष के विष से जीवन के अमृत की खोज का प्रयास और नवीन नाट्य-शैली कारण हैं। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में भाषा के प्रौढ़ एवं परिमार्जित रूप का प्रयोग किया है। इन्ही सब विशेषताओं के कारण प्रसादजी के नाटक स्थायी साहित्य के उज्वल रत्न बन सके हैं। प्रसाद जी ने भारतीय इतिहास के किस काल-खण्ड को अपने नाटकों में स्थान दिया है, इस विषय में पं. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का सर्वथा समीचीन है- ''उन्होंने (प्रसाद जी ने) महाभारत युद्ध से लेकर हर्षवर्धन के राज्य-काल तक के भारतीय इतिहास को अपना लक्ष्य बनाया है। क्योंकि यहीं भारतीय संस्कृति की उन्नति और प्रसार का स्वर्णयुग कहा जाता है। जनमेय, परीक्षित से आरम्भ होकर वह स्वर्ण-युग हर्षवर्धन तक आया है। बीच में बौद्ध-काल, मौर्य और गुप्त-काल ऐसे हैं, जिनमें आर्य-संस्कृति अपने उच्चतम उत्कर्ष पर पहुँची है। अतएव तत्कालीन उत्कर्षाकर्ष के यथार्थ चित्रण के अभिप्राय से लेखक ने कुछ विशिष्ट प्रतिनिधियों को चुनकर उनके कुल-शील और जीवन-वृत्त के द्वारा उस रहस्योद्घाटन की चेष्टा की है। जो वर्तमान को जीवित रखने में सहायता कर सके। जनमेजय, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, हर्षवर्धन इत्यादि उस काल के सर्वोत्तम प्रतिनिधि हैं। इसलिए लेखक ने (प्रसाद जी ने) इन्हीं व्यक्तियों को अपने रूपकों का नायक बनाया है।''

इतिहास और साहित्य में अन्तर होता है। इतिहास में तो घटनाओं का क्रमशः विवरण दिया जाता है अथवा वर्णन किया जाता है, अतएव रसानुभूति सम्भव नहीं होती। किन्तु साहित्य में इतिहास की घटनाओं की व्याख्या की जाती है। साहित्यकार अपनी प्रतिभा एवं रूचि के अनुसार ही इतिहास की घअनाओं की व्याख्या उन्हें साहित्य का रूप प्रदान करता है। प्रसादजी ने भारत के प्राचीन इतिहास की प्रमुख घटनाओं का चयन करके उनके आधार पर अपने अधिकांश नाटकों की रचना की है। उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं की मौलिकता को सुरक्षित रखते हुए अपनी प्रतिभा के अनुसार उनकी व्याख्या करके अपने नाटकों की रचना की है। ऐतिहासिक घटनाओं की इस व्याख्या में कहीं-कहीं देश और काल का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इतिहास को आधार बनाने के साथ-साथ प्रसादजी अपनी समसामयिक वस्तुस्थिति से भी प्रभावित रहे हैं। साहित्यकार की सफलता इसी में है कि वह प्राचीन इतिहास को चौखट (फ्रेम) बनाकर उसमें समसामयिक समस्याओं तथा उनके समाधान को चित्र के सममन समारोपित कर सके। उदाहरण के रूप में प्रसादजी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' को लिया जा सकता है। इसमें राष्ट्रीयता का चित्रण अधिक विस्तार से हुआ है। इसका मौलिक एवं प्रधान कारण रहा है- भारत का आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन। 'चन्द्रगुप्त'

नाटक में हम उस राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रीय आंदोलन की झलक पा सकते हैं। जो परतन्त्र भारत को स्वतंत्र करने के उद्देश्य से भारतीय वीरों ने आरंभ किया था। चन्द्रगुप्त  नाटक की प्रधान स्त्री पात्र अलका राष्ट्रीय झंडा लेकर देश-प्रेम की जिस भावना  का प्रचार-प्रसार करने में संलग्न है, उसमें आधुनिक भारतीय स्वतंत्रता-सेविकाओं का सच्चा रूप देखा जा सकता है। चाणक्य, सिंहरण और चन्द्रगुप्त आपस में जिस देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना पर वाद-विवद करते हैं, उसका आधार आधुनिक स्वतंत्रता संग्राम के नायकों तथा अंग्रेजों के पिट्ठू भारतीयों की बातचीत से भिन्न नहीं है। चाणक्य महात्मा गाँधी का, चन्द्रगुप्त, जवाहरलाल नेहरू का और सिंहरण, सरदार पटेल का प्रतिनिधि है । तक्षशिला नरेश का पुत्र उन कलंकित भारतीयों का प्रतिनिधि है जो अंग्रेजों के पक्षधर थे और भारत में अंग्रेजी राज्य स्थायी रखना चाहते थे। स्कन्दगुप्त सम्पूर्ण आर्यावर्त की रक्षा, शांति एवं सम्पन्नता का उत्तरदायित्व वहन करता है। यह निश्चित रूप  से गुप्त साम्राज्य एवं शासन-काल की बहुत बड़ी विशेषता है। इसमें भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम की प्रतिछति देखी जा सकती है। प्रसादजी की इन ऐतिहासिक नाटकों में पुरूषों के साथ-साथ स्त्रियाँ भी देश की सेवा का संकल्प लिये हुए दिखाई देते हैं। एवं पुरूषों की चिरसंगिनी बनकर प्रयत्नशील हैं। उनके मूल में आधुनिक भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम की उन स्वयं सेविकाओं की छवि को अंकित करना है, जिन्होंने पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर स्वतंत्रता-प्राप्ति के आंदोलन भाग लिया। ‘चन्द्रगुप्त’ नाटक में मगध सम्राट नन्द की मूर्ख प्रजा बौद्धों एवं वैदिकधर्मी ब्राह्मणों के रूप में जो संघर्ष कर रही है, उसके मूल में अंग्रेज शासकों द्वारा परतंत्र भारत में उकसाया गया हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव और संघर्ष है। ‘ध्रुवस्वामिनी’ नाटक में जो विवाह-विच्छेद और पुनर्विवाह के रूप में नारी समस्याएँ खड़ी की गई हैं, वे स्वामी दयानन्द द्वारा आधुनिक भारत की नारियों को शोचनीय दशा से उबालकर नव-जीवन प्रदान करने की घटनाओं के समान ही हैं।

प्रसादजी की नाट्य-रचनाओं का काल-क्रम निम्नलिखित है-

(1) सज्जन सन् 1910-11,(2) कल्याणी परिणय सन् 1912, (3) करूणालय सन् 1912, (4) प्रायश्चित सन् 1914, (5) राज्यश्री सन् 1914, (6) विशाख सन् 1921, (7) अजातशत्रु सन् 1922, (8) जनमेजय का नागयज्ञ सन् 1926, (9) कामना सन् 1927, (10) स्कंदगुप्त सन् 1928, (11) चन्द्रगुप्त सन् 1928, (12) एक घूँट सन् 1929-30, (13)  ध्रुवस्वामिनी सन् 1930,।

इनके अतिरिक्त प्रसादजी ने ‘अग्निमित्र’ नाम से एक नाटक लिखना प्रारम्भ किया था, जिसे वे पूरा नहीं कर सके। इसकी पाण्डुलिपि के प्रारम्भिक पृष्ठ भी अप्राप्य हैं। प्रसादजी के सुपुत्र श्री रत्नशंकर प्रसाद के संपादन में लोकभारती प्रकाशन (इलाहाबाद) से प्रसाद का नाट्य- साहित्य नामक जो ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, उसमें इस नाटक को अन्तिम स्थान दिया गया है। प्रसादजी की मृत्यु सन् 1937 में हुई। इस आधार पर इसका रचना-काल सन् 1936-37 के मध्य माना जा सकता है।

डॉ. गोपाल राय ने प्रसाद जी के नाटकों के शिल्प के विषय में अपनी मान्यता इस प्रकार व्यक्त की है- ''प्रसाद जी ने नाटकों पर कई तरह के प्रभाव दिखाई पड़ते हैं। उनके सामने संस्कृत नाट्यशास्त्र की गौरवमयी परम्परा तो थी ही, अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर की कृतियाँ भी थी। समकालीन बंगला नाटककार, जिनमें द्विजेन्द्र लाल राय प्रमुख थे, शेक्सपियर के नाटकों से प्रभावित थे। प्रसाद पर इनका प्रभाव भी पड़ा था। यही नहीं, पारसी नाटक कम्पनियों का-जिन्हें वे (प्रसाद जी) बिल्कुल भी सहन नहीं करते थे, प्रभाव भी उन पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़े बिना न रहा। उनके प्रारम्भिक नाटकों में गद्यात्मक वार्तालापों के बीच तुकबन्दी, पद्यात्मक संवाद तथा नर्तकियों का नाचते हुए प्रवेश आदि पारसी नाटकों के प्रभाव से ही आए जान पड़ते हैं। वस्तु-योजना, नायक-परिकल्पना तथा रस-सृष्टि में जहाँ वे संस्कृत नाटकों के निकट प्रतीत होते हैं, वहाँ कथावस्तु के संघर्ष का समायोजन, अंकों का दृश्यों में विभाजन, वस्तु-संगठन एवं पात्रों की सृष्टि में संस्कृत नाट्यशास्त्र की त्रृटियों की अवहेलना उन्हें अंग्रेजी-विशेषकर शेक्सपियर के नाटकों के निकट ले जाती है। लगता है, बाद में इन्होंने इब्सन और बर्नार्ड शॉ से भी प्रभाव ग्रहण किया था। 'ध्रुवस्वामिनी' में इस प्रभाव की कुछ झलक देखी जा सकती है।'' प्रसाद जी अपने नाट्य-शिल्प के लिए चाहे संस्कृत के भारतीय नाट्यशास्त्र से प्रभावित रहे हों, अथवा पाश्चात्य नाट्यशास्त्र और अंग्रेजी के नाटककारों से प्रभावित रहे हों, पर इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रसाद जी ने अपनी नाट्य-रचना-शैली में मौलिकता को सुरक्षित रखा है। प्रसाद जी के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों का समन्वय करके नाट्य-रचना की है। यह समन्वय भी मौलिकता का ही प्रतीक है। दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का समन्वय करना भी साधारण बात नहीं है।

डॉ. मोहन अवस्थी ने प्रसाद की रचना-शैली को न किसी से प्रभावित माना है और न समन्वित स्वीकार किया है। वे प्रसाद की नाट्य-रचना-शैली को मौलिक सिद्ध करते हुए लिखते हैं- ''प्रसाद के नाटक न तो भारतीय नाट्यशास्त्र की कसौटी पर कसे जा सकते हैं और न पाश्चात्य नाटकों के पूरे नियम उन पर लागू होते हैं। भारतीय नाट्य-विधान सुखांत नाटक का पक्षपाती है और पाश्चात्य नाटकों में दुःखान्त को उत्तम समझा जाता है, लेकिन प्रसाद के नाटक न दुःखान्त हैं, न सुखान्त । उदाहरणार्थ 'स्कन्दगुप्त' में स्कन्दगुप्त विजयी होता है और अपनी प्रेयसी देवसेना के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। परन्तु देवसेना उसे उस मार्ग से सविनय विरत कर देती है। फिर भी वह स्कन्दगुप्त को उसी भाव से (बल्कि उससे कहीं अधिक) प्रेम करती है। इस तरह नाटक का अन्त एक विचित्र स्थिति में होता है। ऐसा अन्त 'विषादान्त' तो निश्चितरूपेण नहीं है, अतएव उसे 'प्रसादान्त' कहते हैं।'' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रसाद जी के समकालीन आलोचक थे। शुक्ल जी ने 'यथातथ्यवाद' के प्रचार से बचकर नाट्य-रचना करने के लिए हरिकृष्ण प्रेमी और प्रसाद जी की प्रशंसा की है-'' इधर यथातथ्यवाद के प्रचार से वहाँ रहा-सहा काव्यत्व भी झूठी भावुकता कहकर हटाया जाने लगा है। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि हमारे प्रसाद और प्रेमी-जैसे प्रतिभाशाली नाटककारों ने उक्त प्रवृत्ति का अनुसरण न करके रस-विधान और शील-वैचित्र्य दोनों का सुन्दर सामंजस्य रखा है।

## 2.5 सारांश

महाकवि जयशंकर प्रसाद के जीवन से आप परिचित हो गए हैं। प्रसाद जी ने ऐसे समय में साहित्य रचना आरम्भ की थी जब भारत वर्ष दासता के बंधन में था। अतः उन्होंने देश के प्राचीन गौरव की स्मृति से जनमानस को प्रभावित करने के लिए प्राचीन इतिहास को आधार बनाकर साहित्य की रचना की। प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थें उन्होंने पद्य और गद्य दोनो रूपों में हिन्दी साहित्य की सेवा की है। वे न केवल कवि थे और न केवल लेखक उन्हें साहित्कार कहना उचित होगा। प्रत्येक सफल और श्रेष्ठ साहित्यकार की एक जीवन दृष्टि होती है प्रसाद की जीवन दृष्टि में राष्ट्र प्रेम, मानवीयता, नारी के प्रति प्रेम और सम्मान, और प्रकृति के प्रति अनुराग की भावना प्रमुख है।

हिन्दी साहित्य जगत में जयशंकर प्रसाद का स्थान अप्रतिम है। उनका उल्लेख किए बिना हिन्दी साहित्य का इतिहास अपूर्ण है।

## 2.6 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. जयशंकर प्रसाद का जन्म कब हुआ ?

उत्तर - जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी में माग शुक्ल दशमी संवत् 1948, अर्थात सन् 1889 में हुआ

प्रश्न 2. जयशंकर प्रसाद के पिता का नाम बताइए ?

उत्तर - देवी प्रसाद साहू

प्रश्न 3 प्रसाद जी के साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ किस पत्रिका से हुआ ?

उत्तर - इन्दू मासिक पत्रिका

प्रश्न 4. प्रसाद जी के प्रमुख काव्य-ग्रंथों का नामोल्लेख किजिए ?

उत्तर - चित्रधार, कानन कुसुम, करूणालय, महाराणाप्रताप का महत्त्व , प्रेम पथिक, झरना, आंसू, लहर, कामायनी

प्रश्न 5. जयशंकर प्रसाद की सर्वोत्कृष्ट काव्य-कृति का नाम बताइए ?

उत्तर - कामायनी

प्रश्न 6. प्रसाद जी के नाटकों का नाम बताइए ?

उत्तर - सज्जन, कल्याणी, राज्यश्री, विशाख , अजातशत्रु, कामना, स्कंदगुप्त , चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी

प्रश्न 7. प्रसाद जी के उपन्यासों के नाम बताइए ?

उत्तर - कंकाल , तितली, ईरावती(अपूर्ण)

प्रश्न 8. प्रसाद जी की मृत्यु किस सन् में हुई ?

उत्तर - 15 नवम्बर 1937

प्रश्न 9. प्रसाद के निबंध संग्रह का नाम बताइए ?

उत्तर - काव्य कला तथा अन्य निबंध

## 2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रसाद की नाट्य कला संरचना तथा शैली तत्व, डॉ. सुजाता बिष्ट
2. प्रसाद युगीन नाटकों में सांस्कृतिक चेतना, डॉ. वशिष्ट मुनि पाण्डेय
3. हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्व कोश, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त
4. प्रसाद के नाटक, डॉ. परिमेश्वरी लाल गुप्त

## 2.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डा. बच्चन सिंह
2. प्रसाद की दार्शनिक चेतना, डॉ. चक्रवर्ती
3. प्रसाद युगीन नाटक, डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल

## 2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1 . महाकवि जयशंकर प्रसाद के सम्पूर्ण जीवन-वृत्त अपने शब्दों में प्रस्तुत कीजिए?

2 . नाटककार प्रसाद की नाट्य-कला का विवेचन करते हुए वर्तमान में उनके महत्त्व का प्रतिपादन कीजिए

# इकाई 3 चन्द्रगुप्त : कथावस्तु, परिवेश तथा उद्देश्य

इकाई की रूपरेखा


3.1 प्रस्तावना
3.2 उददेश्य
3.3 'चन्द्रगुप्त' का परिचय
3.4 'चन्द्रगुप्त' की कथावस्तु
3.4.1 'चन्द्रगुप्त' का परिवेश
3.4.2 'चन्द्रगुप्त' का उद्देश्य
3.5 सारांश
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 संदर्भ ग्रथं सूची
3.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.9 निबंधात्मक प्रश्न


## 3.1 प्रस्तावना

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित नाटकों में चन्द्रगुप्त का विशिष्ट स्थान है। यह प्रसाद जी की प्रोढ़ रचना है, इसमें मौर्य कालीन भारत की संस्कृति का उत्कृष्ट रूप मिलता है, साथ ही गुरूकुलों की शिक्षा- व्यवस्था की सून्दर झांकी प्रस्तुत की गयी है, इतना ही नहीं इसमें ब्राहमण संस्कृति, मौर्य कालीन क्षत्रिय- धर्म और राजनैतिक दृष्टिकोण को भी उजागर किया गया है, प्रसाद जी ने इस नाटक में ग्रीक एवं भारतीय संस्कृति का संघर्ष चित्रित करके अन्त में भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

## 3.2 उद्देश्य

हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ नाटककार जयशंकर प्रसाद के सभी नाटक उद्देश्यपूर्ण हैं । अपने नाटकों के उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए 'विशाख' की भूमिका में उन्होंने लिखा है ' मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रमुख घटनाओं का दिग्दर्शन करने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिती को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है और जिन पर कि वर्तमान साहित्यकारों की दृष्टि कम पड़ती है'। इससे स्पष्ट होता है कि प्रसाद के नाटकों का प्रथम उद्देश्य भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण किन्तु अप्रकाशित अंशों का चित्रण करना है।

इस इकाई में चन्द्रगुप्त नाटक की कथावस्तु, परिवेश तथा उद्देश्य पर प्रकाश डाला जाएगा, जिससे की आप यह जान पाए की चन्द्रगुप्त की मुख्य कथा क्या है? वे कौन से चरित्र है जिनके माध्यम से नाटक की कथा सशक्त हुई हैं। इस इकाई का उद्देश्य यह भी है आप हिन्दी साहित्य के अन्य नाटकों से भी चन्द्रगुप्त नाटक की तुलना कर सकें। और जान सकें की वे कौन से तत्व हैं जिन्होंने इस नाटक को हिन्दी साहित्य भी अमर कृति बना दिया है।

## 3.3 चन्द्रगुप्त का परिचय

हिन्दी साहित्य के महान साहित्यकार जयशंकर प्रसाद ने भारतीय गौरवपूर्ण इतिहास की पूर्व पीठिका के आधार पर एक ऐसा नाटक की रचना की है जो ग्रीक संस्कृति, भारतीय संस्कृति की उदान्तता का दर्शन कराती है। चन्द्रगुप्त नाटक बालक चन्द्रगुप्त का कथा नहीं हैं एक ऐसे युवा चन्द्रगुप्त की कथा है जो सम्पूर्ण भारत वर्ष को एकता के सूत्र में बंधा हुआ देखना चाहता है, यह नाटक गुरू चाण्क्य की कथा है जिसने अपने शिष्य को संस्कारित करके देश के लिए आत्मोत्सर्ग करने के लिए तत्पर कराया है, कथा में प्रेम की दिव्य धारा भी प्रवाहमान है, इस प्रकार यह नाटक देश प्रेम व आत्मिक प्रेम का अनूठा स्वरूप भी प्रस्तुत करता है।

## 3.4 चन्दगुप्त की कथावस्तु

यह पूरा नाटक चार अंकों में समाप्त हो रहा है। पहले अंक में ग्यारह, दूसरे अंक में दस, तीसरे अंक में नौ और चौथे अंक में चौदह दृश्य हैं। इस प्रकार नाटक चवालीस दृश्यों में पूरा होता है।

प्रथम अंक का प्रथम दृश्य तक्षशिला के गुरुकुल से आरम्भ होता है। अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात चाणक्य वहाँ अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। दृश्य के आरम्भ में चाणक्य और मालवगण-मुख्य कुमार सिंहरण परस्पर बातें कर रहे हैं। इस वार्तालाप के मध्य सिंहरण तक्षशिला में चल रहे उस षड़यन्त्र की ओर संकेत करता है, जो भविष्य में सम्पूर्ण भारत के लिए भयानक सिद्ध हो सकता है। उसी समय तक्षशिला का युवराज आम्भीक अपनी बहन अलका के साथ वहाँ आ पहुँचता है और

उस वार्तालाप के कुछ अंश को सुनकर उत्तेजित हो उठता है। आम्भीक और सिंहरण में कटु विवाद होता है और आम्भीक अपनी तलवार निकाल लेता है। उसी समय चन्द्रगुप्त, वहाँ पहुँचकर आम्भीक को सिंहरण पर आक्रमण करने से रोक देता है। अलका भी अपने भाई को समझाती है। चाणक्य की आज्ञा से अलका आम्भीक को वहाँ से ले जाती है। चाणक्य बाद में सिंहरण और चन्द्रगुप्त को भी तक्षशिला छोड़ देने का आदेश देता है। बाद में अलका भी सिंहरण से तुरन्त तक्षशिला छोड़कर चले जाने का आग्रह करती है। द्वितीय दृश्य मगध में मगध-सम्राट नन्द के विलास-कानन से आरम्भ होता है। विलासी युवक-युवतियों का दल वहाँ विहार कर रहा है। राक्षस और सुवासिनी वहाँ आते हैं। सुवासिनी के गायन को सुनकर नन्द उसे अपनी अभिनयशाला की रानी बनाता है और राक्षस को अपना अमात्य नियुक्त कर देता है। सुवासिनी राक्षस से कहती है कि वह उसकी अनुचरी ही बनी रहना चाहती है, नन्द के विलास का साधन नहीं बनना चाहती। तृतीय दृश्य में चाणक्य पाटलिपुत्र नगर में अपने पिता और उनकी झोपड़ी को खोजता दिखाई देता है। एक नागरिक से उसे ज्ञात होता है कि नन्द ने उसके पिता की वृत्ति छीनकर उन्हें नगर से निष्कासित कर दिया था। वही बताता है कि नन्द ने शकटार को परिवार-सहित कारागार में डाल दिया था। वहीं उन सबकी भूख-प्यास से तड़प-तड़पकर मृत्यु हो गई। यह सुनकर चाणक्य दुःख और क्षोभ से भर जाता है। चतुर्थ दृश्य में राक्षस और सुवासिनी बातें करते दिखाई पड़ते हैं। राक्षस राजकोप के भय से सुवासिनी को अपना लेने में संकोच करता है। इसी दृश्य में चन्द्रगुप्त मगध की राजकुमारी कल्याणी की एक चीते से रक्षा करके उसे अपना कृतज्ञ और अनुरक्त बना लेता है। पाँचवे दृश्य में नन्द की राजसभा में चाणक्य नन्द से पंचनद-नरेश पर्वतेश्वर की सहायता करने का आग्रह करता है। चन्द्रगुप्त चाणक्य का समर्थन करता है, परन्तु नन्द सहायता करने से इंकार कर देता है, क्योंकि पर्वतेष्वर ने कल्याणी के साथ विवाह करने से मना करके नन्द का अपमान किया था। इस पर चाणक्य क्रुद्ध हो उठता है। नन्द उसकी शिखा पकड़कर घसिटवाता है और फिर बंदी बना लेता है। चाणक्य नन्दवंश का नाश करने की प्रतिज्ञा करता है। छठे दृश्य में, सिन्धु तट पर अलका सिन्धु-देश की कुमारी मालविका से मिलती है। अलका के हाथ में एक मानचित्र है। सहसा एक यवन सैनिक वहाँ आ पहुँचता है और अलका के हाथ से बलात् मानचित्र छीनने का प्रयत्न करने लगता है। उसी समय सिंहरण वहाँ पहुँचकर यवन को घायल करके भगा देता है और उस मानचित्र को लेकर मालविका के साथ नाव में बैठकर वहाँ से चला जाता है। यवन सैनिक अन्य सैनिकों के साथ लौटकर अलका को बन्दी बना लेता है। सप्तम दृश्य में, मगध के बन्दीगृह में राक्षस और वररुचि (कात्यायन) चाणक्य से मिलने आते हैं। राक्षस उसे पर्वतेश्वर का विरोध करने के लिए पंचनद को भेजना चाहता है, और वररुचि उससे अपना वार्तिक पूरा कराने में सहायता की याचना करता है। चाणक्य दोनो काम करने से इंकार कर देता है। इसी समय चन्द्रगुप्त वहाँ पहुँचकर बलपूर्वक चाणक्य को बंदीगृह से छुड़ाकर ले जाता है। आठवें दृश्य में, अलका वन्दिनी के रुप में में गंधार-नरेश के सामने लाई जाती है। पिता उसे मुक्त कर देते हैं। वह गंधार को छोड़कर आर्यावृत्त की ओर चल पड़ती है। गंधार-नरेश भी पुत्र आम्भीक को सारा राज-काज सौंपकर पुत्री की खोज करने निकल जाते हैं। नवम दृश्य में, चाणक्य पर्वतेश्वर की सभा में पहुँचकर उससे

मगध में विद्रोह कराने में सहायता माँगता है। पर्वतेश्वर एक प्रकार से उसका अपमान करता है और चाणक्य क्षुभित होकर वहाँ चला जाता है। दशम दृश्य में, अलका और सिल्यूकस की भेंट होती है। प्यास से व्याकुल और मूर्छित चन्द्रगुप्त की एक व्याघ्र से रक्षा करके सिल्यूकस उसे अपना कृतज्ञ बनाकर अपने यहाँ आमंत्रित करता है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त उसके शिविर में कभी आने का वचन देते हैं। इन दोनों को सिल्यूकस के साथ प्रेमपूर्वक बातें करते देखकर अलका इन दोनों पर सन्देह करने लगती है और महात्मा दांड्यायन के आश्रम में चली जाती है। एकादश दृश्य में, महात्मा दांड्यायन के आश्रम में चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अलका, सिकन्दर, सिल्यूकस आदि एकत्र होते हैं। सिकन्दर चन्द्रगुप्त का परिचय प्राप्त करता है। फिर जैसे ही सिकन्दर अपनी भारत-विजय की आकांक्षा व्यक्त करता है, महात्मा दांड्यायन उसे सावधान करते हुए चन्द्रगुप्त की ओर संकेत करके कहते हैं कि यह भारत का भावी सम्राट बैठा हुआ है। यह सुनकर सब स्तब्ध रह जाते हैं। इस प्रकार इस अंक में गांधार से लेकर मगघ तक की राजनीतिक परिस्थिति पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है।

द्वितीय अंक में दस दृश्य हैं। प्रथम दश्य में, सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया भारत की शोभा का वर्णन करती है। सिकन्दर का एक क्षत्रप फिलिप्स उसके पास आकर उससे प्रणय-निवेदन करता है। कार्नेलिया द्वारा फटकार दिए जाने पर वह उसे जबरदस्ती पकड़ना चाहता है। तभी चन्द्रगुप्त वहाँ पहुँचकर कार्नेलिया को बचा लेता है। इससे कार्नेलिया चन्द्रगुप्त के प्रति आकृष्ट होती है। द्वितीय दृश्य में, सिकन्दर चन्द्रगुप्त से कहता है कि वह मगध के विरुद्ध उसकी सहायता करे। चन्द्रगुप्त ऐसा करने से इंकार कर देता है। इस पर सिकन्दर उसे बन्दी बनाने का आदेश देता है। आम्भीक, फिलिप्स, एनिसाक्रिटीज चन्द्रगुप्त को बन्दी बनाने का प्रयास करते हैं, परन्तु चन्द्रगुप्त तलवार खींच-कर उन तीनों की घायल करता हुआ निकल जाता है। तृतीय दृश्य में, झेलम के तट पर जंगल में चाणक्य, चन्द्रगुप्त और अलका भविष्य के कार्यक्रम पर विचार करते हैं। गांधार-नरे अपनी बिछुड़ी पुत्री अलका को खोजते हुए वहीं आ निकलते हैं। कल्याणी पुरुष-वेश में पुरु की सहायतार्थ मगध की एक सैनिक टुकड़ी के साथ वहीं उपस्थित है। वह भावी युद्ध में संकट के समय पर्वतेश्वर की सहायता करके उसे नीचा दिखाने के उद्देष्य से वहाँ आई है। सिंहरण, अलका और चन्द्रगुप्त बाजीगरों का वेश धारण किए हुए वहाँ पहुँच जाते हैं। उन पर आम्भीक के अनुचर होने का संदेह करके उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता है। चतुर्थ दृश्य में, सिकन्दर और पर्वतेश्वर के युद्ध का दृश्य सामने आता है। पर्वतेश्वर सिल्यूकस को घायल करके बड़ी वीरता के साथ लड़ता रहता है। उसकी वीरता पर मुग्ध होकर सिकन्दर उसके सम्मुख मित्रता का प्रस्ताव रखता है, जिसे पर्वतेश्वर स्वीकार कर लेता है। चन्द्रगुप्त इसका विरोध करता है, परन्तु पर्वतेश्वर नहीं मानता। यह देखकर कल्याणी क्षुब्ध होकर अपना शिरस्त्राण फेंक देती है। जब पर्वतेश्वर को यह ज्ञात होता है कि वह मगध की राजकुमारी है, तो वह स्तब्ध-सा खड़ा रह जाता है। पंचम दृश्य में, चन्द्रगुप्त और मालविका मिलते हैं। चाणक्य उन दोनों को स्नेहालाप करता देखकर चन्द्रगुप्त को सावधान करता है कि यह प्रेमालाप करने का अवसर नहीं है। छठे दृश्य में, सिंहरण और अलका बंदीगृह में दिखाई देते हैं। पर्वतेश्वर ने उन दोनों को बन्दी बना रखा

है। वह अलका को अपनी रानी बनाना चाहता है। अलका इन शर्तों के साथ उसकी रानी बनना स्वीकार कर लेती है कि सिकन्दर द्वारा मालव गणराज्य पर किए जाने वाले आक्रमण में पर्वतेश्वर सिकन्दर की सहायता नहीं करेगा तथा देश-रक्षा के लिए सिंहरण को मुक्त कर देगा। पर्वतेश्वर उसकी इन दोनों शर्तो को स्वीकार कर लेता है। सप्तम दृश्य में, मालव गणराज्य की युद्ध परिषद् विचार-विमर्श करती दिखाई देती है। वहाँ कुछ आरम्भिक विरोध के बाद चाणक्य और सिंहरण द्वारा आग्रह किए जाने पर चन्द्रगुप्त को, सिकन्दर के विरुद्ध लड़ने वाली मालव-सेना का प्रधान सेनापति बना दिया जाता है। अष्टम दृश्य में, हम पर्वतेश्वर को चिन्तित देखते हैं। सिकन्दर ने उसे दस हजार सैनिकों सहित रावी-तट पर मिलने के लिए बुलाया है। जब पर्वतेश्वर अलका को दिए गए अपने वचन की उपेक्षा करके एक हजार सैनिकों सहित वहाँ से जाने का निश्चय करता है, तो अलका उसके राजमहल से भाग निकलती है। नवम दृश्य में, मालविका, चन्द्रगुप्त और सिंहरण से मिलती है। यह तय किया जाता है कि शत्रु को उसी की नीति अपनाकर पराजित किया जाएगा। दशम दृश्य में, राक्षस और कल्याणी मगध लौट जाने को उत्सुक दिखाई देते हैं। चाणक्य कूटनीति का प्रयोग करके राक्षस को मगध लौटने से रोक देता है। वह राक्षस के पास यह सूचना पहुँचवा देता है कि, मगध में नन्द राक्षस और सुवासिनी के प्रेम-सम्बन्ध के कारण राक्षस से बहुत नाराज है, इसलिए इस समय उसका मगध लौटना संकट को आमंत्रण देना सिद्ध होगा। मालव-दुर्ग पर यवन-सेना आक्रमण करती है। सिंहरण सिकन्दर को युद्ध में घायल करके छोड़ देता है। दूसरी तरफ चन्द्रगुप्त सिल्यूकस को छोड़ देता है। यवन सेना पराजित हो जाती है। सिकन्दर मालव के साथ सन्धि कर लेता है।

तृतीय अंक में नौ दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में, चाणक्य के चर राक्षस को यह सूचना देते हैं कि नन्द ने सुवासिनी को कैद कर लिया है और उसे भी बन्दी बनाया जाने वाला है। मगध के सैनिक बने लोग राक्षस को भी बन्दी बना लेते हैं, किन्तु चाणक्य द्वारा नियुक्त राक्षस के अंग-रक्षक राक्षस को उनसे छुड़ा लेते हैं। सिंहरण और अलका के विवाह का आयोजन होता है, जिसमें राक्षस को आमंत्रित किया जाता है। सिकन्दर भी उस उत्सव में सम्मिलित होने वाला है। द्वितीय अंक में, पर्वतेश्वर आत्महत्या करना चाहता है, किन्तु चाणक्य समय पर पहुँचकर उसे ऐसा करने से रोक लेता है। चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया परस्पर बातें कर रहे हैं। उस समय फिलिप्स वहाँ आता है और कार्नेलिया को लेकर उसमें और चन्द्रगुप्त में वाद-विवाद होने लगता है। फिलिप्स चन्द्रगुप्त से द्वन्द्व-युद्ध करने की इच्छा प्रकट करता है। चन्द्रगुप्त कहता है कि वह जब चाहे उससे द्वन्द्व-युद्ध करने को प्रस्तुत है। चाणक्य सुवासिनी को कारागार से मुक्त कराने का लालच देकर राक्षस से उसकी मुद्रा ले लेता है। तृतीय दृश्य में, सिकन्दर भारत से प्रस्थान करता है। सब लोग उसे सद्भावनापूर्वक विदा कर देते हैं। चतुर्थ अंक में, राक्षस को यह ज्ञात हो जाता है कि सुवासिनी को बन्दी बनाए जाने की बात गलत थी। वह चाणक्य के षड़यन्त्र को समझ जाता है कि वह उसकी मुद्रा से उसके विरुद्ध कोई चाल चलने वाला है। चाणक्य पर्वतेश्वर को यह वचन देकर मगध के विरुद्ध तैयार करता है कि, सफलता मिल जाने पर उसे आधे साम्राज्य का स्वामी बना दिया जाएगा। पर्वतेश्वर सहायता करने को प्रस्तुत हो

जाता है।पंचम दृश्य में, नन्द सुवासिनी के साथ बलात् प्रेम करने का प्रयत्न करता है, तभी राक्षस वहाँ आ जाता है। नन्द लज्जित होकर सुवासिनी को छोड़ देता है। षष्ठ दृश्य में, चाणक्य मालविका को राक्षस की मुद्रा के साथ एक पत्र देता है। राक्षस और सुवासिनी का विवाह होने वाला है। मालविका नर्तकी के रुप में उस पत्र को नन्द के पास पहुँचाने के लिए चल देती है। इसी बीच चाणक्य एक सुरंग से शकटार को एक नर-कंकाल के रुप में बाहर निकलता देखता है। उसके सात पुत्र बन्दीगृह में तड़पकर मर चुके हैं। वह उन्हीं की हड्डियों से सुरंग खोदकर बाहर निकला है। चाणक्य उसकी गाथा सुनकर नन्द से प्रतिशोध लेने की बात कहकर शकटार को अपने साथ ले जाता है। सप्तम दृश्य में, नन्द वरुचि, सेनापति मौर्य की पत्नी (चन्द्रगुप्त की माता) और मालविका को बन्दी बना लेता है। राक्षस और सुवासिनी को भी उस समय बन्दी बनाने की आज्ञा देता है, जब वे दोनों विवाह-वेदी पर बैठे हुए थे। अष्ठम दृश्य में, सूचना मिलती है कि चन्द्रगुप्त ने द्वन्द्व-युद्ध में फिलिप्स का वध कर डाला है। चाणक्य अपने आदमियों की सहायता से बन्दीगृह से बंद सेनापति मौर्य, उसकी पत्नी, शकटार, वररुचि आदि सभी को बाहर निकाल लाता है। चाणक्य पर्वतेश्वर को समझाता है कि जिस समय चन्द्रगुप्त नगर के भीतर विद्रोह आरम्भ करे, वह नगर-द्वार पर बाहर से आक्रमण कर दे। नवम दृश्य में, राक्षस और सुवासिनी बंदी रुप में नन्द की सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। राक्षस चाणक्य द्वारा उसके नाम से भेजे गए जाली पत्र को सुनकर स्तब्ध रह जाता है, परन्तु स्वयं को निर्दोष प्रमाणित नहीं कर पाता। नन्द इन दोनों को दण्ड सुना ही रहा है कि चन्द्रगुप्त सैनिकों सहित सभा में पहुँचकर नन्द को बन्दी बना लेता है। वहाँ उपस्थित सब लोग उसे सम्राट घोषित कर देते हैं।

चतुर्थ अंक सबसे बड़ा अंक है। इसमें चौदह दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में, शराब के नशे में मदमस्त बना हुआ पर्वतेश्वर कल्याणी को जबरदस्ती अपनी रानी बनाने का प्रयत्न करता है। उसी समय कल्याणी छुरी मारकर उसका वध कर डालती है। बाद में कल्याणी स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है। इससे चाणक्य के कथनानुसार चन्द्रगुप्त के मार्ग की दो बाधाएँ दूर हो जाती हैं। द्वितीय अंक में, यह सूचना मिलती है कि राक्षस चन्द्रगुप्त से प्रतिशोध लेने का प्रयत्न कर रहा है। वह कल्याणी की मृत्यु को आधार बनाकर प्रजा को चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त के विरुद्ध भड़काने की योजना बनाता है। तृतीय दृश्य में, विजयोत्सव मनाने की तैयारियाँ की जा रही हैं, परन्तु चाणक्य विजयोत्सव न मनाने का आदेश देता है। इससे रुष्ट होकर चन्द्रगुप्त के माता-पिता राज्य छोड़कर चले जाते हैं। राक्षस इस स्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न करता है। चतुर्थ दृश्य में, चाणक्य का आदेश पाकर मालविका चन्द्रगुप्त को रात्रि-शयन के लिए एक दूसरे शयनागार में भेजकर स्वयं चन्द्रगुप्त के वस्त्र पहनकर उसकी शय्या पर सो जाती है। चाणक्य को यह सूचना मिल चुकी थी कि आज षडयंत्रकारी रात्रि में चन्द्रगुप्त का वध करने का प्रयत्न करेंगे। रात्रि में वे लोग चन्द्रगुप्त के धोखे में मालविका की हत्या कर डालते हैं। यह देखकर चन्द्रगुप्त को वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है। पहले वह विजयोत्सव न मनाने के प्रश्न को लेकर चाणक्य से नाराज हो गया था। इस बात का बहाना बनाकर चाणक्य चन्द्रगुप्त से रुष्ट हो जाने का अभिनय करके पश्चिमोत्तर प्रदेश चला जाता है। षष्ठ दृश्य में, हम चाणक्य को वररुचि

(कात्यायन) के साथ सिन्धु-तट पर एक पर्णकुटीर में बातें करते पाते हैं। आम्भीक सहायता माँगने के लिए चाणक्य के पास आता है, क्योंकि सूचना मिली है कि यवन शीघ्र ही भारत पर पुनः आक्रमण करने वाले हैं। वहीं आम्भीक और सिंहरण देश की रक्षा करने की शपथ लेते हैं। सप्तम दृश्य में, राक्षस कार्नेलिया के शिक्षक के रुप में उसे पढ़ाता दिखाई देता है, परन्तु कार्नेलिया उससे और नहीं पढ़ना चाहती। (चन्द्रगुप्त से प्रतिषोध लेने के लिए ही राक्षस कार्नेलिया के पिता यवन-आक्रमणकारी सिल्यूकस के यहाँ रहने लगा था।) सिल्यूकस कार्नेलिया को बताता है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त से नाराज होकर मगध छोड़कर चला आया है, इसलिए अब भारत पर सफलतापूर्वक अधिकार किया जा सकता है। अष्टम दृश्य में, ज्ञात होता है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त के मार्ग को पूरी तरह निष्कंटक बनाकर राज-कार्य राक्षस को सौंपकर स्वयं तप करना चाहता है। जब चाणक्य सुवासिनी को अपना यह निश्चय सुनाता है तो वह सुनकर अवाक् रह जाती है। नवम दृश्य में, हम चन्द्रगुप्त भावी युद्ध के लिए उद्यत देखते हैं। वह चाणक्य और सिंहरण की अनुपस्थिति में स्वयं प्रधान-सेनापति का दायित्व निभाने की घोषणा करता है। यह घोषणा वह सिद्ध करने के लिए करता है कि वह उनके बिना भी काम चला सकता है। सुवासिनी बन्दिनी के रुप में यूनानी शिविर में पहुँचती है, और कार्नेलिया उसकी बातों पर मुग्ध होकर उसे अपनी सहेली बना लेती है। सिल्यूकस और कार्नेलिया में परस्पर इस आक्रमण के सम्बन्ध में वार्तालाप होता है। दशम दृश्य में, चाणक्य सिंहरण को अपनी रणनीति की योजना बताता है। इसी दृश्य में सिल्यूकस और चन्द्रगुप्त की भेंट होती है। युद्ध आरम्भ हो जाता है। युद्ध में सिल्यूकस के साथ युद्ध करते हुए आम्भीक की मृत्यु हो जाती है। सिल्यूकस घायल हो जाता है। समय पर पहुँचकर सिंहरण चन्द्रगुप्त की सहायता करता है। एकादश दृश्य में, यूनानी-शिविर के एक भाग में राक्षस और सुवासिनी की भेंट होती है। राक्षस सुवासिनी को अपने साथ ले जाता है। अन्त में युद्ध में सिल्यूकस की पराजय होती है। द्वादष दृश्य में, चाणक्य सिल्यूकस के पास यह सूचना पहुँचवा देता है कि सिल्यूकस की अनुपस्थिति में उसके प्रतिद्वन्द्वी औन्टिगोनस ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया है। यह सुनकर सिल्यूकस विवश होकर चन्द्रगुप्त के साथ संधि करने को तैयार हो जाता है। संधि की एक शर्त यह भी है कि कार्नेलिया का चन्द्रगुप्त के साथ विवाह कर दिया जाए। इस सम्बन्ध में सिल्यूकस द्वारा पूछे जाने पर कार्नेलिया अपनी मौन-स्वीकृति दे देती है। सिल्यूकस भी स्वीकार कर लेता है। तेरहवें दृश्य में, चाणक्य महात्मा दांड्यायन के आश्रम में ध्यानस्थ बैठा दिखाई देता है। उसी समय चन्द्रगुप्त का पिता मौर्य सेनापति चाणक्य की हत्या करने के लिए तलवार उठाता है किन्तु चन्द्रगुप्त ठीक समय पर वहाँ पहुँकर पिता को रोक देता है। चाणक्य मौर्य को क्षमा कर देता है और राक्षस को अमात्य पद सौंप देता है। वह राक्षस से सुवासिनी को सुखी रखने का आग्रह करता है। फिर सब लोग सिल्यूकस की अभ्यर्थना करने की तैयारी करने लगते हैं। चौदहवें दृश्य में, राज्य-सभा में यूनानी और भारतीय दोनों पक्षों के प्रमुख व्यक्ति उपस्थित हैं। चन्द्रगुप्त सिल्यूकस से कहता है कि वह औन्टिगोनस के विरुद्ध सिल्यूकस की सहायता करेगा। सिल्यूकस चाणक्य के दर्शन करने की इच्छा व्यक्त करता है, परन्तु चाणक्य अकस्मात् राज-सभा में आ जाता है और सिल्यूकस से आग्रह करता है कि वह कार्नेलिया का चन्द्रगुप्त के साथ विवाह कर दे। सिल्यूकस उसके आग्रह को स्वीकार

करके चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया के हाथ मिला देता है। तभी फूलों की वर्षा और जय-ध्वनि होती है। चाणक्य मौर्य सेनापति का हाथ पकड़कर सन्यास ग्रहण करने चला जाता है।

### 3.4.1 चन्द्रगुप्त का परिवेश -

'चन्द्रगुप्त' प्रसाद का ऐतिहासिक नाटक है। ऐतिहासिक नाटकों में परिवेश अथवा संकलनत्रय के निर्वाह पर पूर्ण ध्यान अपेक्षित है, अन्यथा नाटक की ऐतिहासिकता नष्ट हो जाती है। देशकाल अथवा वातावरण, चित्रण का मूल अभिप्राय है कि नाटककार अपने नाटक में जिस देश-प्रदेश और जिस युग की कथा कह रहा है, उसका एक साकार और सजीव-सा चित्र अंकित कर दें।उस कथा को, पढते या, उसे रंग मंच पर अभिनीत होते देख पाठक या दर्शक अपने वर्तमान को भूल मानसिक रूप से उसी देश और युग में विचरण करने लगे। इसके लिए नाटककार को उस देश और युग की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि स्थितियों के खण्ड, चित्र प्रस्तुत करने पडते हैं।वहाँ के समाज के रहन-सहन, रीति- रिवाज, तीज-त्योहार, भाव-विचार, आदि का परिचय देना पडता है। भाषा और शैली भी ऐसी रखनी पडती है जो प्राचीनतः की झलक दें। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना पडता है कि उसमें कोई ऐसी बात या वर्णन न आ जाए जो उस देश और युग के प्रतिकूल प्रतीत हो। इस सबके निर्वाह पर ही नाटक की सफलता- असफलता निर्भर करती है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में संकलन त्रय अथवा देश काल के निर्वाह का पूर्ण ध्यान रखा गया है इसमें निम्नलिखित विशेषताएं विद्यमान हैं-

**परिस्थितियाँ -** 'चन्द्रगुप्त' के संकलनत्रय अथवा देशकाल के अध्ययन से पूर्व, परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि परिस्थितियॉ ही देशकाल की ओर इंगित करती है।

**राजनीतिक परिस्थिति-** राजनीतिक दृष्टि से चन्द्रगुप्त का समय पारस्परिक वैमनस्य, ईर्ष्या, फूट और क्षगडों का था। नाटक के प्रारम्भ में ही सिंहरण के कथन से स्पष्ट होता है-''उत्तरापथ के खण्ड-राज्य द्वेष से जर्जर हैं।'' राजा नन्द विलासी था, जो सुरा-सुन्दरी में डूबा रहता था। राजा नन्द और पर्वतेश्वर का विरोध था। तक्षशिला का राजकुमार शत्रु-पक्ष (यवनों) का समर्थन करता है। छोटे-छोटे अनेक गणतन्त्र शासक थे परन्तु उनका मिलना सरल नहीं था। डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त के शब्दों में-''उस समय देश में दो प्रकार की शासन पद्वति थी- राजन्त्र और गणतन्त्र। राष्ट्रीयता की भावना केवल प्रान्त या प्रदेश की परिधि तक सीमित थी।............ गणतंत्रों की स्थिती राजतन्त्रों की अपेक्षा अधिक अच्छी थी। गगग गणतन्त्रीय शासन पद्वति में प्रजा-जनों की सम्पत्ति का अधिक मान था और प्रजा के अधिकार भी सुरक्षित थे। गगग राजतन्त्रों के शासक भोग-विलास लिप्त रहकर न केवल स्वयं क्षीण हो हे थे अपितु नागरिकों को भी पथभ्रष्ट कर रहे थे। यद्यपि प्रजा के हृदय में राजा का आंतक छाया रहता था, पर सच्चा स्नेह, श्रद्वा और सम्मान का भाव न था।'' कल्याणी के शब्द इसी पर प्रकाश डालते हैं-''मैं देखती हूँ कि महाराज से कोई स्नेह नहीं करता, डरते भले ही हों। प्रचण्ड

शासन करने के कारण उनका बड़ा दुर्नाम है।'' इस प्रकार 'चन्द्रगुप्त' में राजनीतिक स्थिति का यथार्थ रूप उभरा है सिससे उस समय के वातावरण का सहज ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

**सामाजिक परिस्थिति -** सामाजिक दृष्टि से चन्द्रगुप्त का समय अशान्ति और पारस्परिक कलह से मुक्त था। देश चार वर्णो- ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र मे विभक्त था। ब्राह्मण और क्षत्रियों में पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष व संघर्ष का भाव सदैव रहता था। क्षत्रिय आम्भीक ब्राह्मण चाणक्य को अपमानित करता है तो क्षत्रिय नन्द ब्राह्मण नाम से ही घृणा करता है। ब्राह्मण होने के कारण ही शकटार के पुत्रों का वध नन्द द्वारा करवाया गया। इतना ही नहीं, वह चाणक्य के पिता चणक को मगध से निर्वासित कर देता है और उसका ब्रहमस्व बौद्व विहार में दे देता है। ब्राह्मण शब्द सुनकर नन्द कह उठता है-'' ब्राह्मण !! जिधर देखो कृत्य के समान इनकी शक्ति-ज्वाला धधक रही है।'' ब्राह्मण होने के कारण ही नन्द चाण्क्य का अपमान करता है और अन्त में उसकी शिखा पकडवाकर प्रतिहारी द्वारा बाहर निकलवा देता है। क्षत्रिय और शूद्रों का द्वेष भी दृष्टिगत होता है। पर्वतेश्वर नन्द को शूद्र समझता है। इसीलिए वह उसकी पुत्री कल्याणी से विवाह करना अस्वीकार कर देता है। अतः स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज की स्थिती अत्यधिक सोचनीय और कलहपूर्ण थी।

**धार्मिक परिस्थिति -** धार्मिक दृष्टि से देश में बौद्व और ब्राह्मण धर्म का बोलबाला था। दोनों धर्मो में विरोध था। अमात्य राक्षस बौद्व धर्म का अनुयायी था तो चाणक्य ब्राह्मण धर्म का समर्थक। राक्षस का मत था-''केवल सद्धर्म की शिक्षा ही मनुष्य के लिए पर्याप्त है! और वह तो मगध में ही मिल सकती है।'' इसके विपरीत चाणक्य का विचार था-'' परन्तु बौद्व धर्म की शिक्षा मानव व्यवहार के लिए पूर्ण नहीं हो सकती। भले ही वह संघ विहार में रहने वालों के लिए उपयुक्त हो।'' चाणक्य के अनुसार-'' राष्ट्र का शुभ चिन्तन केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं।'' उस समय धर्म के नाम पर जनता नचाई जा रही थी । शासक अपना स्वार्थ सिद्व करने हेतु जनता में धर्म के नाम पर परस्पर संघर्ष कर देते थे। नन्द के सम्बन्ध में ब्रहमचारी का कथन दर्शनीय है-'' वह सिद्वान्त विहीन, नृशंस, कभी बौद्वों का पक्षपाली, कभी वैदिकों का अनुयायी बनकर दोनों में भेदनीति चलाकर बल-संचय करता रहता है। मूर्ख जनता धर्म की ओट में नचाई जा रही है।'' अतः स्पष्ट है कि तत्कालीन धार्मिक स्थिति भी हेय थी।

प्रसाद ने चन्द्रगुप्त नाटक में विभिन्न परिस्थितियों का सांगोपांग चित्रण करते हुए देशकाल तथा वातावरण का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। स्थान एवं काल के अंकन के साथ-साथ प्रसाद ने कार्य व्यापार का भी पूरा-'पूरा ध्यान रखा है। उन्होंने प्रमुख रूप में तत्कालीन राजनीति के झाँकी प्रस्तुत की है जिसके साथ- साथ धार्मिक और सामाजिक वातावरण स्वतः मुखर हो गया है। प्राचीन ऐतिहासिक नामों का उल्लेख करते हुए प्रसाद ने एक और ऐतिहासिकता की रक्षा की है तो दूसरी और वातावरण में प्राचीनता की झलक मिलती है।

### 3.4.2 चन्द्रगुप्त का उद्देश्य

प्रत्येक रचना के प्रणयन में रचनाकार का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य सन्निहित रहता है। कुछ रचनाओं में एक उद्देश्य रहता है, कुछ में एक से अधिक। हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ नाटककार श्री जयशंकर 'प्रसाद' के सभी नाटक उद्देश्यपूर्ण हैं। अपने नाटकों के उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए प्रसाद ने 'विशाख' की भूमिका में लिखता है-''मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन करने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है और जिन पर कि वर्तमान साहित्यकारों की दृष्टि कम पड़ी है'' इससे स्पष्ट होता है कि प्रसाद के नाटकों का प्रथम उद्देश्य भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण किन्तु अप्रकाशित अंशों का चित्रण करना है। प्रसाद द्वारा प्रणीत 'चन्द्रगुप्त' एक उद्देश्यपूर्ण नाटक है। इसमें नाटककार ने भारतीय इतिहास के मौर्यकाल का चित्रण करते हुए एक ओर इतिहास के अप्रकाशित अंश को प्रकाशित किया है तो दूसरी ओर प्राचीन संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए राष्ट्र-प्रेम का सन्देश दिया है। डॉ. दशरथ ओझा के अनुसार-''प्रसाद जी जिस प्रवृत्तिऔर उद्देश्य को नाटक-निर्माण में तल्लीन हुए थे उसका चरम उत्कर्ष 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रकट होता है।'' 'चन्द्रगुप्त' नाटक में अनेक उद्देश्य सन्निहित हैं जो निम्नांकित हैं-

**(1) राष्ट्रीयता का संदेश -** 'चन्द्रगुप्त' नाटक का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्र-प्रेम है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में-''इस नाटक (चन्द्रगुप्त) में तत्कालीन इतिहास को राष्ट्रीयता के ढाँचे में ढालने का सफल प्रयास किया गया है।'' प्रसाद ने इस नाटक में भारतीय अतीत का गौरव-गान करते हुए राष्ट्रीयता का अमर सन्देश दिया है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिंहरण, अलका, कल्याणी और मालविका आदि पात्रों के माध्यम से नाटककार ने अपने उद्देश्य को साकार किया है। डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त (प्रसाद के नाटक एवं नाट्य शिल्प) का कथन दर्शनीय है-''उनके (प्रसाद के) नाटक एक ओर अतीत की स्वर्णिम झाँकी देकर हमारी सोई हुई राष्ट्रीय भावना को जागृत करते हैं, अतीत के प्रति गौरव जगाकर हममें आत्म विश्वास जगाते हैं और दूसरी ओर अतीत की समस्याओं को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देख यथासम्भव उनका समाधान भी देते हैं , हमें चेतावनी देते हैं कि हम पुरानी भूलों को न दोहराएँ। ग्ग् वह वर्तमान की विभीषिकाओं और विषमताओं से भागकर अतीत की सुखद, विश्रान्तिमय गोद में नहीं बैठे हैं। इसके विपरीत, उन्होंने अपने नाटकों द्वारा अतीत के पटल पर एक स्वतंत्र और संगठित राष्ट्र की योजना रँगने का प्रयास किया है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में एक देश, एक राष्ट्र का संदेश है।'' वास्तव में 'चन्द्रगुप्त' में नाटककार ने एक ओर विलासी व अयोग्य राजा नन्द के विनाश द्वारा उत्तम शासन-व्यवस्था पर बल देकर अपने राष्ट्र-प्रेम को प्रदर्शित किया है तो दूसरी ओर यवनवाहिनी को परास्त करके तथा उसके साथ मैत्री स्थापित करके अपने व्यापक प्रेम का परिचय दिया है। नाटककार ने अतीतकालीन भारतीय संस्कृति का वर्णन करते हुए वर्तमान को सुखद बनाने की प्रेरणा दी है तथा देश के लिए मर-मिटने का अमर-संदेश भी दिया है। चाणक्य अपने शिष्यों चन्द्रगुप्त और सिंहरण से कहते हैं-''मालव और मगध को भूलकर जब तुम आर्यावृत्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा।''

सिंहरण अपने देश-प्रेम को व्यक्त करता हुआ कहता है-''मेरा देश मालव नहीं, गन्धार भी है। यही क्या, समग्र आर्यावृत्त है'' अलका भविष्यवाणी करती हुई कहती है-जिस देश में ऐसे वीर युवक हों उसका पतन असम्भव है।'' अलका अपने देश-प्रेम को इस प्रकार व्यक्त करती ह-मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं।'' इस प्रकार सभी पात्र देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत हैं। निश्चय ही नाटककार ने 'चन्द्रगुप्त' के माध्यम से अपने देश-प्रेम को साकार करते हुए राष्ट्रीयता का सन्देश दिया है।

**(2) भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन -** 'चन्द्रगुप्त' नाटक का दूसरा उद्देश्य भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करना है। प्रसाद ने ग्रीक और भारतीय संस्कृति का संघर्ष चित्रित करके अन्त में भारतीय संस्कृति की विजय दिखाई है। सिंहरण और चन्द्रगुप्त के चरित्र के माध्यम से एक ओर भारतीयों की वीरता, साहस, निर्भीक, दृढ़ संकल्प आदि का चित्रण किया गया है तो दूसरी ओर भारतीय मानवता पर प्रकाश डाला गया है। आचार्य चाणक्य चन्द्रगुप्त और सिंहरण को समझाते हुए कहते हैं- ''तुम लोगों को समय पर शस्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा। परन्तु अकारण रक्तपात नीति-विरूद्ध है।'' चन्द्रगुप्त आचार्य चाणक्य को आश्वासन देते हुए कहता है- ''आर्य! संसार-भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्म-सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।''...........''गुरुदेव! ......यह चन्द्रगुप्त आपके चरणों की शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा करता है, कि यवन यहाँ कुछ न कर सकेंगे।'' इस प्रकार गुरु-शिष्य के वार्तालाप द्वारा नाटककार ने भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता ही प्रतिपादित की है। भारतीयों के गुणों पर प्रकाश डालता हुआ चन्द्रगुप्त सिल्यूकस से कहता है-''भारतीय कृतघ्न नहीं होते।'' इसी प्रकार-''आर्य लोग किसी निमन्त्रण को अस्वीकार नहीं करते।''

आचार्य चाणक्य के माध्यम से ब्राह्मण -धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के साथ-साथ श्रेष्ठ गुरु की महानता का भी उल्लेख किया गया है। आचार्य चाणक्य निर्भीकतापूर्वक आम्भीक से कहते हैं - ''राजकुमार! ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है।'' नन्द के दरबार में पहुँचकर नन्द द्वारा अपमानित किए जाने पर भी चाणक्य राक्षस से स्पष्ट कहते हैं-''यदि अमात्य ने ब्राह्मण -विनाश करने का विचार किया हो तो जन्मभूमि की भलाई के लिए उसका त्याग कर दें, क्योंकि राष्ट्र का शुभ-चिन्तन केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं।'' मगध के बंदीगृह में वररूचि के समझाने पर चाणक्य उसकी भर्त्सना करते हुए कहते हैं -''भिक्षोपजीवी ब्राह्मण ! लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं।'' नन्द के विरूद्ध खड़ा होने के लिए जब चाणक्य, चन्द्रगुप्त को तैयार करते हैं तो पर्वतेश्वर इसका विरोध करता है, परन्तु चाणक्य स्पष्ट कहते हैं -''महाराज! धर्म के नियामक ब्राह्मण हैं, मुझे पात्र देखकर उसका संस्कार करने का अधिकार है। ब्राह्मण त्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है।'' इस प्रकार 'चन्द्रगुप्त' में सर्वत्र ब्राहमणों का महत्व प्रदर्शित किया गया है। महात्मा दाण्ड्यायन के माध्यम से ब्राह्मण के तप, त्याग, शील और

निस्पृहता आदि गुणों की व्याख्या की गई है। एनिसाक्रीटीज जब अपने राजा सिकन्दर का संदेश लेकर महात्मा दाण्ड्यायन के आश्रम पहुँचता है तब दाण्ड्यायन कहते हैं-''मुझसे कुछ मत कहो। ........... देखते हो कोई किसी की सुनता है? ..........मैं लोभ से, सम्मान से या भय से किसी के पास नहीं जा सकता। ........... मेरी आवश्यकताएँ परमात्मा की विभूति प्रकृति पूरी करती है। उसके रहते दूसरों का शासन कैसा? ............. मेरी स्वतन्त्र आत्मा पर तुम्हारे देवपुत्र का भी अधिकार नहीं हो सकता ।'' अलका, कल्याणी और मालविका आदि नारी-पात्रों के माध्यम से भारतीय नारी की देशभक्ति कर्त्तव्यपरायणता और स्वामिभक्ति पर प्रकाश डाला है। प्रसाद ने विदेशी पात्रों द्वारा भारतीय संस्कृति की प्रशंसा कराकर अपने उद्देश्य को साकार रूप दिया है। सिकन्दर के शब्द दर्शनीय हैं-''मैं भारत का अभिनन्दन करता हूँ।........मैं तलवार खींचे हुए भारत में आया, हृदय देकर जाता हूँ। विस्मय-विमुग्ध हूँ।''

**(3) युगीन समस्याओं का चित्रण और समाधान** - युगीन समस्याओं का चित्रण और समाधान भी 'चन्द्रगुप्त' नाटक का एक उद्देश्य है। इसमें नाटककार ने अनेक समस्याओं, जैसे राज्यों में पारस्परिक वैमनस्य, देशवासियों का शत्रु-समर्थन, राजा की विलासिता, उच्छृंखलता, धार्मिक-संघर्ष और वर्णाश्रम कलह आदि को उठाया है और उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। राज्यों के पारस्परिक वैमनस्य को नाटक के प्रारम्भ में सिंहरण के शब्दों में व्यक्त किया गया है-''उत्तरापथ के खण्ड-राज्य द्वेष जर्जर हैं।'' आम्भीक द्वारा यवन-पक्ष का समर्थन कराकर नाटककार ने देशवासियों की कायरता, गद्दारी आदि का चित्रण किया है। अलका भाई के कुकर्मों के परिणाम की ओर इंगित करती हुई पिता गन्धार-नरेश से कहती है -''कुलपुत्रों के रक्त से आर्यावृत्त की भूमि सींचेंगी! दानवी बनकर जननी जन्म-भूमि अपनी सन्तान को खाएगी। महाराज! आर्यावर्त्त के सब बच्चे आम्भीक जैसे नहीं होंगे। वे इसकी मान-प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-तिल कट जाएंगे। स्मरण रहे, यवनों की विजय-वाहिनी के आक्रमण को प्रत्यावर्तन बनाने वाले यही भारत-सन्तान होंगे। सब बचे हुए क्षतांग वीर, गन्धार को-भारत के द्वार रक्षक को-विश्वासघाती के नाम से पुकारेंगे और उनमें नाम लिखा जाएगा मेरे पिता का!'' नन्द की विलासिता और उच्छृंखलता द्वारा शासक की अयोग्यता सिद्ध की गई है। राक्षस और चाणक्य के संघर्ष द्वारा बौद्ध व ब्राह्मण धर्म का संघर्ष चित्रित किया है और नन्द-चाणक्य के विवाद द्वारा ब्राह्मण-क्षत्रिय कलह का चित्र अंकित किया है। अन्त में सत्-असत् के संघर्ष में सत् की विजय दिखाकर विभिन्न समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर दिया है।

**(4) नैतिक शिक्षा** - 'चन्द्रगुप्त' नाटक द्वारा नैतिक शिक्षा देना भी नाटककार का एक उद्देश्य रहा है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिंहरण और अलका के चरित्रों के माध्यम से नाटककार ने भारतीयों को नैतिक शिक्षा दी है। सिल्यूकस चन्द्रगुप्त की व्याघ्र से रक्षा करता है। इसलिए वह उसके प्राण नहीं लेता। वह उससे पूछता है''यवन सेनापति, मार्ग चाहते हो या युद्ध? मुझ पर कृतज्ञता का बोझ है। तुम्हारा जीवन!'' सिकन्दर के घायल हो जाने पर सिंहरण सिल्यूकस से युद्ध न करके सिकन्दर की सेवा का आदेश देता है। सिंहरण कहता है''यवन! दुस्साहस न कर! तुम्हारे सम्राट की अवस्था शोचनीय है, ले

जाओं, इनकी शुश्रूषा करो!'' चन्द्रगुप्त द्वारा कार्नेलिया की रक्षा आदि के उदाहरण नैतिक शिक्षा दे रहे हैं।

**(5) क्षात्र-धर्म की महत्ता** - प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' में क्षात्र-धर्म की महत्ता भी प्रतिपादित की है। अभिप्राय है कि उन्होंने क्षत्रिय धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए उसकी महत्ता भी सिद्ध की है। आचार्य चाणक्य नन्द से स्पष्ट कहते हैं-''समय आ गया है कि शुद्र राजसिंहासन से हटाए जाएँ और सच्चे क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त हों।'' अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु जब चाणक्य अपने शिष्य चन्द्रगुप्त को नन्द के विरूद्ध खड़ा होने की बात कहते हैं तो पर्वतेश्वर इसका विरोध करता है, परन्तु आचार्य चाणक्य उसे समझाते हैं-''आर्य-क्रियाओं का लोप हो जाने से इन लोगों को वृषलत्व मिला, वस्तुतः ये क्षत्रिय हैं। बोद्धों के प्रभाव में आने से इनके श्रौत संस्कार छूट गए हैं अवश्य, परन्तु इसके क्षत्रिय होने में कोई सन्देह नहीं है।'' इतना ही नहीं, वे आगे भी क्षत्रिय धर्म की व्याख्या करते हुए पर्वतेश्वर से कहते हैं-''ब्राह्मण मगध को क्षत्रिय के शस्त्र धारण करने पर आर्तवाणी नहीं सुनाई पड़नी चाहिए, मौर्य चन्द्रगुप्त वैसा ही क्षत्रिय प्रमाणित होगा।'' क्षात्र-धर्म की कठोरता सिद्ध करते हुए चन्द्रगुप्त सिल्यूकस से कहता है-''स्वागत सिल्यूकस! अतिथि की-सी तुम्हारी अभ्यर्थना करने में हम विशेष सुखी होते, परन्तु क्षात्र-धर्म बड़ा कठोर है।'' इस प्रकार प्रसाद ने सम्पूर्ण नाटक में क्षत्रिय-धर्म की प्रतिष्ठा की है।

**(6) आध्यात्मिकता की प्रेरणा** - 'चन्द्रगुप्त' के अन्त में नाटककार ने आध्यात्मिकता की प्रेरणा दी है। वैसे भी भारतीय संस्कृति में वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का विशेष महत्व है। प्रसाद की विशेषता है कि वे अपनी कृति के अन्त में 'समरस' होने की प्रेरणा अवश्य देते हैं। आचार्य चाणक्य, जो 'चन्द्रगुप्त' नाटक के कर्णधार और राजनीति के सूत्रधार हैं, अन्त में 'ब्रह्म में लीन' होने के लिए दाण्ड्यायन के तपोवन में पहुँच जाते हैं। तपोवन में पहुँचकर सभी को आनन्द की प्राप्ति होती है। सुवासिनी राक्षस से कहती है-''आर्यों का तपोवन इन राग-द्वेषों से परे है।'' वहाँ चाणक्य को 'ब्रह्मलीन ' देखकर राक्षस को आश्चर्य होता है। परन्तु सुवासिनी समझाती है-''यही तो ब्राह्मण की महत्ता है राक्षस! यों तो मूर्खो की निवृत्ति भी प्रवृत्तिमूलक होती है। देखो, यह सूर्य-रश्मियों का-सा रस-ग्रहण कितना निष्काम कितना निवृत्तिपूर्ण है!'' यह देखकर राक्षस के मन का कालुष्य, ईर्ष्या और द्वेष सब समाप्त हो जाता है। वह कहता है-''मेरी इच्छा होती है कि चलकर इस महात्मा के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लूँ और क्षमा माँग लूँ।'' ध्यानस्थ चाणक्य जब आँख खोलते हैं तो उन्हें आभास होता है कि-''मुख्य वस्तु आज सामने आई। आज मुझे अपने अन्तर्निहित बाहमणत्व की उपलब्धि हो रही है। ...... देव! आज मैं धन्य हूँ।'' वास्तव तें जिसे प्रभु की अनन्त शक्ति का आभास हो जाए उसका जीवन धन्य हो जाता है। महात्मा दाण्ड्यायन यही तो कहते हैं -''भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास-मात्र हो जाता है, उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते।''

चन्द्रगुप्त के पिता ध्यानस्थ चाणक्य का वध करना चाहते हैं परन्तु वे सफल नहीं हो पाए। चन्द्रगुप्त उनके इस कर्म की निन्दा करता है परन्तु चाणक्य क्षमा कर देते हैं और अन्त में उन्हें भी अपने मार्ग का अनुयायी बनाते हुए कहते हैं-''काषाय ग्रहण कर लो, इसमें अपने अभिमान को मारने का तुम्हें अवसर मिलेगा।'' इतना ही नहीं (मौर्य का हाथ पकड़कर) 'चलो, अब हम लोग चलें' कहकर उन्हें अपने ही साथ ले जाते हैं। इस प्रकार नाटककार ने महात्मा दाण्ड्यायन और आचार्य चाणक्य के माध्यम से 'ब्रहमशक्ति में लीन होने' की प्रेरणा दी है। अतः आध्यात्मिकता का संदेश भी प्रमुख है।

## 3.5 सांराश

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि चन्द्रगुप्त प्रसाद की प्रौढ़ रचना है इसके कथानक में विविधता विद्यमान है, इसमें एक ओर भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टता पर प्रकाश डाला गया है तो दूसरी ओर राष्ट्र प्रेम का संदेश दिया गया है, एक ओर नृशंसता, विलासिता, और अयोग्य शासक के कुपरिणाम का उद्घाटन किया गया है तो दूसरी ओर प्रेम, सौहार्द और मित्रता का पाठ पढ़ाया गया है।

## 3.6 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. चन्द्रगुप्त के रचयिता कौन है ?

उत्तर - जयशंकर प्रसाद

प्रश्न 2 चन्द्रगुप्त नाटक के कितने अंक है ?

उत्तर - चन्द्रगुप्त चार अंको में विभाजित नाटक है

प्रश्न 3. चन्द्रगुप्त में कितने पात्र है ?

उत्तर - चन्द्रगुप्त में 18 पुरूष पात्र तथा 8 स्त्री पात्र हैं। इस प्रकार कुल 26 पात्र हैं

प्रश्न 4. चन्द्रगुप्त का सर्वाधिक प्रभावशाली पात्र कौन है ?

उत्तर - चाण्क्य

प्रश्न 5. चन्द्रगुप्त किस राज्य का सम्राट है ?

उत्तर - मौर्य सम्राट का

प्रश्न 6. चन्द्रगुप्त नाटक में पंजाब का राजा कौन हैं?

उत्तर - पर्वतेश्वर

प्रश्न 7. सेल्यूकस कौन था ?

उत्तर - सिकन्दर का सिपाही

प्रश्न 8. तक्षशिला की राजकुमारी का नाम बताइए ?

उत्तर - अलका

प्रश्न 9. मालविका कौन है ?

उत्तर - सिंधु देश की राजकुमारी

## 3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्व कोश, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त
2. प्रसाद के नाटक, डॉ. परमेश्वरी लाल
3. प्रसाद के नाटक स्वरूप और संरचना, डॉ. गोविन्द चातक
4. हिन्दी नाटक उदभव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा
5. हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास, डॉ. सोमनाथ गुप

## 3.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जयशंकर प्रसाद में अन्य समस्त नाटकों का अध्ययन।
2. हिंदी का गद्य साहित्य, रामचंद्र तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डा.बच्चन सिंह

## 3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1 . 'चन्द्रगुप्त' नाटक का परिचय देते हुए नाटक की कथावस्तु की विवेचना कीजिए

2 . 'चन्द्रगुप्त' नाटक की विशेषताओं को बताते हुए उसके उद्देश्य पर प्रकाश डालिए ?

# इकाई-4 चंद्रगुप्त नाटक में चरित्र-चित्रण

इकाई की रूपरेखा


4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 चन्द्रगुप्त नाटक में चरित्र चित्रण
4.4 चन्द्रगुप्त में चरित्र चित्रण की विशेषताएं
4.4.1 इतिहास और कल्पना
4.4.2 संस्कृति का आधार
4.4.3 विचार और भाव की भूमिका
4.4.4 पात्र संरचना में शिथिलता
4.5 सांराश
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.9 निबंधात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

चरित्र मानव व्यवहार की संरचना है, चरित्र संसार में वास्तविक व्यक्ति के रूप में रहते हैं, किन्तु नाटकीय चरित्र नाटक के संसार में रहते हुए नाटककार कि मनोवृत्तियाँ के अनुसार संचालित होते है, चरित्र कोई ऐसा तत्व नहीं है जिसे नाटक के अन्य तत्वों से अलग रखकर देखा जा सके। नाटक में पात्रों की अन्तः प्रक्रिया के साथ-साथ सामाजिक और मानवीय गुणों के संबंध- सूत्र बडे महत्वपूर्ण होते हैं। वस्तुतः मानवीय प्रकृति और उनके बीच का क्रिया-व्यापार किसी भी चरित्र की अवधारणा के अनिवार्य तत्व होते हैं।

पात्र का ढाँचा खड़ा करने में प्रसाद ने स्वच्छंदवादी, आदर्शवाद, मनोविज्ञान, निजी जीवन-दर्शन, इतिहास के वस्तु- तत्व आदि सभी बातों को प्रमुखता दी है, वस्तुतः ये वही तत्व हैं जिनका उपयोग प्रसाद ने कथावस्तु, संवाद आदि की रचना के लिए भी किया है।

## 4.2 उद्देश्य

नाटक के पात्र कथानक को गति देने के साथ अभिनय, उद्देश्य के वाहक भी होते हैं, वास्तव में नाटक के पात्र और उनका चरित्र लेखक की मनोभूमि, लेखक का नाटक लिखने का उद्देश्य, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक के प्रतिबिम्ब होते है।आप जानते हैं कि चरित्र चित्रण के विषय में विस्तृत अध्ययन करने का उददेश्य नाटक को मूल ध्वनि को हस्तगत करना है, लेखक की उस धारणा को जानना जिसके आधार पर उसने नाटक की रचना की है।

आप यह भी जानते हैं कि जयशंकर प्रसाद जी ने भारत के प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास से हमें परिचित कराने के उददेश्य से नाटकों की रचना की।

नाटक के चरित्र का आलोचनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुचेगें कि वास्तव में प्रसाद अपने उददेश्य में कितने सफल हुए है, उनके पात्र मानवोचित व्यवहार के साथ-साथ राष्ट्र प्रेमी, वीर, पौरूष, की प्रतिमूर्ति है, नारियां पुरूष की सहयोगिनी तथा प्रेम में आकृष्ट डूबी स्त्रियां है। इन तथ्यों का परीक्षण करना इस इकाई का उद्देश्य है।

## 4.3 चन्द्रगुप्त नाटक में चरित्र-चित्रण

**चन्द्रगुप्त -** ‘चन्द्रगुप्त’ नाटक के चन्द्रगुप्त में नायकोचित सभी गुण विद्यमान हैं। वह कुलीन, साहसी, निर्भीक, उदार, त्यागी, स्वाभिमानी, दृढ़-संकल्प और कृतज्ञ है। तक्षशिला के गुरुकुल में अपना अध्ययन समाप्त करके वह शुद्ध क्षत्रियवृत्तियाँ के साथ कर्मक्षेत्र में प्रविष्ट होता है। उचित के लिए वह सर्वत्र अड़ जाता है। नाटक के प्रारम्भ में ही वह आम्भीक से भिड़ जाता है। वीरोचित निर्भीकता, साहस और स्पष्टवादिता चन्द्रगुप्त को महान बनाते हैं। इसलिए सिल्यूकस भी उसकी प्रशंसा करता है- ‘‘एक वीर युवक है।’’ नन्द की राजसभा में चन्द्रगुप्त की निर्भीकता और स्पष्टवादिता दृष्टिगत होती है।

उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

**(1) स्वाभिमानी-** चन्द्रगुप्त एक स्वाभिमानी युवक है। स्वाभिमान के लिए वह मर-मिटने को तैयार रहता है-‘‘आत्म-सम्मान के लिए मर-मिटना ही दिव्य जीवन है।’’ इसलिए सिकन्दर जब उसकी सहायता करने के लिए कहता है, तब चन्द्रगुप्त स्पष्ट उदार देता है-‘‘मैं यवनों को अपना शासक बनने को आमन्त्रित करने नहीं आया हूँ।’’ इतना ही नहीं, वह आम्भीक से भी स्पष्ट कहता है-‘‘स्वच्छ ह्दय भीरु कायरों की-सी वंचक शिष्टता नहीं जानता। अनार्य! देशद्रोही! आम्भीक! चन्द्रगुप्त रोटियों के लालच या घृणाजनक लोभ से सिकन्दर के पास नहीं आया है।’’

**(2) गुरुभक्त-** चन्द्रगुप्त गुरु-भक्त है वह गुरु की आज्ञा सर्वोपरि मानता है और उन्हीं के संकेत पर सदैव कर्मरत रहता है। बाद में गुरु की दूरदर्शिता, स्नेह और उत्कृष्ट मेधा देखकर वह गद्गद् हो उठता

है। नाटक के प्रारम्भ में ही वह गुरुभक्ति प्रकट करता हुआ कहता है-''गुरुदेव, विश्वास रखिए, यह सब-कुछ नहीं होने पावेगा। यह चन्द्रगुप्त आपके चरणों की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता है, कि यवन यहाँ कुछ न कर सकेंगे।''

**(3) कुशल योद्धा-** चन्द्रगुप्त कुशल योद्धा और श्रेष्ठ क्षत्रिय है। इसी गुण के बल पर वह दुर्भेद्य कारागृह से चाणक्य को छुड़ा लेता है। वह प्रहरियों का वध करके साहसपूर्वक चाणक्य के बन्धन काट देता है। जब राक्षस प्रहरियों को बुलाना चाहता है तब चन्द्रगुप्त निर्भीकतापूर्वक कहता है-''चुप रहो अमात्य! शवों में बोलने की शक्ति नहीं, तुम्हारे प्रहरी जीवित नहीं रहे। चलिए गुरुदेव!'' इसी प्रकार सिकन्दर की सभा में उससे विवाद करके वह निर्विघ्न निकल आता है और अन्त में सिल्यूकस पर विजय प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, फिलिप्स के कामुक आक्रमण से वह कार्नेलिया की रक्षा करता है। कार्नेलिया, फिलिप्स और चन्द्रगुप्त दोनों के विषय में सोचती हुई कहती है-''उन दोनों में श्रृंगार और रौद्र का संगम है वह भी आह कितना आकर्षक है! कितना तरंग-संकुल है! इसी चन्द्रगुप्त के लिए न उस साधु ने भविष्यवाणी की है-भारत-सम्राट होने की!'' इस प्रकार वह अपने कौशल एवं पराक्रम से अपनी महानता सिद्ध करता है। आचार्य चाणक्य उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं-''क्षत्रिय के शस्त्र धारण चन्द्रगुप्त वैसा ही क्षत्रिय प्रमाणित होगा।''

**(4) योग्य शासक-** चन्द्रगुप्त कर्तव्यपरायण, स्वावलम्बी और योग्य शासक भी है। शत्रु के आक्रमण कर देने पर जब आचार्य चाणक्य और सिंहरण दोनों उसे छोड़कर चले जाते हैं, तब वह निराश नहीं होता वरन् द्विगणित उमंग और उत्साह से कार्य करता है। वह स्पष्ट कहता है-''मैं आज सम्राट नहीं, सैनिक हूँ! चिन्ता क्या? सिंहरण और गुरुदेव न साथ दें, क्या डर! सैनिको! सुन लो आज से मैं केवल सेनापति हूँ और कुछ नहीं!''

**(5) विनम्र व कृतज्ञ-** चन्द्रगुप्त वीर होने के बाद सहृदय, विनम्र तथा कृतज्ञ भी है। सिल्यूकस द्वारा व्याघ्र से उसकी रक्षा करने के कारण वह सिल्यूकस के प्राण न लेकर अपनी कृतज्ञता का परिचय देता है। फिलिप्स से कार्नेलिया की रक्षा करने पर कार्नेलिया उससे कृतज्ञ होती है और उसकी प्रशंसा करती है-''उसमें कितनी विनयशील वीरता है!''

**(6) न्यायप्रिय-** चन्द्रगुप्त योग्य शासक के कर्तव्य का पूर्णरूपेण निर्वाह करता है। गुरुदेव चाणक्य के चले जाने पर जब उसके पिता मौर्य ध्यानस्थ चाणक्य का वध करना चाहते हैं, तब पिता के इस क्रूर-कर्म की निन्दा करता हुआ वह कहता है-''पिता जी, राज-व्यवस्था आप जानते होंगे-वध के लिए, प्राण-दण्ड होता है, और आपने गुरुदेव का-इस आर्य-साम्राज्य के निर्माणकर्ता ब्राहमण का वध करने जाकर कितना गुरुतर अपराध किया है!'' आचार्य चाणक्य उसकी न्यायप्रियता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं-''किन्तु सम्राट, वह वध हुआ नहीं, ब्राहमण जीवित है।'' ग्ग् मैं विश्वस्त हूँ कि तुम अपना कृतज्ञ कर लोगे। राजा न्याय कर सकता है, परन्तु ब्राहमण क्षमा कर सकता है।'' इस प्रकार पिता के लिए दण्ड का विधान करके वह अपनी न्याय प्रियता का परिचय देता है।

**(7) अन्तर्द्वन्द्व से पूर्ण-** जीवन की विभिन्न संघर्ष से जूझता हुआ चन्द्रगुप्त गुरुदेव चाणक्य की अतिशय क्रूरता से क्षुब्ध हो उठता है। इसके मन में अनेक प्रकार की आशा-निराशा उद्भूत हो उठती है वह मालविका से कहता है-''संघर्ष! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़कर देखों मालविका! आशा और निराशा का युद्ध, भावों और अभावों का द्वन्द्व। कोई कमी नहीं, फिर भी न जाने कौन मेरी सम्पूर्ण सूची मैं रिक्त-चिन्ह लगा देता है।'' अकेले में वह अपनी स्थिति पर विचार करता हुआ कहता है-''भीषण संघर्ष करके भी मैं कुछ नहीं हूँ। मेरी स्थिति एक कठपुतली-सी है। तो फिर................मेरे पिता, मेरी माता, इनका तो सम्मान आवश्यक था। वे चले गए, मैं देखता हूँ कि नागरिक तो क्या, मेरे आत्मीय भी आनन्द मनाने से वंचित किए गए। यह परतन्त्रता कब तक चलेगी?'' अपने इन्हीं भावों को प्रकट करता हुआ वह गुरुदेव चाणक्य से कह देता है-''यह अक्षुण्ण अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं? आप मेरे कुटुम्ब का भी नियंत्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं। इस प्रकार गुरुदेव के कार्यो से कुण्ठित चन्द्रगुप्त अन्तर्द्वन्द्व से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है।

**(8) सबका प्रिय-** अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण वह सभी का प्रिय रहता है। स्त्री-पात्रों में कल्याणी, मालविका और कार्नेलिया तीनों ही उससे प्रेम करती हैं। कल्याणी अपनी मृत्यु के समय चन्द्रगुप्त से स्पष्ट करती है-''परन्तु मौर्य! कल्याणी ने वरण किया था केवल एक ही पुरुष को-वह था चन्द्रगुप्त।'' मालविका अपने द्वारा निर्मित फूलों की माला द्वारा चन्द्रगुप्त के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करती है और अन्त में चन्द्रगुप्त की शय्या पर मृत्यु के वरण के समय सोचती है-''यह चन्द्रगुप्त की शय्या है। ओह, आज प्राणों में कितनी मादकता है! ग्ग् अनुराग, तू रक्त से भी रंगीन बन जा!'' कार्नेलिया का प्रेम शनैः शनैः विकसित होता है। अन्त में वह अपने पिता से चन्द्रगुप्त के प्रति अपने प्रेम-भाव को प्रकट करती हुई कहती है-''मैं स्वयं पराजित हूँ। मैंने अपराध किया है पिता जी! चलिए, इस भारत की सीमा से दूर चले चलिए, नही तो मैं पागल हो जाऊँगी।'' इस प्रकार, चन्द्रगुप्त सभी का प्रिय पात्र है।

**(9) सच्चा देश-प्रेमी-** चन्द्रगुप्त सच्चा देश-सेवक है। राष्ट्र-प्रेम उसके जीवन का लक्ष्य है। स्वदेश-सम्मान की रक्षा में वह सदैव तत्पर रहता है। देश सेवक के रूप में वह पहले यवनों का सामना करता है और उन्हें परास्त कर देश से निकालकर ही रहता है। बाद में अयोग्य शासक नन्द का विनाश कर आचार्य चाणक्य के संकेत पर वह एक सुव्यवस्थित राज्य की स्थापना करता है।

**चाणक्य -** 'चन्द्रगुप्त' नाटक का सर्वाधिक प्रभावशाली पात्र है-चाणक्य। नाटक की कथा का सूत्रधार चाणक्य है। जिसके इंगित पर सभी पात्र कार्यरत हैं। चाणक्य की दूरदर्शिता, दृढ़ संकल्प तथा श्रेष्ठ बुद्धि-वैभव विश्व-विख्यात है। प्रसाद ने उसके इन्हीं विभिन्न गुणों को साकार रूप देते हुए 'चन्द्रगुप्त' नाटक का सृजन किया है। शास्त्रीय दृष्टि से 'चन्द्रगुप्त' नाटक का नायक चन्द्रगुप्त सिद्ध होता है। क्योंकि फल प्राप्ति उसे ही होती है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से चाणक्य 'चन्द्रगुप्त' नाटक का नायक प्रमाणित होता है। क्योंकि सम्पूर्ण नाटक उसके संकेतों पर आधारित है। डॉ.शान्तिस्वरूप गुप्त

(प्रसाद के नाटक एवं नाट्य शिल्प) के शब्दों में-''चाणक्य एक ऐसे भारत का स्वप्न देखता है जो छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त न हो और एक अखण्ड सार्वभौम राज्य हो। यही नाटक का फल है, नाटक का समस्त कार्य-व्यापार इसी फल की ओर उन्मुख है और चाणक्य ही इसके लिए सर्वाधिक प्रयत्नशील है। वही इसका बीज बोता है, उसे पल्लवित करता है और फल प्राप्त होते ही निष्काम भाव से कर्मपथ से हट जाता है। ग्ग् अतः चाणक्य ही नाटक का नायक है।'' डॉ. गुप्त का कथन कुछ अंशों तक उचित प्रतीत होता है। सत्यता तो यह है जैसा कि श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने लिखा है- ''चाणक्य तो मौर्य के साथ तपस्या में निरत होने के लिए कर्मक्षेत्र के रंगमंच को छोड़कर चला जाता है। अतएव, फल का उपभोक्ता वह हो ही नहीं सकता। जो नाटकीय फल का उपभोक्ता नहीं माना जा सकता, वह उस नाटक का नायक भी नहीं हो सकता।'' अतः शास्त्रीय दृष्टि से चन्द्रगुप्त नाटक का नायक है तो व्यावहारिक दृष्टि से चाणक्य को नाटक का नायक माना जा सकता है क्योंकि सभी घटनाओं और स्थितियों में इसका योग है। चरित्र के विचार से भी चाणक्य का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली रहा है।चन्द्रगुप्त नाटक में चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोंनों भी नायक माने जा सकते हैं अथवा राष्ट्र की एकता, तत्कालीन परिस्थितियों को जिनके आधार पर सम्पूर्ण नाटक गतिशील होता नायक माना जा सकता है।

**चाणक्य का चरित्र चित्रण-** चाणक्य श्रेष्ठ गुणों का भण्डार है। वह स्वाभिमानी, कर्मठ योग्य गुरु दृढ़-संकल्पी और निस्पृही ब्राहमण हैं। प्रो.भूषण स्वामी का मत दर्शनीय है-''चाणक्य एक ऐसा रूढ़ पात्र है जिसके ऊपर विघ्न-बाधाओं आदि का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है। वह एक ऐसा पत्थर है जिसके स्पर्श से लोग निखर तो सकते हैं किन्तु उस पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं छोड़ सकते। पूरे नाटक ही क्या, प्रसाद-साहित्य में यह अकेला पात्र है जो गगन-सा गम्भीर, समुद्र-सा विशाल, धरती-सा क्षमाशील एवं शतशत अनल-सा भयंकर है।''

उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

**(1) ब्राहमण-धर्म का समर्थक-** चाणक्य ब्राहमण होने के कारण ब्राहमण-धर्म का प्रबल समर्थक है। उसमें जातिगत स्वाभिमान है। वह निर्भीक, निस्पृह, त्यागी और स्वतन्त्रचेता है। आम्भीक के कुचक्र सम्बन्धी आरोप का उत्तर देते हुए वह अपने स्वाभिमान, स्वातान्त्रचेतना और निर्भीकता का परिचय देता है-''राजकुमार, ब्राहमण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, वह स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है।'' त्याग, क्षमा, तप और विद्या उसके प्रमुख गुण थे। वह भय तथा लालच से कोई कार्य नहीं करता है। वह स्पष्ट कहता है-''........लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राहमण नहीं बने हैं। हमारी दी हुई विभूति से हमी को अपमानित किया जाए, ऐसा नहीं हो सकता।'' चन्द्रगुप्त को सेना बनाने में जब पर्वतेश्वर विघ्न डालता है तब वह ब्राहमण-धर्म की दुहाई देकर स्पष्ट कहता है-''महाराज! धर्म के नियामक ब्राहमण हैं, मुझे

पात्र देखकर उसका संस्कार करने का अधिकार है। ब्राहमणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है।'' इस प्रकार नाटक में चाणक्य ने सर्वत्र ही ब्राहमण-धर्म की महत्ता प्रदर्शित की है।

**(2) दृढ़-प्रतिज्ञ-** चाणक्य दृढ़-प्रतिज्ञ और कर्मठ व्यक्ति है। नन्द-कुल के विनाश के लिए वह प्रथम प्रतिज्ञा करता है-''यह शिखा नन्द-कुल की काल-सर्पिणी है, वह तब तक बन्धन में न होगी, जब तक नन्द-कुल निःशेष न होगा।'' उसकी दूसरी प्रतिज्ञा थी-''दया किसी से न माँगूँगा और अधिकार तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूँगा।'' चाणक्य दोनों प्रतिज्ञाएँ पूरी करके दिखाता है। अपने बुद्धि-बल से वह चन्द्रगुप्त को सेनापति बनाता है तथा सिंहरण, अलका आदि विभिन्न पात्रों के सहयोग से अपनी योजनाएँ क्रियान्वित करता है। अन्ततः उसे सफलता मिलती ही हैं

**(3) कूटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी-** चाणक्य कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी है। वह सम्पूर्ण भारत को एक देखना चाहता है। देश का कल्याण ही उसका लक्ष्य है। इसके लिए हर सम्भव प्रयास करता है। श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा उसकी नीति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं-''उसकी नीति है कि जब तक कोई कार्य-व्यापार चलता रहे, तत्सम्बन्धी रहस्य और भेद की बात किसी को ज्ञात न हो। ग्ग् जितने अधिक से अधिक उग्र संघर्षो में वह पड़ता है, उसकी बुद्धि उतनी ही अधिक कार्यतत्पर हो उठती है।" उसे अपना स्वार्थ पूर्ण करना ही अभीष्ट रहता है, किन उपायों और उपादानों से पूर्ण करना होगा, इसकी कुछ चिन्ता नहीं करता।'' चाणक्य के शत्रु भी उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। सिल्यूकस के अनुसार वह 'बुद्धिसागर' है तो राक्षस का मत है-''वह विलक्षण बुद्धि का ब्राहमण है, उसकी प्रखर प्रतिभा कूट राजनीति के साथ दिन-रात जैसे खिलवाड़ किया करती है।'' कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शिता के कारण ही वह छल से राक्षस की आंगुलीय मुद्रा ले लेता है और नन्द के प्रति उसके मन में वैमनस्य उत्पन्न कर देता है। अपनी दूरदर्शिता के कारण ही वह चन्द्रगुप्त को मगध जाने से रोकता है तथा चन्द्रगुप्त के राजा बन जाने पर विजयोत्सव न मनाने की आज्ञा देता है। मालविका की मृत्यु हो जाने पर उसकी दूरदर्शिता तथा उसके कूटनीतिज्ञ होने का परिचय मिलता है। अपनी नीति पर प्रकाश डालते हुए वह पहले ही सिंहरण व चन्द्रगुप्त से कह देता है-''पौधे अन्धकार में बढ़ते हैं और मेरी नीति-लता भी उसी भाँति विपत्ति में लहलही होगी। हाँ, केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा। एक बात समझ लो, चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों।''

**(4) उदार और कोमल-** चाणक्य उदार और कोमल भी है। राक्षस, सिकन्दर, सिल्यूकस और आम्भीक के प्रति उसकी उदारता दर्शनीय है। सुवासिनी के प्रति उसका प्रेम प्रदर्शित करके नाटककार ने उसकी कोमल वृत्तियाँ का परिचय दिया है। नाटक के प्रारम्भ में ही जब वह अपनी झोपड़ी व पिता का पता लगाने गया था तब ही उसे ज्ञात हुआ कि शकटार को बन्दी बना लिया गया और उसकी बेटी सुवासिनी अभिनेत्री बन गई। इस सबको सुनकर उसे बहुत दुःख हुआ। तृतीय अंक के षष्ठ दृश्य में हमें चाणक्य की कोमल-वृत्तियाँ का परिचय मिलता है। कुसुमपुर को देखकर वह सोचता है-''वह सामने कुसुमपुर है, जहाँ मेरे जीवन का प्रभात हुआ था। मेरे उस सरल हृदय में उत्कृष्ट इच्छा थी-कोई

भी सुन्दर-मन मेरा साथी हो। प्रत्येक नवीन परिचय में उत्सुकता थी-और उसके लिए मन में सर्वस्व लुटा देने की सन्नद्धता थी। ग्ग् सुवासिनी न-न-न, वह कोई नहीं।'' अन्त में सुवासिनी द्वारा विवाह का प्रस्ताव रखने पर वह कहता है-''सुवासिनी! तुम्हारा प्रणय स्त्री और पुरुष के रूप में केवल राक्षस से अंकुरित हुआ, और शैशव का वह सब केवल हृदय की स्निग्धता थी। तुम राक्षस से प्रेम करके सुखी हो सकती हो और मैं, अभ्यास करके तुमसे उदासीन हो सकता हूँ।''

**(5) कर्मयोगी-** चाणक्य आजीवन कर्म में रत रहने वाला सच्चा कर्मयोगी है। वह चन्द्रगुप्त व सिंहरण आदि सभी पात्रों को अपने संकेतों पर नचाता है। उसका कहना है-''ब्राहमण राज्य करना नहीं जानता, करना भी नहीं चाहता, हाँ राजाओं का नियमन करना जानता है, राजा बनाना जानता है। कर्म में निरत वह सदा क्रूर एवं निष्ठुर बना रहता है क्योंकि उसका विचार है-''महत्वकांक्षा का मोती निष्ठुर की सीपी में पलता है।'' वह निष्ठुर वर्तमान के लिए। उसका सारा प्रयास भविष्य की सुख-शान्ति के लिए ही तो है। इसके लिए वह अपना सर्वस्व त्याग कर देता है। यहाँ तक कि अपने हृदय की मधुर स्मृति सुवासिनी तक को भी छोड़ देता है। उसका कहना है-''श्रेय के लिए मनुष्य को सब त्याग करना चाहिए।'' अतः अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करके वह उसकी सिद्धि में ही अपने जीवन की सफलता स्वीकार करता है।

**(6) विचारक एवं दार्शनिक-** चाणक्य एक महान विचारक भी है। वह प्रत्येक कार्य पर पहले भली-भाँति विचार करता है, फिर क्रियान्वित। अपने विचारों के बल पर ही वह सब पात्रों को उचित निर्देश देता है। पर्वतेश्वर जब छुरा निकालकर आत्महत्या करना चाहता है, तब चाणक्य ही उसका मार्गदर्शन करता है। वह पर्वतेश्वर को आत्महत्या से रोकते हुए यवनों से प्रतिशोध लेने के लिए तैयार करता हुआ कहता है-''मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली-भाँति परिचित रहता है। परन्तु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिए। असम्भव कहकर किसी काम को करने से पहले कार्यक्षेत्र में काँपकर लड़खड़ाओ मत पौरव!'' इतना ही नहीं, वह यत्र-तत्र अनेक सूक्तियों का प्रयोग करके अपने गहन चिन्तन-मनन का परिचय देता है। जैसे, वह पौरव से कहता है-''तामस त्याग से सात्विक ग्रहण उत्तम ।'' इसी प्रकार ''व्यक्ति स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े'',महत्वकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है,'' ''श्रेय के लिए मनुष्यको सब त्याग करना चाहिए'' आदि।

चाणक्य का गहन चिन्तन शनै-शनै उसे दार्शनिक बना देता है अपने जीवन के समग्र क्रिया-कलापों पर विचार करता हुआ वह चन्द्रगुप्त से कह उठता है-''मेरा जीवन राजनीतिक कुचक्रों से कुत्सित और कलंकित हो उठा है। किसी छायाचित्र, किसी काल्पनिक महत्व के पीछे भ्रमपूर्ण अनुसन्धान करता दौड़ रहा हूँ। शान्ति खो गई, स्वरूप विस्मृत हो गया! जान गया, मैं कहाँ और कितने नीचे हूँ!'' अपने बाल्यकाल, पिता, घर, नगर और सुवासिनी आदि के विषय में सोचते हुए चाणक्य कहता है-''समझदारी आने पर यौवन बीत जाता है-जब तक माला गूँथी जाती है, तब तक फूल कुम्हला जाते हैं।'' नाटक के अन्त में जब ध्यानस्थ चाणक्य आँख खोलता है, तब उसे प्रतीत

होता है-''चैतन्य सागर निस्तरंग है और ज्ञान-ज्योति निर्मल है। तो क्या मेरा कर्म कुलाल-चक्र अपना निर्मित भाण्ड उतार कर धर चुका? ठीक तो, प्रभात-पवन के साथ-सब की सुख-कामना शान्ति का आलिंगन कर रही है। देव! आज मैं धन्य हूँ।''

इस प्रकार चाणक्य एक विचारक और दार्शनिक के रूप में भी हमारे सामने आता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि चाणक्य के चरित्र में विभिन्न विरोधी गुणों का समन्वय हुआ है। वह क्रूर एवं कठोर है तो कोमल भी, वह निर्भीक स्वाभिमानी है तो उदार भी। उसका प्रमुख लक्ष्य-राष्ट्र का कल्याण है। इसकी सिद्धि के लिए वह उचित-अनुचित सभी साधनों का प्रयोग करता है क्योंकि ''वह सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे भी हों।'' वह नाटक में आदि से अन्त तक छाया हुआ है। वही सब घटनाओं, कार्यों व प्रसंगों का केन्द्रबिन्दु है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि 'चन्द्रगुप्त' नाटक के पात्रों में चाणक्य सर्वाधिक सशक्त, कर्मठ एवं दृढ़ पात्र है।

**सिंहरण -** 'चन्द्रगुप्त' नाटक के पात्रों में सिंहरण का महत्वपूर्ण स्थान है। वह मालवगण के राष्ट्रपति का पुत्र है। इसने तक्षशिला विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की है। शिक्षा-समाप्ति के बाद इसे तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली। अतः चाणक्य के निर्देशन में यह आगे कर्मरत होता है।सिंहरण का चरित्र एक आदर्श चरित्र है। आचार्य चाणक्य की आज्ञा का पालन ही उसका इष्ट है और यही जीवन का लक्ष्य है। उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

**(1) निर्भीक एवं साहसी-** सिंहरण एक निर्भीक और साहसी युवक है। नाटक के प्रारम्भ में ही आम्भीक के साथ वार्तालाप करने में उसकी निर्भीकता और साहस स्पष्ट देखा जा सकता है। सिंहरण और चाणक्य की बातचीत सुनकर जब आम्भीक किसी विस्फोट की बात सिंहरण से पूछता है और उन दोनों को किसी कुचक्र का सूत्रधार बताता है तो सिंहरण निर्भीकतापूर्वक कहता है-सिंहरण-विद्यार्थी और कुचक्र! असम्भव। ये तो वे ही कर सकते हैं जिनके हाथ में अधिकार हो-जिनका स्वार्थ समुद्र से भी विशाल और सुमेरु से भी कठोर, जो यवनों की मित्रता के लिए स्वयं वाल्हीक तक............।''

आम्भीक- बस-बस दुर्द्धर्ष युवक! बता तेरा अभिप्राय क्या है ग्ग् बताना होगा। मेरी आज्ञा है।

सिंहरण- गुरुकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है, अन्य आज्ञाएँ अवज्ञा के कान से सुनी जाती है राजकुमार!

आम्भीक जब उसे दुर्विनीत कहता है तब सिंहरण स्पष्ट उŸार देता है-''विनम्रता के साथ निर्भीक होना मालवों का वंशानुगत चरित्र है, और मुझे तो तक्षशिला की शिक्षा का भी गर्व है।'' अलका, सिंहरण के गुणों से प्रभावित होकर अपने भाई आम्भीक को समझाती है और सिंहरण की प्रशंसा

करती हुई कहती है-''इस वन्य निर्झर के समान स्वच्छ और स्वच्छन्द हृदय में कितना बलवान वेग है!''

**(2) देशभक्त-** सिंहरण सच्चा देशभक्त है। देश की स्थिति से भली-भाँति परिचित होने के कारण वह सदा देश के लिए मर मिटने को तत्पर रहता है। वह वीर-हृदय है, जो हर-पल युद्ध के लिए सन्नद्ध है। वर्तमान स्थिति का वर्णन करता हुआ वह कहता है-''एक अग्निमय गन्धक का स्रोत आर्यावर्त के लौह-अस्त्रागार में घुसकर विस्फोट करेगा। चंचला रण-लक्ष्मी इन्द्रधनुष-सी विजय-माल हाथ में लिए उस सुन्दर नील-लोहित प्रलय-जलद में विवरण करेगी और वीर-हृदय मयूर-से नाचेंगे।'' उसका वीर-हृदय सदा नाचता ही रहता है। देश के हितार्थ ही वह बन्दी बनता है। उद्भांड में सिन्धु पर बने रहे सेतु का मानचित्र बनाकर मालविका जब अलका को देती है, तब एक यवन सैनिक उसे छीनना चाहता है परन्तु सिंहरण शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर अलका से वह मानचित्र ले लेता है और यवन सैनिक का सामना करता है-''उसके (मानचित्र) अधिकारी का निर्वाचन खड्ग करेगा। तो फिर सावधान हो जाओ, (तलवार खींचता है)।'' सिंहरण के भीषण प्रत्याक्रमण से भयभीत होकर यवन सैनिक भाग जाता है और सिंहरण घायल हो जाने पर भी नौका में बैठकर आगे के कार्य में तल्लीन हो जाता है। जाते समय वह अलका से कहता है-''जन्मभूमि के लिए ही यह जीवन है'' वह चन्द्रगुप्त और चाणक्य के संकेत पर सारे कार्य करता है। मालवों के स्कन्धावार में युद्ध-परिषद् के सम्मुख अपनी स्थिति बताता हुआ वह कहता है-''मैं मालव-सेना का बलाधिकृत हूँ। मुझे सेना का अधिकार परिषद् ने प्रदान किया है और साथ ही सन्धि-विग्रहिक का कार्य भी करता हूँ। पंचनद की परिस्थिति मैं स्वयं देख आया हूँ और मगध चन्द्रगुप्त को भी भलीभाँति जानता हूँ। मैं चन्द्रगुप्त के आदेशानुसार युद्ध चलाने के लिए सहमत हूँ।'' चन्द्रगुप्त उसे उसके भयानक दायित्व का स्मरण कराता है। और समझाता है कि हमें यवन आक्रमणकारियों को यहाँ से हटाना है और उन्हें, जिस प्रकार हो, भारतीय सीमा से बाहर करना है। इसलिए शत्रु की ही नीति से युद्ध करना होगा। सिंहरण सहर्ष स्वीकार करता हुआ कहता है-''सेनापति की सब आज्ञाएँ मानी जाएँगी, चलिए।'' नाटक के अन्त तक वह आज्ञाकारी सैनिक बनकर अपनी देश-भक्ति का परिचय देता है।

**(3) कर्तव्यनिष्ठ एवं स्वाभिमानी-** सिंहरण देशभक्ति जैसे महान दायित्व को पूर्णरूपेण निभाने में सफल सिद्ध होता है। यवन आक्रमणकारियों का सामना करते हुए जब सिकन्दर ही उसके सामने आ जाता है, तब वह उसे घायल करने में चूकता नहीं। वह पहले ही सिकन्दर से कहता है-''तुमको स्वयं इतना साहस नहीं करना चाहिए सिकन्दर! तुम्हारा प्राण बहुमूल्य है।'' परन्तु जब सिकन्दर आगे बढ़कर उस पर भाले से वार करता है तो वह कब पीछे रहता है। सिकन्दर शीघ्र ही उसके भयानक प्रत्याघात से घायल होकर गिर जाता है। यद्यपि तीन यवन सैनिक कूदकर सिंहरण से युद्ध करने पहुँचते हैं परन्तु वह उनसे युद्ध न करते हुए कहता है-''यवन! दुस्साहस न कर! तुम्हारे सम्राट की अवस्था शोचनीय है, ले जाओ, इनकी शुश्रूषा करो!'' दुर्ग का द्वार टूट जाने पर, जब यवन सैनिक अन्दर घुस जाते हैं, तब सिंहरण मालव-सैनिकों को दृढ़ रहने की प्रेरणा देता हुआ कहता है-''कुछ

चिन्ता नहीं। दृढ़ रहो। समस्त मालव सेना से कह दो सिंहरण तुम्हारे साथ मरेगा ग्ग् अलका! मालव के ध्वस पर आर्यो का यशो-मन्दिर ऊँचा खड़ा हो सकेगा।'' इस प्रकार एक ओर वह अपनी कर्तव्यनिष्ठा का परिचय देता है तो दूसरी ओर अपने स्वाभिमा का।

**(4) सच्चा प्रेमी-** सिंहरण एक ओर देश प्रेमी है तो दूसरी ओर अलका का सच्चा प्रणयी। नाटक में प्रारम्भ से ही वह अलका से प्रभावित होता है। यद्यपि अलका का भाई आम्भीक देशद्रोही है और पिता गान्धार-नरेश स्वयं यवनों के समर्थक, परन्तु अलका का देश-प्रेम और सहृदयता उसे आकर्षित किए बिना नहीं रहती। प्रारम्भ में वह अलका के स्नेहानुरोध से ही गान्धार छोड़कर जाता है। बन्दीगृह में अलका घायल सिंहरण अपनी दुर्बल स्थिति को स्वयं ही उसे बताता है। अलका के यह कहने पर कि वह यदि पर्वतेश्वर से विवाह कर ले तो उसे बन्दीगृह से छुड़ा सकती है तब सिंहरण कहता है- ''अच्छा होता कि इससे पहले मैं ही न रह जाता। .........कठिन परीक्षा न लो अलका! बड़ा दुर्बल हूँ। मैंने जीवन-मरण में तुम्हारा संग न छोड़ने का प्रण किया है। .........और तुम पंचनद की अधीश्वरी बनने की आशा में..........तब मुझे रणभूमि में प्राण देने की आज्ञा दो।'' इस प्रकार वह अलका के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर चुकने के बाद अलका और सिंहरण दोनों का विवाह हो जाता है।

**(5) श्रेष्ठ चिन्तक एवं विचारक-** सिंहरण नाटक में यत्र-तत्र अपने अनेक विचार प्रस्तुत करके अपने गहन चिन्तन-मनन का परिचय देता है। नाटक के प्रारम्भ में वह अलका को समझाता हुआ कहता है- ''भद्रे! जीवन-काल में भिन्न-भिन्न मार्गो की परीक्षा करते हुए जो ठहरता हुआ चलता है, वह दूसरों को लाभ ही पहुँचाता है। यह कष्टदायक तो है, परन्तु निष्फल नहीं।'' अलका के यह कहने पर कि मनुष्य को अपने जीवन और सुख का भी ध्यान रखना चाहिए, सिंहरण कहता है-''मानव कब दानव से भी दुर्द्दन्त, पशु से भी बर्बर और पत्थर से भी कठोर, करुणा के लिए निरवकाश हृदयवाला हो जाएगा, नहीं जाना जा सकता। अतीत सुखो के लिए सोच क्यों, अनागत भविष्य के लिए भय क्यों और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा, फिर चिन्ता किस बात की?'' अन्त में आम्भीक को समझाता हुआ वह कहता है-''मनुष्य साधारणधर्मा पशु है, विचारशील होने से मनुष्य होता है और निःस्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है।'' इसी प्रकार वह सम्राट चन्द्रगुप्त की मानसिक वेदना पर विचार करते हुए कहता है-''सम्राट मनुष्य हैं अपने बार-बार सहायता करने के लिए कहने में, मानव-स्वभाव विद्रोह करने लगता है।'' इस प्रकार सिंहरण का चरित्र एक श्रेष्ठ चिन्तक और विचारक के रूप में भी देखा जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'चन्द्रगुप्त' नाटक के पात्रों में सिंहरण का चरित्र उच्च एवं आदर्शमय है। उसके विशेष गुण-निर्भीकता, साहस, स्वाभिमान और देशभक्ति-सभी को आकर्षित करने वाले हैं मानव चरित्र के रूप में नाटककार ने उसके चरित्र की दुर्बलता अलका के प्रेम के माध्यम से प्रस्तुत की है। वह चन्द्रगुप्त का सहयोगी और चाणक्य का आज्ञाकारी शिष्य है। समग्र रूप में उसका चरित्र महान एवं अनुकरणीय है।

**कल्याणी -** मगध की राजकुमारी कल्याणी आदर्श प्रणयिनी रूप में हमारे सामने आती है। वह चन्द्रगुप्त को प्राप्त करना चाहती है परन्तु असफल रहती है। जब पर्वतेश्वर उससे विवाह करना अस्वीकार कर देता है तब उसमें प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो जाती है। सच्ची क्षत्राणी बन कर वह पिता नन्द से कहती है-''पिताजी, मैं पर्वतेश्वर के गर्व की परीक्षा लूँगी। मैं वृषल-कन्या हूँ। उस क्षत्रिय को यह सिखा दूँगी कि राज-कन्या कल्याणी किसी क्षत्राणी से कम नहीं। सेनापति को आज्ञा दीजिए कि आसन्न गंधार-युद्ध में मगध की सेना अवश्य जाए और मैं उसका संचालन करूँगी। पराजित पर्वतेश्वर को सहायता देकर उसे नीचा दिखाऊँगी। युवकों को राष्ट्र-रक्षा के लिए वह तैयार करती है और स्वयं भी उसमें सहयोग देती है। परन्तु अन्त में आत्महत्या कर लेती है। क्योंकि चन्द्रगुप्त उसके पिता नन्द का विरोधी सिद्ध होता है। वह चन्द्रगुप्त से स्पष्ट कह देती है-''मौर्य! कल्याणी ने वरण किया था केवल एक ही पुरुष को -वह था चन्द्रगुप्त। ......... परन्तु मेरे पिता के विरोधी हुए। ग्ग् अब मेरे लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा!'' इस प्रकार कल्याणी चन्द्रगुप्त की प्रेमिका होने पर भी फल की प्राप्ति नहीं कर पाती है।

**मालविका -** सिन्धु देश की कुमारी मालविका कोमल हृदया और चन्द्रगुप्त की प्रेमिका है। सेवा भाव उसके जीवन का व्रत है। इसलिए वह कहीं सखी, कहीं सेविका, कहीं ताम्बूलवाहिनी और कहीं दूत बनकर सेवा करती है। चन्द्रगुप्त स्वयं उसकी प्रशंसा करता है- ''मालविका, तुम मेरी तांबूलवाहिनी हो, मेरे विश्वास की, मित्रता की प्रतिकृति हो।'' वह चन्द्रगुप्त के लिए एक फूलों की माला बनाती है और उसे पहनाती है। यह चन्द्रगुप्त के प्रति उसका प्रेम ही है। चन्द्रगुप्त का प्रेम प्राप्त करने के लिए वह नर्तकी बनती है तथा गीत गाती है। अन्त में चन्द्रगुप्त की रक्षा में ही वह अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देती है।-''जाओ प्रियतम! सुखी जीवन बिताने के लिए और मैं रहती हूँ चिर-दुःखी जीवन का अन्त करने के लिए।

**सुवासिनी -** शकटार की कन्या सुवासिनी राक्षस की प्रेमिका और राजा नन्द की अभिनयशाला की रानी (नर्तकी) रूप में हमारे सामने आती है। नर्तकी होने पर भी वह अपने स्त्रीत्व और प्रेम की अन्त तक रक्षा करती है। वह आज्ञाकारी पुत्री भी है। पिता की आज्ञा लेकर ही वह राक्षस से विवाह करना चाहती है। बाद में चाणक्य के प्रति भी उसका प्रेम-भाव दिखाई पड़ता है। परन्तु चाणक्य स्वयं उसे राक्षस से विवाह की मन्त्रणा देता है।

**अलका -** नाटक में तक्षशिला की राजकुमारी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वह आद्यन्त नाटक में छाई हुई है। अधिकांश घटनाएँ उसी से सम्बन्धित हैं। देशानुरागी वह देश के कल्याण हेतु नारी-पात्रों में सर्वाधिक प्रयत्नशील रहती है। उसमें व्यवहार-बुद्धि भी विद्यमान है। प्रेम-स्वांग रचकर वह अपने प्रेमी सिंहरण को पर्वतेश्वर के चंगुल से बचा लेती है।

**कार्नेलिया -** सिल्यूकस की पुत्री विदेशी होते हुए भी नाटक की नायिका है। क्योंकि वह चन्द्रगुप्त की प्रेयसी होने के साथ-साथ अन्त में साम्राज्ञी बनती है नाटकीय क्रिया-व्यापार में अधिक योग न होने

पर भी नाटक के फल की प्राप्ति उसे ही होती है। ग्रीक राजकुमारी कार्नेलिया में भारत के प्रति विशेष अनुराग है। वह स्पष्ट कहती है- ''यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालन, यह प्रेम की रंगभूमि-भारत भूमि क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नहीं! अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है, यह भारत देश मानवता की जन्मभूमि है।'' चन्द्रगुप्त सका सच्चा प्रेम है। जब सिल्यूकस चन्द्रगुप्त को दण्ड देने का विचार बनाता है, तब वह स्पष्ट कहती है-''चन्द्रगुप्त का तो कोई अपराध नहीं, क्षमा कीजिए पिता! (घुटने टेकती है) इसके साथ ही वह कहती है-''(रोती हुई) मैं स्वयं पराजित हूँ। मैंने अपराध किया है पिताजी! चलिए, इस भारत की सीमा से दूर चले चलिए, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगी।'' अन्त में चन्द्रगुप्त-कार्नेलिया का विवाह कराकर नाटककार ने कार्नेलिया को भारत की साम्राज्ञी बना दिया है। अतः फल-प्राप्ति की दृष्टि से कार्नेलिया नाटक की नायिका सिद्ध होती है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रसाद ने सभी नारी-पात्रों को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। डा. शान्तिस्वरूप गुप्त के शब्दों में ''प्रसाद की नारी-सृष्टि एक स्वर्गिक सुषमा से मण्डित तथा अपूर्व गरिमा से गौरवान्वित है। आदर्श के उत्तुंग शिखर पर प्रतिष्ठित होकर भी वह जीवन के धरातल पर विचरण करती है। यही है उनके नारी-जीवन का रहस्य।'' कल्याणी, मालविका, सुवासिनी, अलका, कार्नेलिया में से कार्नेलिया को नाटक के फल की प्राप्ति कराकर और उसे भारत की साम्राज्ञी बताकर नाटककार ने नायिका पद पर आसीन किया हैं।

**अभ्यास प्रश्न - क**

प्रश्न.1.चन्द्रगुप्त में पुरूष पात्रों की संख्या बताइए ?

प्रश्न.2.चन्द्रगुप्त में स्त्री पात्रों की संख्या बताइए ?

प्रश्न.3.चन्द्रगुप्त का नायक कौन है ?

प्रश्न 4.चन्द्रगुप्त की नायिका कौन है ?

प्रश्न.5.चन्द्रगुप्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र कौन है ?

प्रश्न.6.चाणक्य का वास्तविक नाम क्या है ?

प्रश्न.7.राक्षस कौन है ?

## 4.4 चन्द्रगुप्त में चरित्र-चित्रण की विशेषताएं-

### 4.4.1 इतिहास और कल्पना

प्रसाद के नाटकों का मूल स्रोत  इतिहास है, जिन चरित्रों के वे इतिहास से चुनते हैं वे उन्हें इतिहास के प्राप्त सूचनाओं के आधार उस पात्र का खाका ग्रहण करते हैं, शेष कार्य  उनकी जीवन-दृष्टि, और जीवन-अनुभव, ज्ञान और कल्पना करती है। इतिहास के कंकाल को रूपाकार प्रदान करना और उनको इच्छा-शक्ति तथा भावना से पूरित करना प्रसाद की रुप- विधायिनी कल्पना की सबसे बड़ी देन है।

प्रसाद की कल्पना शक्ति बहुत विलक्षण कही जा सकती हैं छोटा सा ऐतिहासिक संकेत पाकर वे पात्र को पूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तित्व प्रदान करने की क्षमता रखते हैं, चन्द्रगुप्त में दाड़्यायन, ऐसा ही पात्र है। इसी प्रकार पूर्णतः काल्पनिक पात्रों का इतिहासीकरण भी प्रसाद की पात्र-संरचना पद्धति की देन है। सुवासिनी सिंहरण इसी प्रकार के पात्र है।

### 4.4.2 संस्कृति का आधार

संस्कृति के सन्दर्भ को लेकर प्रसाद ने आदर्शवाद, भारतीय साहित्य में स्त्री-पुरुष के प्रेम-चित्रण, आनन्दवाद और नाटक की सुखान्त-दुखान्त प्रवृत्ति पर भी विचार किया है।

प्रसाद स्वंय साहित्य को संस्कृति के साथ जोड़ने के पक्ष में थे, इसलिए उन्होंने अपने नाटकों में भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक मूल्यों के रक्षार्थ प्रत्येक पात्र के चरित्र में विशेष आग्रह दिखाया है।

### 4.4.3 विचार और भाव की भूमिका

प्रसाद अपने नाटकीय पात्रों को महान उददेश्यों का वाहक बनाते हैं और इस प्रक्रिया में उन्हें इतनी काव्यात्मक, सघनता, प्रगाढ़ता और रहस्यमयता प्रदान करते हैं, जिससे वे पाठक या प्रेक्षक को सामान्य से विशिष्ट लगने लगते हैं, छायावाद के एक प्रमुख उपादान के रूप में विषाद, करूणा, विराग और त्रासद तत्व का प्रसाद ने अपने पात्रो की संरचना में अनेक रूपों में प्रयोग किया है। विम्बसार, स्कन्ध, देवसेना, चाणक्य, मालविका, आदि पात्र विषाद और दुःख का अनुभव दार्शनिक स्तर पर करते है। प्रसाद ने अपने पात्रों की सरंचना में भावना और विचार दोनो का मिला-जुला प्रयोग किया है, उन्होंने सत्य के श्रेय और प्रेम लक्षण बताते हुए उसकी अभिव्यक्ति के लिए अनुभूति और मनन शक्ति दोनो की आवश्यकता पर बल दिया है।वस्तुतः प्रसाद के प्रमुख पात्र नाटक के आरम्भ से लेकर अन्त एक पूरी यात्रा तय करते हैं, सत् पात्रों में यह यात्रा वाह्य संघर्ष से आरम्भ होती है और आन्तरिक के बीच विकसित होती है, यों भी कहा जा सकता है कि आन्तरिक द्वंद्व उनकी प्रकृति का अंग होता है, स्कन्धगुप्त, देवसेना, बिम्बसार आदि इसके उदाहरण है।

### 4.4.4 पात्र संरचना में शिथिलता-

चन्द्रगुप्त पात्र संरचना की दृष्टि से बिखरा हुआ नाटक है, इसका कारण घटनाओं की संकुलता उनका तीव्र प्रवाह और बिखराव तो है हि इतिहास का आग्रह भी है जिसके कारण पात्र एक विशिष्ट दिशा में अग्रसर होने के लिए वाह्य होते है, इस नाटक की चरित्र संरचना सबसे बड़ी त्रुटि पात्रों का यंत्रवत क्रिया व्यापार है जो कर्त्तव्य के आवरण में उन्हें कभी सोचने और अन्तर की गहराइयों में बैठने का अवसर ही नहीं देता जैसे वररूचि, मौर्य सेनापति, शकदार, अलका, सिंहरण, बिलकुल सपाट हैं, राक्षण भी प्रभावित नहीं करता और कहीं अन्य पात्र कथावस्तु के साधन पात्र बनकर रह गए हैं, चन्द्रगुप्त नायक होते हुए भी अपना व्यक्तिव उभार नहीं पाता, केवल चाणक्य ऐसा पात्र है जिसे ऐहिक और आत्मिक स्तर पर प्रसाद ने आन्तरिक दृष्टि से उभारा है।

**अभ्यास प्रश्न ख**

प्रश्न 1. मेगास्थनीज कौन है ?

प्रश्न 2. गांधार नरेश कौन है ?

प्रश्न 3. अलका कौन है ?

प्रश्न 4. सुहासिनी कौन है ?

प्रश्न 5. कार्नेलिया कौन है ?

प्रश्न 6. चन्द्रगुप्त किस राज्य का सम्राट है ?

प्रश्न 7. नंद किस राज्य का सम्राट है ?

## 4.5 सारांश

प्रसाद के नाटक जीवन का करूण और कोमल बिम्ब उभारते हुए मानव व्यवहार के उस पक्ष की भी उपेक्षा नहीं करते जो कठोर और जघन्य है। उनके अधिकांश पात्र व्यवहार में आदर्शवादी है, किन्तु ऐसे पात्र भी कम नहीं है जो जीवन की कटुताओं, दुर्बलताओं, दुष्प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं, वे पात्र को जीवन की ऊंचाइयों तक उठाते है किन्तु उसके अद्यः पतित स्थिति को नकारते नहीं।

इस प्राकर संक्षेप में कहा जा सकता है की मानवीय दीत्यन्ता से ओतप्रोत प्रसाद के पात्र जीवन की कठोरता को भी पूर्ण सच्चाई से व्यक्त करते हैं। भाषा की कोमलता उस कठोरता व्यक्त नहीं कर पाती, इस दृष्टि से प्रसाद के नाटकों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

## 4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**अभ्यास प्रश्न (क) के उत्तर**

उत्तर 18

उत्तर 8

उत्तर चाणक्य

उत्तर कार्नेलिया

उत्तर चाणक्य

उत्तर विष्णुगुप्त

उत्तर मगध का अमात्य

**अभ्यास प्रश्न (ख) के उत्तर**

उत्तर यवन दूत

उत्तर आम्भीक के पिता

उत्तर तक्षशिला की राजकुमारी

उत्तर शकटार की पुत्री

उत्तर सिल्यूकस की पुत्री।

उत्तर मौर्य सम्राट।

उत्तर मगध।

## 4.7 संदर्भ ग्रथ सूची

1. हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्व कोश, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त

2. प्रसाद के नाटक, डॉ. परमेश्वरी लाल

3. प्रसाद के नाटक स्वरूप और संरचना, डॉ. गोविन्द चातक

4. हिन्दी नाटक उदभव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा

5. हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास, डॉ. सोमनाथ गुप्त

## 4.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 . हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, दशरथ ओझा

2 . हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा. नगेन्द्र

3 . हिंदी का गद्य साहित्य, रामचंद्र तिवारी

4 . हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डा.बच्चन सिंह

## 4.9 निबंधात्मक प्रश्न-

प्रश्न 1. चन्द्रगुप्त नाटक का नायक कौन है, नाट्य-कला के आधार पर उसका चरित्र-चित्रण कीजिए

प्रश्न 2. चंद्रगुप्त नाटक के आधार पर पात्रों की विविधता एवं विशेषताओं पर एक विस्तृत निबंध लिखिए

# इकाई 5 चन्द्रगुप्त में भाषा शैली और रंगमंचीय प्रस्तुति

इकाई की रूपरेखा


5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 चन्द्रगुप्त की भाषा
5.3.1 भाषा शैली की विशेषताएं
5.4 चन्द्रगुप्त नाटक, रंगमंचीय प्रस्तुति
5.4.1 अभिनेयता
5.4.2 संवाद योजना
5.5 सारांश
5.6 अभ्यास प्रश्न
5.7 संदर्भ ग्रंथ
5.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न


## 5.1 प्रस्तावना

आपको यह बताना आवश्यक है कि नाटक में भाषा का बहुत महत्त्व है वस्तुतः यह कहना अनुचित न होगा कि भाषा का महत्त्व नाटक के अन्य तत्वों से अधिक है, नाटक में भाषा दोहरा कार्य करती है, एक ओर अर्थ के लिए स्वंय भाषा का अपना तात्त्विक महत्त्व होता है,दूसरी ओर वह नाटक के ढांचे ओर उसके अंगीभूत अन्य तत्त्वों का सर्जन भी करती है। कथावस्तु चरित्र, कार्य स्थिति, सभी का निर्माण भाषिक तत्त्व पर किसी न किसी रूप में अवलम्बित रहता है, नाटक की भाषिक संरचना ऊपरी सतह पर कथानक, चरित्र आदि की सृष्टि करती है, आन्तरिक तल पर नाटक के निहितार्थ अर्थात उद्देश्य का गठन करती है। नाटक का पाठ और नाट्य गति का संयोजन भाषा पर ही निर्भर है।

## 5.2 उद्देश्य

जैसा कि आपको विदित है जयशंकर प्रसाद पहले कवि हैं, तत्पश्चात नाटककार. उनका कवि रूप उनके नाटकों को भी प्रभावित करता है। इसका ज्ञान हमें नाटकों में स्थान-स्थान पर मिलता है, इस इकाई में हम 'चन्द्रगुप्त' नाटक की भाषा एवं उसकी अभिनय कला का परीक्षण करेंगें।

सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात आपको ज्ञात होगा कि प्रसाद ने किस प्रकार की भाषा का प्रयोग नाटकों में किया है। अभिनेयता कि दृष्टि से भी इस इकाई में प्रसाद के चन्द्रगुप्त का विश्लेषण किया जाएगा। प्रायः यह माना जाता है कि प्रसाद के नाटक अभिनय कि दृष्टि से सफल नहीं है। इस इकाई में हम इन आक्षेपों का अध्ययन करेगें।

## 5.3 'चन्द्रगुप्त' नाटक की भाषा

श्री जयशंकर 'प्रसाद' उच्च कोटि के नाटककार होने के साथ-साथ श्रेष्ठ कवि और निबन्धकार भी थे। यही कारण है कि उनकी भाषा-शैली में काव्यात्मकता, संस्कृतनिष्ठता, मधुरता, नाटकीयता, आलंकारिता, प्रतीकात्मकता, व्यंग्यात्मकता और छायावादी कोमलता विद्यमान हैं। उनकी भाषा-शैली उनके गहन चिन्तन-मनन की परिचायिका है। उन्होंने ज्ञान-विज्ञान, धर्म, दर्शन, इतिहास, शास्त्र, काव्य, राजनीति, भूगोल, खगोल, संगीत और वैद्यक आदि विभिन्न क्षेत्रों से शब्दों का चयन किया है। डॉ. गोविन्द चातक (प्रसाद: नाट्य और रंग-शिल्प) के शब्दों में- ''इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रसाद का एक-एक शब्द उनके चिन्तन और मनन को प्रकट करता है। उनके शब्दों के पीछे प्राचीन भारत की समूची संस्कृति और परम्परा बोलती है। इतिहास को समझे बिना प्रसाद के नाटकों में प्रयुक्त शब्दों, अनुभूतियों और विचारों का आस्वादन सम्भव नहीं'। प्रसाद की भाषा विवादास्पद रही है। आलोचकों का कथन है कि प्रसाद के नाटकों की भाषा अस्वाभाविक, अनाटकीय और एकरस है। उनके सभी पात्र, चाहे वे किसी भी श्रेणी या वर्ग के हों, एक ही संस्कृतनिष्ठ काव्यात्मक भाषा बोलते हैं। यह सत्य है कि प्रसाद के नाटकों के सभी पात्र एक-सी भाषा का प्रयोग करते हैं। परन्तु उनकी भाषा को अनाटकीय अथवा अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। अपनी भाषा के सम्बन्ध में प्रसाद स्वयं कहते हैं- ''भिन्न-भिन्न देश और वर्ग वालों से उनके देश और वर्ग के अनुसार भाषा का प्रयोग कराने से नाटक को भाषाओं का अजायबघर बनाना पड़ता है। जो कहीं अधिक अप्राकृतिक हो जाता है और सामाजिकों के लिए भी इतनी भाषाओं से परिचय रखना असम्भव है। इसके अतिरिक्त, इस विषय की अधिक आवश्यकता भी नहीं दिखाई पड़ती। न जाने कितने विदेशियों को हम अपनी ही तरह हिन्दी बोलने-समझते पाते हैं। जहाँ भावुकता और कल्पना के बल पर हम इतने बड़े अभिनय को नकल और अभिनय न समझकर सच्ची घटना मानते हैं और उसी के साथ हँसते-रोते, सुख-दुःख सहते है। वहाँ ऐसी बात यथार्थ है अथवा अयथार्थ, इसके विचार का अवसर ही कहाँ रह जाता है। जब हम सिल्यूकस और कार्नेलिया को अपने सम्मुख खड़ा

देखते हैं, तब वे यथार्थ मालूम पड़ते हैं और जब वे परिष्कृत भाषा का प्रयोग करने लगते हैं। तब अयथार्थ हो जाते हैं, यह भी कोई तर्क है। अतएव भाषा-विविधता के लिए आग्रह न करना ही हितकर है। स्वरूप भिन्नत्व केवल वेश-भूषा से ही व्यक्त कर देना चाहिए।''

### 5.3.1 'चन्द्रगुप्त' की भाषा-शैली की विशेषताएँ

चन्द्रगुप्त की भाषा-शैली में विविधता विद्यमान है। इसमें एक ओर संस्कृतनिष्ठ, काव्यात्मक, प्रतीकात्मक व छायावादी आलंकारिक भाषा-शैली का प्रयोग मिलता है तो दूसरी ओर प्रसंगानुकूल सरल, सरस, दार्शनिक और गम्भीर भाषा-शैली दृष्टिगत होती है। 'चन्द्रगुप्त' प्रसाद का ऐतिहासिक नाटक है। इसलिए उन्होंने देशकाल के अनुरूप ही शब्दावली का चयन किया है। 'चन्द्रगुप्त' भाषा-शैली की निम्नांकित विशेषताएँ हैं-

**(1) संस्कृतनिष्ठ** - 'चन्द्रगुप्त' की भाषा युगानुरूप है। नाटक के अधिकांश पात्र राजन्य वर्ग के अथवा इस वर्ग से सम्बन्ध रखने वाले हैं। इनके अतिरिक्त ब्राहमण और सामान्य नागरिक भी है। संस्कृत भारत के ज्ञान-विज्ञान और साहित्य की प्रमुख भाषा थी। अतः प्रसाद ने पात्रों के मुख से संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग कराया है। संस्कृतनिष्ठ भाषा होने पर भी दुरूहता अथवा अस्वाभाविकता कहीं भी नहीं आई है। भाषा सर्वत्र सरस, स्वाभाविक और पात्रों के भावानुकूल है चाणक्य का कथन दर्शनीय है-''त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और सम्मान के लिए है-लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राहमण नहीं बने हैं।''

**(2) काव्यात्मक** - प्रसाद मुख्यतः कवि थे। इसलिए उनके नाटकों की भाषा काव्यात्मक है। डॉ. नगेन्द्र ने उनके नाटकों को मधु से वेष्टित कहा है। भाषा-शैली काव्यात्मक होने के साथ-साथ प्रवाह एवं माधुर्य से युक्त है। सिंहरण का कथन देखिए- ''एक अग्निमय गन्धक का स्रोत आर्यावृत्त के लौह-अस्त्रागार में घुसकर विस्फोट करेगा। चंचला रणलक्ष्मी इन्द्रधनुष-सी विजय-माल हाथ में लिए उस सुन्दर नील-लोहित प्रलय-जलद में विचरण करेगी और वीर-ह्दय मयूर-से नाचेंगे।''

**(3) अलंकृत** - प्रसाद छायावादी कवि थे। इसलिए छायावादी काव्य के अनुरूप उनके नाटकों की भाषा अलंकृत और भावपूर्ण है। ऐसे स्थलों पर मधुरता, कोमलता और सुकुमारता भी विद्यमान है। गहन अनुभुति और विराट कल्पना से रंजित ऐसे स्थल भव्य, अर्थपूर्ण और मार्मिकता से युक्त हैं। चन्द्रगुप्त का कथन द्रष्टव्य है-''चतुर सेवक के समान संसार को जगाकर अन्धकार हट गया। रजनी की निस्तब्धता काकली से चंचल हो उठी है। नीला आकाश स्वच्छ होने लगा है........... यह जागरण का अवसर है। जागरण का अर्थ है कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होना!''

**(4) दार्शनिक और गम्भीर** - 'चन्द्रगुप्त' की भाषा काव्यात्मक और अलंकृत होने के साथ-साथ दार्शनिक और गम्भीर भी है। आचार्य चाणक्य और महात्मा कात्यायन की भाषा गम्भीर व दार्शनिक

है। कात्यातन का मत देखिए-''भूमा का सुख और महत्त्व का जिसको आभास-मात्र हो जाता है, उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन अभिभूत नहीं कर सकते।''

**(5) ओजपूर्ण** - 'चन्द्रगुप्त' में राजनीति, कूटनीति और युद्ध का वर्णन है। इसलिए भाषा-शैली ओजपूर्ण है। चाणक्य के कथन इसका प्रमाण है। इसके अतिरिक्त सिंहरण, चन्द्रगुप्त, अलका आदि के कथन भी ओज-भाव को व्यक्त करने वाले हैं। चाणक्य का कथन कितना ओजपूर्ण है-''पौधे अन्धकार में बढ़ते हैं और मेरी नीति-लता भी उसी भाँति विपत्ति में लहलही होगी। हाँ, केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा। एक बात समझ लो, चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों। बोलो-तुम लोग प्रस्तुत हो ?''

**(6) नाटकीय एवं रसानुकूल** - 'चन्द्रगुप्त' नाटक है। इसलिए भाषा का नाटकीय होना स्वाभाविक है। 'चन्द्रगुप्त' की भाषा में वे समग्र विशेषताएँ विद्यमान हैं, जो नाटक के लिए आवश्यक हैं। इसमें रसानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। उत्साह, आवेश, प्रेम, दया, क्षमा, विनय आदि के भावों को अभिव्यक्त करने में भाषा पूर्ण सक्षम है । अलका का कथन देखिए-''भाई! अब भी तुम्हारा भ्रम नहीं गया। राज्य किसी का नहीं है। सुशासन का है। जन्मभूमि के भक्तों में आज जागरण है। देखते नहीं प्राच्य में सूर्योदय हुआ है। भाई! तक्षशिला मेरी नहीं और तुम्हारी भी नहीं। इसके लिए मर मिटो।''

**(7) सूक्तियों का सार्थक प्रयोग** - 'चन्द्रगुप्त' में प्रसाद ने यत्र-तत्र सूक्तियों का प्रयोग किया है।, जिससे नाटक में रोचकता और प्रभाव का समावेश हो गया है। आचार्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त के कथन ऐसे ही हैं। चन्द्रगुप्त स्पष्ट कहता है- ''आत्म-सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य-जीवन है।'' तथा ''ब्राहमणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है।''

**(8) लक्षणा-व्यंजना का प्रयोग** - 'चन्द्रगुप्त' की भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रसाद ने यत्र-तत्र की लक्षणा-व्यंजना का भी प्रयोग किया है। जैसे-'कुसुमपुर फूलों की सेज से ऊँघ रहा है,' 'कुत्ता -कुत्ता ही रहेगा, इन्द्र-इन्द्र ही,' चाणक्य कहता है- ''मैं कुत्ते को कुत्ता ही बनाना चाहता हूँ। नीचों के हाथ में इन्द्र का अधिकार चले जाने से जो सुख होता है उसे मैं भोग रहा हूँ।''

**(9) पात्रानुकूल भाषा का अभाव** - 'चन्द्रगुप्त' नाटक में पात्रानुकूल भाषा-शैली का अभाव है। उनके सभी पात्र, चाहे वे राजा हों, ब्राहमण हों, शूद्र हों, परिचारक हों या विदेशी हों, एक ही भाषा का प्रयोग करते हैं। सिकन्दर, सिल्यूकस और कार्नेलिया आदि विदेशी पात्रों के मुख से संस्कतनिष्ठ भाषा का प्रयोग कुछ अटपटा ही लगता है। श्री राजनाथ शर्मा, प्रसाद की भाषा के प्रयोग का कारण स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- ''उनके नाटक भारत के प्राचीन, इतिहास (महाभारत काल) से लेकर सातवीं-आठवीं शताब्दी तक के इतिहास से सम्बन्धित रहे हैं। उस युग में शिष्ट-जनों की भाषा संस्कृत थी। विभिन्न प्राकृतों और अपभ्रंशों का भी समाज में व्यवहार होता था। भारत में आने वाले विदेशीह भारतीयों के साथ किस प्रकार की भाषा बोलते थे, इसका पता नहीं चलता। समाज का

अशिक्षित वर्ग किस बोली या भाषा का प्रयोग करता था, इसका भी हमें ज्ञान नहीं है। फिर प्रसाद अपने नाटकों के ऐसे पात्रों से किस प्रकार की भाषा बुलवाते, यह तो उनके विद्वान आलोचक ही बता सकते हैं।''

अतः प्रसाद ने भाषा के विवाद में न पड़कर एक ही भाषा 'संस्कृतनिष्ठ' का प्रयोग कर दिया है। और यह आक्षेप कि उनकी भाषा पात्रानुकूल नहीं स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

## 5.4 चन्द्रगुप्त नाटक, रंगमंचीय प्रस्तुति

### 5.4.1 अभिनेयता

**(1) नाटक में अभिनेयता का महत्त्व -** नाटक की सफलता उसकी अभिनेयता पर निर्भर है। प्रत्येक सहृदय सामाजिक किसी तथ्य को पढ़कर अथवा सुनकर इतना प्रभावित नहीं होता, जितना प्रत्यक्ष देखकर। इसलिए रंगमंच की आवश्यकता और अभिनय की महत्ता को सभी विद्वानों ने एकमत होकर स्वीकार किया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेई (आलोचना, नाटक विशेषांक) का मत दर्शनीय है''मानव चरित्र को शक्ति और गति देने में, सामूहिक प्रतिक्रिया और प्रेरणा उत्पन्न करने में-जीवन का निर्माण करने में-जितना कार्य अभिनेय नाटक कर सकता है, उतना दूसरी कोई कलाकृति नहीं।''

**(2) चन्द्रगुप्त की अभिनेयता (रंगमंच) -** 'चन्द्रगुप्त' की अभिनेयता के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त विवाद रहा है। कुछ भाषा को अनुपयुक्त, दुरूह और दार्शनिक बताते हैं तो कुछ कथोपकथनों के विस्तार, दृश्य-विभाजन के आधिक्य और काल-योजना के बिखराव की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए 'चन्द्रगुप्त' को अभिनय के अनुपयुक्त सिद्ध करते हैं। सत्यता यह है कि प्रसाद के समय में तीन रंगमंच थे-(1) संस्कृत रंगमंच, (2) पारसी रंगमंच, (3) हिन्दी का असंगठित रंगमंच। संस्कृत और पारसी रंगमंच के विभिन्न तत्वों का समन्वय करते हुए प्रसाद ने हिन्दी के असंगठित रंगमंच को संगठित और सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास किया। उस समय का रंगमंच फूहड़ और बाजारू होने के साथ-साथ व्यावसायिक भी था। इसीलिए प्रसाद ने रंगमंच को एक ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिए तत्कालीन रंगमंच से विद्रोह किया और रंगमंच को एक नवीन दिशा प्रदान की। रंगमंच सम्बन्धी अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करते हुए प्रसाद ने (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध) लिखा- ''रंगमंच के सम्बन्ध में यह भारी भ्रम है कि नाटक के लिए रंगमंच हो, जो अव्यावहारिक है।'' अपने इसी दृष्टिकोण के कारण प्रसाद ने रंगमंच अथवा नाटक की अभिनेयता पर इतना ध्यान नहीं दिया, जितना ध्यान दृश्यों के विभाजन, घटनाओं के संयोजन, पात्रों के चरित्रोद्घाटन, गीतों के निर्वाह और काव्यात्मकता के समावेश पर दिया है। इसलिए उनके नाटकों में कुछ दोष आ गए हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में भी अभिनय की दृष्टि से अनेक दोष दिखाई पड़ते हैं जो निम्नांकित हैं-

**(3) कतिपय दोष -** 'चन्द्रगुप्त' नाटक में अभिनय की दृष्टि से पहला दोष दृश्य-विभाजन में है। इसमें कुल 44 दृश्य हैं। जिनके अभिनय में बहुत समय लगेगा। दूसरा दोष दृश्यों की क्रमबद्धता में है। नाटक के प्रारम्भिक दृश्यों-पहला तक्षशिला के गुरुकुल का, दूसरा मगध-सम्राट के विलास-कानन का-का क्रम ठीक नहीं, क्योंकि दोंनो की साज-सज्जा में पर्याप्त समय चाहिए। तीसरा दोष नाटक की काल-योजना में है। दृश्यों के बीच कहीं-कहीं लम्बे समय का अन्तर हो गया है। डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त (प्रसाद के नाटक एवं नाट्य शिल्प) के अनुसार-''चन्द्रगुप्त' के पाँचवे और छठें दृश्यों के बीच 11 मास का अन्तर है। अंकों का काल-विभाजन भी ठीक नहीं हो पाया है। 'चन्द्रगुप्त' के पहले अंक की घटनाएँ एक वर्ष की हैं। और चौथे अंक में सोलह वर्ष की घटनाएँ ठूँस दी गई हैं। इस अनियमित काल-योजना से नाटक की प्रभावन्विति पर कुप्रभाव पड़ा है।'' चौथा दोष भाषा की संस्कृतनिष्ठता और लम्बे-लम्बे कथोपकथनों में दिखाई पड़ता है। सामान्य दर्शक न ऐसी भाषा समझ सकता है और न लम्बे कथोपकथनों से रसास्वादन कर सकता है। पाँचवाँ दोष गीतों के आधिक्य में मिलता है। पात्रों की अधिक संगीतप्रियता पाठक में नीरसता का संचार करती है। सुवासिनी, कल्याणी, अलका आदि द्वारा गाए गए गीत कहीं तो सार्थक हैं परन्तु कहीं-कहीं निरर्थक और उबाने वाले हैं। जैसे-प्रथम अंक के दूसरे दृश्य में सुवासिनी थोड़ी-थोड़ी देर बाद गाती है, जो दर्शक को नीरस प्रतीत होता है। छठा दोष नाटक को अतिशय काव्यात्मकता और दार्शनिकता में दृष्टिगत होता है। यदि पात्र ऐसे काव्यात्मक और दार्शनिक स्थलों को अभिनय में स्थान दे तो दर्शक को समझने में बहुत कठिनाई होगी। स्पष्ट है कि अभिनय की दृष्टि से 'चन्द्रगुप्त' में अनेक दोष हैं। इसी कारण आलोचकों ने इसके पुनर्लेखन की आवश्यकता पर बल दिया है।

**(4) दोषों का निराकरण -** यह सत्य है कि 'चन्द्रगुप्त' में अभिनय की दृष्टि से अनेक दोष हैं परन्तु उन दोषों का निराकरण किया जा सकता है। अभिनय की दृष्टि से नाटक का विस्तार कम किया जा सकता है अनावश्यक दृश्य और घटनाएँ काटी जा सकती हैं। संवाद संक्षिप्त किए जा सकते हैं। भाषा की काव्यात्मकता और दार्शनिकता के स्थान पर भाषा सरल, सरस और व्यावहारिक बनाई जा सकती है। श्री जगन्नाथप्रसाद शर्मा (प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन) के अनुसार-''अभिनय व्यापार की दृष्टि से इस नाटक (चन्द्रगुप्त) का वृत्त-गुम्फन विशेष चमत्कार युक्त है। यदि केवल प्रथम तीन अंक ही चुन लिए जाएँ तो भी काम चल सकता है। रसास्वादन में कोई व्याघात नहीं पड़ता।''

**(5) अभिनय के योग्य -** उपर्युक्त दोषों का निराकरण करने के उपरान्त 'चन्द्रगुप्त' नाटक अभिनय के योग्य सिद्ध होता है। नाटक में अनेक स्थल अभिनय की दृष्टि से बहुत प्रभावशाली हैं। प्रथम अंक के पाँचों दृश्य अभिनय के योग्य है। प्रत्येक अंक के प्रथम और अन्तिम दृश्य अत्यधिक हृदयग्राही और आकर्षक है। दूसरा अंक पर्याप्त रोचक है। तीसरे अंक का निर्वाह भी उत्तम रीति से हुआ है। प्रसाद ने स्त्री-पात्रों के माध्यम से नाटक को अधिक सरस बना दिया है। नाटक में आवश्यकतानुसार रंगमंच संकेत भी दिए गए हैं। अतः नाटक का अभिनय किया जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कतिपय दोषों के होते हुए भी 'चन्द्रगुप्त' को अभिनय के अयोग्य नहीं कह सकते। दोषों का परिहार करके नाटक सफलतापूर्वक खेला जा सकता है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेई (जयशंकर प्रसाद) का मत दर्शनीय है-''प्रसाद जी नाट्य कला सम्बन्धी स्वतंत्र आधार लेकर चले हैं और उसकी परीक्षा के लिए अनुकूल रंगमंच का होना भी आवश्यक है। बिना ऐसा परीक्षा का अवसर दिए यह कहना कि प्रसाद जी की भाषा जटिल है, नाटक नाट्योपयोगी नहीं, प्राथमिक उत्तरदायित्व से मुँह मोड़ना है।''अन्ततः डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त (प्रसाद के नाटक एवं नाट्य शिल्प) के शब्दों में कह सकते हैं-''क्रिया-व्यापार का वेग, प्रथम और अन्तिम दृश्यों का आकर्षक स्वरूप श्रृंगार और वीर रस पूर्ण संवाद, नाटक के अन्त में विषय और व्यक्तित्व का समन्वित उत्कर्ष, प्रभावान्विति सभी गुण उसके नाटकों को अभिनय के अनुकूल बनाते हैं।''

### 5.4.2 संवाद योजना

नाटक का मूलाधार संवाद हैं। नाटककार संवादों के माध्यम से ही नाटक की कथावस्तु का विकास,पात्रों के चरित्र का उदघाटन और उद्देश्य की अभिव्यक्ति करता है। डॉ. रघुवंश (नाट्यकला) के शब्दों मे-' कवि या रचियता का भाव, विचार सभी उसकी अभिवयक्ति के द्वारा ही परेक्षक की अनुभूति का विषय बनता है। अभिव्यक्ति के उपकरणों में उसके पास भाषा अपनी सजीव शक्ति के साथ है। नाटक में भाषा की यह अभिव्यक्ति कथोपकथन के विभिन्न रूपों में प्रस्तुत होती है। जिस व्यक्तिगत प्रतिभा के द्वारा वह उसका प्रयोग करता है, वह उसकी निजी शैली के अन्तर्गत आता है। नाटक के जीवन का विकास घटना और चरित्र द्वारा होता है और उसका अधिकांश रूप हमारे सम्मुख अभिनय के साथ कथोपकथन में ही आता है।' प्रो. भूषण स्वामी का मत दर्शनीय है- 'नाट्य-समग्रता में आभा बिखेरने का सम्पूर्ण श्रेय संवाद-तत्व को है। सफल नाटककार का कथोपकथन उसे सफल वायुयान के सदृश युगपत विविध कार्य करता है, जो कभी जल पर सन्तरण, कभी स्थल पर संचरण और कभी आकाश में विचरण करता हुआ दृष्टिगत होता है। जिस कथोपकथन में जितनी अधिक चरित्र-चित्रण की क्षमता व्यापार- प्रसार की योग्यता और रस-परिपाक के लिए भावोद्बोधन की तीव्रता होगी, वह उतना ही उत्तम माना जाएगा।'

**चन्द्रगुप्त की संवाद योजना -** प्रसाद के नाटकों के संवाद भावात्मक, गतिशील, सरल-सरस, रोचक, कथा को बढाने वाले, पात्रो का चरित्रोद्धाटन करने वाले तथा उद्देश्य को अभिव्यक्त करने में सक्षम रहें हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी (जयशंकर प्रसाद) के अनुसार- ' अपनी शैली की विशेषता के साथ ही उनके संवाद भी भावात्मक हैं, बौद्धिक नहीं। उनमें कोरी बौद्धिकता, सम्भाषण-पटुता या उक्ति- वैचिन्य नहीं है। इसी दृष्टि से उन्होंने नाटकों में गद्य की जगह काव्य को प्राथमिकता दी है।'

**विशेषताएं -** 'चन्द्रगुप्त' नाटक के संवाद अधिकांशतः संक्षिप्त, रोचक, सरस, सरल, और स्वाभाविक हैं। साथ ही कथा को विकसित करने वाले, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन

करने वाले, देश काल के परिचायक और विभिन्न प्रस्थितियों के सूचक हैं। प्रो. बनवारी लाल हाण्डा के अनुसार - 'प्रसाद जी के अन्य प्रोढ़कालीन नाटको से पृथक 'चन्द्रगुप्त' में कथन प्रायः छोटे-छोटे हैं इसके दो लाभ हुए हैं- एक तो कथानक को गति मिली है और दूसरे वक्ता के चरित्र पर प्रकाश पडा है। वास्तव में इन संवादों में एक त्वरता, भास्वरता है। चन्द्रगुप्त के संवादों की निम्नलिखित विशेषताएं है-

1. **कथानक का विकास करने वाले** -'चन्द्रगुप्त' नाटक के संवाद कथानक के विकास में सहायक रहे हैं। श्री जगन्नाथप्रसाद शर्मा के शब्दों में-'' नाटक के सवांद वस्तु- संविधान में साधन रूप में सहायक रह हैं। उनका उपयोग वस्तु-विधान में यों दिखाई पड़ता है कि उन्हीं के सहारे वस्तु-गति आगे बढ़ी है। प्रकृत विषय का प्रभाव भी नहीं टूटने पाया औरएक बात में से दूसरी और दूसरी में से तीसरी स्वयमेव फूटती चली गई है।'' उदाहरणार्थ-

**चाणक्य**- केवल, तुम्हीं लोगों को अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए ठहरा था।.............

**सिंहरण**- आर्य, मालवों को अस्त्र-शस्त्र की उतनी आवश्यकता नही, जितनी अर्थशास्त्र की।

**चाणक्य**- अच्छा, अब तुम मालव जाकर क्या करोगे?

**सिंहरण**- अभी तो मैं मालव नहीं जाता। मुझे तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली है।

2. **पात्रों का चरित्रोद्घाटन करने वाले** - 'चन्दुगुप्त' के संवाद पात्रों के चारित्रिक गुणों का उद्घाटन करने वाले हैं। पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व, प्रेम-भाव, दय, क्षमा, करूणा, आदि संवादों द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। यथा-

**मालविका-**सम्राट, अभी कितने ही भयानक संघर्ष सामने हैं।

**चन्दुगुप्त-** संघर्ष! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़कर देखो मालविका! आशा और निराशा का युद्ध, भावों और अभावों का द्वन्द्व!...............

**मालविका-** आप महापुरूष हैं, साधारण जन-दुर्लभ दुर्बलता न होनी चाहिए आप में देव! बहुत दिनों पर मैंने एक माला बनाई हैं। (माला पहनाती है)

**चन्दुगुप्त** - मालविका, इन फूलों का रस तो भौंरे ले चुके हैं।

**मालविका**- निरीह कुसुमों पर दोषारोपण क्यों?...............

इस संवाद में एक और चन्दुगुप्त के अन्तर्द्वन्द्व पर प्रकाश पड़ता है तो दूसरी ओर मालविका का चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम भाव, आत्म समर्पण और संयम चित्रिता हुआ है।

**3. परिस्थिति-सूचक-** 'चन्दुगुप्त' के संवाद विभिन्न परिस्थितियों, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि, की सुचना देने वाले हैं। ऐसे स्थलों पर नाटककार ने विस्तारवादी पद्धति न अपनाकर संकेतात्मक शैली का आश्रय लिया है। इससे संवादों में चमत्कार का समावेश हो गया है। यथा-

**सिंहरण** - ............ उत्तरापथ के खण्ड राज्य द्वेष से जर्जर हें। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा।

(सहसा आम्भीक और अलका प्रवेश)

**आम्भीक** - कैसा विस्फोट? युवक, तुम कौन हो?

**4. रसानुकूल** - ' चन्दुगुप्त' के संवादों की एक विशेषता है कवि रसानुकूल हैं। वीर,रंगार, करूण आदि रसों के अनुकूल ही संवादों का सृजन किया गया है। ''सर्वत्र ही संवाद रस के अनुकूल हुए हैं। जहॉ वीर रस का प्रंसग है वहॉ के संवादों में उस रस के अनुकूल पदावली, भाषा और भाव दिखाई पड़ती है। उत्साह, गर्व,दर्प, आवेश, क्रोध सभी भाव समयानुसार होते चलते है। इसी तरह, जहाँ श्रंगार की योजना हुई है वहाँ भाषा और भाव- व्यंजना में तद्रकूल परिवर्तन हो गया है।''

श्रंगार का एक उदाहरण देखिए-

**कार्नेलिया** -.................. अच्छा, यौवन और प्रेम को क्या समझती हो?

**सुवासिनी** - अकस्मात जीवन-कानन में, एक राका-रजनी की छाया में छिपकर मधुर वसन्त घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं............।

**कार्नेलिया** - (उसे गले लगाकर) आह सखी! तुम तो कवि हो। तुम प्रेम करना चाहती हो और जानती हो उसका रहस्य।...........

इसी प्रकार रौद्र और भयानक रस का एक उदाहरण देखिए-

**चाणक्य-** सावधान नन्द! तुम्हारी धर्मान्धिता से प्रेरित राजनीति आँधी की तरह चलेगी, उसमें नन्द वंश समूल उखड़ेगा।...............

**नन्द-** यह समझकर कि ब्राहमण अवध्य है तू मुझे भय दिखलाता है! प्रतिहार... इसकी शिखा पकड़कर इसे बाहर करो।

**चाणक्य** - खींच ले ब्राह्मण की शिखा! शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते? खींच लें! परन्तु यह शिखा नन्दकुल की काल-सर्पिणी है, वह तब तक न बन्धन में होगी, जब तक नन्दकुल निःशेष न होगा।

**5. दार्शनिक एवं कवित्वमय** - 'चन्दुगुप्त' में दार्शनिक एवं कवित्वमय संवाद भी परिलक्षित होतं हैं। महात्मा कात्यायन के कथनों में दार्शनिकता है तो सुवासिनी, मालविका आदि के संवादों में काव्यमयता विद्यमान है। दार्शनिक संवादों में गम्भीरता है तो कवित्वमय संवाद अत्यन्त हृदयग्राही बन पड़े हैं। काव्यमय संवाद का एक उदाहरण देखिए-

**सुवासिनी -** राजकुमारी प्रेम में स्मृति का सुख है। एक टीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है।

**कार्नेलिया** - तुम क्या कहती हो ?

**सुवासिनी** - वही स्त्री-जीवन का सत्य है।

**कार्नेलिया** - सखी! मन्दिर की प्याली में तू स्वप्न-सी लहरों को मत आन्दोलित कर।

इसी प्रकार दार्शनिक संवाद देखिए-

**एनिसाक्रीटीज** - महात्मन!

**कात्यायन** - चुप रहो, सब चले जा रहे हैं, तुम भी चले जाओ। अवकाश, नहीं, अवसर नहीं।

**एनिसाक्रीटीज** - आप से कुछ................

**कात्यायन** - मुझसे कुछ मत कहो! कहो तो अपने- आप ही कहो, जिसे आवश्यकता होगी सुन लेगा। देखते हो, कोई किसी की सुनता है? मैं कहता हूँ - सिन्धु के एक बिन्दु!धारा में न बहकर मेरी एक बात सुनने के लिए ठहर जा- वह सुनता है? ठहरता है ? कदापि नहीं

**6. सरल-सरस स्वाभाविक** - 'चन्द्रगुप्त' के अधिकाशं संवाद सरल, सरस और स्वाभाविक हैं। कुल मिलाकर संवाद संक्षिप्त और रोचक हैं। जहाँ किसी विषय पर विवाद किया गया है, वहाँ संवाद कुछ लम्बे हो गए है । सभी संवाद व्यावहारिक और विषय-संगत हैं। एक उदाहरण देखिए-

**राक्षस** - स्नातक! अच्छे तो हो?

**चाणक्य** - बुरे कब थे बौद्ध अमात्य!

**राक्षस** - आज हम लोग एक काम से आए हैं। आशा है कि तुम अपनी हठवादिता से मेरा और अपना दोनों का अपकार न करोगे।

**वररूचि** - हाँ , चाणक्य! आमात्य का कहना मान लो।

7. **स्वगत कथन**- 'चन्द्रगुप्त' में स्वगत कथन भी विद्यमान है, जो प्रायः लम्बे हो गए है। चाणक्य, पर्वतेश्वर, चन्द्रगुप्त, मालविका, अलका, और गान्धार-नरेश के स्वगत कथन लम्बे हैं। स्वगत कथनों के माध्यम से नाटककार ने पात्रों की मानसिक स्थिति का परिचय कराया है। गान्धार-नरेश का स्वगत कथन द्रष्टव्य है- ''बूढ़ा हो चला, परन्तु मन बूढ़ा न हुआ। बहुत दिनों तक तृष्णा को तृप्त करता रहा, पर तृप्त नहीं होती।''कहीं -कहीं स्वगत कथन मात्र रूढ़ि का पालन करने के लिए किए गए हैं। अलका का कथन इसी प्रकार का है- ''सिंहरण मेरी आशा देख रहा होगा और मैं यहाँ पड़ी हूँ । आज इसका कुछ निपटारा करना होगा। अब अधिक नहीं।'' दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में सेनापति का कथन, तीसरे अंक के छठे दृश्य में मालविका का कथन और तीसरे अंक के अन्तिम दृश्य में नन्द का कथन इसी प्रकार का है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि 'चन्द्रगुप्त' के संवाद नाटकीय, काव्यात्मक, दार्शनिक, व्यावहारिक, सरल-सरस, रोचक, संक्षिप्त और रसानुकूल हैं । साथ ही कथा को विकसित करने और पात्रों के चरित्रोद्घाटन में भी समर्थ रहे हैं। अन्ततः डॉ. गोविन्द चातक के शब्दों में कह सकते हैं- ''कुल मिलाकर प्रसाद के नाटकीय संवादों में काव्यत्व, चिन्तन, संवेगात्मकता, माधुर्य, ओज व्यंग्य आदि कई रंगों का समाहार है। विषय वस्तु की दृष्टि से देखें तो ओज और माधुर्य प्रसाद के संवादों की सबसे बड़ी विशेषता है।'' वास्तव में चन्द्रगुप्त के संवादों में विविधता और विशिष्टता विद्यमान है।

## 5.5 सांराश

प्रसाद के नाटकों की भाषा काव्यमय स्वरूप को प्रतिपादित करती है। प्रसाद कवि की भांति संसधानों का पूरा प्रयोग करते हैं, वे एक ओर शब्दावली का भावात्मक उपयोग करते हैं, दूसरी ओर अलंकरण का वे भाव के स्तर पर सुदूर इतिहास को सामग्री से काव्य का वातावरण निर्मित करते हैं और भाषा के स्तर पर नाट्य तत्वों को भी इसी कार्य में नियोजित कर देते हैं। कतिपय दोषों के होते हुए भी चन्द्रगुप्त को अभिनय के अयोग्य नहीं कह सकते, सारांश रूप में आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का मत दिया जा सकता है '' प्रसाद जी के नाट्य कला संबंधी स्वतन्त्र आधार लेकर चले हैं और उसकी परीक्षा के लिए अनुकूल रंग का होना भी आवश्यक है, बिना ऐसा परीक्षा का अवसर दिए यह कहना है कि प्रसाद जी की भाषा जटिल है, नाटक नाट्योपयोगी नहीं, प्राथमिक उत्तरदायित्व से

मोह मोड़ना है।'' क्रिया व्यापार का वेग, दृश्यों का आकर्षक रूप, रसपूर्ण संवाद, प्रभावान्विति सभी गुण उनके नाटकों को अभिनय के अनुकूल बनाते हैं।

## 5.6 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. चन्द्रगुप्त में किस प्रकार की भाषा का प्रयोग गया हैं ?

उत्तर - संस्कृत निष्ठ हिन्दी।

प्रश्न 2. चन्द्रगुप्त की भाषा की विशेषता बताइये ?

उत्तर - चन्द्रगुप्त की भाषा की विशेषताएं इस प्रकार हैं -

1. काव्यात्मक
2. संस्कृतनिष्ठ
3. अलंकृत
4. ओजपूर्ण
5. नाटकीय
6. रसानुकूल
7. सूक्तियों का प्रयोग
8. पात्रानुकूल
9. लाक्षणिक

प्रश्न 3. चन्द्रगुप्त की शैली की विशेषताएं बताइये ?

उत्तर - चन्द्रगुप्त की शैली की विशेषताए इस प्रकार हैं -

1. वर्णनात्मक
2. विचारात्मक
3. भावात्मक

4. व्यग्यात्मक

5. गीतात्मक

प्रश्न 4. चन्द्रगुप्त की अभिनय के दोषं क्या है बताइये ?

उत्तर - चन्द्रगुप्त के अभिनय के दोष इस प्रकार हैं -

1. दृश्य की अधिकता, नाटक में 44 दृश्य हैं

2. दृश्यों में क्रम बद्धता नहीं है

3. दृश्यों के मध्य काल का बहुत अधिक अन्तराल है

4. नाटक की भाषा संस्कृतनिष्ठ है, कथोपकथन अत्यधिक विस्तृत हैं

5. नाटक में गीतों का आधिक्य है

प्रश्न 5. संवाद योजना की विशेषताएं बताइये ?

उत्तर 1. कथानक का विकास करने वाले

2. पात्रों का चरित्र उद्घाटित करने वाले

3. रसानुकूल

4. सरल एवं स्वाभाविक

6. काव्यत्मक एवं अंलकारिक

## 5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्व कोश, डॉ.गणपति चन्द्र गुप्त

2. प्रसाद के नाटक, डॉ.परमेश्वरी लाल

3. प्रसाद के नाटक स्वरूप और संरचना, डॉ.गोविन्द चातक

4. हिन्दी नाटक उदभव और विकास, डॉ.दशरथ ओझा

5. हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास, डॉ.सोमनाथ गुप्त

6. प्रसाद की नाट्य कला संरचना तथा शैली तत्व, डॉ. सुजाता बिष्ट

## 5.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डा. बच्चन सिंह
2. प्रसाद की दार्शनिक चेतना, डॉ. चक्रवर्ती
3. प्रसाद युगीन नाटक, डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल
4. प्रसाद युगीन नाटकों में सांस्कृतिक चेतना, डॉ. वशिष्ट मुनि पाण्डेय
5. हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्व कोश, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त


## 5.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त नाटक की रंगमंचीय प्रस्तुति की दृष्टि से विवेचना कीजिए?
2. चन्द्रगुप्त नाटक की भाषा एवं संवाद योजना का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए?

# इकाई 6 हिन्दी निबन्ध साहित्य का स्वरूप एवं तात्विक विवेचन

इकाई की रूपरेखा


6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 निबन्ध का अर्थ, तात्पर्य और स्वरूप
6.4 निबन्ध के प्रकार
6.5 निबन्ध : तात्त्विक विवेचन
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.9 अभ्यासों के उत्तर
6.10 निबंधात्मक प्रश्न


## 6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि 'निबन्ध' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य क्या है ? इसका स्वरूप कैसा होता है? निबन्ध के तत्त्व कौन-कौन से हैं, तथा उनकी विवेचना कैसे की जाती है। इसके साथ ही आप यह भी जान सकेंगे कि निबन्ध लेखन, साहित्य की अन्य विधाओं से किस तरह भिन्न है।

'निबन्ध' साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसमें लेखक अपने मौलिक चिंतन तथा गम्भीर विचारों को तार्किकता के साथ कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। फ्रांसीसी विद्वान मॉन्तेन ने 1580 में व्यक्तिगत दशाओं को अभिव्यक्त करते हुए जिस विधा में लिखा था, उसे 'ऐस्साइ' की संज्ञा दी।

मॉन्तेन को आधुनिक निबन्ध का जन्मदाता माना जाता है; वे निबन्ध को विचारों, उद्धरणों और कथाओं का सम्मिश्रण मानते थे। भारत में हिन्दी 'निबन्ध' लेखन की परम्परा का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है।

## 6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे -

निबन्ध का अर्थ, तात्पर्य क्या है ?

निबन्ध का स्वरूप कैसा होता है ?

निबन्ध कितने प्रकार के होते हैं ?

निबन्ध के प्रमुख तत्त्व कौन से हैं ?

निबन्ध साहित्य अन्य विधाओं से भिन्न क्यों है।

## 6.3 निबन्ध का अर्थ, तात्पर्य एवं स्वरुप

शब्दिक अर्थ में 'निबन्ध' का अर्थ है- पूर्ण रूप से बँधा हुआ, अर्थात् एक ऐसी साहित्यिक विधा जिसमें लेखक द्वारा अपने मनोभावों एवं विचारों को सम्यक् रूप से एकत्र करके कलात्मक शैली में स्वच्छन्दतापूर्वक अभिव्यक्त किया जाता है। संस्कृत साहित्य में स्मृतियों की व्याख्याओं, तथा भोजपत्रों में लिखित मौलिक रचनाओं को सँवारकर ग्रथित करने या बाँधने के लिए 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग मिलता है; किन्तु हिन्दी में इस अर्थ की दृष्टि से 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। यद्यपि हिन्दी में निबन्ध शब्द परम्परा से आया; किन्तु अर्थ की दृष्टि से वह अंग्रेजी के 'एस्से' का पर्यायवाची है। अंग्रेजी का 'एस्से' शब्द, प्राचीन फ्रांस के 'एस्साइ' से बना; जो मूलतः लैटिन में 'एग्जाजियर' से व्युत्पन्न है; जिसका अर्थ है- निश्चिततापूर्वक परीक्षण करना।

**विभिन्न विद्वानों के मत**

यह तो आप जानते ही हैं कि किसी भी व्यक्ति, वस्तु अथवा विषय के संबंध में प्रत्येक व्यक्ति के अपने विचार और अपना दृष्टिकोण होता है, जो दूसरे से कुछ भिन्न होता है; यही कारण है कि निबन्ध के संबंध में भी विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। आइये जानें , किसकी दृष्टि में निबन्ध क्या है- फ्रेंच विद्वान मॉन्तेन ने निबन्ध के लिए 'ऐस्साइ' शब्द का प्रयोग किया है; उनके लिए यह निष्छल आत्माभिव्यक्ति का पर्याय है। वे कहते हैं- "मेरी इच्छा है कि मुझे सच्चे सीधे, सहज, साधारण रूप में ही जाना जाए; उसमें कोई लाग-लपेट, दिखावा-बनाना, छल-छंद, नकलीपन ना हो, क्योंकि अपने निबंधों में मैं स्वयं को चित्रित करता हूँ अथवा मैं स्वयं ही पुस्तक का विषय हूँ।" भारतीय विद्वान जयनाथ 'नलिन' ने निबन्ध को परिभाषित

करते हुए लिखा है- “निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निष्छल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन है।”

**आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** निबन्ध को गद्य की कसौटी मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा ‘एस्से’ के बताए गए लक्षणों के आधार पर वे, निबन्ध के विषय में कहते हैं- ‘‘निबन्ध उसी को कहना चाहिये, जिसमें व्यक्तित्त्व अर्थात् व्यक्तिगत विषेषता हो।’’

**जॉनसन** का मत है- ”एस्से स्वछन्द मन की तरंग है, जिसमें विश्रृंखलता का प्राधान्य होता है।

**बाबू गुलाबराय** निबन्ध को परिभाषित करते हुए कहते हैं- ”निबन्ध उस गद्य रचना को कहना चाहिये, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विषेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव एवं सजीवता तथा आवश्यक  संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।

उपर्युक्त परिभाषाएं को पढ़कर आप यह जान ही चुके होंगे कि सभी विद्वानों ने निबन्ध के विषय में कुछ-न-कुछ विषेष बात अवश्य कही है। आइये, अब यह भी जानें कि हिन्दी साहित्य में निबन्ध लेखन का शुभारम्भ कब से हुआ, और हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार कौन-कौन हैं।

अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य में जब भारत का संपर्क अंग्रेज़ी ज्ञान-विज्ञान से बढ़ने लगा, तब पाश्चात्य साहित्य की विविध विधाओं से प्रभावित होकर, अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों ने उनमें साहित्य सृजन करना प्रारम्भ किया। इन्हीं विधाओं में से एक विधा थी- निबन्ध; जो आज भी हिन्दी गद्य साहित्य का अभिन्न अंग है। हिन्दी ‘निबन्ध’ लेखन की परम्परा का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में ‘भारतेन्दु हरिष्चन्द्र’ से माना जाता है। उनके समकालीन लेखकों में पंड़ित बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा बद्रीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ का नाम उल्लेखनीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, वासुदेवशरण अग्रवाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ.नगेन्द्र, कुबेरनाथ राय, महादेवी वर्मा आदि साहित्यकारों ने हिन्दी निबन्ध लेखन को उत्कर्ष पर पहुंचाया। हिन्दी साहित्य जगत में शुक्ल युग को गद्य साहित्य के सर्वांगीण विकास का युग माना जाता है, इस युग के प्रवर्तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल थे। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ में ‘निबन्ध’ लेखन के लिए चिंतन एवं विचार गाम्भीर्य एवं बोधगम्यता को आवश्यक  तत्त्व मानकर, निबन्ध को परिभाषित करते हुए लिखा है- ”यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है, तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।...आधुनिक पाष्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए, जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विषेषता हो। बात तो ठीक है, यदि ठीक तरह से समझी जाय। व्यक्तिगत विषेषता का यह मतलब नहीं कि उनके प्रदर्षन के लिए विचारों के श्रृंखला रखी ही न जाए, या जान-बूझकर जगह-जगह से तोड़ दी जाए; भावों की विचित्रता दिखाने के लिए

ऐसी अर्थयोजना की जाए, जो उसकी अनुभूति के प्रकृत या लोकसामान्य रूप से कोई सम्बन्ध ही ना रखे, अथवा भाषा से सरकस वालों की-सी कसरतें या हठयोगियों के से आसान कराए जाएँ, जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवा और कुछ न हो।

**अभ्यास प्रश्न**

**1. किसका कथन है-**

"एस्से स्वछन्द मन की तरंग है, जिसमें विश्रृंखलता का प्राधान्य होता है।"

"यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है, तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।"

"निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकशन है।"

**2. आइये, एक बार दोहराएँ -**

1. हिन्दी निबन्ध लेखन का प्रारम्भ कब से माना जाता है ?
2. आचार्य शुक्ल निबन्ध का आवश्यक तत्त्व किसे मानते थे ?
3. भारतीय साहित्य में निबन्ध का प्रयोग किस अर्थ में मिलता है ?
4. एस्से शब्द की व्युत्पत्ति किस शब्द किस से मानी जाती है ?
5. हिन्दी गद्य साहित्य के सर्वांगीण विकास का युग किसे कहा जाता है ?

## 6.4 निबन्ध के प्रकार

वर्तमान समय में निबन्ध आत्मनिष्ठता से वस्तुनिष्ठता की ओर उन्मुख हुए हैं; यही कारण है कि आज वे केवल आत्माभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रह गए हैं, वरन् उसका फलक अत्यन्त विस्तृत हो गया है। इस आधार पर निबन्धों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1. व्यक्तिप्रधान निबन्ध
2. विषयप्रधान निबन्ध
3. ललित निबन्ध

**1. व्यक्ति-प्रधान निबन्ध** - निबन्ध का प्रमुख तत्त्व है- आत्मीयता; इसलिए व्यक्ति प्रधान निबन्धों में 'निज' अर्थात आत्मतत्त्व की प्रधानता होना स्वाभाविक है। जब लेखक अपनी स्मृति में अंकित किसी भाव, घटना या बातचीत के किसी प्रसंग को श्रृंखलाबद्ध करके, उसे वैचारिक, अथवा भावात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है, तब व्यक्ति प्रधान निबन्ध का जन्म होता है। इस प्रकार के निबन्धों में हमें लेखक के व्यक्तित्त्व की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। किसी भी व्यक्ति में भाव एवं विचार दोनों तत्त्व विद्यमान रहते हैं, इस आधार पर व्यक्ति प्रधान निबन्धों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

अ. भावात्मक

आ. विचारात्मक

इ. आत्मपरक

**अ. भावात्मक निबन्ध -**

जिनमें हृदय की प्रधानता रहती है, उन्हें भावात्मक निबन्ध कहते हैं। भावात्मक निबन्धों में हमें- कल्पना के विस्तृत आकाष में हृदय की उन्मुक्त उड़ान, भावनाओं की तीव्रता के साथ दिखाई देती है। हर्ष-विषाद, अनुरक्ति-विरक्ति, आकर्षण-विकषर्ण हृदय के विविध उद्गार प्रयुक्त होते हैं। जब लेखक किसी परिस्थिति विशेष, घटना विषेष, अथवा अनुभव विशेष को भावावेग में कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है, तब ऐसी स्थिति में भावात्मक निबन्ध का जन्म होता है। भावात्मक निबन्धों में वाक्य छोटे, अनुभूति की गहनता तथा भावों की तीव्रता होती है। माधव प्रसाद मिश्र, पूर्ण सिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, डॉ. रघुवीर सिंह, गुलाबराय, आदि की गणना श्रेष्ठ भावात्मक निबन्धकारों में की जाती है। भावात्मक निबन्धों का चरम विकास हमें पूर्णसिंह जी के निबन्धों में दिखाई देता है। 'आचरण की सभ्यता' में वे मौन की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं- ''प्रेम की भाषा शब्द रहित है। नेत्रों की, कपोलों की, मस्तक की भाषा भी शब्द रहित है। जीवन का तत्व भी शब्द से परे हैं। सच्चा आचरण-प्रभाव, शील, अचल-स्थित-संयुक्त आचरण न तो साहित्य के लम्बे व्याख्यानों से गठा जा सकता है, न वेद की श्रुतियों के मीठे उपदेश से, न अंजील से, न कुरान से, न धर्म-चर्चा से न केवल सत्संग से।"

**आ. विचारात्मक निबन्ध-**

जिन निबन्धों में चिन्तन-पक्ष की प्रधानता रहती है, उन्हें विचारात्मक निबन्ध कहते है। वैचारिक पक्ष की महत्ता के कारण विचारात्मक निबन्धों में हमें तार्किकता तथा विश्लेष्णात्मकता दिखाई देती है; जिससे हमें लेखक की अन्तःदृष्टि, चिंतन-मंथन के साथ ही उसके दृष्किोण की नवीनता, तथा विष्लेषण करने की क्षमता का भी ज्ञान होता है। निबन्ध के विचारात्मक होने का

तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें भावों की उपेक्षा की जाती हो, इसका अर्थ यह है कि विचारात्क निबन्धों में भाव, विचारों के अनुवर्ती बनकर रहते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य का इतिहास में विचारात्मक निबन्धों को श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण माना है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल आदि के निबन्ध विचारात्मक निबन्धों के उत्कृष्ट उदाहरण है । आधुनिक युग के निबन्धकारों में प्रमुख, शुक्ल जी के शिष्य डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'गाँधी और कबीर' में उन्होंने गाँधी जी के प्रति अपने चिंतन को कौन-सी दिषा प्रदान की है, एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है- "प्रार्थना में गाँधी जी का ध्यान निराकार सर्वव्यापी प्रभु की ओर रहता हैं। राम जिनको वो पूजते हैं, उनकी कल्पना का है न तुलसी-रामायण का ना वाल्मीकि का। ईश्वर अवतार लेता है अवश्य, परन्तु उसी अर्थ में जिसमें प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का अवतार है। कबीर का अनुसरण करते हुए गांधी सबके हृदयस्थ परमात्मा की ओर संकेत कर जन समाज के सामने महत्व का अभिनव मार्ग खोल रहे है।"

**इ. आत्मपरक निबन्ध-**

जिनमें भावात्मक एवं विचारात्मक दोनों प्रकार के निबन्धों की विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं, उन निबन्धों को आत्मपरक निबन्ध कहते हैं। आत्मपरक निबन्धों में लेखक के निज में विष्व को अपनी निजता का अनुभव होता है; क्योंकि इनमें लेखक अपने व्यंग्य-विनोद, सहज-सरल भाषा, मनमौजी व्यक्तित्त्व के साथ, पाठक को संवाद करता प्रतीत होता है। शान्तिप्रिय द्विवेदी, पंड़ित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास निवास मिश्र आदि के निबन्ध आत्मपरक निबन्धों के सशक्त उदाहरण हैं।

**2. विषय-प्रधान निबन्ध** - विषय-प्रधान निबन्धों में 'परात्मकता' को अधिक महत्त्व दिया जाता है, अर्थात् विषय-प्रधान निबन्धों में वर्ण्यविषय की प्रधानता रहती है। निबन्ध की विषयवस्तु चाहे सामाजिक हो, अथवा राजनीतिक; आर्थिक हो या फिर सांस्कृतिक, साहित्यक, मनोवैज्ञानिक आदि कुछ भी हो, किन्तु अच्छे निबन्ध के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है - उसकी प्रस्तुति। जब किसी विशिष्ट विषय की केवल शुष्क एवं वैचारिक विवेचना की जाती है तो वह निबन्ध न होकर, लेख बनकर रह जाता है; इसके विपरीत यदि लेखक किसी सामान्य विषय पर लिखते समय उसमें अपने मौलिक विचारों को अनुभवों से सजीवता व जीवन्तता प्रदान करता है, तो सहज ही वह निबन्ध बन जाता है। विषयप्रधान निबन्धों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं-

(क) वर्णनात्मक

(ख) विवरणात्मक

**क. वर्णनात्मक निबन्ध -**

जब निबन्धकार अनुभूति, विचार, कल्पनातत्त्व तथा अभिव्यंजना कौषल के सहारे किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, अथवा प्रकृति आदि के स्थिर रूप का वर्णन करता है, तब वर्णनात्मक निबन्धों का जन्म होता है। वर्णनात्मक निबन्धों में विषयवस्तु का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है; किन्तु उसकी व्याख्या नहीं की जाती। माधव प्रसाद मिश्र का 'रामलीला' महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'प्रभात', बालकृष्ण भट्ट का 'महाकवि माघ का प्रभात वर्णान' राहुल सांकृत्यायन का 'गोमती की उपत्यका में बिखरे मंदिर' आदि में हम वर्णनात्मक निबन्ध की विशेषताएँ देख सकते हैं। कलात्मक अभिव्यंजना, प्रवाहमयी भाषा; वर्णनात्मक निबन्धों को जीवन्तता प्रदान करती है। वर्णनात्मक निबन्धों में कल्पना-तत्त्व का भी समावेश रहता है, और चिंतन-पक्ष प्रायः गौण दिखाई देता है।

**ख. विवरणात्मक निबन्ध-**

इन्हें आख्यात्मक अथवा कथात्मक निबन्ध भी कहा जाता है; क्योंकि इस प्रकार के निबन्धों में लेखक किसी ऐतिहासिक घटना, काल्पनिक इतिवृत्त, पौराणिक आख्यान, उत्सव-मेले, पर्वतारोहण, अथवा दुर्गम प्रदेश की यात्रा का आश्रय लेकर निबन्ध लिखता है। विवरणात्मक निबन्धों में वर्ण्यविषय का रूप गतिशील दिखाई देता है; जिसे लेखक अपनी कल्पना से रंजित करके प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के निबन्धों में व्यंजनापूर्ण भाषा, तथा सामासिक शैली का प्रयोग मिलता है। राहुल सांकृत्यायन, रामधारी सिंह 'दिनकर' गुलाबराय आदि द्वारा लिखित इस प्रकार के अनेक निबन्ध मिलते हैं। गुलाबराय के निबन्ध 'आत्म-विष्लेषण' से एक उदाहरण दृष्टव्य है- ''तुलसीदास की भाँति न तो मैं कभी छाछी को ललचाता रहा और न बड़े होने पर सौंधे दूध की मलाई को नखरे और नाराजगी से खाया - 'छाछी को ललात जे ते राम नाम के प्रसाद , खाद खुनसात सौंधे दूध की मलाई है ।' मैंने दूध का हर एक रूप में स्वागत किया है (सपरेटा को छोड़कर) । दूध मैंने गरम ही पीना चाहा है । असावधानी मेरा जन्मगत दोष है; क्योंकि बसंत से एक दिन पूर्व ही मैं इस संसार में आया, किंतु मैं उससे (दूध से ) जला नहीं हूँ , इसलिए छाछ को फूंक-फूंक कर पीने की आवश्यकता नहीं पड़ी। जीवन में पर्याप्त लापरवाही रही।''

**3. ललित निबन्ध-**

ललित निबन्धों की सुदीर्घ परम्परा रही है। यूँ तो स्वतन्त्रता से पूर्व भी ललित निबन्ध लिखे गए, किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात हमें ललित निबन्धों का एक स्वतन्त्र एवं सुव्यवस्थित रूप दिखलाई देता है। जब निबन्धकार आत्मीयता और खुलेपन से कथ्य में निहित सौंदर्य को निखारता है, अर्थात् किसी भी मनःस्थिति अथवा भाव को अभिव्यक्त करने के लिए वह अपनी अनुभूतियों को निष्छलता एवं सरसता से पाठक के समक्ष रख देता है, तब ललित निबन्ध का जन्म होता है। आधुनिक युग के महत्त्वपूर्ण निबन्धकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ललित निबन्धों के माध्यम से सर्जनात्मक साहित्य की सरसता एवं सौंदर्य को अत्यन्त प्रभावशाली ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत है 'अशोक के फूल' से एक उदाहरण- ''कहते हैं, दुनियाँ बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना

ही याद रखती है जितने में उसका स्वार्थ सधता है बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक ने उसका स्वार्थ नहीं साधा। क्यों उसे वह याद रखती ? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।" व्यंग्यात्मकता, कोमलकान्त पदावली, माधुर्य गुणयुक्त भाषा तथा गद्यात्मक लालित्य जैसी विलक्षणता से युक्त होने के कारण, इन्हें ललित निबन्ध कहा जाता है। ललित निबन्धकारों में हजारी प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, सरदार पूर्णसिंह, सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', बनासीदास चतुर्वेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथराय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रामविलास शर्मा, अमृतराय नागर, गोपाल प्रसाद व्यास, हरिष्ंकर परसाई, शरद जोषी आदि हास्य-व्यंग्यकारों का भी ललित निबन्धों की विकासयात्रा में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। डा. नगेन्द्र ने ललित निबन्धों के विषय में लिखा है- "ललित निबंध का प्राणतत्त्व व्यक्तित्व का अभिव्यंजन ही है। रचना में व्यक्तित्व की खोज, आत्मानुभूति की विवृति, और वैयक्तिकता का रागमय संस्पर्ष पाठक और विवेचक, दोनों जरूरी समझने लगे है।"

ललित निबन्धों का पल्लवन भावात्मक निबन्धों से बताते हुए डा. हरिमोहन ने लिखा है- "ललित निबंध का पल्लवन भावात्मक निबंधों से हुआ है। भावात्मक निबंधों की ही भाँति भावात्मकता, कल्पना प्रणवता, सरसता, रोचकता, पाण्डित्य और व्यापक ज्ञानस्रोत- ललित निबंध के लिए भी अनिवार्य है। ललित निबंध 'व्यक्तिप्रधान' व्यक्तित्व प्रधान अथवा व्यक्तिगत आत्मपरक लघु गद्यखण्ड है, जिसमें काव्यात्मक भाषा का प्रयोग होता है।"

आइये, अब हम एक निबन्धों के प्रकार एवं उनकी पहचान दोहराएँ -

**अभ्यास प्रश्न**

**3. रिक्त स्थान की पूर्ति करें-**

1. .....................................आख्यात्मक अथवा कथात्मक निबन्ध भी कहा जाता है।
2. आत्मपरक निबन्धों में..............................दोनों प्रकार के निबन्धों की विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं।
3. ............................................... परात्मकता को अधिक महत्त्व दिया जाता है।
4. ................................................ लेखक के व्यक्तित्त्व की स्पष्ट छाप दिखाई देती है।
5. ललित निबंध का पल्लवन ........................................ निबन्धों से हुआ है।

**4. अपने शब्दों में लिखिये-**

1. 'निबन्ध' किस भाषा का पर्यायवाची शब्द हैं ?

2. व्यक्ति-प्रधान निबन्ध से आप क्या समझते हैं ?

3. भावात्मक और विचारात्मक निबन्ध में क्या अंतर है ?

4. वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्ध में क्या अंतर है ?

5. ललित निबन्ध की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ?

## 6.5 निबन्ध : तात्त्विक विवेचन

स्वछन्दता,आत्मनिष्ठता, वैचारिकता, भावात्मकता, तार्किकता, विषयनिष्ठता, शृंखलाबद्धता, व्यंग्यात्मकता, कलात्मकता, जीवन्तता तथा संक्षिप्तता निबन्ध के प्रमुख तत्त्व हैं।

**स्वच्छन्दता -** वैयक्तिक्ता के कारण निबन्ध लेखन में स्वच्छन्दता आना स्वाभाविक है; किन्तु स्वच्छन्दता का आशय विश्रृंखलता नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार - ‘‘निबन्ध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छन्द गति से इधर-उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता हुआ चलता है, यही उसकी अर्थ सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है।.....निबंध लेखक जिधर चलता है, उधर अपनी संपूर्ण मानसिकता सत्ता के साथ अर्थात् बुद्धि तथा भावात्मक हृदय दोनों लिए हुए। जो करुण प्रकृति के हैं उनका मन किसी बात को लेकर अर्थ-सम्बन्ध-सूत्र पकड़े हुए करूण स्थलों की ओर झुकता और गम्भीर वेदना का अनुभव करता चलता है। जो विनोदशील हैं उसकी दृष्टि उसी बात को लेकर उसके ऐसे पक्षों की ओर दौड़ती है, जिन्हें सामने पाकर कोई हँसे बिना नहीं रह सकता।’’

**आत्मनिष्ठता -** निबन्ध में लेखक अपने व्यक्तिगत विचारों एवं हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति करता है। यह सत्य है कि निबन्ध की यात्रा आत्मीयता से प्रारम्भ हुई; किन्तु उसकी विकास-यात्रा विषयवस्तु की प्रेरणा से वैचारिक धरातल का आश्रय लेकर चलती रही। गद्य की अन्य विधाओं में लेखक अपने व्यक्तित्त्व को छिपा सकता है, परन्तु निबन्ध में वह चाहकर भी ऐसा नहीं कर सकता; क्योंकि आत्मनिष्ठता निबन्ध का एक अनिवार्य तत्त्व है। यही कारण है कि निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्त्व इस प्रकार भासित होता है- जैसे निर्मल जलाशय में आकाश।

**वैचारिकता -** गद्य की अन्य विधाओं- कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, जीवनी आदि की अपेक्षा निबन्ध में बौद्धिकता की अधिक प्रधानता होती है। डॉ.शिव प्रसाद मिश्र लिखते हैं- ‘‘निबन्ध वही कहा जा सकता है जो विचारों को उत्तेजना दे।’’ यद्यपि व्यक्ति के अनुरूप निबन्धों में मनोविकारों का गुम्फन होता है किन्तु लेखक का ध्यान मात्र समरसता पर केन्द्रित नहीं होता। वह अपनी वैचारिक-शक्ति के माध्यम से, पाठक की ज्ञान पिपासा को भी जाग्रत करता है। निबन्ध लेखन के

लिए वैचारिक क्षमता का होना नितान्त आवश्यकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विचारात्मकता को निबन्ध का आवश्यक तत्त्व मानते थे, यही कारण है कि उन्होंने अधिकांश निबन्ध विश्लेषणात्मक शैली में लिखे है। उदाहरणार्थ उनके 'भय' निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं- "भय की इस वासना का परिहार क्रमश: होता चलता है। ज्यों-ज्यों वह नाना रूपों में अभ्यस्थ होता जाता है, त्यों-त्यों उसकी धड़क खुलती जाती है। इस प्रकार अपने ज्ञान बल, हृदय बल और शरीर बल की वृद्धि के साथ वह दुःख की छाया मानो हटाता चलता है। समस्त मनुष्य-जाति की सभ्यता के विकास का भी यही क्रम रहा है।"

**भावात्मकता -** निबन्ध का एक प्रमुख तत्त्व है आत्मीयता; अर्थात् लेखक का व्यक्तिगत व्यक्तित्त्व। निबन्ध लेखन के लिए बुद्धितत्त्व के साथ भावतत्त्व का होना नितान्त आवश्यक है, भावतत्त्व के अभाव में निबन्ध लेख बनकर रह जाता है। निबंध में विचार होते हैं, किन्तु वे मस्तिष्क के शुष्क चिन्तन पर ही आधारित नहीं होते, उनके पीछे हृदय की तरल रागात्मकता भी होती है। मनोवैज्ञानिकता तथा गीतात्मकता के कारण निबन्धों में जिस सजीवता एवं सरसता के दर्शन होते हैं, वह भावात्मकता का ही परिणाम है। निबन्ध के भावात्मकता के विषय में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त का कथन है- "निबंध में विचारों का प्रतिपादन करते हुए भी उसमें भावोत्तेजन की क्षमता होनी आवश्यक है। निबंध में भावोत्तेजना का यह गुण तभी आ सकता है, जब कि इनमें रचयिता के व्यक्तित्व का जीवित स्पर्श हो।"

**संक्षिप्तता -** आज के व्यस्तम जीवन में व्यक्ति के पास इतना समय भी नहीं है कि वह स्वयं को समझ सके। ऐसी स्थिति में विस्तृत निबन्धों को पढ़ने के लिए समय निकालना असंभव प्रतीत होता है। यही कारण है कि वर्तमान काल में संक्षिप्तता निबन्ध का आवश्यक गुण प्रतीत होता है। निबन्ध में वैचारिक गहनता के साथ, सरसता एवं सारगर्भितता भी होनी चाहिये, जिससे कि प्रतिपाद्य विषय को सहज ही पाठक तक पहुँचाया जा सके। संक्षिप्तता को निबन्ध का महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हुए बाबू गुलाबराय ने कहा है- "निबन्ध उस गद्य रचना को कहना चाहिये, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विषेष निजीपन, स्वछन्दता, सौष्ठव एवं सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।"

**तार्किकता -** निबन्ध में विषयवस्तु के माध्यम से लेखक अपना दृष्टिकोण प्रकट करता है, इसे प्रकट करते हुए वह जिस शृंखलाबद्धता का सहारा लेता है वही निबन्ध की तार्किकता है। तार्किकता द्वारा लेखक अपने मौलिक विचारों को ऐसे प्रस्तुत करता है कि उसके विचारों से पाठक अभिभूत हो उठे। तार्किकता के अभाव में विषयगाम्भीर्य समाप्त हो जाएगा, और निबन्ध अपरिपक्व रचना बनकर रह जाएगी। इसके अतिरिक्त अपनी बात को पुष्ट करने के लिए, मीमांसा तथा दार्शनिक विषयों को स्पष्ट करने के लिए भी तार्किकता की आवश्यक ता पड़ती है। अतः तार्किकता निबन्ध का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

**कलात्मकता -** कलात्मकता से तात्पर्य है - उसके प्रस्तुतिकरण से; प्रस्तुतिकरण, अर्थात् ऐसी भाषा एवं शैली का प्रयोग करना जो निबन्ध को सर्वग्राह्य बनाने के साथ, अपनी उत्कृष्टता, सरसता, प्रौढ़ता तथा लालित्य से पाठक को आदि से अन्त तक पढ़ने के लिए उसे विवश कर दे। उत्कृष्ट निबन्ध के लिए आवश्यक है कि उसकी भाषा-शैली अर्थात् उसका प्रस्तुतिकरण कलात्मक होना चाहिए, ताकि वह पाठक को अपने आकर्षणपाश में बाँधे रखे। कलात्मकता साधारण विषय को भी सुरूचिपूर्ण आकार प्रदान कर देती है। निबन्ध की श्रेष्ठता उसके अनुभूति पक्ष तथा अभिव्यक्ति पक्ष पर निर्भर करती है। अभिव्यक्ति पक्ष का संबंध रचनात्मक कला के सौंदर्य से है; और कलात्मक पक्ष के मुख्यतः चार अंग हैं - भाषा-शैली , अलंकार, ध्वनि, और औचित्य।

**तारतम्यता -** जब लेखक अपनी हृदयानुभूति को अथवा अपने विचारों को किसी एक विषय के माध्यम से शीर्षक, प्रस्तावना, विस्तार, तथा परिणाम के आधार पर विकसित करता है, तो उसमें आदि से अन्त तक तारतम्यता बनी रहती है। यदि निबन्ध में आरम्भ, मध्य और अन्त में संगति नहीं होगी तो वह मात्र प्रलाप बनकर रह जाएगा। निबन्ध का प्रारम्भ भूमिका द्वारा होता है; जिसमें लेखक विषय का संकेतात्मक परिचय देता है। निबन्ध के मध्य भाग में लेखक, विषय को अपने बौद्धिक विवेचन, भावनाओं, अनुभवों, व्यंग्यों तथा विवरण आदि के माध्यम से विस्तार देता है; तथा अन्ततः प्रभावोत्पादक भाषा-षैली के माध्यम से सम्पूर्ण विवेचन का निचोड़ प्रस्तुत करता है।

**भाषा -** सामान्यतः भाषा संप्रेषणीयता , अर्थात् अपनी बात को दूसरे तक पहुँचाने का सहज माध्यम है, किन्तु निबन्ध लेखन में भाषा का महत्त्व इससे कुछ अधिक है; क्योंकि इसमें निबंधकार के लिए भाषा, केवल अपने भावों एवं विचारों को पाठक तक पहुँचाने का साधन मात्र नहीं होती। इसमें लेखक विषय को प्रभावषाली बनाने के लिए शब्द-चयन, वाक्य-रचना तथा भाषा में नवीनता लाकर निबन्ध को निखारने का प्रयास भी करता है। यही कारण है कि निबन्ध में हमें, कहीं सरल शब्द और छोटे वाक्य दिखाई देते हैं; तो कहीं कठिन शब्दों तथा अनेक उपवाक्यों से मिलकर बने लम्बे वाक्यों का प्रयोग मिलता है। यह सत्य है कि निबन्ध की भाषा और शैली के माध्यम से ही हम, निबन्ध-लेखक के व्यक्तित्त्व से भी परिचित होते हैं; किन्तु निबन्ध की लोकप्रियता के लिए आवश्यक है कि उसकी भाषा ऐसी हो, जो विषयवस्तु को सहजग्राह्य बनाने में सफल हो सके।

**शैली -** प्रत्येक रचनाकार का व्यक्तित्त्व दूसरे से भिन्न होता है, यही कारण है कि एक लेखक की निबन्ध-शैली दूसरे से भिन्न होती है। इसके अतिरिक्त निबन्धकार अपने भावों एवं विचारों को जिस रूप में प्रस्तुत करता है, अभिव्यक्ति के उस तरीक़े को ही निबन्ध की शैली कहा जाता है। कुछ लोग अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए किसी लोकोक्ति-मुहावरे, दोहे-चौपाई, श्लोक, अथवा जीवन-अनुभवों के उदाहरणों का सहारा लेते हैं, तो कुछ सीधे-सपाट तरीक़े से अपनी बात कहते हैं; कुछ अपनी बात इतनी आत्मीयता से कहते हैं कि पाठक भी उस भाव-प्रवाह में बहता चला जाता है, और कुछ लेखक इतना गहन वैचारिक-विष्लेषण प्रस्तुत करते हैं कि हम उनके चिंतन-मंथन और

अंतर्दृष्टि का लोहा माने बिना नहीं रहते। निबन्ध बोधगम्य बन सके इसके लिए आवश्यक है कि निबन्धकार शब्द-चयन करते समय, तथा वाक्य-संरचना समय इस बात ध्यान रखे कि वे दुरूह व जटिल न हों; क्योंकि भाषा-शैली ही वह संजीवनी है जो निबन्ध को जीवन्तता प्रदान करती है।

**गद्यात्मकता -** उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त निबन्ध का सर्वाधिक प्रमुख तत्त्व है - गद्यात्मकता; किन्तु केवल गद्यात्मक शैली में लिखे जाने से ही कोई रचना निबन्ध नहीं कही जा सकती। यद्यपि निबन्धों में उदाहरण स्वरूप किसी व्यक्ति के जीवन का उल्लेख हो सकता है, किन्तु लेखक का उद्देश्य उस व्यक्ति का जीवनचरित्र प्रस्तुत करना नहीं होता, इसलिए यह जीवनी से भिन्न है; निबन्ध में किसी स्थान विशेष की यात्रा का ज़िक्र भी हो सकता है, किन्तु यात्रावृत्तान्त प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य नहीं होता; इसी तरह निबन्धों में कहानी की रंजकता, नाटक की रमणीयता, संस्मरण की मधुरता तथा रेखाचित्र की चित्रात्मकता हो सकती है; किन्तु लेखक का उद्देष्य न कथा कहना, और न नाटक, संस्मरण या रेखाचित्र आदि लिखना ही होता है।

निबन्ध के जनक मोंतेन एवं सभी पाश्चात्य समीक्षकों, तथा हिन्दी के ग्रंथकारों- हजारीप्रसाद द्विवेदी बाबू गुलाबराय, जयनाथ नलिन आदि ने निबन्ध में व्यक्तित्त्व की प्रधानता को स्वीकार किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबन्ध में आत्मनिष्ठता के साथ, विचार गाम्भीर्य और भाषा की सामासिकता को अधिक महत्त्व देते हैं। निबन्ध का उद्देश्य एक ओर मनोरंजन के साथ जनजागृति लाना या समसामयिक समस्याओं का उद्घाटन करना है, तो दूसरी और भाव एवं कल्पना का प्राधान्य होने के कारण कलात्मकता पाठक को आद्योपान्त पढ़ने के लिए विवश कर भी देती है। निबन्धकारों के एक वर्ग ने राचन्द्र शुक्ल की भाँति निबन्ध को गम्भीर विचार-प्रकाशक माना तो दूसरे वर्ग ने ‘विनोदी तत्वों’ को भी निबन्ध के लिए आवश्यक माना। बाबू गुलाबराय ने ‘काव्य के रूप’ में निबंध के अनेक तत्त्वों को समेटते हुए निबंध की एक सन्तुलित परिभाषा देते हुए लिखा है- “निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं जिनमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विषेष निजीपन, स्वच्छता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।”

डॉ. नलिन ने निबंध विषयक उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का निचोड़ प्रस्तुत करते हुए ‘हिन्दी निबन्धकार’ में लिखा है- “किसी विषय पर स्वाधीन चिन्तन और निष्छल अनुभूतियों का सरस , सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाषन ही निबन्ध है।”

**अभ्यास प्रश्न**

**4. नीचे लिखे कथनों में से सही और ग़लत को छाँटिये -**

(क) निबन्ध का जनक मांतेन को माना जाता है। ( सही/ग़लत)

(ख) एस्से और निबन्ध के अर्थ में अन्तर होता है। ( सही/ग़लत )

(ग) निबन्ध में व्यक्ति की आत्मकथा होती है। ( सही/ग़लत )

(घ) निबन्ध गद्य-पद्य दोनों शैलियों में लिखे जाते हैं। ( सही/ग़लत )

(ङ) आत्मनिष्ठता निबन्ध का अनिवार्य तत्त्व है।( सही/ग़लत )

6. निबन्ध शब्द का अर्थ एवं स्वरूप स्पष्ट कीजिये।

……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………

7. निबन्ध कितने प्रकार के होते हैं ?

……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………

8. निबन्ध के प्रमुख तत्त्व कौन-कौन से हैं ?

……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………

9. निबन्ध के तत्त्वों से आप क्या समझते हैं, तथा उनका क्या महत्व है ? (दस पंक्तियों में उत्तर दीजिये)

……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………

........................................................................................................................
........................................................................................................................
........................................................................................................................
........................................................................................................................
..........................................................................

## 6.6 सारांश

इस इकाई को पढ़कर आप जान चुके हैं कि निबन्ध का अर्थ क्या है . साथ ही साथ आप ये भी जान चुके होंगें कि निबंध का तात्पर्य और उसकी प्रमुख परिभाषाएं क्या हैं । इसके साथ ही आपने यह भी जाना कि निबन्ध कितने प्रकार के हो सकते हैं, निबंध का स्वरूप क्या है तथा निबन्ध के तत्त्व कौन-कौन से हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हिन्दी साहित्य के अंतर्गत निबंध विधा का सम्पूर्ण परिचय भी प्राप्त कर चुके हैं

## 6.7 शब्दावली

1. आत्मनिष्ठ - अपने में लगा रहने वाला।
2. बोधगम्यता - समझ में अपने लायक या जिसे आसानी से समझा जा सके।
3. आकर्षणपाश - खिंचाव से बाँधकर रखना,
4. विवरणात्मक - व्याख्या संबंधी
5. वैयक्तिक - व्यक्तिगत अर्थात जिसमें अपना सोच-विचार चिंतन दिखाई दे।
6. विशृंखलता - बिखरा हुआ
7. विश्लेषणात्मकता- छान-बीन संबंधी
8. लालित्य - रमणीयता
9. आद्योपान्त - प्रारम्भ से अन्त तक
10. दुरूह - कठिन
11. आत्माभिव्यक्ति - अपने मनोभावों को प्रकट करना
12. जटिल - उलझा हुआ

13. सहजग्राह्य - आसानी से समझ आने वाला

14. शृखंलाबद्धता - क्रम युक्त

15. प्रभावोत्पादक - प्रभाव डालने वाला

16. तारतम्यता - क्रमबद्धता

17. तार्किकता - सुविचारित बात, चमत्कारपूर्ण कथन

18. तात्त्विक विवेचन - परीक्षण के आधार पर किसी तत्त्व के विषय में विस्तार से बताना

## 6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची


1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त, गणपतिचन्द्र गुप्त
3. साहित्य सहचर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. साहित्य शास्त्र, डॉ. रामशरण दास गुप्ता, प्रो. राजकुमार शर्मा
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास,बच्चन सिंह
6. हिन्दी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा


## 6.9 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. **किसका कथन है:-**

जॉनसन

रामचन्द्र शुक्ल

जयनाथ 'नलिन'

2. **आइये दोहराएँ -**

अ. उन्नीसवीं शताब्दी से।

आ. चिंतन, विचारगाम्भीर्य एवं बोधगम्यता।

इ. मौलिक रचनाओं को ग्रथित करने या बाँधने के लिए।

ई. लैटिन के एग्जाजियर से।

उ. शुक्ल युग से।

3. **रिक्त स्थानों की पूर्ति:-**

क. विवरणात्मक

ख. भावात्मक और विचारात्मक

ग. विषय-प्रधान

घ. व्यक्ति-प्रधान

ङ. भावात्मक

**4. अपने शब्दों में लिखिये-**

(क) अंग्रेजी के 'एस्से'।

(ख) जिन निबन्धों में व्यक्ति की अर्थात् आत्मतत्त्व की प्रधानता होती है।

(ग) भावात्मक निबन्धों में भावों की प्रधानता होती है। वाक्य छोटे, तथा भाषा काव्यात्मक होती हैं। विचारात्मक निबन्धों में चिंतन की प्रधानता होती है, तथा भाव विचारों के अनुवर्ती बनकर रहते हैं।

(घ) वर्णनात्मक निबन्धों में वर्ण्यविषय का रूप स्थिर, तथा विवर्णनात्मक निबन्धों में गतिशील दिखाई जाता है। वर्णनात्मक निबन्धों में विषयवस्तु का वर्णन विस्तारपूर्वक किया जाता है, और विवर्णनात्मक निबन्धों में उसकी व्याख्या की जाती है।

(ङ) ललित निबन्धों में लेखक अपने भावों एवं विचारों को निश्छलता एवं सरसतापूर्वक पाठक के समक्ष रख देता है। आत्मीयता के कारण इसकी भाषा में काव्यात्मक-सौंदर्य दिखाई देता है।

**5. सही-ग़लत:-**

(क) सही, (ख) सही, (ग) ग़लत, (घ) ग़लत, (ङ) सही

6. निबन्ध का शाब्दिक अर्थ है- भलीभाँति बाँधना। निबन्ध एक ऐसी गद्य रचना है- जिसमें निबन्धकार किसी साधारण अथवा विशेष विषय पर अपने मौलिक चिंतन तथा गम्भीर विचारों को सोद्द्श्य, कलात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत करता है।

7. निबन्ध मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं- 1. व्यक्ति-प्रधान, और 2. विषय-प्रधान।

## 6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निबन्ध का अर्थ बताते हुए, उसका तात्विक विवेचन कीजिये ?
2. हिन्दी साहित्य के अंतर्गत निबंध विधा का संक्षिप्त विवेचन कीजिए तथा निबंध का महत्त्व भी स्पष्ट कीजिए ?

# इकाई 7 अन्य गद्य विधाओं का स्वरूप एवं तात्विक विवेचन - भाग 1

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 गद्य साहित्यः अर्थ एवं उसके विविध रूप
7.3.1 साहित्य का अर्थ एवं स्वरूप
7.3.2 परिभाषाएँ
7.4 विविध विधाओं का विश्लेषण
7.4.1 आत्मकथा
7.4.2 जीवनी
7.4.3 आलोचना
7.4.4 व्यंग्य
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 7.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने जाना कि 'निबन्ध' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य क्या है? उसका स्वरूप कैसा होता है? निबन्ध के तत्त्व कौन-कौन से हैं, उनकी विवेचना कैसे की जाती है; तथा निबन्ध लेखन, साहित्य की अन्य विधाओं से किस तरह भिन्न है।

आप जानते ही होंगे कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है; लेकिन क्यों, क्या कभी सोचा है? आइये हम आपको बताते हैं- मनुष्य स्वभावतः जिज्ञासु प्राणी है; यही कारण है कि पाषाण युग से विकास करते-करते आज वह उद्योग के क्षेत्र में भी निरन्तर विकास करता चला जा रहा है। विकास न कोई चमत्कार है, और न अनायास होने वाली कोई घटना; बल्कि आज वह एक

प्रक्रिया है, जो मानव के बौद्धिक विकास का परिणाम है। यही कारण है कि धीरे-धीरे लेखक और पाठक दोनों की मनोवृत्तियाँ परिवर्तित हुई; और नवीन प्रयोगों के प्रति उनकी अभिरुचि जाग्रत होने लगी। बौद्धिक और सामाजिक परिवर्तन के साथ ही, साहित्य का पारम्परिक स्वरूप भी परिवर्तित होता चला गया। यही कारण था कि कथासाहित्य के गर्भ में छिपे स्मारक साहित्य के बीज अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व तलाशने लगे; परिणामस्वरूप स्मारक साहित्य का जन्म हुआ और उसकी विविध शाखाएँ- संस्मरण, आत्मकथा, यात्रावृत्तान्त, व्यंग्य, रेखाचित्र आदि विकसित होकर फलने-फूलने लगीं।

इस खण्ड की अगली इकाई में आप, हिन्दी गद्यसाहित्य की अन्य विधाओं- डायरी, पत्र, यात्रावृत्तान्त, संस्मरण तथा रेखाचित्र का स्वरूप एवं इनके तात्त्विक विवेचन का अध्ययन करेंगे।

## 7.2 उद्देश्य

निबन्ध एवं अन्य गद्य विधाएँ, यह स्नातक प्रथम वर्ष, गद्य साहित्य का द्वितीय प्रश्न पत्र है। इसमें हम आपको गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के स्वरूप, तथा उनके तात्त्विक विवेचन से परिचित कराएँगे। इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे :-

- गद्य साहित्य की प्रमुख विधाएँ कौन-कौन सी हैं।
- गद्य की अन्य विधाओं से क्या तात्पर्य है, तथा उनके नाम क्या हैं।
- आत्मकथा किसे कहते है।
- आत्मकथा का स्वरूप और उसका तात्त्विक विवेचन।
- जीवनी का अर्थ, स्वरूप और उसका तात्त्विक विवेचन।
- जीवनी और आत्मकथा में अन्तर; (हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा, तथा शरतचन्द्र की जीवनी के अंश के माध्यम से) ।
- आलोचना का अर्थ; प्रमुख आलोचक और उनकी रचनाएँ।
- आलोचना का स्वरूप, और उसका तात्त्विक विवेचन।
- व्यंग्य का अर्थ; प्रमुख व्यंग्यकार और उनकी रचनाएँ।

अब तक आप हिन्दी गद्य साहित्य की विशिष्ट विधा निबन्ध के विशय में भलीभाँति जान गए होंगे। गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के विशय में जानने से पहले आइये, यह भी समझ लें कि साहित्य

शब्द का क्या अर्थ है, साहित्य हमें किस-किस रूप में उपलब्ध होता है, तथा गद्यात्मक साहित्य कितने प्रकार का होता है।

## 7.3 गद्य साहित्यः अर्थ एवं उसके विविध रुप

### 7.3.1 साहित्य का अर्थ एवं स्वरूप

सामान्यतः किसी भी विशय की जानकारी प्रदान करने वाली लिखित सामग्री को 'लिट्रेचर' कहा जाता है; और 'साहित्य' शब्द का प्रयोग हम अंग्रेज़ी के 'लिट्रेचर' शब्द के रूप में करते हैं। ऐसे में अक़्सर हमारे मस्तिष्क में यह प्रश्न आता है कि आखिर साहित्य है क्या?

तो आइये, हम आपको बताते हैं- ऐसा लेखन जो जनहित के उद्देश्य से लिखा गया हो, जिसमें स्थायित्त्व हो, अर्थात् कृति का महत्त्व स्थायी बना रहे; जिसमें रचनाकार के व्यक्तित्त्व का प्रतिफलन हो अर्थात् उसकी विचारधारा, अनुभूति आदि का प्रकाशन हो, और जिसमें रागात्मकता हो अर्थात् लेखक अपने भाव, कल्पना, बुद्धि तथा रचनात्मक कौशल से पाठक के हृदय को आन्दोलित एवं आनन्दित करने में सफल हो जाए; उसे साहित्य कहा जाता है। साहित्य के विशय में अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रकट किए हैं, उनमें से प्रमुख लोगों की साहित्य संबंधी कथन इस प्रकार हैं-

संस्कृत साहित्य में 'साहित्य' की व्युत्पत्ति संबंधी दो मत मिलते हैं, पहला- 'हितेन सहितं साहित्यमं' अर्थात् जिसमें हित भाव निहित हो; और दूसरा- 'सहितस्य भावं इति साहित्यम्' अर्थात् जिसमें सहित का भाव निहित हो। हिन्दी-साहित्य-कोश' में 'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है- 'साहित्य' शब्द 'सहित' शब्द में यत् प्रत्यय के योग से बना है; जिसका अर्थ होता है- शब्द और अर्थ का सहभाव अर्थात् साथ होना।

### 7.3.2 परिभाषाएँ

'साहित्य-विज्ञान' में साहित्य कि सामान्य परिभाषा इस प्रकार निर्धारित की गयी है- "साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौन्दर्य या आकर्षण से युक्त रचना है, जिसके अर्थ-बोध से सामान्य पाठक को आनन्द की अनुभूति होती है।"

अरस्तु का कथन है- "शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत अनुकृति ही काव्य या साहित्य है।"

शैली के विचार से- "काव्य सर्वाधिक सुखी एवं हृदयों के श्रेष्ठतम क्षणों का लेखा-जोखा है।"

सिडनी का मत है- "काव्य या साहित्य वह अनुकरणात्मक कला है, जिसका लक्ष्य शिक्षा एवं आनन्द प्रदान करना है।"

कालरिज के अनुसार- "काव्य, रचना का वह विशिष्ट प्रकार है जिसका तात्कालिक लक्ष्य प्रसन्नता प्रदान करना होता है।"

साहित्य लेखन की मुख्यतः दो विधाएँ प्रचलन में हैं, पहली- पद्य; इसके अन्तर्गत- कविता, गीत, मुक्तक, खण्डकाव्य और महाकाव्य आते हैं; और दूसरी- गद्य, इसके अन्तर्गत- कहानी, उपन्यास, निबन्ध तथा स्मारक साहित्य आते हैं। इनके अतिरिक्त एक और विधा भी है- जिसे मिश्रित साहित्य कहा जाता है अर्थात् ऐसा साहित्य जिसमें पद्य एवं गद्य दोनों का प्रयोग मिलता है, जैसे- नाटक, और चम्पू (संस्कृत साहित्य की विधा)।

हिन्दी में, गद्यात्मक साहित्य प्रमुखतः तीन रूपों का मिलता है- आख्यानात्मक, निबन्धात्मक और विश्लेशणात्मक। उपन्यास और कहानी आख्यात्मक साहित्य के अन्तर्गत आते हैं; निबन्धात्मक साहित्य के अन्तर्गत- भावात्मक, विचारात्मक, वैयक्तिक तथा वर्णनात्मक निबन्ध आदि, तथा यात्रा साहित्य, डायरी, पत्राचार, रिपोतार्ज, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, शब्दचित्र, एकांकी आदि आते हैं। विश्लेषणात्मक साहित्य के अन्तर्गत दो प्रकार का साहित्य आता है- पहला- समालोचनात्मक अर्थात् आलोचना साहित्य; और दूसरा- इनके अतिरिक्त गद्य में जो भी शेश रह जाता है, वह सब इसी के अन्तर्गत आता है।

**अभ्यास प्रश्न 1**

क) रिक्त स्थानों की पूर्तिः-

1. हिन्दी में, गद्यात्मक साहित्य प्रमुखतः ............ रूपों का मिलता है।

2. उपन्यास और कहानी ..........................साहित्य के अन्तर्गत आते हैं।

3. समालोचनात्मक साहित्य..........................साहित्य के अन्तर्गत आता है।

4. संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा........................साहित्य के अन्तर्गत आते हैं।

5. कहानी, उपन्यास, निबन्ध तथा स्मारक साहित्य................. के अन्तर्गत आते हैं।

6. जिस साहित्य में ............... दोनों का प्रयोग मिलता है उसे.......................कहते हैं।

7. ................................संस्कृत साहित्य की विधा है।

## 7.4 विविध विधाओं का विश्लेशण

### 7.4.1 आत्मकथा

जब किसी रचना में साहित्यकार द्वारा अपने व्यक्तित्त्व का विवेचन-विश्लेशण किया जाता है, तब उसे आत्मकथा कहा जाता है। आत्मकथा में साहित्यकार अपने सम्पूर्ण जीवन की कथा को साहित्यक रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वह संस्कृति, इतिहास और साहित्य का अनूठा संगम बन जाती है। हिन्दी साहित्य-कोश में आत्मकथा को परिभाषित करते हुए लिखा है- "आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से सम्बद्ध वर्णन हैं। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्त्व दिखलाया जाना सम्भव है।"

आलोचक शिप्ले ने आत्म-कथा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है- "यद्यपि आत्म-कथा और संस्मरण देखने में समान साहित्य स्वरूप मालूम पड़ते हैं, किन्तु दोनों में अन्तर है। यह अन्तर बल सम्बन्धी है। एक में चरित्र में बल दिया जाता है और दूसरे में बाह्य घटनाओं और वस्तु आदि वर्णनों पर ही लेखक की दृष्टि रहती है। संस्मरण में लेखक उन अपने से भिन्न व्यक्तियों, वस्तुओं, क्रियाकलापों आदि के विशय में संस्मरणात्मक चित्रण करता है, जिनका उसे अपने जीवन में समय-समय पर साक्षात्कार हो जाता है।.....आत्म-कथा विशाल जीवन सामग्री की पृष्ठभूमि में से कुछ महत्वपूर्ण बातों को लेकर उनको व्यवस्थित ढंग से पाठकों के समक्ष रखता है या फिर अपनी अन्र्तदृष्टि से उनको संस्मरण रूप में प्रस्तुत करता है।"

हिन्दी साहित्य में 'आत्मकथा' लेखन की आरम्भ बनारसीदास जैन की 1641 में प्रकाशित पद्यात्मक रचना 'अर्द्धकथानक' से होता है; किन्तु गद्यात्मक रूप में इसकी प्रतिष्ठा आधुनिक युग में हुई। 1910 में सत्यानन्द अग्निहोत्री द्वारा रचित 'मुझमें देव जीवन का विकास', तथा 1917 में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित 'जीवन-चरित्र' इस विधा की प्रारम्भिक कृतियाँ हैं। आत्मकथा लेखन में रचनाकार पाठकों की रोचकता को ध्यान में रखते हुए, अपने जीवन की घटनाओं के साथ अपने मनोभावों, विचारों, चिंतन-मंथन, दर्शनादि को भी सम्मिलित कर देता है।

**अभ्यास प्रश्न 2**

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति :-

1. ..................में साहित्यकार अपने सम्पूर्ण जीवन की .............. साहित्यिक रूप में...............करता है।

2. आत्मकथाकार दुनिया के ....................के साथ अपना एक रूपाकार अनुभव करता है।

3. सत्यानन्द अग्निहोत्री द्वारा रचित ..........................सन्.................प्रकाशित हुई।

4. ...........................और.......................... आत्मकथा की प्रारम्भिक कृतियाँ हैं।

5. ...........................की 1641 में प्रकाशित पद्यात्मक रचना का नाम........................... था,जिसे हिन्दी साहित्य की................. प्रथम.....................माना जाता था।

आत्मकथाकार दुनिया के साधारणजनों के साथ अपना एक रूपाकार अनुभव करता है, और वास्तव में इसी भावना से युक्त होकर ही आत्मकथा लेखन में सफलता पाई जा सकती है। हरिवंशराय बच्चन ने अपने इसी मनोभाव को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है- ‘‘इतने बड़े संसार में अपने को अकेला अनुभव करने से बड़ा बंधन नहीं। इतने बड़े संसार में अपने को समझने से बढ़कर मुक्ति नहीं।’’ बच्चन जी में लेखन प्रतिभा कब और कैसे जाग्रत हुई, इसके विशय में उन्होंने अपनी आत्मकथा ‘क्या भूलूँ क्या याद करूँ’ में बिना किसी लाग-लपेट के स्पष्ट रूप से लिखा है-

‘‘स्कूल में एक हिन्दी-समिति थी। उसमें समय-समय पर हिन्दी में व्याख्यान होते, कविताएँ, कहानियाँ पढ़ी जातीं। निबन्ध पढ़े जाते। ऊँचे दर्जे के हिन्दी-प्रेमी विद्यार्थियों में उस समय ठाकुर यादवेन्द्र सिंह थे- रीवा के; बाद को उनकी कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हुए; पहले का नाम ‘हार’ था, जिससे मैंने अपने प्रथम काव्य-संग्रह ‘तेरा हार’ के नाम के लिए प्रेरणा ली थी; उनके दूसरे संग्रह की भूमिका मैंने लिखी थी, नाम इस समय ध्यान से उतर गया है । अपने जीवन के एक कटु प्रसंग पर उन्होंने दो भागों में ‘उषा बनाम प्रकाश’ नाम की एक पुस्तक छपाई थी, उसके कवर पृष्ठ पर मेरी ये पंक्तियाँ दी थी-

‘मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता,
शत्रु मेरा बन गया है छल-रहित व्यवहार मेरा।’-

ठाकुर विक्रमादित्य सिंह थे, जो छायावादी शैली में कविता लिखते थे, नाटक भी; उनके लिखे कई नाटक कायस्थ पाठशाला में अभिनीत हुए थे। उनके -‘ध्रुव’ नाटक में भगवान के स्वर में मैं ही पर्दे के पीछे से बोलता था, क्योंकि मेरा उच्चारण शुद्ध समझा जाता था; भगवान चतुर्भुजी रूप में मंच पर नहीं प्रकट हुए थे। भगवान के मंच पर आने के स्थान पर केवल उनकी वाणी सुनाई देना अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुआ। उनके सुदामा नाटक के अभिनीत होने की भी मुझे याद है। खेद है कि विक्रमादित्य सिंह का लिखा कुछ भी प्रकाशित न हो सका , नहीं तो उसकी कविता और नाटकों का निश्चय ऐतिहासिक महत्व होता। मैंने अपनी हिन्दी की पहली कविता उन्हीं से शुद्ध कराई थी; उन्हीं

से मैंने मात्रा ज्ञान पाया था- और थे श्री आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव जिनकी कविताओं का एक छोटा सा संग्रह 'झाँकी' या 'अछूत' के नाम से निकाला था, बाद को वे कायस्थ पाठशाला में अध्यापक हो गये थे। समिति की ओर से एक हस्तलिखित हिन्दी पत्रिका निकलती थी जिसका नाम 'आदर्श' था। मेरी लिखावट बड़ी साफ़-सुथरी थी-अक्षर मोती जैसे चुने। विश्राम तिवारी ने सिखाया था, 'घन अक्षर बिड़र पाँती; यहै आय लिखबे की भाँति'; मैंने भी शब्दों को बिड़र लिखने की रीति चलाई थी। 'आदर्श' में आए लेखों को सुन्दर लिपि में एकरूपता देने के लिए मुझ से समान आकार-प्रकार के कागजों पर नकल कराया जाता था। यह सब मेरे मौलिक लेखन के लिए अनजान तैयारी थी, आज मैं निःसन्देह कह सकता हूँ। मैंने कहीं पड़ा था कि एक यूनानी इतिहासकार ने अपनी शैली सुधारने के लिए अपने एक पूर्वज इतिहासकार का पूरा ग्रन्थ नकल कर डाला था। नकल अगर नकल के साथ की जाए तो नकल करना मौलिक लेखक की विचार-प्रक्रिया से होकर गुज़रना है। इसके लाभों का सहज अनुमान नहीं किया जा सकता।

कायस्थ पाठशाला में ही मैंने अपनी पूरी हिन्दी कविता लिखी, किसी अध्यापक ने विदाभिनन्दन पर, जब मैं सातवीं में था। थोड़ी बहुत तुकबंदी मैंने ऊँचामण्डी स्कूल में ही शुरू कर दी थी। विश्राम तिवारी जब निबंध लिखते तब कहते, अन्त में कोई दोहा लिख देना चाहिए। विशय से सम्बन्ध दोहा याद न होने पर मैं स्वयं कोई रचकर लगा देता था। इन्हीं दोहो में मेरे काव्य का उद्गम हुआ। नवीं - दशवीं कक्षा में तो मैंने कविताओं से एक कापी भर डाली; 'भारत-भारती से' गुप्त जी की पद्यावली, 'सरस्वती' के पृष्ठों से पन्त जी की कविता और 'मतवाला' के अंकों से निराला जी के मुक्त छन्द से मेरा परिचय हो चुका था। पर मेरी वे कविताएँ इतनी निजी थीं कि जब मेरे एक साथी ने चोरी से उसे देख लिया तो मैंने गुस्से में पूरी कापी के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दी। मेरे घर से गिरधारी के खेत तक कापी के टुकड़े फैल गये थे, इसका चित्र मेरी आँखों के सामने अब भी ज्यों-का-त्यों है। कविताएँ मैने आगे भी बिल्कुल अपनी और निजी बनाकर रखी, और मेरे कई साथी उनके साथ ताक-झाँक करने का प्रयत्न करते रहे।" -

हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का अंश

**आत्मकथा के प्रमुख तत्त्व** - प्रामाणिकता, सत्यता, संयम, तटस्थता, औचित्य, भाषा की सरलता

**अभ्यास प्रश्न 3**

क) यह कथन किसका है :-

1. "इतने बड़े संसार में अपने को अकेला अनुभव करने से बड़ा बंधन नहीं। इतने बड़े संसार में अपने को समझने से बढ़कर मुक्ति नहीं।"

2. "शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत अनुकृति ही काव्य या साहित्य है।"

3. मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता,
   शत्रु मेरा बन गया है छल-रहित व्यवहार मेरा।

4. "काव्य सर्वाधिक सुखी एवं हृदयों के श्रेष्ठतम क्षणों का लेखा-जोखा है।"

### 7.4.2 जीवनी

'जीवनी' शब्द अंग्रजी के 'बायोग्राफ़ी' या 'लाइफ़' का पर्याय है। हिन्दी में जीवनी के लिए 'जीवन चरित' या 'जीवन चरित्र' शब्द प्रचलित है। किसी विशय का कलात्मक तथा उद्देश्यपूर्ण वर्णन ही साहित्य है; इसलिये जब कोई साहित्यकार किसी व्यक्ति की जीवनी लिखता है, तो यह उस पर निर्भर करता है कि वह अपने जीवन परित नायक के सम्पूर्ण जीवन को ले अथवा उसके द्वारा किए गए विशिष्ट कार्यों को अपना वर्ण्यविशय चुने। सामान्यतः जीवनी में हमें, नायक द्वारा सम्पूर्ण जीवनकाल में किए गए कार्यों का वर्णन कलात्मक रूप में मिलता है। जीवनी साहित्य द्वारा हम व्यक्ति विशेश के व्यक्तित्त्व से सहज ही परिचित हो जाते हैं।

**परिभाषाएँ :-**

**शिप्ले** ने जीवन की परिभाषा बहुत कुछ इस प्रकार से दी है -"जीवनी किसी व्यक्ति विशेश की जीवन धटनाओं का विवरण है।अपने आदर्श रूप में वह प्रयत्नपूर्वक लिखा गया इतिहास है, जिसमें व्यक्ति-विशेश के सम्पूर्ण जीवन या उसके किसी अंश से सम्बन्धित बातों का विवरण मिलता है। यह आवश्यकताएँ उसे उक साहित्य विधा का रूप प्रदान करती है।"

**जॉनसन** ने जीवनी की परिभाषा देते हुए लिखा है कि- "जीवनीकार का लक्ष्य जीवनी की उन धटनाओं और क्रियाकलापों का रंजक वर्णन करना होता है जो व्यक्ति विशेश के बड़ी महानता से लेकर छोटी से छोटी घरेलु बातों तक से सम्बन्धित होती है।"

जीवनी की सरलतम परिभाषा "जीवनी का वर्णन" है। **इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिया** में जीवनी को "जीवन के क्रियाकलापों का उद्देश्यपूर्ण कलात्मक चित्रण तथा एक वैयक्तिक जीवन को साकार करना माना गया है।"

**मार्क ही. चट** ने लिखा है -"किसी खेल का सच्चा आनन्द उसके नियमों में बँधकर खेलने में ही है, उसी प्रकार जीवनी लेखन को भी सदा सत्य कहने का प्रयास करना चाहिए"

**डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत** जीवनी विधा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि- "जीवनी कथा वह साहित्य विधा है- जिसमें भावुक कलाकार किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन या उसके जीवन के किसी भाग का वर्णन परम सुपरिचित ढंग से इस प्रकार व्यक्त करता है कि उस व्यक्ति की सच्ची जीवनी गाथा के साथ-साथ कलाकार का हृदय भी मुखरित हो उठता है। ऐतिहासिक तथ्य लेखक की वैयक्तिक श्रद्धा या सहानुभूति से अनुप्राणित हो जाते है।"

**जीवनी की विशेषताएं :-**

1. उसमें चरित नायक के जीवन-तथ्यों को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

2. जीवनी में नायक की असफलताओं, विसंगतियों तथा उसके अवगुणों भी उजागर किया जाता है।

3. जीवनी में अनावश्यक विस्तार न होते हुए भी, नायक के जीवन का कोई भी महत्त्वपूर्ण पक्ष अछूता नहीं रहता।

4. इसमें लेखक का जीवन, और व्यक्तित्त्व पृथक तथा गौण रहता है।

5. नायक के जीवन की सम्पूर्ण घटनाओं की सूत्रबद्धता के कारण, इसमें स्वतः ही क्रमबद्धता आ जाती है।

6. जीवनी में तथ्यों के अन्वेशण तथा उनकी प्रस्तुति पर विशेश ध्यान दिया जाता है।

7. जीवनी, अधिकांशत: महान् अथवा प्रसिद्ध व्यक्तियों की ही लिखी जाती हैं।

8. इसमें तथ्यात्मकता की प्रधानता तथा इतिहास के प्रति आग्रह होता है।

9. जीवन संबंधी तथ्यों के प्रति, सम्यक् रूप में वैज्ञानिक विश्लेशण प्रस्तुत किया जाता है।

10. इसमें कल्पना का आश्रय, केवल टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने तथा रोचकता लाने के लिये ही किया जाता है।

11. इसमें लेखक की तार्किकता अथवा बौद्धिक ईमानदारी के दर्शन होते हैं।

**जीवनी का अंश:- (महात्मा गाँधी की प्रिय शिष्या - सरला बहन)**

सरला बहन का जन्म पाँच अप्रैल उन्नीस सौ एक (5.4.1901) को प्रातःकाल ‘गुडफ्राइडे’ के दिन, लन्दन के एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ। उनका नाम ‘हैरी कैथरीन हाइलामैन’ रखा गया, किन्तु माता-पिता प्यार से उन्हें ‘केटी’ कहा करते थे। उनकी माताजी अंग्रेज़ थीं, तथा पिताजी का जन्म स्विटज़रलैंड में हुआ था। उनकी दादी वुर्टनबर्ग के ‘कॉलेबन’ की थीं, तथा दादा जी फ्राँस के निवासी थे। कालान्तर में वे सपरिवार इग्लैंड आकर रहने लगे। परिवार में अनेक भाषाएँ बोली जाती थीं, अतः कैथरीन को विविध भाषाओं का ज्ञान होना स्वाभाविक ही था।

कैथरीन की माताजी अत्यन्त कर्मठ एवं स्नेहिल महिला थीं, तथा व्यवसाय से वे एक शिक्षिका थीं। उनके पिता स्वर्णकार थे। उनका एक भाई था, जिससे वह अगाध स्नेह किया करती थीं। जब वह मात्र सात वर्ष की थीं, तब दुर्भाग्यवश कैंसर ने उनकी माँ को अपनी चपेट में ले लिया। इस तरह अल्पायु

में ही उनके जीवन से माँ का स्नेहाकाश छिन गया। माँ की मृत्यु से पूर्व उनके घर का वातावरण अत्यन्त अनुषासित हुआ करता था। जब भी वह अपनी माँ के विशय में बातें किया करती थीं, तो बरबस ही उनकी आँखें छलक जाया करती थीं। एक बार जब वह अस्वस्थ थीं, तब अपनी माँ के साथ व्यतीत किए हुए स्नेहिल क्षणों को याद करते हुए उन्होंने बताया- ‘‘जब मैं लगभग पाँच वर्ष की थी, एक बार मैं बहुत बीमार हुई। तब माँ रात-दिन मेरे सिरहाने पर बैठी, स्नेह से मेरे सिर पर हाथ फेरती रहती थी।’’

उनके पिता एक जुझारू, परिश्रमी एवं कलात्मक अभिरुचि के व्यक्ति थे। यद्यपि व्यवसाय से वह सुनार थे, किन्तु आजीविका जुटाने के प्रति वे उदासीन रहे। उन्हें बाग़वानी करना रुचिकर लगता था। काष्ठकला में भी उनकी अभिरुचि थी, अतः उनके पास बढ़ईगिरी के औज़ार भी थे। अतिरिक्त समय में वह अपने घर की टूट-फूट स्वयं ही ठीक कर लिया करते थे। सरला बहन कहा करती थीं- ‘‘माँ की मृत्यु के पश्चात पिताजी अपनी आजीविका कमाने के प्रति कुछ लापरवाह हो गए थे। अतः दादी को उसकी पूर्ति अपनी जीवनभर कमाई, जमा पूंजी से करनी पड़ती थी। उन्होंने हमारा पालन-पोशण बहुत स्नेह से किया। वह बहुत बूढ़ी थीं, किन्तु उनकी आत्मशक्ति प्रबल थी। हम दोनों भाई-बहिन एक ही कक्षा में पढ़ा करते थे, और दोनों ही पढ़ने में बहुत तेज़ थे। यही कारण था कि हमें हाई स्कूल में वजीफ़ा भी मिलने लगा था, जिससे हमारी पढ़ाई-लिखाई सुचारु रूप से चलने लगी। परिवार के प्रति पिताजी के उपेक्षापूर्ण एवं उदासीन व्यवहार से मुझे बहुत खिन्नता होती थी। यही कारण था कि मैंनें अपने पैरों पर खड़े होने का निश्चय किया।’’

**अभ्यास प्रश्न 4**

1. साहित्य किसे कहते हैं?
2. संस्कृत साहित्यविदों के मतानुसार साहित्य क्या है?
3. साहित्य-लेखन की कौन-कौन सी विधाएँ प्रचलित हैं?
4. गद्यात्मक साहित्य प्रमुखतः किन रूपों का मिलता है?
5. ‘हिन्दी-साहित्य-कोश’ में ‘साहित्य’ शब्द की व्याख्या करते हुए क्या कहा गया है?

### 7.4.3 आलोचना

आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की ‘लुच्’ धातु से हुई है। ‘लुच्’ का अर्थ है- ‘देखना’; अतः आलोचना का अर्थ हुआ- देखना; अर्थात् किसी कृति की सम्यक् व्याख्या तथा उसका मूल्यांकन

आदि करना ही आलोचना है। डॉ. श्यामसुन्दरदास ने 'आलोचना' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है - "साहित्य-क्षेत्र ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है।"

आलोचना के उद्देश्य के विशय में बाबू गुलाबराय का कथन है कि- "आलोचना का मूल उद्देश्य कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद करके पाठकों को इस प्रकार के आस्वादन में सहायता देना, तथा उसकी रुचि को परिमार्जित करके साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।"

आलोचना के प्रकार - साहित्यिक आलोचना और वैज्ञानिक आलोचना

द्विवेदी-युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके समकालीन समीक्षकों ने समालोचना ग्रंथों की रचना आरम्भ कर दी थी। छायावाद युग के समालोचकों, विशेशतः आचार्य रामचन्द शुक्ल ने उनके द्वारा आरम्भ किए गए आलोचना साहित्य को सम्यक् रूप प्रदान किया। छायावाद के पक्ष-विपक्ष में पुस्तकों और निबन्धों के रूप में आलोचना का एक ऐसा रूप विकसित हुआ, जो भविष्य में लिखे जाने वाले आलोचना साहित्य की पूर्वपीठिका भी बना।

हिन्दी की सैद्धान्तिक आलोचना का सही और स्तरीय रूप हमें 1920 में प्रकाशित बाबू गुलाबराय के 'नवरस'; श्यामसुन्दरदास के 'साहित्यालोचन'; विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के 'वाङ्मय विमर्श' और रामचन्द्र शुक्ल के 'काव्य में रहस्यवाद' आदि में दिखाई देता है। इन सभी आलोचकों द्वारा भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का मंथन करके, काव्यशास्त्र के विविध अवयवों का संतुलित रूप प्रस्तुत करने के कारण ही इन सभी को समन्वयवादी समालोचक माना जाता है। सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में रामचन्द्र शुक्ल का नाम अग्रणीय है। नंददुलारे वाजपेयी ऐसे आलोचक थे जो वादग्रही नहीं थे, उन्होंने शुक्ल जी की भाँति वादों का एकतरफा खंडन नहीं किया, उनके मन में वादी तत्त्व काव्य के लिए उपादेय भी था। हजारी प्रसाद द्विवेदी विचारों के समीक्षक हैं। उनमें बोध और पांडित्य का अद्भुत समन्वय है। साहित्य के मूल्यों को बदलने तथा उन्हें नवीन मानवतावादी मूल्यों से जोड़ने में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। डा. नगेन्द्र रसवादी आलोचक है; उन्होंने हिन्दी आलोचना को व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टियों से संबद्धित किया है।

मार्क्सवादी आलोचकों में शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त, रामविलास वर्मा, अमृतराय तथा नामवर सिंह का नाम उल्लेखनीय है।

आदर्श आलोचक की विशेषताएँ:-

1. आलोचक का चिंतन और बोध, प्रौढ़ होना चाहिये।

2. वह कोरा काव्यशास्त्री न होकर ऐसा सांस्कृतिक चिंतक होना चाहिये, जो अपने युग को सही दिशा दे सके।

3. उसे रचना को केवल जीवन के एक संदर्भ में ही न देखकर, अपितु जीवन की समग्रता एवं परिपूर्णता के संदर्भ में देखकर उसका मूल्यांकन करना चाहिये।

4. उसे अपने उत्कृष्ट विचारों द्वारा जीवन और समाज में ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा, जो प्रतिभाशाली रचनाकारों को महान् साहित्य-सृजन की प्रेरणा दे सके।

5. आलोचक को साहित्य, समाज तथा संस्कृति का अधिकारी विद्वान होना चाहिये।

### 7.4.4 व्यंग्य

साहित्य की प्रकीर्ण/विविध विधाओं के अंतर्गत 'व्यंग्य साहित्य' की गणना की जाती है। सामान्यतः साहित्य की प्रत्येक विधा में किसी-न-किसी रूप में व्यंग्यात्मकता का समावेश रहता है; किन्तु आधुनिक युग में 'व्यंग्य साहित्य' ने स्वतंत्र विधा के रूप में अपना अस्तित्त्व बनाया है। अंग्रेजी 'सेटायर' से प्रभावित होकर भी हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने अपने विचारों एवं समाज की विसंगतियों को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंग्य विधा का सहारा लिया। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मुकरियों में हमें 'व्यंग्य' की छटा दिखाई देती है-

"एक बुलाएँ चौदह आवें, निज-निज बिपदा रोय सुनावें।
भूखे मरें भरे नहिं पेट, क्यों सखि साजन, नहिं ग्रेजुएट।"

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात बालमुकुन्द गुप्त ने इस विधा में अनेक रचनाएँ कीं। उनके द्वारा लिखित व्यंग्य 'शिवशंभु का चिट्ठा' ने हिन्दी भाषा के जानकार अंग्रेज़ों को हिलाकर रख दिया। बालमुकुन्द गुप्त के इस व्यंग्य से प्रभावित होकर बरसाने लाल चतुर्वेदी, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, प्रभाकर माचवे, रवीन्द्रनाथ त्यागी, अमृतराय, केशवचन्द्र वर्मा, आदि ने भी अनेक व्यंग्यात्मक रचनाएँ लिखकर व्यंग्य विधा के विकास में अपना योग दिया।

1970-80 के दशकों में शरद जोषी का 'चिन्तन चालू है' कॉलम अत्यन्त लोकप्रिय रहा। अपनी रचना 'वैष्णव की फ़िसलन' में हरिशंकर परसाई ने पाखंडों के खंडन के लिए व्यंग्य का ही सहारा लिया है। बरसाने लाल चतुर्वेदी ने इसी विधा के माध्यम से पथभ्रष्ट राजनीतिज्ञों पर प्रहार किया।

**अभ्यास प्रश्न 5**

**क) रिक्त स्थानों की पूर्ति :-**

1. आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की ................ धातु से हुई है।

2. 'वैष्णव की फ़िसलन' के रचनाकार.........................................हैं।

3. बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित व्यंग्य...................................ने अंग्रज़ों को हिलाकर रख दिया।

**ख) यह कथन किसका है:-**

1. "एक बुलाएँ चौदह आवें, निज-निज बिपदा रोय सुनावें।
भूखे मरें भरे नहिं पेट, क्यों सखि साजन, नहिं ग्रेजुएट।" ये पंक्तियाँ किस रचनाकार की हैं?

2. "साहित्य-क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है।"

**ग) लघु उत्तरीय प्रश्न :-**

1. आदर्श आलोचक की प्रमुख तीन विशेषताएँ क्या हैं?

2. साहित्य में 'आलोचना' से क्या तात्पर्य है?

3. पाँच आलोचकों के नाम लिखिये।

## 7.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि :-

- आधुनिक साहित्य की अन्य गद्य विधाओं का विकास आधुनिक काल के पश्चात शुरू हुआ।
- आत्मकथा साहित्य लेखक द्वारा स्वंय के आत्म विवरण एवं आत्म मूल्यांकन का प्रयास है।
- जीवनी विधा किसी लेखक द्वारा अन्य व्यक्ति के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालना है।
- किसी कृति के गुण दोष का परीक्षण कर उसका मूल्यांकन करना आलोचना है।
- व्यंग्य विधा सामाजिक विषमताओं पर प्रहार करने का सशक्त माध्यम है।

## 7.6 शब्दावली

- जीवनी - किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने वाली विधा।
- आत्मकथा - अपने जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने वाली विधा।

- विश्लेषण – किसी तथ्य, विचार के औचित्य - अनौचित्य पर विचार करना।
- आलोचना – किसी कृति के गुण-दोष पर विचार करने वाली विधा।

## 7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**अभ्यास प्रश्न 1**

क) 1. दो 2. गद्य 3. विश्लेषणात्मक साहित्य 4. निबन्धात्मक

5. आख्यात्मक 6. गद्य-पद्य, चम्पू 7. नाटक-चम्पू

**अभ्यास प्रश्न 2**

क) 1. आत्मकथा, कथा, प्रस्तुत 2. गति के साथ

3. 1910, मुझमें देव जीवन का विकास

4. बनारसी दास जैन, अर्द्धकथानक, प्रकाशित, आत्मकथा

**अभ्यास प्रश्न 3**

क) सभी कथन हरिवंशराय बच्चन के हैं।

**अभ्यास प्रश्न 5**

क) 1. लुच् 2. हरिशंकर परसाई 3. शिवशंभु का चिट्ठा
ख) 1. भारतेन्दु हरिशचन्द्र 2. श्यामसुन्दर दास

## 7.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बिष्ट , डॉ.जगत सिंह, साहित्य सृजन के कुछ संदर्भ।

## 7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 . गद्य साहित्य से आप क्या समझते हैं ? हिन्दी साहित्य की दो प्रमुख गद्य विधाओं का विवेचन प्रस्तुत करें

# इकाई 8 गद्य की अन्य विधाओं का स्वरूप एवं तात्विक विवेचन - भाग 2

इकाई की रूपरेखा


8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 स्मारक साहित्यः अर्थ, परिभाषाएँ एवं उसके विविध रूप

8.4 विविध विधाओं का विश्लेषण

8.4.1 संस्मरण

8.4.2 रेखाचित्र

8.4.3 यात्रावृत्त

8.4.4 डायरी

8.4.5 पत्र

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न


## 8.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाइयों में आपने 'निबन्ध' शब्द का अर्थ एवं तात्पर्य; उसका स्वरूप; उसके तत्त्व एवं विवेचन पद्धति; तथा साहित्य की अन्य विधाओं से निबन्ध लेखन की भिन्नता को जाना है। इसके साथ ही आपने स्मारक साहित्य के विषय में तथा उसकी विविध विधाओं के विषय में भी जाना, विशेषतः आत्मकथा, जीवनी, आलोचना तथा व्यंग्य लेखन-शैली को विस्तार से जाना।

ब्रिटिश-शासन के आधिपत्य के कारण भारतीय समाज एवं संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति एवं विचारधाराओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था; क्योंकि साहित्य एवं समाज दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, अतः हिन्दी साहित्य पर भी पाश्चात्य विचारकों की विचारधारा का प्रभाव पड़ा। जन्म एवं विकास प्रकृति का नियम है; समय के साथ-साथ हिन्दी गद्य-साहित्य रूपी वृक्ष भी विकसित, स्थिर एवं सुदृढ़ होता गया और उसके परिणामस्वरूप जन्म हुआ- 'स्मारक साहित्य' का;

इसकी विविध शाखाएँ हैं- संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्त, व्यंग्य, आलोचना, डायरी, पत्र, फ़ीचर, रिपोतार्ज, तथा साक्षात्कार।

## 8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :-

- हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य विधाओं- संस्मरण रेखाचित्र डायरी, पत्र तथा यात्रावृत्त का अध्ययन करेंगे।
- हिन्दी गद्यसाहित्य की अन्य विधाओं के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- हिन्दी गद्यसाहित्य की अन्य विधाओं- संस्मरण रेखाचित्र डायरी, पत्र तथा यात्रावृत्त का तात्त्विक विवेचन कर सकेंगे।
- संस्मरण रेखाचित्र डायरी, पत्र तथा यात्रावृत्त के इतिहास एवं प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।

## 8.3 स्मारक साहित्य का अर्थ एवं परिभाषा

'स्मारक' का शाब्दिक अर्थ है- स्मृति पर आधारित कोई निर्मिति; अर्थात् जब हम किसी व्यक्ति अथवा किसी घटना विशेष की स्मृति में कोई रचनात्मक कार्य करते हैं, उसे स्मारक कहा जाता है। इस आधार पर स्मृति पर आधारित होने के कारण तथा वर्णन-पद्धति की कुछ विशिष्टताओं के कारण, गद्य साहित्य की नवीन विधाओं को 'स्मारक साहित्य' का नाम दिया गया।

साहित्य की प्रत्येक नवीन विधा का परिचय प्रायः पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही होता है। 'स्मारक-साहित्य' का अस्तित्त्व भी, सर्वप्रथम द्विवेदी युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं चर्चित पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से ही सामने आया। परिवर्तित परिस्थिति, परिवेश एवं पर्यावरण का प्रभाव मनुष्य के मन और मस्तिष्क को अवश्य प्रभावित करता है। यही कारण है कि प्रथम स्वाधीनता संग्राम के पश्चात जब रचनाकारों के मनोमस्तिष्क में अनेक भाव व विचार अभिव्याप्त होने के लिए छटपटाने लगे तब गद्य साहित्य की विविध विधाओं का जन्म हुआ। 18वीं शताब्दी में भारतेन्दु हरिशचन्द्र एवं उनके मंडल के लेखक- ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दामोदर शास्त्री, तथा राधाकृष्ण आदि के 'हरिशचन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित धर्म, राजनीति, भाषा आदि संबंधी लेखों से हिन्दी गद्य लेखन का शुभारम्भ हो चुका था। 19वीं शताब्दी में निबन्ध लेखन के विकास के साथ हिन्दी गद्य का स्वरूप उत्तरोत्तर विकसित होता चला गया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की 'फूट डालो और

राज करो' की नीति के विरूद्ध साम्प्रदायिक सद्भावना को बढ़ावा देने के लिए गद्य साहित्य- कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, के अतिरिक्त संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्त, व्यंग्य, आलोचना, डायरी, पत्र, फीचर, रिपोतार्ज तथा साक्षात्कार आदि अनेक रूपों में लिखा जाने लगा। कालान्तर में इनमें से स्मृति पर आधारित साहित्य को 'स्मारक साहित्य' के नाम से विभूषित किया गया। स्मारक साहित्य को पारिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि 'जो साहित्य, मनुष्य की अपनी अथवा अपने संपर्क में आए हुए किसी अन्य व्यक्ति की अविस्मरणीय अतीत अथवा वर्तमान की अनुभूतियों से संबंधित घटनाओं के बिम्ब प्रस्तुत करता हो, उसे स्मारक साहित्य कहते हैं।'स्मारक साहित्य की विशेषताएँ- साहित्य लेखन में प्रत्येक विधा की अपनी विशेषताएँ होती है, और उसकी वही विशेषताएँ उसे साहित्य की किसी अन्य विधा से भिन्न करती है। स्मारक साहित्य की भी अनेक विशेषताएँ हैं; जो उसे गद्य साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करने में सहायक सिद्ध होती हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. स्मृतिआधारित गद्यात्मक अभिव्यक्ति।
2. कल्पनातत्त्व का अभाव।
3. चित्रात्मकता तथा वर्णनात्मकता।
4. आत्माभिव्यक्ति की छटपटाहट।
5. कथातत्त्व की अनिवार्यता।
6. मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मकता।
7. यथार्थ के प्रति लेखक की नवीन दृष्टि।
8. यथार्थ एवं प्रामाणिकता का संयम-अनुशासन।
9. अनुभूतियों के चित्रण में व्यक्तिनिष्ठता।
10. स्वभुक्त अतीत एवं वर्तमान का यथार्थ चित्रण।
11. सद्यस्फुरित भावों एवं स्मृतियों पर आधारित अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति।

## 8.4 विविध विधाओं का विश्लेषण

### 8.4.1 संस्मरण

हिन्दी साहित्य में संस्मरण विधा का प्रादुर्भाव बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से माना जाता है। संस्मरण, स्मारक साहित्य की केन्द्रीय एवं आत्मनिष्ठ विधा है; क्योंकि यह एक आत्मनिष्ठ विधा है, अतः इसमें लेखक ने जो कुछ देखा-सुना तथा अनुभव किया होता है, उसके आधार पर वह किसी व्यक्ति, घटना, वस्तु अथवा, स्थिति में से किसी को भी अपना लेखन-विषय बनाकर, उसके प्रति अपनी संवेदनात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है- जब कोई साहित्यकार अपने संपर्क में आने वाले किसी व्यक्ति, जीवन की अनुभूति, घटना विशेष, अथवा मनोरम दृश्य आदि का स्मृति के आधार पर साहित्यिक रूप में वर्णन करता है, उसे संस्मरण कहते हैं। संस्मरण के माध्यम से जहाँ एक ओर पाठक को आनन्द की अनुभूति होती है; वहीं दूसरी ओर सहज ही उसे ऐतिहासिक जानकारी भी प्राप्त हो जाती है।

संस्मरण के मुख्यतः दो रूप दिखाई देते हैं-

1. आत्मपरक (रेमिनिसेन्सेज़)
2. वस्तुपरक या जीवनापरक (मैमोयर्स)।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है- "भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्त्व की विशेषताओं से विशिष्ट बनाकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त करता है, तब उसे संस्मरण कहते है।"संस्मरण के स्वरूप के विषय में महादेवी वर्मा ने कहा है- "संस्मरण में हम अपनी स्थिति के आधारों पर समय की धूल पौंछ कर उन्हें अपने मनोजगत के निभृत कक्ष में बैठकर उनके साथ जीवित रहते हैं और अपने आत्मीय सम्बन्धों को पुनः जीवित करते हैं। इस स्मृति मिलन में मानो हमारा मन बार-बार दोहराता है, हमें आज भी तुम्हारा अनुभव है।"उपर्युक्त कथन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्मरण में वर्ण्यविषय प्रमुख होता है, जब कोई लेखक किसी मनोरम दृष्य, अविस्मरणीय घटना, या संपर्क में आए हुए व्यक्ति के विषय में अपनी अनुभूतियों एवं संवेदनाओं के संस्पर्ष से जीवन्त चित्र उकेरता है, तो स्वाभाविक रूप से उसके आधार पर लेखक अपने व्यक्तित्त्व का परिचय भी देता चला जाता है। सामान्यतः संस्मरणकार का मुख्य उद्देश्य पात्र, अथवा घटना आदि विषयों की उन विशेषताओं को अंकित करना होता है, जिसकी छवि हमारे मनोमस्तिष्क पर अमिट छाप अंकित कर सके।संस्मरण की प्रामाणिकता के विषय में उपेन्द्रनाथ अश्क जी की मान्यता है- "मैं संस्मरण की खूबी पूर्णतः सच्चाई मानता हूँ। उपन्यास और कहानी में

असत्य से काम लिया जा सकता है, कल्पना की लगामें ढीली छोडी़ जा सकती हैं, लकिन संस्मरण और आत्मकथा की शर्त मेरे निकट, सच्चाई और शत-प्रतिशत सच्चाई है।"

**संस्मरण की प्रमुख विशेषताएँ :-**

1. वर्ण्य-पात्र, स्थल, घटना, अथवा विषय से, लेखक का निकटस्थ संबंध होता है।

2. लेखक ने वर्ण्य-विषय को प्रत्येक दृष्टिकोण से देखा-परखा तथा समझा होता है।

3. लेखक अपने वर्ण्यविषय के प्रति किसी पूर्वाग्रह से आक्रान्त नहीं होता।

4. वर्ण्य-विषय के यथार्थ का, मार्मिक एवं संतुलित वर्णन मिलता है।

5. संस्मरण का संबंध अतीत की स्मृतियों से होता है।

6. लेखक की अनुभूतियों एवं संवेदनाओं का रोचक एवं कलात्मक शैली में प्रस्तुतिकरण होता है।

7. इसमें लेखक की दृष्टि वर्ण्यपात्र के साथ-साथ, उसके संपर्क में अपने वाले व्यक्तियों एवं घटनाओं पर भी रहती है।

8. इसका वर्ण्यविषय कोई साहित्यकार, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और खिलाड़ी ही नहीं, कोई घसियारिन, किसान, मजदूर, अर्थात् दलित सर्वहारा वर्ग से संबंधित व्यक्ति भी हो सकता है।

स्मारक साहित्य की एक विशिष्ट विधा होने के कारण संस्मरण में स्मृति का विशेष महत्त्व होता है; क्योंकि इसका मूलाधार स्मृति है, इसलिए लेखक जितना कुछ याद करता है, उसके साथ लेखक की भावना, संवेदना, रुचि-अरुचि, दृष्टि तथा उसके आदर्श आदि का जुड़ा होना स्वाभाविक है। अनेक उच्च कोटि के लेखकों ने संस्मरण लिखकर इस विधा को समृद्ध एवं सशक्त किया है। संस्मरण लेखकों में बनारसीदास चतुर्वेदी, रघुवीरसिंह, रामवृक्षबेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, काका कालेलकर, हरिभाऊ उपाध्याय देवेन्द्र सत्यार्थी दिनकर निराला, महादेवी, मोहन लाल महतोवियोगी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संस्मरण साहित्य जहाँ महापुरूषों की एवं नूतन आशा-ज्योति भी प्रदान करता है। संस्मरणात्मक साहित्य का विकास प्रगति पर है, और आशा है कि यह विशेष अंग और भी परिपुष्ट, समृद्ध एवं विकासशील होगा।

**अभ्यास प्रश्न 1**

**क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः-**

1. संस्मरणकार का मुख्य उद्देश्य ....................... आदि विषयों की उन ............... को अंकित करना होता है, जिसकी छवि हमारे .............................. अमिट छाप अंकित कर सके।

2. स्मारक साहित्य की एक .....................विधा होने के कारण..................में स्मृति का विशेष महत्त्व होता है।

3. इसका वर्ण्यविषय ...........................ही नहीं, कोई..................................वर्ग से संबंधित व्यक्ति भी हो सकता है।

**ख) लघु उत्तरीय प्रश्न:-**

1. स्मारक साहित्य किसे कहते है ?

2. स्मारक साहित्य की प्रमुख विधाएँ कौन-सी हैं ?

3. स्मारक शब्द का क्या अर्थ है ?

4. संस्मरण के दो रूप कौन-से हैं ?

5. स्मारक साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं ?

### 8.4.2 रेखाचित्र

'रेखाचित्र' का अंग्रेजी पर्याय 'स्केच' है, स्केच का अर्थ है- चित्रकला। 'चित्रकला' में 'स्केच' उन चित्रों को कहा जाता है- जिसमें केवल रेखाओं के सहारे किसी व्यक्ति या वस्तु का चित्रांकन किया जाता है। रेखाचित्र में साहित्यकार अपने मानसपटल पर अंकित स्मृतियों को, शब्दरेखाओं के माध्यम से उकेरता है। अतः कहा जा सकता है कि वस्तुतः रेखाचित्र एक शब्दचित्र है; जिसमें हमें साहित्यिकता और कलात्मकता का अनुपम संयोग देखने को मिलता है।

**परिभाषाएँ - डॉ. रामगोपाल** रेखाचित्र के विषय में लिखते हैं- "रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप विधान है, जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्मपर्यवेक्षण दृष्टि, अपना निजीपन उँडेलकर प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है।"

**डॉ. नगेन्द्र** ने रेखाचित्र की परिभाषा में लिखा है- "जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आई; अर्थात रेखाचित्र एक ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त होने लगा, जिसमें रेखाएँ हो, पर मूर्त रूप नहीं अर्थात पूरे उतार-चढाव के साथ। दूसरे शब्दों में, कथानक का उतार-चढाव आदि उसमें हो, तथ्य का उद्घाटन मात्र नहीं।"

**डॉ.भागीरथ मिश्र** की मान्यता है- "अपने सम्पर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्तित्त्व अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य विशेषताओं से युक्त, किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को देखी-सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में, इस प्रकार उभारकर रखना कि उसका हमारे हृदय में एक निष्चित प्रभाव अंकित हो जाए, रेखाचित्र या शब्दचित्र कहलाता है।"

हिन्दी साहित्य में रेखाचित्र विधा का आविर्भाव बींसवी शताब्दी के तीसरे दशक में हुआ। प्रभाकर माचवे को हिन्दी का प्रथम रेखाचित्रकार माना जाता है। उनके द्वारा 1933 लिखित 'मैं समझता हूँ' लेख को हिन्दी साहित्य का प्रथम रेखाचित्र माना जाता है। रेखाचित्र को 'शब्दचित्र' शब्द भी कहा जा सकता है। रेखाचित्र के प्रमुख तत्त्व निन्मलिखित हैं-

(क) वास्तविकता।

(ख) रागात्मकता।

(ग) सजीवता।

(घ) चित्रात्मकता।

(ड़) सांकेतिकता।

**संस्मरण तथा रेखाचित्र में अंतरः-** संस्मरण, सामान्यतया किसी साधारण या विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित, किसी संवेदनशील स्मृति के प्रत्यक्षीकरण को कहा जा सकता है रेखाचित्र भी प्रायः इसी प्रकार के व्यक्ति का वर्णन प्रस्तुत करता है। बाह्य दृष्टि से देखने पर संस्मरण तथा रेखाचित्र में समानता-सी प्रतीत होती है; किन्तु है नहीं। संरचना की दृष्टि से इन दो विधाओं के अंतर को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत स्पष्टतः देखा जा सकता हैः-

1. रेखाचित्र साधारण से साधारण व्यक्ति का भी हो सकता है, जबकि संस्मरण प्रायः महान विभूतियों से ही सम्बन्ध रखता है।

2. संस्मरण आत्मनिष्ठ रचना है और रेखाचित्र वस्तुनिष्ठ।

3. यद्यपि संस्मरण में भी चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है; किन्तु चित्रात्मकता रेखाचित्र का अनिवार्य तत्त्व है।

4. संस्मरण का संबंध केवल अतीत से ही होता है; जबकि रेखाचित्र का संबंध अतीत एवं वर्तमान दोनों से हो सकता है।

5. संस्मरण में स्मृति आधारित वर्णन होता है, और रेखाचित्र में रचनाकार शब्द-रेखाओं के माध्यम से वर्ण्यपात्र का चित्रण करता है।

महादेवी ने रेखाचित्र के सम्बन्ध में लिखा है कि "इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है । यह स्वाभाविक भी है। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उसके बाहर तो वे अंधकार के अंश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसे परिचय दे पाते है, वह बाहर रूपान्विकता से सजाकर निकट लाता है उसी परिचय के लिए मैं अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है, उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की दृष्टि क्यों करती? परन्तु मेरा निकटवर्ती जनित आत्म-विज्ञान उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता, जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है। जो इसके पार नहीं देख सकता, वह इन चित्रों के हृदय तक नहीं पहुँच सकता।"

**अभ्यास प्रश्न 2**

**क) लघु उत्तरीय प्रश्न :-**

1. संस्मरण तथा रेखाचित्र में क्या अन्तर है?

2. रेखाचित्र को अंग्रेज़ी में क्या कहते हैं?

3. रेखाचित्र में किन विशेषताओं का होना आवश्यक है? अपने शब्दों में लिखिये।

**ख) किसका कथन है:-**

1. "रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप विधान है, जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्मपर्यवेक्षण दृष्टि, अपना निजीपन उँडेलकर प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है।"

2. "इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी है। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उसके बाहर तो वे अंधकार के अंश हैं।"

### 8.4.3 यात्रावृत्त

स्वभावतः मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है; यही कारण है कि प्रारम्भिक काल से ही वह यात्राएँ करता रहा है। आज भी वह समय-समय पर कभी ज्ञान की प्यास बुझाने के लिए, कभी आनन्द की अनुभूति के लिए, कभी व्यापारिक लाभ प्राप्ति के लिए, तो कभी जीवन के बहुमुखी विकास के लिए विभिन्न स्थानों का भ्रमण एवं यात्राएँ करता रहता है; क्योंकि यायावरी प्रवृत्ति मनुष्य की एक मूल प्रवृत्ति है। अपनी किसी यात्रा का विवरण प्रस्तुत करने मात्र से ही कोई रचना यात्रावृत्त नहीं बन जाती। यात्रावृत्त के लिए लेखन के आवश्यक है कि लेखक संवेदनशील होकर स्वच्छन्दता, निरपेक्षता एवं आत्मीयतापूर्वक अपनी यात्रा करे; क्योंकि इसके अभाव में यदि वह अपनी किसी यात्रा के विषय में लिखेगा, तो वह उत्कृष्ट कोटि का यात्रावृत्तान्त न होकर, केवल यात्राविवरण बनकर रह जाएगा। यात्रावृत्त, स्मारक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है; इसे लिखते समय लेखक अपनी यात्रा के चित्रों को इस प्रकार उकेरता है कि उस यात्रावृत्तान्त को पढ़ते समय पाठ, रोमांचित एवं उल्लसित-भावमग्न होकर, मानसयात्रा करते हुए स्वयं को लेखक का सहयात्री-सा अनुभव करता है। यात्रावृत्त की यही रोचकता एवं जीवन्तता, उसे सदैव आकर्षक बनाए रखती है।

निःसंदेह प्राकृतिक सौंदर्य अधिकांशतः लोगों को आकृष्ट करता है, तथा विभिन्न देशों की विविधता, सांस्कृतिक विशिष्टता, ऋतु-परिवर्तन और उसके सौंदर्य के वैचित्र्य से मानव मंत्रमुग्ध एवं उल्लसित होता रहा है; किन्तु प्रत्येक व्यक्ति में यह क्षमता नहीं होती कि वह विभिन्न स्थानों का भ्रमण करके, अपने उस उल्लास, सौंदर्यबोध एवं स्मृतियों को लिपिबद्ध कर सके। जब एक लेखक अपनी यात्रा संबंधी अनुभूति की स्मृतियों को शब्दचित्रों के माध्यम से उकेरता है, तब वह रचना यात्रावृत्त कहलाती है। यात्रावृत्तान्त मुख्यतः निम्नलिखित शैलियों में लिखे जाते हैं-

1. भावात्मक शैली 2. विचारात्मक शैली 3. आलंकारिक शैली
4. व्यंग्यात्मक शैली 5. चित्रात्मक शैली

यद्यपि यात्रावृत्तान्त अनेक शैलियों में लिखे जाते हैं, किन्तु लेखक के लिए यह बाध्यता नहीं है कि वह अपनी किसी यात्रा का वृत्तान्त लिखते समय, आदि से अन्त तक उसे एक ही शैली में लिखे; तथापि यह अवष्य कहा जा सकता है कि किसी यात्रासाहित्य लेखन की उत्कृष्टता एवं सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें सामान्यतः यात्रावृत्त की सभी शैलियों का संतुलित प्रयोग किया गया हो। यात्रा साहित्य द्वारा जहाँ एक ओर पाठकों के ज्ञान में अभिवृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर उन्हें कथा साहित्य जैसी आनन्द की अनुभूति भी होती है। यही कारण है कि आज भी साहित्यकारों द्वारा यात्रा साहित्य को लालित्य प्रदान करने के लिए अभिनव प्रयोग किए जा रहे हैं।

भारतेन्दु युग के अनेक लेखकों- बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीमती हरदेवी,दामोदर शास्त्री आदि ने यात्रावृत्त-लेखन की दिशा में योग दिया। भारतेन्दु हरिशचन्द्र की 'सरयूपार की यात्रा',

'लखनऊ की यात्रा' तथा 'हरिद्वार की यात्रा' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। द्विवेदी युग के यात्रावृत्त-लेखकों- देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, ठाकुर गदाधरसिंह तथा स्वामी सत्यदेव परिव्राजक आदि ने न केवल अपनी पूर्व परम्परा को जीवित बनाए रखा, वरन् भावी विकास की दिशा में भी अविस्मरणीय सहयोग दिया। प्रारम्भिक एवं मध्यकाल में अधिकांश लेखक, सहृदयता एवं भावुकता के सहारे यात्रावृत्त लिखा करते थे; किन्तु भौतिक विकास के साथ हृदयपक्ष गौण और बुद्धिपक्ष प्रबल होता चला गया, परिणामस्वरूप वर्तमान साहित्यकार यात्रावृत्त लिखते समय भाषा की कलात्मकता को अधिक महत्त्व नहीं दे रहे हैं।

आधुनिक युग के यात्रावृत्त लेखकों में जवाहरलाल नेहरू, राहुल सांकृत्यायन, सेठ गोविन्ददास, हीरानन्द सचिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय, मोहन राकेश, राजेन्द्र अवस्थी, निर्मल अवस्थी, रामधारी सिंह 'दिनकर' विष्णुप्रभाकर, नेत्रसिंह रावत आदि के नाम प्रमुख हैं। राहुल सांकृत्यायन एक ऐसे यायावर थे, जिनका अधिकांश जीवन भ्रमण में ही व्यतीत हुआ; यात्रावृत्त लेखन में उनका अनन्यतम स्थान है।

**अभ्यास प्रश्न 3**

**क) लघु उत्तरीय प्रश्न :-**

1. यात्रावृत्त-लेखन की प्रमुख शैलियाँ कौन-कौन सी हैं?

2. यात्रावृत्त तथा यात्राविवरण में क्या अंतर है?

3. अधिकांश जीवन भ्रमण में व्यतीत करने वाले लेखक का क्या था?

### 8.4.4 डायरी

'डायरी' अथवा 'दैनन्दिनी' में किसी व्यक्ति के जीवन का व्यक्तिगत विवरण अंकित होता है। जिसमें वह अपने जीवन के किसी विशेष दिन, महीने अथवा साल की किसी विशिष्ट घटना, स्मृति, अथवा उससे संबंधित अनुभूति और विचार को लिखता है। यह सत्य है कि मूलरूप में 'डायरी' व्यक्ति के जीवन का निजी दस्तावेज़ होती है; किन्तु उसमें कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जिसे सार्वजनिक करने में लेखक को कोई आपत्ति नहीं होती। यही कारण है कि अधिकांशतः डायरी अपने मूलरूप में प्रकाशित न होकर संपादित रूप में प्रकाशित होती है।

हिन्दी साहित्य में 'डायरी-विधा' के सूत्र हमें आधुनिक युग से पूर्व 1885 में प्रकाशित राधाचरण गोस्वामी की 'दैनंदिनी' से ही मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। उसके बाद 1909 में सत्यदेव की 'मेरी डायरी'; 1930 में नरेन्द्रदेव शास्त्री वेदतीर्थ की 'जेल डायरी'; 1940 में घनश्यामदास बिड़ला की 'डायरी के कुछ पन्ने'; 1952 में इलाचन्द्र जोशी की ' डायरी के कुछ नीरस पन्ने'; सियारामशरण

गुप्त की 'दैनिकी'; 1958 में धीरेन्द्र वर्मा की 'मेरी कॉलेज डायरी' 1972 में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की 'मेरी डायरी'; 1977 में जयप्रकाशनारायण की 'मेरी जेल डायरी' तथा 1985 में मोहन राकेश कृत 'डायरी साहित्य' आदि का, डायरी लेखन के विकास में महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

अपने समय को प्रतिबिम्बित करने के कारण डायरी, लेखक का नितान्त व्यक्तिगत दस्तावेज़ होते हुए भी, उसके समय को प्रतिबिम्बित करने वाला दस्तावेज़ भी बन जाती है। रचनाकारों की दैनन्दिनी से हमारे समक्ष यह सत्य उद्घाटित होता है कि रचनाकार भी आम व्यक्ति की तरह ही अपने जीवन में व्यथा, असंतोष, अवसाद की स्थितियों से गुज़रता है। यही कारण है कि लेखकों की डायरी, हमारे लिए उनके समय, परिवेश, व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व को जानने-समझने की दृष्टि से नितान्त उपयोगी सिद्ध होती है।

### 8.4.5 पत्र

सामान्यतः पत्र-व्यवहार जीवन का आवश्यक अंग रहा है; किन्तु कुछ पत्र अपनी कलात्मकता के कारण भाषा के साहित्य की अमूल्य निधि होते हैं। पत्र साहित्य आधुनिक काल की नवोदित विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। पाष्चात्य विचारकों भी साहित्य के क्षेत्र में पत्रों के महत्त्व को स्वीकारा है।

डॉ. जॉनसन ने अपनी शिष्या को लिखा था - "पत्र लेखक के हृदय का दपर्ण होते हैं।"

डॉ. रिचर्ड का कथन है - "पत्र, पत्र-लेखक के जीवन का अध्ययन करने में प्रमाणिक आधार होते हैं।"

साहित्य में केवल उन पत्रों को सम्मिलित किया जाता है, जो वैयक्तिक एवं अनौपचारिक होते हैं। जिन पत्रों के माध्यम से हमें किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व को जानने-समझने में सहायता मिलती है; जिनमें कोई युग विशेष अपनी विविधता में प्रतिबिम्बत होता है, या जिनमें हमें कलात्मकता के दर्शन होते हैं, उन्हीं पत्रों का साहित्यक महत्त्व होता है। ऐसे पत्र जब पत्र-पत्रिकाओं में, अथवा पुस्तकों में संकलित होकर प्रकाशित होते हैं; तब पत्र साहित्य अस्तित्त्व में आता है। पत्र अनुसंधान-कार्य में भी बहुत सहायक होते हैं। आधुनिक काल से पूर्व पत्रों को संकलित करके उन्हें प्रकाशित कराने की परम्परा नहीं थी; कदाचित्, यही कारण है कि इस युग से पूर्व हमें पत्र साहित्य के सूत्र अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं।

सर्वप्रथम 1928 में 'चाँद' पत्रिका का' पत्र विशेषांक' प्रकाशित हुआ, उसके बाद 1953 में ज्ञानोदय, 1963 में सम्मेलन-पत्रिका, 1982 में सारिका, 1989 में विश्वभारती आदि पत्रिकाओं के भी पत्र विशेषांक प्रकाशित होते रहे हैं। पत्रिकाओं की तरह ही साहित्यकारों के अभिनन्दनग्रंथ, स्मृतिग्रंथ, जीवनी आदि में भी उनके पत्रों को भी प्रकाशित करने की परम्परा बनी हुई है। इसके अतिरिक्त अनेक साहित्यकारों ने आत्मकथा में भी पत्र प्रकाशित किए हैं।

'पत्रों के आइने में स्वामी दयानन्द सरस्वती' में संगृहीत पत्रों को पढ़कर हमें, आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती की सुधार-भावना, उनका हिन्दी और संस्कृत-प्रेम, फ़ारसी-विरोध, गोवंश की रक्षा, आर्थिक अनुशासन आदि के विषय में ज्ञात होता है।

पत्रों के विषय में कहा जा सकता है कि वास्तव में पत्र वह माध्यम हैं जिनके द्वारा हमें किसी महापुरुष, साहित्यकार अथवा कलाकार आदि के व्यक्तित्त्व की विशिष्टता, उनके प्रेरणास्रोत, उनके सरोकार आदि की सहज ही जानकारी प्राप्त हो जाती है।

**अभ्यास प्रश्न 4**

1. डायरी-विधा के सूत्र हमें किसकी डायरी में मिलते हैं?

2. पहला पत्र-विशेषांक कब और किस पत्रिका में प्रकाशित हुआ?

3. पत्र साहित्य में किन पत्रों को शामिल किया जाता है?

## 8.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि

- स्मृति आधारित साहित्य की विशेषता स्मृति, सूक्ष्म निरीक्षण एवं आकर्षक शैली होती है।
- संस्मरण किसी व्यक्ति, घटना, स्थिति को आधार बनाकर उसके प्रति संवेदनात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है।
- रेखाचित्र का संबंध चित्रकला से है। रेखाचित्र में लेखक शब्द-चित्र के माध्यम से किसी व्यक्तित्व के व्यक्तित्व को उकेरता है।
- यात्रावृत्त विधा का संबंध लेखक द्वारा अपनी यात्रा को सृजनात्मक धरातल प्रदान करना है।
- डायरी लेखक द्वारा अपनी दिनचर्या को सृजनात्मक रूप में प्रस्तुत करने का एक ढंग है।
- पत्र विधा दो व्यक्तियों के बीच हुए आत्मिक पत्र-संवाद को कहते हैं।

## 8.6 शब्दावली

- कलात्मकता – किसी कार्य को करने का लालित्य पूर्ण ढंग
- अनौपचारिक – सहज, हृदयगत
- सांकेतिकता – हृदयगत लगाव
- सजीवता – जीवंत

## 8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**अभ्यास प्रश्न 1**

**क) रिक्त स्थानों की पूर्तिः-**

1. संस्मरणकार का मुख्य उद्देश्य पात्र, अथवा घटना आदि विषयों की उन विशेषताओं को अंकित करना होता है, जिसकी छवि हमारे मनोमस्तिष्क पर अमिट छाप अंकित कर सके।

2. स्मारक साहित्य की एक विशिष्ट विधा होने के कारण संस्मरण में स्मृति का विशेष महत्त्व होता है।

3. इसका वर्ण्यविषय कोई साहित्यकार, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और खिलाड़ी ही नहीं, कोई घसियारिन, किसान, मजदूर, अर्थात् दलित सर्वहारा वर्ग से संबंधित व्यक्ति भी हो सकता है।

**ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :-**

1. संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्त, डायरी, पत्र।

2. स्मृति पर आधारित होने के कारण, तथा वर्णन-पद्धति की कुछ विशिष्टताओं के कारण, गद्य साहित्य की नवीन विधाओं को 'स्मारक साहित्य' कहा जाता है।

3. हिन्दी साहित्य में 'गद्य' का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ।

4. 'स्मारक' का शाब्दिक अर्थ है- स्मृति पर आधारित कोई निर्मिति; अर्थात जब हम किसी व्यक्ति अथवा किसी घटना विशेष की स्मृति में कोई रचनात्मक कार्य करते हैं, उसे स्मारक कहा जाता है।

**5. स्मारक साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-**

1. स्मृतिआधृत गद्यात्मक अभिव्यक्ति।

2. आत्माभिव्यक्ति की छटपटाहट।

3. कल्पनातत्त्व का अभाव।

4. कथातत्त्व की अनिवार्यता।

5. मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मकता।

6. यथार्थ के प्रति लेखक की नवीन दृष्टि।

7. चित्रात्मकता तथा वर्णनात्मकता।

**अभ्यास प्रश्न 2**

क) किसका कथन हैः-

1. रामगोपाल वर्मा 2. महादेवी वर्मा

1. संस्मरण सामान्यतया किसी साधारण या विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित किसी संवेदनशील स्मृति के प्रत्यक्षीकरण को कहा जा सकता है रेखाचित्र भी प्रायः इसी प्रकार के व्यक्ति का वर्णन प्रस्तुत करता है। रेखाचित्र साधारण से साधारण व्यक्ति का भी हो सकता है जबकि संस्मरण प्रायः महान विभूतियों से ही सम्बन्ध रखता है।

2. स्केच,

3. एक तो, रेखाचित्र काल्पनिक न होकर वास्तविक होते हैं; और दूसरे, रेखाचित्र का सृजन किसी वस्तु या व्यक्ति को लेकर होता है। इसके साथ ही साथ शैली की दृष्टि से रेखाचित्र में चित्रात्मकता भावात्मकता सांकेतिकता और प्रभावोत्पादकता आदि विशेषताओं का होना आवश्यक है।

**अभ्यास प्रश्न 3**

1. भावात्मक शैली, विचारात्मक शैली, आलंकारिक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, चित्रात्मक शैली;

2. यात्रावृत्त के लिए के आवश्यक है कि वह संवेदनशीलता, स्वछन्दता, निरपेक्षता एवं आत्मीयतापूर्ण हो; इसके अभाव में यदि लेखक अपनी किसी यात्रा के विषय में लिखेगा, तो वह उत्कृष्ट कोटि का यात्रावृत्तान्त न होकर, केवल यात्राविवरण बनकर रह जाएगा।

3. राहुल सांकृत्यायन।

**अभ्यास प्रश्न 4**

1. आधुनिक युग से पूर्व 1885 में प्रकाशित राधाचरण गोस्वामी की 'दैनंदिनी' से।
2. 1928 'चाँद' पत्रिका में।
3. साहित्य में केवल उन पत्रों को सम्मिलित किया जाता है, जो वैयक्तिक एवं अनौपचारिक होते हैं।

## 8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, धीरेन्द्र , हिंदी साहित्य कोश I, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

## 8.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी, रामचन्द्र , हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

## 8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्मारक साहित्य से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से स्पष्ट कीजिए तथा संस्मरण और रेखाचित्र में अंतर बताइये करें।

# ईकाई 9 'करुणा' : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा


9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

9.3.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जीवन परिचय

9.3.2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यिक परिचय

9.4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल : विश्लेषण एवं आलोचना

9.5 निबंध का पाठ : करूणा

9.6 निबंध का सार : करूणा

9.7 करूणा : संदर्भ सहित व्याख्या

9.8 सारांक्ष

9.9 शब्दावली

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.12 सहायक पाठ्य सामग्री

9.13 निबंधात्मक प्रश्न


## 9.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आपने गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं के रूप एवं उनकी अन्तरप्रकृति का अध्ययन किया।

प्रस्तुत इकाई में आप रामचन्द्र शुक्ल के सम्पूर्ण जीवन एवं उनके साहित्यिक अवदान से परिचित होंगे। इसके साथ ही साथ आप आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित महत्वपूर्ण निबंध ‘करूणा’ को पाठ, ससंदर्भ व्याख्या के साथ कर सकेंगे।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप मानव मन के गत्भी भाव ‘करूणा’ का विश्लेषण कर सकेंगे तथा साथ ही हिन्दी साहित्य में आचार्य शुक्ल के महत्त्व का प्रतिपादन भी कर सकेंगे।

## 9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- मानवीय मनोविकारों में से एक 'करूणा' का महत्व ज्ञात कर उसे साहित्यिक कसौटी पर जॉच सकेंगे।
- एक सच्चे साहित्यिक मर्मज्ञ की तरह मानव मन की कारूणिक दशाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मानव जीवन के भीतर 'करूणा' के व्यवहारिक महत्व को समझ सकेंगे।

## 9.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल

'' शुक्ल जी की व्यक्तिगत गंभीरता उनकी भाषा में व्याप्त रहती है। उनकी भाषा संयत, परिष्कृत, प्रौढ़ तथा विशुद्ध होती है; उसमें एक प्रकार का सौष्ठव विशेष है, जो संभवत: किसी भी वर्तमान लेखक में नहीं पाया जाता। उसमें गम्भीर विवेचना, गवेषणात्मक चिंतन एवं निर्मांत अनुभूति की पुष्ट व्यंजना सर्वदा वर्तमान रहती है। शुक्ल जी की शैली में वैयक्तिकता की छाप सर्वत्र ही प्राप्त होती है, चाहे वह निबंध रचना हो चाहे आलोचनात्मक विवेचन''

**- जगन्नाथ प्रसाद शर्मा**

''भारतीय काव्यालोचन शास्त्र का इतना गंभीर और स्वतन्त्र विचारक हिंदी में तो दूसरा हुआ ही नहीं, अन्यान्य भारतीय भाषाओं में भी हुआ है या नहीं, ठीक नहीं कह सकते। शायद नहीं हुआ। अलंकारशास्त्र के प्रत्येक अंग पर उनहोंने सूक्ष्म विचार किया था- शब्द-शक्ति, गुण-दोष, अलंकार-विधान, रस आदि सभी विषयों पर उनका अपना सुचिंतित मत था। वे प्राचीन भारतीय अलंकारिकों को खूब जानते थे पर उनका अंधानुकरण करने वाले नहीं थे। रामचंद्र शुक्ल से सर्वत्र सहमत होना संभव नहीं। वे इतने गंभीर और कठोर थे कि उनके वक्तव्यों की सरसता उनकी बुद्धि की आंच से सूख जाती थी और उनके मतों का लचीलापन जाता रहता था। आपकों या तो 'हाँ' कहना पड़ेगा या 'ना' बीच में खड़े होने का कोई उपाय नहीं।'' - **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी**

### 9.3.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जीवन परिचय

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 ई. (संवत् 1940) को उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अगोना नामक गाँव में हुआ था। मूल रूप से इनके पूर्वज गोरखपुर क निवासी थे। उनके पितामह का नाम श्री शिवदत्त शुक्ल था। आचार्य शुक्ल के पिता श्री चन्द्रबली शुक्ल का जन्म 1862 ई. में हुआ था बाद में श्री शिवदत्त शुक्ल की मृत्यु के उपरांत आचार्य रामचंद्र शुक्ल के

पितामही आचार्य शुक्ल के पिता श्री चंद्रबली शुक्ल को लेकर गोरखपुर छोड़ बस्ती जिले के अगौना नामक गाँव में आ गई। आचार्य शुक्ल के पिता अध्ययनशील व्यक्ति थे। उनहें अंग्रेजी, फारसी और अरबी का अचछा जान था। सन् 1887 में आचार्य शुक्ल के पिता उत्तर प्रदेश के इटावाजिले में सुपरवाईजर कानूनगो के पद पर आ गए 1875 में ही चन्द्रबली शुक्ल का विवाह हो गया था। 1884 में अगौना में आचार्य रामचंद्रशुक्ल का जन्म हुआ। वे अपने पिता की चौथी संतान थे। 1891 में पिता के बतादले के पश्चात्आचार्य शुक्ल हमीरपुर जिले की 'राठ' तहसील में आ गए। यहीं आचार्य शुक्ल की प्रारम्भिक शिक्षा हुई। 1893 में आचार्य शुक्ल के पिता की नियुक्ति सदर कानूनगो के पद पर मिर्जापुर में हो गई। इस बीच आचार्य शुक्ल की माताका देहावसान गया। अपने पिता के साथ आचार्य शुक्ल के पिता मिर्जापुर आ गए। 1894 में आचार्य शुक्ल के पिता ने दूसरा विवाह कर लिया और विमाताके कारण आचार्य शुक्ल का जीवन कष्टप्रद हो गया। 1898 में 14 वर्ष की अवसथा में आचार्य शुक्ल ने अंग्रेजी तथा उर्दू विषय से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। स्कूलों में तब हिन्दी विषय की व्यवस्था नहीं होती थी लेकिन अपनी पितामही के संस्कारों के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल तुलसी, सूर एवं अनय भक्त कवियों की रचनाएँ बहुत मनोयोग से पढ़ते रहे। 1901 में शुक्ल जी ने स्कूल फाइनल परीक्षा भी उत्तीर्ण कर जी। 1898 में ही आचार्य शुक्ल का विवाह हो गया था तथा 1902 ई. में गृह कलह के कारण वे अपने पिता को छोड़कर पत्नी के साथा अगौना आ गए। यही शुक्ल जी के प्रथम पुत्र श्री केशवचंद्र शुक्ल का जन्म हुआ।इसके पश्चात् 1903 में इनकी प्रथम पुत्री दुर्गावती का जन्म हुआ। सन् 1905 मिर्जापुर के जिला कलेक्टर विढंम ने आचार्य शुक्ल की कला-प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें मिर्जापुर जिले का नायब तहसीलदार नियुक्त कर दिया, परन्तु आचार्य शुक्ल ने तत्कालीन स्वदेश प्रेम की भावना एवं स्वाभिमानी स्वाभाव के कारण यह पद स्वीकार नहीं किया। 1904 ई. में शुक्ल जी लंदन मिशन स्कूल में ड्राइंग टीचर के रूप में नियुक्त हुए।

अपने संस्कारों के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल बचपन से ही अध्ययनशील थे। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण शुक्ल जी की मित्रमण्डली जिसमें समवयस्क एवं प्रौढ़ दोनों के लोग थे- तैयार हो गई अपनी इस मित्र एवं शुभचिंतक मण्डली से आचार्य शुक्ल का व्यक्तित्व शनै: शनै: और अधिक गंभीर एवं अध्ययनशील होता गया इस मित्र मण्डली में बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पं.केदारनाथ पाठक, पं. रामगरीब चौबे, पं. विन्ध्येश्वरी प्रसाद तिवारी, बाबू बलभद्र सिंह, बाबू काशी प्रसाद जायसवाल, पं. लक्ष्मीशंकर द्विवेदी जैसे प्रखर विचारक एवं विद्वान लोग शमिल थे। अपने गहन अध्यवसाय के चलते बहुत शीघ्र की आचार्य शुक्ल की मेघा कार्यशील हो गई। 1899ई. में ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार जोसेफ एडीसन के सुप्रसिद्ध निबंध **'प्लेजर्स ऑव इमैजिनेशन'** का अनुवाद 'कल्पना का आनंद' नाम से तथा कुछ ही समय बाद न्यूमैन के निबंध **'लिटरेचर'** का भावानुवाद 'साहित्य' शीर्षक से कर दिया था। अक्टूबर 1908 में आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'काशी नगरी प्रचारिणी सभा' की बृहद् योजना '**हिन्दी शब्द**

**सागर'** के सहायक सम्पादक बनकर सपरिवार काशी आ गए। यहाँ आकर वे कोश सम्पादन के साथ-साथ 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के कार्य भार भी संभालने लगे इस बीच उनका पारिवारिक-जीवन भी अपनी गति एवं प्रवृति से चलता रहा। 1912 तक आचार्य शुक्ल के परिवार में दो पुत्र एवं चार पुत्रियों का जन्म हो चुका था। 1918 ई. में आचार्य शुक्ल के पिता का देहान्त हो गया। सन् 1919 ई. में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की नियुक्ति काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में हो गई। आचार्य शुक्ल ने जीवन पर्यन्त विश्वविद्यालय की सेवा की। शुक्ल जी का व्यक्तिगत जीवन बहुत संघर्ष एवं कठिनाई में बीता। गंभीर अध्ययवसाय एवं प्रखर मेधा के कारण उन्होंने मृत्यु से पूर्व जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया (इकाई के अगले भाग में आप आचार्य शुक्ल के ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे) वे हिन्दी साहित्य की अपनी अमूल्य निधि है। परन्तु अपनी एकनिष्ठ साहित्य साधना और अपने स्वास्थ का ध्यान न रखने के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल को आरम्भ से ही कमजोर स्वास्थ का कष्ट उठाना पड़ा था। ''वे कई रोगों से पीड़ित थे। दमा का रोग प्रमुख था। अंतत: इसी रोग से 2 फरवरी, 1941 ई. को रात साढ़े नौ बजे 56 वर्ष 3 महीने 20 दिन की वय में उनकी इहलीला समाप्त हो गई। अनेक तरह की विपरीत परिस्थितियों एवं दबावों के बीच रहते हुए उन्होंने

हिन्दी की जो सेवा की वह श्लाध्य और अनुकरणीय है।"

### 9.3.2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यिक परिचय

हिन्दी साहित्य के आलोचना पुरूष माने जाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय निम्ललिखित है। विद्यार्थियों से आशा की जाती है कि प्रस्तुत सूची से प्रेरित होकर वे आचार्य शुक्ल की रचनाओं को उनके ऐतिहासिक क्रम में अपने अध्ययन के क्षितिज को विस्तार देते हुए पढ़ेगें तथा आचार्य शुक्ल के बहाने हिन्दी- साहित्य के वैचारिक क्रम को समझने का प्रयास करेंगे।

**(क) निबंध**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | भाव या मनोविकार | - सर्वप्रथम फरवरी 1915 में प्रकाशित। |
| 2. | उत्साह | - सर्वप्रथम – फरवरी 1915 में प्रकाशित |
| 3. | श्रृद्धा भक्ति | - सर्वप्रथम दिसम्बर 1916 में प्रकाशित |
| 4. | करूणा | - सर्वप्रथम दिसम्बर 1918 में प्रकाशित |
| 5. | लज्जा और ग्लानि | -सर्वप्रथम दिसम्बर 1918 में प्रकाशित |
| 6. | लोभ और प्रीति | -(पहले लोभ और प्रेम शीर्षक से) फरवरी- मार्च 1919 में प्रकाशित |
| 7. | घृणा | - सर्वप्रथम जुलाई 1912 में प्रकाशित |
| 8. | ईर्ष्या | - सर्वप्रथम जुलाई 1912 में प्रकाशित |

9. भय और क्रोध - सर्वप्रथम जुलाई 1912 में प्रकाशित (ये सभी नौ निबंध नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुए थे)
10. काव्य में प्राकृतिक दृश्य - सर्वप्रथम सन् 1922 में 'माधुरी' पत्रिका में प्रकाशित।
11. गोस्वामी तुलसीदास और लोक धर्म – सर्वप्रथम सन् 1923 में माधुरी पत्रिका में प्रकाशित।
12. साधारणीकरण - सर्वप्रथम सन् 1933 में द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ में प्रकाशित।
13. कविता क्या है -1909 ई. में प्रथम प्रारूप प्रकाशित।

**(ख) पुस्तकें-**

1. **विचार वीथी** - मनोविचार संबंधी सभी लेख, कविता क्या है? भारतेनदु हरिश्चन्द्र , तुलसी का भक्ति मार्ग निबंधों सहित सन् 1930 में प्रकाशित
2. **चिंतामणि, भाग 1** – (इंडियन प्रेस प्रयाग से सन् 1939 में प्रकाशित निबंध संग्रह) विचार वीथी(1930) पुस्तक के सभी निबंधों के अतिरिक्त 'साधरणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्र्यवाद ' मानस की धर्मभूमि', 'काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था , तथा 'रसात्मक बोध के विविध रूप' नामक नए निबंधों के साथ प्रकाशित ।
3. **चिंतामणि – भाग 2** – 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य' 'काव्य में रहस्यवाद' तथा काव्य में अभिव्यंजनावाद' इन तीन बड़े निबंधों का पुस्तक के रूप में सम्मिलित प्रकाशन सन् 1939 में 'काव्य में रहस्यवाद' सर्वप्रथम माधुरी पत्रिका 1922 में प्रकाशित हुआ तथा साहित्य भूषण कार्यालय, काशी द्वारा अलग से पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ। 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' सन् 1935 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इन्दौर के अध्यक्ष पद से दिया गया अध्यक्षीय भाषण है।
4. **त्रिवेणी -** सूरदास, तुलसीदास तथा जायसी पर आचार्य शुक्ल द्वारा लिखित आलोचनात्मक प्रबंधों के विशिष्ट अंशों का संग्रह । सम्पादक श्री कृष्णानंद, 1935
5. **रस मीमांसा** - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादिक, प्रथम प्रकाशन सन् 1949
6. **हिन्दी साहित्य का इतिहास** - (मूलत: हिन्दी शब्द सागर की भूमिका के रूप में लिखा गया) पुस्तक के रूप में 1929 ई. में प्रथम प्रकाशन- संशेधित 1940 ई.
7. **गोस्वामी तुलसीदास** - सर्वप्रथम 1924 ई. में प्रकाशित
8. **महाकवि सूरदास** - सर्वप्रथम 1924 ई. में प्रकाशित।
9. **बाबू राधाकृष्ण दास का जीवन चरित** – सन् 1913 में प्रकाशित।

**(ग) सम्पादित ग्रंथ-**

1. **तुलसी ग्रंथावली** (3 भाग) लाला भगवानदीन एवं ब्रजरत्न दास के साथ सम्पादित, सन् 1923
2. **जायसी ग्रंथावली**- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा सन् 1924 में प्रकाशित

3. **भ्रमर-गीत सार** (सूरदास के 403 पदों के शुद्धपाठ, अर्थ, टिप्पणी भूमिका सहित, साहित्य सेवा सदन, वाराणसी द्वारा सन् 1925 में प्रकाशित।
4. **वीर सिंह देवचरित** - केशवदास प्रणीत ग्रंथ के 14 वें प्रकाशन का सम्पादन,नागरी प्रचारिणी, सभा द्वारा 1926 में प्रकाशित।
5. **भारतेंदु -संग्रह** – सन् 1928 में प्रकाशित।

**(घ) अनुवादित ग्रंथ**

1. **कल्पना का आनंद** (जोसेफ एडिसन् द्वारा लिखित निबंध 'प्लेजर आफ इमैजिनेशन) लिखित 1901 प्रकाशित 1905।
2. **साहित्य** (न्युमैन का 'लिटरेचर' नामक निबंध)
3. **'मेगस्थनीज का भारतवर्षीय विवरण'** (डा. श्वान बक की पुस्तक 'मेगस्थनीज इंडिका) - 1906
4. **'राज्य प्रबंध शिक्षा'** (सर टी. माधव राव के 'माइनर हिंट्स' का अनुवाद) सर्वप्रथम 1913में प्रकाशित।
5. **आदर्श जीवन** (एडम्स विलियम डेवन पोर्ट की पुस्तक 'प्लेन लिविंग एण्ड हाई थिकिंग) पर लिखित निबंधों का संग्रह सन् 1914 में प्रकाशित।
6. **विश्व प्रपंच** (हैकल की पुस्तक 'रिड्ल ऑव द यूनिवर्स का अनुवा, लम्बी मौलिक भूमिका सहित सन् 1920 ई. में प्रकाशित।
7. **शशांक** (राखालदास बंद्योपाध्याय के बांग्ला उपन्यास का अनुवाद) 1922 ई.
8. **बुद्धचरित** ( एडविन आर्नल्ड के 'लाईट ऑफ एशिया का हिन्दी अनुवाद, मौलिक भूमिका सहित) सन् 1922 में प्राकशित (ब्रजभाषा में पद्यानुवाद)
9. **'वाट हैज इंडिया टू डू'** मौलिक अंग्रेजी निबंध, 1907 में प्रकाशित, **'हिन्दी एण्ड द मुसलमांस**, मौलिक अंग्रजी निबंध, लीडर के कई अंकों में 1917 में प्रकाशित, **'नॉन कोऑपरेशन एंड द नॉन मर्केंटाइल क्लासेज** एक्सप्रेस, पटना के कई अंकों में 1921 प्रकाशित मौलिक अंग्रेजी निबंध।

**(च) कविता**

**'मधुस्रोत** ' (1901 से 1929 तक लिखित कविताओं का संग्रह सनद्व 1971 में प्रकाशित

**(छ) निबंध संग्रह**

1. चिंतामणि भाग 3, (सं0) नामवर सिंह - 1983
2. चिंतामणि भाग 4, (सं0) कुसुम चतुर्वेदी - 2002

## 9.4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल : विश्लेषण एवं आलोचना

'निबंध' शब्द को परिभाषित करते हुए डॉ.जानसन ने लिखा है, ''निबंध मस्तिष्क की सहसा उठी हुई अनियंत्रित, विश्रंखलित , उन्मुक्त कल्पना शक्ति का परिणाम है'' यही कारण है कि निबंध के जन्मदाता मानटेन से लेकर वर्तमान तक ललित निबंधकार यह स्वीकार करते हैं कि निबंधों में मर्मस्पर्शिता व मौलिक व्यक्तित्व की छाप होनी चाहिए, सुप्रसिद्ध आलोचक हडसन ने तो 'व्यक्तिगत निबंध' को ही यथार्थ निबंध माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी **'हिंदी साहित्य का इतिहास'** (पृष्ठ-505) में निबंध साहित्य का विश्लेषण करते हुए लिखा है, ''आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबंध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व या व्यक्तिगत विशेषता हो। व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की श्रंखला रखी ही न जाए या जानबूझ कर जगह-जगह तोड़ दी जाए। एक ही बात को लेकर किसीका मन किसी संबंध-सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। वयक्तिगत विशेषता का मूल आधार यही है।'' उसी बात को सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. सत्येन्द्र ने स्पष्ट करते हुए लिखा '' निबंध के सम्बंध में यह बात आज निशिचत-सी मान ली गई है कि वह आत्माभिव्यक्ति का ही साधन है। अत: चाहे कोई विषय हो या विषय की कोई शाखा हो, उसमें व्यक्तिपरकता अवश्य होनी चाहिए।'' अपनी पुस्तक चिन्तामणि के आरम्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है, '' इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा के पड़ने वाले कुछ प्रदेश है। यात्रा के लिए निकलती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों में पहुँची है, वहाँ हृदय थोड़ा बहुत रमता और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ-कुछ सहता गया है। इस प्रकार यात्रा के श्रम का परिहार होता है। बुद्धि-पथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ-न-कुछ पाता रहा है। इस बात का निर्णय विज्ञ पाठकों पर छोड़ता हूँ कि निबंध विषयप्रधान है कि व्यक्तिप्रधान।'' परन्तु आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध वास्तव में कहीं विषय प्रधान है तो कही व्यक्ति प्रधान। उनके निबंधों में हृदय तथा बुद्धि तत्व का सुमधुर समावेश है। तब ही तो रोचकता लाने के लिए कहीं-कहीं लोक प्रचलित कथाओं को गूंथा है तो कहीं अपने जीवन से घटनाओं, दृश्यों आदि का प्रसंग देकर विषय को स्पष्ट किया है। साथ ही शैली में अद्भुत वक्रता, तीक्ष्णता, कथन की विचित्रता अर्थशक्ति से नीरसता को तो दूर किया ही है, जरूरत पड़ने पर चोट करने से भी नहीं चूके हैं। उनके निबंधों में प्राप्त व्यंग्य-आक्षेप, हास-परिहास तथा वक्रता की त्रिवेणी में पाठक सहज भाव से अवगाहन करता चलता है। विचारों की गहराई के बीच व्यक्तिगत बातों और व्यंग्य विनोद से व्याख्या भी रूचिकर हो गई है। निबंधों के माध्यम से आचार्य शुक्ल का सम्पूर्ण व्यक्तित्व पाठक के सामने आ जाता है।

हम देख सकते हैं कि निबंध साहित्य के माध्यम से आचार्य शुक्ल का लेखन मानदण्ड स्थापित करता है। शुक्ल जी के चिंतामणि में संकलित मनोविकार संबंधी निबंध अपनी वैचारिकी के कारण न केवल हिन्दी साहित्य अपितु अन्यान्य भारतीय साहित्य में भी

स्मरणीय रहेंगे। विद्वानों ने आचार्य शुक्ल के चिंतामणि में संकलित निबंधों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है।

(क) **भाव सबंधी निबंध-** 'करूणा', 'श्रृद्धा-भक्ति', 'उत्साह', 'लज्जा और ग्लानि', 'लोभ और प्रीति', 'ईर्ष्या', 'भय तथा क्रोध', 'घृणा', शीर्षक निबंध इसी कोटि में रखे जाऐंगे।

(ख) **आलोचनात्मक निबंध-** 'कविता क्या है', 'काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था', 'साधारणीकरण एंव व्यक्ति वैचित्र्यवाद ' तथा 'रसात्मक बोध के विविध' रूप इस श्रेणी के निबंध है। 'तुलसी का भक्ति-मार्ग', एवं 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र' भी इसी कोटि के निबंध है।

(ग) **आलोचनात्मक प्रबंध-** 'काव्य में रहस्यवाद', 'काव्यमें अभिव्यंजनावाद इस कोटि के निबंध हैं।

यदि शुक्ल जी के निबंधों को शास्त्रीय वर्गीकरण से अलग हट कर देखा जाए तो भी उनक निबंध अपना मापदण्ड स्वयं स्थापित करते चलते हैं। और जैसा कि डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है, ''उनकी विचार पद्धति बहुत कुछ सुनियोजित है। आरंभ में वे प्रतिपाद्य विषय को नपी-तुली शब्दावली में प्रस्तुत करते हैं। कोशिश करते है कि विवेच्य विषय की सभी विशेषताओं को सूत्रबह करकेउसे परिभाषित कर दिया जाए। 'श्रृद्धा-भक्ति', 'उत्साह', 'लज्जा', 'प्रेम', 'घृणा', 'भय', 'ईर्ष्या' एवं 'करूणा' आदि मनोभावों को उन्होंने परिभाषित भी किया है। उसके बाद विषय को स्पष्ट करने के लिए वे उससे सबंद्ध विचार-सूत्रों को विस्तार देने या फैलाने के क्रम में वे मनोभाव-विशेष की वर्गगत पहचान, उसके समकक्ष रखे जा सकने वाले मनोभावों से उसकी समता-विषमता, उसकी प्रेष्यता-उप्रेष्यता, समाज पर उसके शुभ-अशुभ प्रभावों आदि की चर्चा करते हैं। अपने निबंधों के अन्त में वे प्राय: अपने पूरे प्रतिपाद्य को साफ-सुथरे ढंग से संक्षेप में प्रस्तुत कर देते हैं'' यह सर्वविदित है कि शुक्ल जी के निबंध विचारात्मक शैली समास-प्रधान है। विचारों के गूढ़ गुंफन इसी शैली में संभव है। भावात्मक शैली का प्रयोग उन्होंने प्राय: वहाँ किया है, जहाँ उनका मन विधाता द्वारा रचित उस विश्व-काव्य की रमणीयता देखकर मुग्ध हो गया है या जहाँ अपने काव्य नायक राम के शील का उत्कर्ष देखकर वे स्वयं अभिभूत हो गए हैं। वर्णनात्मक शैली का प्रयोग शुक्ल जी ने बहुत कम किया है। विचारात्मक शैली शुक्ल जी की पहचान है। शुक्ल जी की शैली कहीं-कहीं उतनी सघन हो जाती है कि वे सूत्र-वाक्यों की रचना करने लगते हैं। उनके कुछ प्रमुख सूत्र-वाक्य निम्न हैं।

1. भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है। (भाव या मनोविकार)
2. यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रृद्धा जागरण है। (श्रद्धा-भक्ति)
3. मनुष्य की सजीवता मनोवेग या प्रवृत्ति में, भावों की तत्परता में है। (करूणा)
4. ज्ञान प्रसार के भीतर ही भाव प्रसार होता है। (कविता क्या है ?)

**बोध प्रश्न-**

**(क)लघु उत्तरीय प्रश्न**

(1) डॉ. जॉनसन के अनुसार निबंध की परिभाषा दीजिए।

(2) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के भाव संबंधी निबंध कौन-कौन से है।

**(ख) अति लघु उत्तरीय प्रश्न-**

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल के किन्हीं दो निबंधों के नाम लिखिए।

**(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न**

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल की जन्म एवं मृत्यु कब हुई थी ?

(2) 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' का प्रकाशन वर्ष लिखिए .

(3) आचार्य शुक्ल का प्रथम निबंध-संग्रह कौन सा था ?

**(ख) सही विकल्प चुलिए**

**(I) इनमें से कौन सा निबंध आचार्य शुक्ल द्वारा अनुवादित निबंध है-**

(क) मित्रता

(ख) विश्व प्रपंच

(ग) वॉट हैज इण्डिया टू डू

(घ) कल्पना का आनंद

## 9.5 निबंध का पाठ : करूणा

जब बच्चे को संबंध ज्ञान कुछ-कुछ होने लगता है तभी दु:ख के उस भेद की नींव पड़ जाती है जिसे करूणा कहते हैं। बच्चा पहले परखता है कि जैसे हम हैं वैसे ही ये और प्राणी भी हैं और बिना किसी विवेचना क्रम के स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा, वह अपने अनुभवों का आरोप दूसरे प्राणियों पर करता है। फिर कार्यकारण संबंध से अभ्यस्त होने पर दूसरों के दु:ख के कारण या कार्य को देखकर उनके दु:ख का अनुमान करता है और स्वयं एक प्रकार का दु:ख अनुभव करता है। प्राय: देखा जाता है कि जब माँ झूठमूठ 'ऊं ऊं ' करके रोने लगती है तब कोई-कोई बच्चे भी रो पड़ते हैं। इसी प्रकार जब उसके किसी भी भाई या बहिन को कोई मारने उठता है तब वे कुछ चंचल हो उठते हैं।

दु:ख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार के करूणा का उलटा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करूणा जिसके प्रति उत्पन्न होती है, उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। किसी पर प्रसन्न होकर भी लोग उसकी भलाई करते हैं। इस प्रकार पात्र की भलाई की उत्तेजना दु:ख और आन्नद दोनों की श्रेणियों में रखी गई है। आनंद की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है, जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दु:ख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र की भलाई की उत्तेजना करता है। लोभ से, जिसे मैंने आनंद की श्रेणी में रखा है, चाहे कभी-कभी और व्यक्तियों या वस्तुओं की हानि पहुँच जाए पर जिसे जिस व्यक्ति या वस्तु का लोभ होगा, उसकी हानि वह कभी न करेगा। लोभी महमूद के सोमनाथ को तोड़ा, पर भीतर से जो जवाहरात निकले उनको खूब सॅभालकर रखा। नूरजहॉ के रूप में लोभी जहॉगीर ने शेर अफगन को मरवाया, पर नूरजहां को बड़े चैन से रखा।

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता हे, उसके सुख और दु:ख का बहुत सा अंश दूसरे की क्रिया या अवस्था पर अवलंबित हो जाता है और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है। वह दूसरों के दु:ख से दु:खी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दु:ख से दु:खी होने का नियम जितना व्यापक है क्या उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी। मैं समझता हॅू, नहीं। हम अज्ञात कुलशील मनुष्य के दु:ख को देखकर भी दु:खी होते हैं। किसी दु:खी मनुष्य को सामने देख हम अपना दु:खी होना तब तक के लिए बन्द नहीं रखते जब तक कि यह न मालूम हो जाए कि वह कौन है, कहाँ रहता है और कैसा है, यह और बात है कि यह जानकर कि जिसे पीड़ा पहुँच रही है उसने कोई भारी अपराध या अत्याचार किया है, हमारी दया दूर या कम हो जाए। ऐसे अवसर पर हमारे ध्यान के सामने वह अपराध या अत्याचार आ जाता है और उस अपराधी या अत्याचारी का वर्तमान क्लेश हमारे क्रोध की तुष्टि का साधक हो जाता है।

सारांश यह है कि करूणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दु:ख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं। पर आनंदित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देखकर होते हैं जो या तो हमारा सुहृद या संबंधी हो अथवा अत्यंत सज्जन, शीलवान् या चरित्रवान् होने के कारण समाज का मित्र या हितकारी हो। यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ या कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनंद का उदय नहीं होता। इससे प्रकट है कि दूसरों के दु:ख से दु:खी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है। इसके अतिरिक्त दूसरों को सुखी देखकर जो आनंद होता है उसका न तो कोई अलग नाम रखा गया है और न उनमें वेग या प्रेरणा होती है। पर दूसरों के दु:ख के परिज्ञान से जो दु:ख होता है, वह करूणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना करता है। जबकि अज्ञात व्यक्ति के दु:ख पर दया बराबर उत्पन्न होती है तो जिस व्यक्ति के साथ हमारा अधिक संसर्ग होता है, जिसके गुणों से हम अच्छी तरह परिचित रहते हैं, जिसका रूप हमें भला मालूम होता है उसके उतने

ही दु:ख पर हमें अवश्य अधिक करूणा होगी। किसी भोली भाली सुंदरी रमणी को, किसी सच्चरित्र परोपकारी महात्मा को, किसी अपने भाई बंधु को दु:ख में देख, हमें अधिक व्याकुलता होगी। करूणा की तीव्रता का सापेक्ष विधान जीवन निर्वाह की सुगमता और कार्य विभाग की पूर्णता के उद्देश्य से समझना चाहिए। मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का आदि संस्थापक यही मनोविकार है। मनुष्य की सज्जनता या दुर्जनता अन्य प्राणियों के साथ उसके संबंध या संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होत है। यदि कोई मनुष्य जन्म से ही किसी निर्जन स्थान में अपना निर्वाह करे तो उसका कोई कर्म सज्जनता या दुर्जनता की कोटि में न आएगा। उसके सब कर्म निर्लिप्त होंगे। संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दु:ख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। अत: सबके उद्देश्य को एक साथ जोड़ने से संसार का उद्देश्य सुख का स्थापन और दु:ख का निराकरण हुआ। अत: जिन कर्मो से संसार के इस उद्देश्य के साधन हों वे उत्तम हैं। प्रत्येक प्राणी के लिए उससे भिन्न प्राणी संसार है। जिन कर्मो से दूसरे के वास्तविक सुख का साधन और दु:ख की निवृत्ति हो वे शुभ और सात्विक हैं तथा जिस अंत:करणवृति से इन कर्मों में प्रवृत्ति हो वह सात्विक है। कृपा या अनुग्रह से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है, पर एक तो कृपा अनुग्रह में आत्मभाव छिपा रहता है और उनकी प्रेरणा से पहुँचाया हुआ सुख एक प्रकार का प्रतिकार है। दूसरी बात यह है कि नवीन सुख की योजना की अपेक्षा प्राप्त दु:ख की निवृत्ति की आवश्यकता अत्यंत अधिक हैं।

दूसरे के उपस्थित दु:ख से उत्पन्न दु:ख का अनुभव अपनी तीव्रता के कारण मनोविकारों की श्रेणी में माना जाता है पर अपने भावी आचरण द्वारा दूसरे के संभाव्य दु:ख का ध्यान या अनुमान, जिसके द्वारा हम ऐसी बातों से बचते हें जिनसे अकारण दूसरे को दु:ख पहंचे, शील या साधारण सद्वृति के अंतर्गत समझा जाता है। बोलचाल की भाषा में तो 'शील' शब्द से चित्त की कोमलता या मुरौवत ही का भाव समझा जाता है, जैसे- 'उनकी आँखों में शील नहीं है', 'शील तोड़ना अच्छा नहीं', दूसरों का दु:ख दूर करना और दूसरों को दु:ख न पहुँचना इन दोनों बातों का निर्वाह करने वाला नियम न पालने का दोषी हो सकता है, पर ऐसा नहीं जिससे किसी का कोई काम बिगड़े या जी दुखे। यदि वह किसी अवसर पर बड़ों की कोई बात न मानेगा तो इसलिए कि वह उसे ठीक नहीं जॅचती या वह उसके अनुकूल चलने में असमर्थ है, इसलिए नहीं कि बड़ों का अकारण जी दुखे। मेरे विचार में तो 'सदा सत्य बोलना', 'बड़ों का कहना मानना' ये नियम के अंतर्गत हैं, शील या सद् भाव के अंतर्गत नहीं। झूठ बोलने से बहुधा बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं इसी से उसका अभ्यास रोकने के लिए यह नियम कर दिया गया कि किसी अवस्था में झूठ बोला ही न जाए। पर मनोरंजन, खुशामद और शिष्टाचार आदि के बहाने संसार में बहुत सा झूठ बोला जाता है जिस पर कोई समाज कुपित नहीं होता। किसी-किसी अवस्था में तो धर्मग्रन्थों में झूठ बोलने की इजाजत तक दे दी गई है, विशेषत: जब इस नियम भंग द्वारा अंत:करण की किसी उच्च और उदार वृति का साधन होता हो। यदि किसी के झूठ बोलने से कोई निरपराध और निस्सहाय व्यक्ति अनुचित दंड से बच जाए तो ऐसा झूठ बोलना बुरा नहीं बतलाया गया है क्योंकि नियम शील या सद्वृति का साधक हैं, समकक्ष नहीं।

मनोवेग वर्जित सदाचार दंभ या झूठी कवायद है। मनुष्य के अंत:करण में सात्विकता की ज्योति जगानेवाली यही करूणा है। इसी से जैन और बौद्धधर्म में इसको बड़ी प्रधानता दी गई है और गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है-

**पर उपकार सरिस न भलाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।**

यह बात स्थिर और निर्विवाद है कि श्रद्धा का विषय किसी न किस रूप में सात्विक शील ही होता है। अत: करूणा और सात्विकता का संबंध इस बात से और भी सिद्ध होता है कि किसी पुरूष को दूसरे पर करूणा करते देख तीसरे को करूणा करने वाले पर श्रद्धा उत्पन्न होती है। किसी प्राणी में और किसी मनोवेग को देख श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। किसी को क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा, आनंद आदि करते देख लोग उस पर श्रद्धा नहीं कर बैठते। क्रिया में तत्पर करने वाली प्राणियों की आदि अंत:करणवृति मन का मनोवेग है। अत: इन मनोवेगों में जो श्रद्धा का विषय हो वही सात्विकता का आदि संस्थापक ठहरा। दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि मनुष्य के आचरण के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं, बुद्धि नहीं। बुद्धि दो वस्तुओं के रूपों को अलग-अलग दिखला देगी, यह मनुष्य के मन के वेग या प्रवृति पर है कि वह उनमें से किसी एक को चुनकर कार्य में प्रवृत्त हो। यदि विचार कर देखा जाए तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि अंत:करण की सारी वृत्तियॉ केवल मनोवेगों की सहायक हैं, वे भावों या मनोवेगों के लिए उपयुक्त विषय मात्र ढूंढती हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति पर भाव को और भावना को तीव्र करने वाले कवियों का प्रभाव प्रकट ही है।

प्रिय के वियोग से जो दु:ख होता है उसमें कभी-कभी दया या करूणा का भी कुछ अंश मिला रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि करूणा का विषय दूसरे का दु:ख है। अत: प्रिय के वियोग में इस विषय की भावना किस प्रकार होती है, यह देखना है। प्रत्यक्ष निश्चय कराता है और परोक्ष अनिश्चय में डालता है। प्रिय व्यक्ति के सामने रहने से उसके सुख का जो निश्चय होता रहता है, वह उसके दूर होने से अनश्चिय में परिवर्तित हो जाता है। अत: प्रिय के वियोग पर उत्पन्न करूणा का विषय प्रिय के सुख का निश्चय है। जो करूणा हमें साधारणजनों के वास्तविक दु:ख के परिज्ञान से होती है, वही करूणा हमें प्रियजनों के सुख के अनिश्चय मात्र से होती है। साधारणजनों का तो हमें दु:ख असह्य होता हैद्व पर प्रियजनों के सुख का अनिश्चय ही। अनिश्चय बात पर सुखी या दु:खी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है, इसी से इस प्रकार के दु:ख या करूणा को किसी-किसी प्रांतिक भाषा में 'मोह' भी कहते हैं। सारांश यह कि प्रिय से वियोगजनित दु:ख में जो करूणा का अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। राम जानकी के वन चले जाने पर कौशल्या उनके सुख के अनिश्चय पर इस प्रकार दु:खी होती है-

**बन को निकरि गए दोउ भाई।**
**सावन गरजै, भादों बरसै, पवन चलै पुरवाई।**
**कौन बिरिछ तर भीजत ह्वै हैं राम लखन दोउ भाई। (गीतावली )**

प्रेमी को यह विश्वास कभी नहीं होता कि उसके प्रिय के सुख का ध्यान जितना वह रखता है उतना संसार में और भी कोई रख सकता है। श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा चले गए जहॉ सब प्रकार का सुख वैभव था, पर यशोदा इसी सोच में मरती रहीं कि-

**प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन मांगे दैहै ?**
**को मेरे बालक कुंवर कान्ह को छिन-छिन आगे लैहै ?**

और उद्धव से कहता है-

**संदेसो देवकी सों कहियो।**
**हों तो धाय तिहारो सुत को, कृपा करत ही रहियो।।**
**उबटन, तेल और तातों जल, देखत ही भजि जाते।**
**जोइ जोइ मांगत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि कै न्हाते।।**
**तुम तो टेब जानतिहि ह्वैहो, तऊ मोहि कहि आवै।**
**प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावे।।**
**अब यह सूर मोहि निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच।**
**अब मेरे अलकलड़ैते लालन ह्वैहै करत सैंकोच।।**

वियोग की दशा में गहरे प्रेमियों को प्रिय के सुख का अनिश्चय ही नहीं, कभी-कभी घोर अनिष्ट की आशंका तक होती है, जैसे एक पति वियोगिनी संदेह करती है-

**नदी किनारे धुंआ उठत है, मैं जानूं कुछ होय।**
**जिसके कारण मैं जली, वही न जलता होय।।**

शुद्ध वियोग का दु:ख केवल प्रिय के अलग हो जाने की भावना से उत्पन्न क्षोभ या विषाद है जिसमें प्रिय के दु:ख आदि की कोई भावना नहीं रहती।

जिस व्यक्ति से किसी की घनिष्ठता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार हाता है। उसके जीवन का बहुत सा अंश उसी के संबंध द्वारा व्यक्त होता है। उसके जीवन का बहुत सा अंश उसी के संबंध द्वारा व्यक्त होता है। मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है। संसार तो कहने सुनने के लिए है, वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं जिनसे उसका संसर्ग या व्यवहार है। अत: ऐसे लोगों में से किसी का दूर होना उसके संसार के एक प्रधान अंश का कट जाना या जीवन के एक अंग का खंडित हो जाना है। किसी प्रिय या सुहृदय के चिरवियोग या मृत्यु के शोक के साथ करूणा या दया का भाव मिलकर चित्त को बहुत व्याकुल करता है। किसी के मरने पर प्राणी उसके साथा किए हुए अन्याय या कुव्यवहार तथा उसकी इच्छापूर्ति करने में अपनी त्रुटियों का स्मरण कर और यह सोचकर कि उसकी आत्मा को संतुष्ट करने की भावना सब दिन के लिए जाती रही, बहुत अधीर और विकल होते हैं। सामाजिक जीवन की

स्थिति और पुष्टि के लिए करूणा का प्रसार आवश्यक है। समाजशास्त्र के पश्चिमी ग्रंथकार कहा करें कि समाज में एक दूसरे की सहायता अपनी अपनी रक्षा के विचार से की जाती है; यदि ध्यान से देखा जाय तो कर्मक्षेत्र में परस्पर सहायता की सच्ची उत्तेजना देने वाली किसी न किसी रूप में करूणा ही दिखाई देगी। मेरा यह कहना नहीं कि परस्पर की सहायता का परिणाम प्रत्येक का कल्याण नहीं है। मेरेकरने का अभिप्राय है कि संसार में एक दूसरे की सहायता विवेचना द्वारा निश्चित इस प्रकार के दूरस्था परिणाम पर दृष्टि रखकर नहीं की जाती बल्कि मन का स्वत: प्रवृत्त करनेवाली प्रेरणा से की जाती है। दूसरे की सहायता करने से अपनी रक्षा की भी संभावना , इस बात या उद्देश्य का ध्यान प्रत्येक,विशेषकर सच्चे सहायक को तो नहीं रहता। ऐसे विसतृत उद्देश्यों का ध्यान तो विश्वात्मा स्वयं रखती है; वह उसे प्राणियों की बुद्धि ऐसी चंचल और मुंडे मुंडे भिन्न वसतुके भरोसे नहीं छोड़ती। किस युग में और किस प्रकार मनुष्यों ने समाज रक्षा के लिए एक दूसरे की सहायता करने की गोष्ठी की होगी, यह समाजशास्त्र के बहुत से वक्ता लोग ही जानते होंगे। यदि परस्पर सहायता की प्रवृत्ति पुरखों की उस पुरानी पंचायत ही के कारण होती और यदि उसका उद्देश्य वही तक होता जहाँ तक समाजशास्त्र के वक्ता बतलाते हैं , तो हमारी दया मोटे, मुस्टंडे और समर्थ लोगों पर जितनी होती उतनी दीन,अशक्त और अपाहिज लोगों पर नहीं, जिनसे समाज को उतना लाभ नहीं ।पर इसका बिलकुल उलटा देखने में आता है। दु:खी व्यक्ति जितना ही असहाय और असमर्थ होगा उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करूणा होगी। एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करूणा होगी उतनी एक सिपाही या पहलवान को पिटते देख नहीं। इसस स्पष्ट है कि परस्पर सहाय्य के जो व्यापक उद्देश्य हैं उनको धारण करने वाला मनुष्य का छोटा सा अंत:करण नहीं, विश्वात्मा है। दूसरों के, विशेषतया अपने परिचितों के, थोड़े क्लेश या शोक पर जो वेग रहित दु:ख होता है, उसे सहानुभूति करते हैं। शिष्टाचार में उस शब्द का प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि यह निकम्मा सा हो गया है। अब प्राय: इस शब्द से हृदय का काई सच्चा भाव नहीं उपजता । सहानुभूति के तार, सहानुभूति की चिट्ठियाँ लोग यों ही भेजा करते हैं। यह छद्म शिष्टता मनुष्य के व्यवहार क्षेत्र से सच्चाई के अंश को क्रमश: चरती जा रही हैं ।

करूणा अपना बीज अपने आलंबन या पात्र में नहीं फेंकती है अर्थात् जिस पर करूणा की जाती है वह बदले में करूणा करने वाले पर भी करूणा नहीं करता, जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है - बल्कि कृतज्ञ होता अथवा श्रद्धा या प्रीति करता है । बहुत सी औपन्यासिक कथाओं में यह बात दिखाई गई है कि युवतियाँ दुष्टों के हाथ से अपना उद्धार करने वाले युवकों के प्रेम में फँस गई हैं। कोमल भावों की योजना में दक्ष बँगला के उपन्यास लेखक करूणा और प्रीति के मेल से बड़े ही प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित करते हैं। मनुष्य के प्रत्यक्ष ज्ञान में देश और काल की परिमिति अत्यंत संकुचित होती है। मनुष्य जिस वस्तु को जिस समय और जिस स्थान पर देखता है उसकी उसी समय और उसी स्थान की अवस्था का अनुभव उसे होता है। पर स्मृति, अनुमान या दूसरों से प्राप्त ज्ञान के सहारे मनुष्य का ज्ञान इस परिमिति को लांघता हुआ अपना देशकाल संबंधी विस्तार बढ़ाता है।

प्रस्तुत विषय के संबंध में उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विसतार कभी कभी आवश्यक होता है। मनोविकारों की उपयुक्तता कभी कभी उस विस्तार पर निर्भर रहती है।किसी मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है, पर जब हम सुनते हैं कि कई बार वह बड़े-बड़े अपराध कर चुका है, उससे आगे भी ऐसे ही अत्याचार करेगा, तो हमें अपनी दया की अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है। ऊपर कहा जा चुका है कि स्मृति और अनुमान आदि भावों या मनोविकारों के केवल सहायक हैं अर्थात् प्रकारांतर से वे उनके लिए विषय उपस्थित करते हैं। वे कभी तो आप से विषयों को मन के सामने लाते हैं, कभी किसी विषय के सामने आने पर उससे संबंध (पूर्वापर व कार्यकारण संबंध) रखनेवाले और बहुत से विषय उपस्थ्िात करते हैं। जो कभी तो सब के सब एक ही भाव के विषय होते हैं और उस प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न भाव को तव्र करते हैं; कभी भिन्न भिन्न भावों के विषय से उत्पन्न भावों को परिवर्तित या धीमा करते हैं। उससे यह स्पष्ट है कि मनोवेग या भावों को मंद या दूर करनेवाली, स्मृति, अनुमान या बुद्धि आदि कोई दूसरी अंत:करणवृत्ति नहीं है, मन का दूसरा भाव या वेग ही है।

मनुष्य की सजीवता मनोवेग या प्रवृत्ति में, भावों की तत्परता में है। नीतिज्ञों और धार्मिकों का मनोविकारों को दूर करने का उपदेश घोर पाषंड है। इस विषय में कवियों का प्रयत्न ही सच्चा है जो मनोविकारों पर सान ही नहीं चढ़ाते बल्कि उन्हे परिमार्जित करते हुए सृष्टि के पदार्थो के साथ उनके उपयुक्त संबंध निर्वाह पर जोर देते हैं। यदि मनोवेग न हो तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि के रहते भी मनुष्य बिलकुल जड़ है। प्रचलित सभ्यता और जीवन की कठिनता से मनुष्य अपने इन मनोवेगों के मारने और अशक्त करने पर विवश होता जाता है। वन, नदी, पर्वत आदि को देख आनंदित होने के लिए अब उसे ह्दय में उतनी जगह नहीं। दुराचार पर उसे क्रोध या घृणा होती है पर झूठे शिष्टाचार के अनुसार उसे दुराचारी की मुँह पर प्रशंसा करनी पड़ती है। जीवन निर्वाह की कठिनता से उत्पन्न स्वार्थ की शुष्क प्रेरणा के कारण उसे दूसरे के दु:ख की ओर ध्यान देने,उस पर दया करने और उसके दु:ख की निवृत्ति का सुख प्राप्त करने की फुरसत नहीं। इस प्रकार मनुष्य ह्दय को दबाकर केवल क्रूर आवश्यकता और कृत्रिम नियमों के अनुसार ही चलने पर विवश और कठपुतली सा जड़ होता जाता है। उसकी भवुकताकानाश होता है। पाखंडी लोग मनोवेगोंका सच्चा निर्वाह न देख, हताश हो मुँह बनाकर कहने लगे हैं-''करूणा छोडों, प्रेम छोड़ो, आनंद छोड़ो। बस हाथ पैर हिलाओं, काम करों।''

यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है और मनोवेग के अनुसार व्यवहार करना और बात; पर अनुसारी परिणाम के निरंतर अभाव से मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो चार बार उसे दया उत्पन्न होगी; पर जब बार-बार दया की प्रेरणा के अनुसार कोई परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे-धीरे उसकी दया का अभ्यास कम होने लगेगा यहाँ तक कि उसकी दया की वृत्ति ही मारी जाएगी। बहुत से ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जिनमें करूणा आदि मनोवेगों के अनुसार काम नहीं किया

जा सकता। पर ऐसे अवसरों की संख्या का बहुत बढ़ना ठीक नहीं है। जीवन में मनोवेगों के अनुसार परिणामों का विरोध प्राय: तीन वस्तुओं से होता है-

1 आवश्यकता 2. नियम, और 3. न्याय।

हमारा कोई नौकर बहुत बुड्ढ़ा और कार्य करनेमें अशक्त हो गया है जिससे हमारे काम में हर्ज होता है। हमें उसकी अवस्था पर दया जो आती है पर आवश्यकता के अनुरोध से उसे अलग करना पड़ता है। किसी दुष्ट अफसर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य करनेकी कौन कहे, उसका चिह् तक नहीं प्रकट होने देते। यदि कहीं पर यह नियम है कि इतना रूपया देकर लोग कोई कार्य करने पाएँ तो जो व्यक्ति रूपया वसूल करने पर नियुक्त होगा वह किसी ऐसे दीन अकिंचन को देख जिसके पास एक पैसा भी न होगा, दया तो करेगा पर नियम के वशीभूत हो उसे वह उस कार्य को करने से रोकेगा। राजा हरिश्चंद्र ने अपनी रानी शैव्या से अपने ही मृत पुत्र के कफन का टुकड़ा फड़वा नियम का अद्भुत पालन किया था। पर यह समझ रखना चाहिए कि यदि शैव्या के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री होती तो राजा हरिचंद्र के उस नियम पालन का उतना महत्व न दिखाई पड़ता; करूणा ही लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर अधिक खींचती है। करूणा का विषय दूसरे का दु:ख है। अपना दु:ख नहीं। आत्मीय जनों का दु:ख एक प्रकार से अपना ही है। इससे राजा हरिश्चंद्र के नियम पालन का जितना स्वार्थ से विरोध था उतना करूणा से नहीं।

न्याय और करूणा का विरोध प्राय: सुनने में आता है। न्याय से ठीक प्रतिकार का भाव समझा जाता है। यदि किसी ने हमसे 1000 रूपये उधार लिए है तो न्याय यह है कि वह हमें 1000 रूपये लौटा दे। यदि किसी ने कोई अपराध किया तो न्याय यह है कि उसको दंड मिले। यदि 1000 रू लेने के उपरांत उस व्यक्ति पर कोई आपत्ति पड़ी और उसकी दशा अत्यंत सोचनीय हो गई तो न्याय पाने के विचार का विरोध करूणा कर सकती है। इसी प्रकार यदि अपराधी मनुष्य बहुत रोता, गिड़गिड़ाता और कान पकड़ता है तथा पूर्ण दंड की अवस्था में अपने परिवार की घोर दुर्दशा का वर्णन करता है, तो न्याय के पूर्ण निर्वाह का विरोध करूणा कर सकती है। ऐसी अवस्थाओं में करूणा करनेका सारा अधिकार विपक्षी अर्थात् जिसका रूपया चाहिए या जिसका अपराध किया गया है उसको है, न्यायकर्ता या तीसरे व्यक्ति को नहीं। जिसने अपनी कमाई के 1000 रू अलग किए या अपराध द्वारा जो क्षतिग्रस्त हुआ. विश्वात्मा उसी के हाथ में करूणा ऐसी उच्च सद्वृत्ति के पालन का शुभ अवसर देती है। करूणा सेंत का सौदा नहीं है। यदि न्यायकर्ता को करूणा है तो वह चाहे तो दुखिया ऋणी को हजार, पांच सौ अपने पास से दे दे या दंडित व्यक्ति तथा उसके परिवार की और प्रकार से सहायता कर दे। उसके लिए भी करूणा का द्वारा खुला है।

## 9.6 निबंध का सार : करुणा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित मनोविकार सम्बंधी निबंधों में 'करूणा' का अत्यधिक महत्त्व है। यह निबंध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सर्वश्रेष्ठ निबंधों में से एक है।

दूसरों के दुख के परिज्ञान से जो दुख होता है वह करूणा दया आदि नामों से पुकारा जाता है। करूणा दुख का ही एक भेद है। करूणा का उल्टा क्रोध है क्योंकि उसके उत्पन्न होने पर हम दूसरों की हानि की चेष्टा करते हैं। करूणा उत्पन्न होने पर उसकी भलाई का उद्योग करते हैं। दूसरी तरफ लोभ आनंद की श्रेणी में है पर लोभी अपनी प्रिय वस्तु को हानि नहीं पहुँचाता है, उल्टे रक्षा करता है।

मनष्य समाजिक प्राणी है और उसके सुख-दुख का बहुत सा अंश दूसरों के कामों और उनकी अवस्था पर निर्भर करता है। दूसरों के दुख से दुखी होना और सुख से सुखी होना उसके लिए स्वाभाविक है। जहाँ यह नियम है वहाँ यह भी देखा गया है कि हम दूसरों के सुख से सुखी होने की अपेक्षा उनके दुख से दूखी अधिक और शीघ्र होते हैं। करूणा की तीव्रता का सापेक्ष-विधान जीवन निर्वाह की सुगमता और कार्यविभाग की पूर्णता के उद्देश्य से समझना चाहिए यह भी स्वाभाविक ही है कि परिचितों के दुख पर हम अपरिचितों के दुख से अधिक दुखी होते हैं।

कृपा और करूणा में भेद यह है कि कृपा में आत्मभाव छिपा रहता है और उसके द्वारा पहुँचाया सुख एक प्रकार का प्रतीकार है। पर करूणा द्वारा पहुँचाया सुख दु:ख की निवृत्ति है जिसकी जीवनमें अत्यन्त आवश्यकता है। प्रिय के वियोजनित दुख में करूणा का जो अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। अनिश्चयत बात पर दुखी होना ज्ञानियों के निकट अज्ञान है। इसीलिए किसी प्रान्तीय भाषा में करूणा को मोह भी कहते है। मनुष्य संसार आपने आप बनाता है। संसार कहने सुनने के लिए है।

वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं, जिनसे उसका संसर्ग या व्यवहार है। सहानुभूति उस वेग सहित दु:ख को कहते हैं जो अपने परिचितों के थोड़े से क्लेश या दु:ख को देखकर होती है। करूणा में आदान – प्रदान का भाव नहीं रहता तथा साथ ही स्मृति और अनुमान, भावों के केवल सहायक हैं। जीवन में मनोवेगों को मारना अच्छा नहीं है। करूणा का सीधा और व्यवहारिक संबंध हृदय की सत्यता, तटस्थता एवं आत्मिक त्याग से है। करूणा के साथ-साथ शुद्ध असत्यता को नहीं रखा जा सकता ,करुणा शुद्ध, सात्विक मनोविकार है।

## 9.7 करूणा : संदर्भ सहित व्याख्या

**(क) जब बच्चे को ................................................... चैन से रक्खा।**

**शब्दार्थ -**

संबंध ज्ञान – संयोग या संगति से प्राप्त ज्ञान

करूणा - दुख का वह भेद जिसका संबन्ध ज्ञान से है

विवेचनक्रम - भले बुरे ज्ञान, निर्णय

आरोप - संस्थापन, कल्पाना

कार्य- कारण सम्बन्ध- प्रत्येक कार्य के मूल में एक कारण होता है

अभ्यस्त - आदी, चेष्टा, प्रयास

उद्योग – प्रयत्न उत्तेजना, प्रोत्साहन

**वाक्यार्थ -** बिना संबंध की प्रवृत्ति को जाने दुख की आधारभूमि पर स्थापितकरूणा नाम मनोविकार की नींव नहीं पड़ती जब एक छोटा बच्चा पहले-पहले अपने और दूसरे व्यक्ति के मध्य के संबंध को जानता है तभी वह करूणा के स्वरुप या मानसिकता को समझ सकता है। एक बार संबंधों की पहचान हो जाने पर ही दुख की अधिकता के फलस्वरूप मानव दुख की वास्तविक अनुभूति को समझता चलता है। दुख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार से करूणा का उल्टा क्रोध है. करूणा और क्रोध दोनों की उत्पत्ति कुछ दुख से है पर परिणाम दोनों का भिन्न है। करूणा के द्वारा हम दूसरे को लाभ पहुंचाते हैं परन्तु क्रोध के द्वारा हम दूसरे को हानि ही पहुंचाना चाहते हैं।

**(ख) ऊपर कहा जा.......................................... हो जाता है।**

**शब्दार्थ -**

अवलम्बित - आधारित

प्रवाह - प्रसार, फैलाव

तुष्टि - सुख सनतोष, आनंद

अपेक्षा - आवश्यकता

| | | |
|---|---|---|
| सुहृदय | - | प्रिय, |
| परिज्ञान | - | निश्चय, परिचय |
| निर्जन | - | एकान्त, निर्वाह- वयतीत, कोटि-श्रेणी |
| निर्लिप्त | - | नि:स्वार्थ |
| वितृत्ति | - | छुटकारा, त्याग |
| निराकरण | - | दूर करना, त्याग |
| प्रतीकर | - | बदला |
| आत्मभाव | - | अपनापन |

**वाक्यार्थ-** जैसा कि पहले कहा गया था कि जब मनुष्य के मनोविकारों के क्षेत्र का फैलाव मनुष्य के सामाजिक संबंधों की अपेक्षा में होते हैं । जैसे-जैसे मनुष्य का सामाजिक दायरा बढ़ता जाता है वैसे-वैसे मनुष्य का आन्तरिक मनोजगत भी अपना विस्तार करता जाता है। समान्यत: हमें दूसरों का दुख देखकर दुख होता है तथा उत्साह एवं सुख देखकर उत्साहित एवं सुखी अनुभव करता है। निबंधकार मानवीय स्वाभाव की एक विशेष प्रवृत्ति की तरफ इंगित करते हुए कहता है कि यह बात सत्य है कि हम किसी अंजान व्यक्ति के दुख को देखकर स्वयं दुखित हो जाते हैं परन्तु किसी राह चलते अंजान व्यक्ति की खुशी को देखकर खुशी का अनुभव नहीं करने लगते हैं । साथ ही यदि किसी व्यक्ति के दुख का कारण उसके बुरे तथा अमानवीय कार्य है तो उस स्थिति में हमारा उस अपराधी व्यक्ति के लिए दुख खत्म होकर क्रोध का रूप धारण कर लेता है।

**(ग) दूसरों के दुख ..............................................नहिं अधमाई।**

| | | | |
|---|---|---|---|
| **शब्दार्थ-** | तीव्रता | - | अधिक्य, तेजी |
| | शील | - | सदाचार |
| | सद्वृत्ति | - | बोलचाल में चित्त की कोमलता |

| | | |
|---|---|---|
| कुपित | - | क्रोधित, नाराज |
| समकक्ष | - | समान |
| वर्जित | - | रहित, त्याज्य |

**वाक्यार्थ -** आचार्य शुक्ल कहते हैं कि सुख एवं दुख मनुष्य के भीतर मनोजनित मनोविकारों की विशिष्ट श्रेणी के भाव है। शील या सदाचार सम्बंधी करूणा और सहानुभूति में अनतर है। पहले में विवेक है, दूसरे में प्रबल गति। शील का सीधा संबंध मानव के भीतर स्थापित नैतिक सत्यता एवं उसकी दृढ़ता से है। उसके समकक्ष रूखे नियम बंधन को नहीं रखा जा सकता है. सिद्धान्तों की सहायता से आप सदाचार का निर्माण कर सकते हैं-उनसे सहायता ले सकते हैं पर नियम और शील को बराबर कहना बड़ी भूल कही जाएगी शील का संबंध भान सत्य से न होकर मनुष्य की मूल नैतिक प्रवृत्ति से होता है जबकि नियम- सिद्धान्त का ताल्लुक मात्र अपराध-दण्ड विधान से होता है। जिस काम के करने को अन्त: कारण स्वीकार न करेंउसे करना पाखण्ड है। बिना वास्तविक भावों के आचरण करना दिखावा है, मनुष्य के मन में सात्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करूणा है। महाकवि तुलसीदास के शब्दों को उद्धृत करते हुए लेखक कहता है कि- ‘’दूसरों का अच्छा करने के अतिरिक्त और कोई बड़ा धर्म नहीं एवं साथ ही दूसरों को पीड़ा पहुँचने के अतिरिक्त और कोई बड़ी दुष्टता नहीं।

**(घ) जिस व्यक्ति ...............................................विकल होते हैं।**

| | | | |
|---|---|---|---|
| **शब्दार्थ –** | व्यक्त | – | प्रगट |
| | खण्डित | - | टूटना, भ्रष्ट होना |
| | कुव्यवहार | - | दुर्व्यवहार |
| | विश्वात्मा | - | ईश्वर |
| | चंचल | - | अस्थिर |
| | मुण्डे-मुण्डे भिन्न वस्तु- | | प्रत्येक व्यक्ति अलग है |
| | वक्ता | - | भाषणकर्ता, बोलने वाला। |

**वाक्यार्थ -** अपने जीवन में हम जिस भी व्यक्ति से घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं वह हमारे जीवन के बहुत से मनोभावों से सम्बंध रखते हैं हम अपना सामाजिक जीवन स्वयं ही निर्मित करते हैं। हम जिन व्यक्तियों के साथ रहते हैं वही हमारे सामाजिक जीवन की प्रवृत्ति को निश्चित करते हैं. करूणा का तीव्रता के साथ हमारे भीतर उपस्थित होना इसी प्रिय व्यक्ति के आंशिक अथवा पूर्ण वियोग पर निर्भर करता है. वियोग के पश्चात् उस व्यक्ति से संबंध स्मृतियाँ हमारे मन में निरंतर उपस्थित होती है तथा पूर्व में घटित प्रत्येक घटना का स्मरण क्रमश: होता जाता है।

**(ड) करूणा अपना बीज ............................................. न रहती है।**

| | | | |
|---|---|---|---|
| **शब्दार्थ** | आलंबन | - | सहारा, आधार, कारण |
| | औपन्यासिक | - | उपन्यासपरक, उपन्यास से संबंधित |
| | प्रभावोत्मादक | - | अति प्रभावकारी |
| | दक्ष | - | चतुर प्रवीण |
| | परिमित | - | सीमा के भीतर, छोटा |

**वाक्यार्थ -** प्रस्तुत गद्यांश की प्रथम पंक्ति एक विशिष्ट सूक्ति है जो कि सम्पूर्ण निबंध की बीज पंक्ति है । लेखक कहता है कि किसी के प्रति प्रदर्शित करूणा के बदले कभी करूणा नहीं पाई जाती है। यदि हम किसी के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हैं तो बदले में प्रेम पाते हैं वैसे ही यदि हम किसी के प्रति क्रोध प्रदर्शित करते हैं तो बदले में हमें भी क्रोध अथवा घृणा प्राप्त होती है परन्तु यदि हम किसी के प्रति करूणा प्रदर्शित करते हैं तो उसके बदले हमें करूणा प्राप्त नहीं होती है। आचार्य शुक्ल के अनुसार आमान्य रूप से मनुष्य का ज्ञान संकुचित होती है। मनुष्य को जितना जगत-रूप-व्यापार सीधे दिखई देता है वही उसका ज्ञान क्षेत्र होता है परनतु अपनी स्मृति एवं मनोविकारों की सहायता से मनुष्य अपने ज्ञान एवं अनुभव क्षेत्र का बहुविध विकास करता चलता है। मानव मन के मनोविकारों का वास्तविक महत्व यही है कि वह मानव मात्र के ज्ञान, अनुभव व समाज का विस्तार प्रत्यक्ष दृष्टि की अपेक्षा अधिक करता है।

## 9.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सम्पूर्ण व्यक्तिगत एवं साहित्यिक जीवन को जान चुके होंगे।
- आचार्य शुक्ल के साहित्यिक व्यक्तित्व के क्रमबद्ध विकास तथा हिन्दी साहित्य में उनके महत्त्वको जान चुके होंगे।
- मानव मन के भीतर व्याप्त मनोविकारों में महत्वपूर्ण 'करूणा' के भाव की जानकारी तथा उसकी आंतरिक बुनावट को समझ गए होंगे।
- मानव जीवन में 'करूणा' के महत्त्व तथा साहित्य में करूणा की उपयोगिता एवं उसकी प्रायोगिक अभिव्यक्ति का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंग

## 9.9 शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| संबंधज्ञान | - | संयोग से प्राप्त ज्ञान |
| विवेचनक्रम | - | भले-बुरे का निर्णय |
| परिज्ञान | - | निश्चय, परिचय |
| निवृत्ति | - | छुटकारा |
| पूर्वापर | - | आगे पीछे का |
| मातहत | - | नीचे काम करने वाला कर्मचारी |
| अंकिचन | - | निर्धन |
| वैचारिक | - | विचार से संबंधित |
| प्रवृत्ति | - | आदत |
| परिमार्जित | - | शुद्ध |
| अशक्त | - | दुर्बल |
| छद्म शिष्टता | - | बनावटी व्यवहारिक रूप, |

## 9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**(1)** करुणा ,उत्साह, काव्य में प्राकृतिक - दृश्य, कविता क्या है .

**(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न-**

1. जन्म सन् 4 अक्टूबर 1884 , मृत्यु 2 फरवरी 1941
2. 1929 ई.
3. विचार वीथी (1930 ई.)

**(ख) सही विकल्प चुनिए-** 1. कल्पना का आनंद

## 9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची


1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामचन्द्र तिवारी,2005, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली पृ. 7-10
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 505
3. हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, इलाहाबाद, पृष्ठ 137
4. चिंतामणि- भाग 1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान दिल्ली
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामचंद्र तिवारी, 2005, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ- 43
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रन्थावली (सं.) ओमप्रकाश सिंह, 2007, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,
   पृष्ठ. 366-374
7. चिंतामणि दर्शन,डा. हरिहरनाथ टण्डन, 1957, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ- 157-159


## 9.12 सहायक पाठ्य सामग्री


1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली (सं.) ओमप्रकाश सिंह, 2007, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का चिंतन जगत, कृष्णदत्त पालीवाल, 1984
4. रामचंद्र शुक्ल, मलयज, 1987, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामचन्द्र तिवारी,2005, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली


## 9.13 निबंधात्मक प्रश्न –

(क) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जीवन एवं साहित्यिक परिचय विस्तार से लिखिए।

(ख) हिन्दी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के महत्व को प्रतिपादित करते हुए करूणा निबंध का सार अपने शब्दों में लिखिए।

# इकाई 10 पंडितों की पंचायत: परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
10.3.1 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व
10.3.2 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : कृतित्व
10.3.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : निबंध साहित्य
10.4 ’पंडितों की पंचायत’: परिचय
10.5 ‘पंडितों की पंचायत‘: पाठ
10.6 पंडितों की पंचायत : सार
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 10.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी साहित्य के निबंध विद्या का शास्त्रीय अध्ययन कर लिया है तथा साथ ही क्रमिक विकास के स्तर पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी से पूर्व के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के उत्कृष्ट निबंध ’करूणा’ का व्याख्या सहित अध्ययन भी कर लिया है।

प्रस्तुत इकाई में आप आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखिए एक श्रेष्ठ निबंध ’पंडितों की पंचायत’ की सव्याख्या पाठ करेंगे तथा साथ ही आचार्य हजारी प्रसाद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व से भी परिचित होंगे।

## 10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की सम्पूर्ण जीवन तथा उनकी साहित्यिक प्रतिभा के क्रमिक विकास का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- 'पंडितों की पंचायत' का परिचय, पाठ एवं ससंदर्भ आलोचना का लाभ प्राप्त कर सकेंगे।
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का महत्त्व एवं वर्तमान समय में उनके विचारों की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।

## 10.3 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

### 10.3.1 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: व्यक्तित्व

आधुनिक युग के मौलिक निबंधकार, उत्कृष्ट समालोचक एवं सांस्कृतिक विचारधारा के प्रमुख उपन्यासकार, साहित्येतिहासकार एवं निबंधकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म **19 अगस्त 1907 में बलिया** जिले के आरत दुबे का छपरा नामक गाँव में हुआ था। उनका परिवार ज्योतिष विद्या के लिए प्रसिद्ध था। उनके पिता पं. अनमोल द्विवेदी एवं माता का नाम ज्योतिष्मती था . आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के पिता संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। द्विवेदी जी की प्रारंभिक शिक्षा गांव के स्कूल में ही हुई और वहीं से उन्होंने मिडिल की परीक्षा पास की। इसके पश्चात् उन्होंने इंटर की परीक्षा और 1930 में ज्योतिष विषय लेकर आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात द्विवेदी जी शांतिनिकेतन चले गए सन् 1950 तक वहां हिंदी-भवन में कार्य करते रहे। शांति-निकेतन में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर तथा आचार्य क्षिति मोहन सेन के प्रभाव से साहित्य का गहन अध्ययन और उसकी रचना प्रारंभ की। हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित और सर्वमान्य हस्ताक्षर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की गतिशील परम्परा को साहित्यालोचना, समीक्षा, साहित्येतिहास, निबन्ध, उपन्यास,सौन्दर्यशास्त्रीय-विवेचन एवं कविता के सृजन द्वारा नयी दिशा प्रदान की. नवम्बर 1930 को उन्होंने हिन्दी शिक्षक के रूप में शान्ति निकेतन में कार्य आरम्भ किया और वहाँ 1950 तक रहे। सन 1941से 1947 तक आचार्य द्विवेदी विश्वभारती विश्वविद्यालय की शोध पत्रिका के संपादक रहे . 1950 में वह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर और अध्यक्ष नियुक्त हुए। 1960-67 तक उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में अध्यक्ष पद पर कार्य किया. 1968 में उनकी नियुक्ति पुनः काशी विश्वविद्यालय में हुई .1968-70 तक वे काशी हिंदू विश्व विद्यालय के रेक्टर पद पर कार्यरत रहे . 1957 में राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण से सम्मानित किए गये। वे

अनेक संस्थानों से सम्बद्ध रहे। अन्तिम दिनों में वह उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष रहे। **19 मई 1979** को दिल्ली में आचार्य द्विवेदी ने अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया ।

द्विवेदी जी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली और उनका स्वभाव बड़ा सरल और उदार था। वे हिंदी अंग्रेज़ी, संस्कृत और बंगला भाषाओं के साथ-साथ मध्यकालीन भारतीय भाषाओं के भी विद्वान थे। वे संस्कृत ,अपभंश एवं भक्तिकालीन साहित्य के विशेषज्ञ थे । लखनऊ विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट. की उपाधि देकर उनका विशेष सम्मान किया था। द्विवेदी जी के निबंधों के विषय भारतीय संस्कृति, इतिहास, ज्योतिष, साहित्य विविध धर्मों और संप्रदायों का विवेचन आदि है।

द्विवेदी जी की रचनाएं दो प्रकार की हैं, मौलिक और अनूदित। उनकी मौलिक रचनाओं में सूर साहित्य हिंदी साहित्य की भूमिका, कबीर, विचार और वितर्क अशोक के फूल, बाणभट्ट की आत्म-कथा आदि मुख्य हैं। प्रबंध चिंतामणी, पुरातन प्रबंध-संग्रह, विश्व परिचय, लाल कनेर आदि द्विवेदी जी की अनूदित रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त द्विवेदी जी ने अनेक स्वतंत्र निबंधों की रचना की है जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

आचार्य द्विवेदी का हिंदी निबंध और आलोचनात्मक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। वे उच्च कोटि के निबंधकार और सफल आलोचक हैं। उन्होंने सूर, कबीर, तुलसी आदि पर जो विद्वत्तापूर्ण आलोचनाएं लिखी हैं, वे हिंदी में पहले नहीं लिखी गई। उनका निबंध-साहित्य हिंदी की स्थाई निधि है। उनकी समस्त कृतियों पर उनके गहन विचारों और मौलिक चिंतन की छाप है। विश्व-भारती आदि पत्रिकाओं के द्वारा द्विवेदी जी ने संपादन के क्षेत्र में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है । हजारी प्रसाद द्विवेदी की अनेकों रचनाएँ उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुई और कुछ अप्रकाशित हैं जिन्हें प्रकाशित किया जाना चाहिये। द्विवेदीजी मनुष्य को सर्वोपरि मानते थे। उन्होंने अपने निबन्ध ''मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है'' में लिखा हैं ''समूचे जन समूह में भाषा और भाव की एकता और सौहाद्र का होना अच्छा है। इसके लिए तर्कशास्त्रियों की नहीं ऐसे सेवाभावी व्यक्तियों की आवश्यकता है जो समस्त बाधाओं और विघ्नों को शिरसा स्वीकार करके काम करने में जुट जाते हैं।'' हजारी प्रसाद द्विवेदी नयी पीढ़ी के लेखकों से सन्तुष्ट हैं। वह लिखते हैं – ''मुझे इस बात की खुशी है कि नये साहित्यकार मनुष्य के दुख के प्रति जागरुक है और इस बात से व्याकुल है कि कहीं न कहीं कोई गल्ती अवश्य है जो इसको दूर करने की हमारी सारी आकाक्षाओं के बावजूद सारे प्रयत्नों को विफल बना रही है। बाधा मुख्य रूप से हमारे सामाजिक संगठन में है और जिस व्यवस्था के ऊपर इसको दूर करने की जिम्मेदारी है उस व्यवस्था के ढांचे की संरचना मे है।'' हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। हिन्दी विश्व की समृद्ध भाषा है जिसमें विश्व स्तर के साहित्कार दिये हैं। अनेक दिवंगत दिग्गज साहित्यकारों की रचनाएँ आज भी हिन्दी पाठकों से वंचित हैं क्योंकि इनकी बहुत सी रचनाएँ अप्रकाशित हैं तथा अनेकों रचनाएँ अपने नये संस्करण की प्रतीक्षा कर रही हैं। इनके प्रकाशन की दिशा में प्रयत्न किया जाना चाहिये।

### 10.3.2 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: कृतित्व

साहित्यिक दृष्टि से आचार्य द्विवेदी का साहित्य न केवल विपुल है अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य एवं मानव जाति की सांस्कृतिक चेतना का वाहक भी है . आचार्य द्विवेदी ने साहित्य की लगभग सभी प्रमुख विधाओं में रचना की थी . कहना न होगा कि आचार्य द्विवेदी का लेखन एक तरफ जहाँ अपनी विपुलता के लिए अपना अलग स्थान रखता है वहीं दूसरी तरफ अपनी सृजनात्मक सम्पन्नता के कारण विश्व साहित्य की अनमोल देन है .आचार्य द्विवेदी की प्रमुख रचनाएँ निम्नवत हैं

**उपन्यास**

1. बाणभट्ट की आत्मकथा , 1946
2. चारू चंद्रलेख ,1963
3. पुनर्नवा , 1973
4. अनामदास का पोथा, 1976

**आलोचना**

5. सूर साहित्य , 1936
6. कबीर , 1942
7. कालिदास  की लालित्य योजना, 1968
8. मृत्युंजय रवीन्द्र, 1963
9. नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक ,
10. मेघदूत :एक पुरानी कहानी, 1957
11. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो,1952
12. लालित्य तत्व, 1994
13. साहित्य का साथी, 1955

**इतिहास ग्रन्थ**

14. हिंदी साहित्य की भूमिका , 1940
15. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, 1952
16. हिंदी साहित्य का आदिकाल, 1952

**सांस्कृतिक चिंतन**

17. मध्यकालीन बोध का स्वरूप, 1970
18. सहज-साधना, 1963

19. मध्यकालीन धर्म-साधना, 1952
20. नाथ संप्रदाय , 1950
21. सिक्ख गुरूओं का पुण्य-स्मरण, 1980
22. रामानंद की हिन्दी रचनाएँ , 1955
23. नाथ सिद्धों की बानियाँ ,1957
24. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद , 1940

**निबंध साहित्य**

25. अशोक के फूल ,1948
26. कल्पलता,1951
27. कुटज, 1954
28. विचार और वितर्क , 1953
29. विचार प्रवाह ,1959
30. आलोक पर्व ,1972

**अन्य रचनाएँ**

1. कविताएं (खड़ी बोली, संस्कृत)
2. कविताएं (ब्रजभाषा)
3. कविताएं (अनूदित)
4 वैयक्तिक संस्मरण
5. कहानियाँ
6. फलित ज्योतिष

**विशेष :**

- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद द्वारा ‘कबीर‘ पुस्तक पर मंगलाप्रसाद पारितोषक 1947 ई.
- लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ने डॉक्टर ऑफ लिटरेचर उपाधि प्रदान की 1947 ई.

- ऑफिशियल लैंग्वेज कमीशन (प्रथम) के सदस्य 1955 ई.
- पद्म भूषण, 1957 ई.
- संयोजक, हिन्दी परामर्श समिति, साहित्य अकादमी, 1954 ई.-1964 ई. तक
- नेशनल बुक ट्रस्ट के ट्रस्टी, 1958 ई.
- चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट के ट्रस्टी, 1958 ई.
- 'सूर साहित्य' पुस्तक पर सरजूप्रसाद स्वर्णपदक, मध्यभारत हिन्दी समिति, इन्दौर
- 'विश्वभारती' विश्वविद्यालय की एक्जीक्यूटिव कांउसिल के सदस्य 1950-1953
- काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष 1952-1953 ई.
- काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलेखों की खोज के संचालक, 1952 ई.
- 'नाथ सम्प्रदाय' पुस्तक (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)
- 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के व्याख्यान)
- 'सहज साधना' (मध्य प्रदेश सरकार द्वारा आयोजित व्याख्यानमाला)
- 'साहित्य का मर्म' (लखनऊ वि.वि. द्वारा आयोजित व्याख्यान माला)
- 'बाणभट्ट की आत्मकथा' - नागरी प्रचारिणी सभा का सर्वोत्तम पदक/म0प्र0 द्विवेदी स्वर्ण पदक,कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद साहित्य अकादमी की ओर से
- 'हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास' (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा, उत्तम पाठ्य पुस्तक पुरस्कार)
- हिन्दी विश्व कोष में सम्पादक समिति के सदस्य तथा एडवाइजरी बोर्ड के सदस्य।
- केन्द्रीय हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कार 1973 ई.
- शोध पत्रिकाओं का संपादन: विश्वभारती पत्रिका, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दी अनुशीलन , हिन्दुस्तानी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी जर्नल
- रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनेक ग्रंथों के अनुवाद

### 10.3.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: निबंध साहित्य

वर्गीकरण की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबंध दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं . विचारात्मक और आलोचनात्मक। विचारात्मक निबंधों की भी दो श्रेणियां हैं। प्रथम श्रेणी के निबंधों में दार्शनिक तत्वों की प्रधानता रहती है। द्वितीय श्रेणी के निबंध सामाजिक जीवन संबंधी होते हैं। आलोचनात्मक निबंध भी दो श्रेणियों में बांटें जा सकते हैं। प्रथम श्रेणी में ऐसे निबंध हैं जिनमें साहित्य के विभिन्न अंगों का शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन किया गया है और द्वितीय श्रेणी में वे निबंध आते हैं जिनमें साहित्यकारों की कृतियों पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार हुआ है। द्विवेदीजी के इन निबंधों में विचारों की गहनता, निरीक्षण की नवीनता और विश्लेषण की सूक्ष्मता रहती है। द्विवेदी जी की भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है। उन्होंने भाव और विषय के अनुसार भाषा का चयनित प्रयोग किया है। उनकी भाषा के दो रूप दिखलाई पड़ते हैं . (1) **प्राँजल व्यावहारिक भाषा** (2) **संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय भाषा**। प्रथम रूप द्विवेदी जी के सामान्य निबंधों में मिलता है। इस प्रकार की भाषा में उर्दू और अंग्रेज़ी के शब्दों का भी समावेश हुआ है। द्वितीय शैली उपन्यासों और सैद्धांतिक आलोचना के क्रम में परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी की विषय प्रतिपादन की शैली अध्यापकीय है। शास्त्रीय भाषा रचने के दौरान भी प्रवाह खण्डित नहीं होता।द्विवेदी जी की रचनाओं में उनकी शैली के निम्नलिखित रूप मिलते हैं .

1 . **गवेषणात्मक शैली** - द्विवेदी जी के विचारात्मक तथा आलोचनात्मक निबंध इस शैली में लिखे गए हैं। यह शैली द्विवेदी जी की प्रतिनिधि शैली है। इस शैली की भाषा संस्कृत प्रधान और अधिक प्रांजल है। वाक्य कुछ बड़े-बड़े हैं। इस शैली का एक उदाहरण देखिए - "लोक और शास्त्र का समन्वय, ग्रहस्थ और वैराग्य का समन्वय भक्ति और ज्ञान का समन्वय भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय कथा और तत्व ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चांडाल का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय रामचरितमानस शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है।"

2 . **वर्णनात्मक शैली** - द्विवेदी जी की वर्णनात्मक शैली अत्यंत स्वाभाविक एवं रोचक है। इस शैली में हिंदी के शब्दों की प्रधानता है साथ ही संस्कृत के तत्सम और उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। वाक्य अपेक्षाकृत बड़े हैं।

3 . **व्यंग्यात्मक शैली** - द्विवेदी जी के निबंधों में व्यंग्यात्मक शैली का बहुत ही सफल और सुंदर प्रयोग हुआ है। इस शैली में भाषा चलती हुई तथा उर्दू, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग मिलता है।

4 . **व्यास शैली** - द्विवेदी जी ने जहाँ अपने विषय को विस्तारपूर्वक समझाया है वहां उन्होंने व्यास शैली को अपनाया है। इस शैली के अंतर्गत वे विषय का प्रतिपादन व्याख्यात्मक ढंग से करते हैं और अंत में उसका सार दे देते हैं।

हमने पहले ही लक्ष्य कर लिया है कि साहित्यिक समालोचना के सिवा और भी बहुत.से ऐसे निबंध हैं जो साहित्य के अन्दर माने जा सकते है। निबंध का प्रचलन भी कोई नया नहीं है। पुराने जमाने से ही निबंधों का प्रचार है। हमने यह भी देखा है कि किसी प्रतिपाद्य सिद्धान्त के विरूद्ध जितने प्रमाण हो सकते थे उनको एक-एक करके उठाना और उनकी समीक्षा करते हुए अपने सिद्धान्त पर पहुंचना यही पुराने निबंधों का कार्य था। परन्तु नये युग में जिन नवीन ढंग के निबंधों का प्रचलन हुआ है वे 'तर्कमूलक' की अपेक्षा 'व्यक्तिगत' अधिक हैं। ये व्यक्ति की स्वाधीन चिन्ता की उपज हैं। जो निबंध किसी तत्ववाद के विचार के लिए लिखे जाते हैं उनमें थोड़ा-बहुत प्राचीन ढंग अब भी पाया जाता है। साधारणतः जिन निबंधों में निस्संग विचार का प्राधान्य होता है वे साहित्यिक आलोचना के प्रसंग में आलोचित नहीं होते। स्वयं आचार्य द्विवेदी के शब्दों में निबन्धों का वितरण निम्न प्रकार है - निबंधों की नाना कोटियाँ हैं । उनको साधारणतः पांच श्रेणियों में बाँट जा सकता है. 1. वार्तालाप-मूलक 2 व्याख्यान-मूलक 3. अनियंत्रित गप्प-मूलक 4 स्वगतचिन्तन-मूलक 5. कलह-मूलक। इस प्रकार का विभाजन बहुत अच्छा नहीं है। इसमें साहित्यिक सूक्ष्मता नहीं है। आपात दृष्टि ही प्रधान है।

(1) वार्तालाप मूलक निबंध का लेखक मन-ही-मन एक ऐसे वातावरण कल्पना करता है जिसमें कुछ सच्चे जिज्ञासु लोग किसी तत्व का निर्णय करने बैठे हों और अपने-अपने विचार सत्य निर्णय की आशा से सहज भाव से प्रकट करते जाते हों (2) परन्तु व्याख्यान मूलक निबंध लेखक व्याख्यान देता रहता है। वह अपनी युक्तियों और तर्को को बिना इस बात की परवा किए उपस्थित करता जाता है कि कोई उसे टोक देगा। (3) अनियंत्रित गप्प मारते समय गप्प करने वाला हल्के मन से बातें करता है वह अपने विषय के उन सरस और हास्योद्रेचक पहलुओं पर बराबर घूम-फिर कर आता रहता है,जो उसके श्रोता के चित्त को प्रफुल्ल कर देगा। (4) स्वगत चिंतन मूलक लेखक अपने आप से ही बात करता रहता है। उसके मन में जो युक्तियाँ उठती रहती हैं उन्हें तन्मय होकर वह विचारता जाता है। पर-पक्ष की आशंका उसे नहीं रहती। (5) परन्तु कलह-मूलक निबंध का लेखक अपने सामने मानो एक प्रतिपक्षी को रखकर उससे उत्तेजना पूर्ण बहस करता रहता है प्रतिपक्षी की युक्तियों का निरास करना उसका उतना लक्ष्य नहीं होता जितना अपने मत को उत्तेजित होकर व्यक्त करना। इस अन्तिम श्रेणी के निबंधों में कभी-कभी अच्छी साहित्यिक रचना मिल जाती है पर साधारणतः ये साहित्य की श्रेणी के बाहर जा पड़ते हैं।

निबंधों के व्यक्तिगत होने का अर्थ यह नहीं है कि उनमें विचार-श्रृंखला न हो। ऐसा होने से तो वे प्रलाप कहे जायँगे। संसार में हम जो कुछ देखते हैं वह द्रष्टा को विभिन्नता के कारण नाना भाव

से प्रकट होते है। अपनी रूचि और संस्कार के कारण किसी द्रष्टा का ध्यान वस्तु के एक पहलू पर जाता है तो दूसरे द्रष्टा का दूसरे पहलू पर। फिर वस्तुओं के जो पारस्परिक संबंध है वे इतने तरह के हैं कि इन संबंधों में से सब सब की दृष्टि में नहीं पड़ते। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति यदि ईमानदारी से अपने विचारों को व्यक्त कर ले तो हमें नवीन का परिचय मूलक आनंद मिल सकता है और साथ ही उस उद्देश्य की सिद्धि भी हो सकती है जो साहित्य का चरम प्रतिपाद्य है। द्रष्टा के भेद से दृश्य का अभिनव रूप हमें दूसरे के हृदय में प्रवेश करने की क्षमता देता है और हम केवल अपने व्यक्तिगत रूचि-अरूचि के संकीर्ण दायरे से निकल कर दूसरों की अनुभूतियों के प्रति संवेदनशील होते हैं । वस्तुतः जो निबंध इस उद्देश्य की ओर उन्मुख करे वही साहित्यिक निबंध कहे जाने का अधिकार है। जो लेख हमारे हृदय की अनुमतियों को व्यापक और संवेदनाओं की तीक्ष्ण नहीं बनाता वह अपने उद्देश्य से च्युत हो जाता है। इस व्यक्तित्व अनुभूति के कारण ही साहित्यिक निबंध-लेखक निःसंग तत्वचिन्तक से भिन्न हो जाता है। " तत्वचिन्तक या वैज्ञानिक से निबंध-लेखक की भिन्नता इस बात में भी है कि निबंध-लेखक जिधर चला जाता है उधर संपूर्ण मानसिक सत्ता अर्थात बुद्धि और भावात्मक हृदय दोनों लिए हुए। किसी बात का अर्थ-सम्बन्ध सूत्र पकड़े हुए लेखक करूण स्थलों की ओर झुकता और गंभीर वेदना का अनुभव करता चलता है जो विनोदशील हैं उनकी दृष्टि उसी बात को लेकर उसके ऐसे पक्षों की ओर दौड़ती है जिन्हें सामने पाकर हँसे बिना नहीं रह सकता। पर सब अवस्थाओं में कोई एक बात अवश्य चाहिए। इस अर्थगत विशेषता के आधार पर ही भाषा और अभिव्यंजना प्रणाली की विशेषता,शैली की विशेषता बनकर खड़ी हो सकती है। जहाँ नाना अर्थ-संबंधों का वैचित्र्य नहीं, जहाँ गतिशील अर्थ की परंपरा नहीं, वहाँ एक ही स्थान पर खड़ी-खड़ी, तरह-तरह की मुद्रा और उछलकूद दिखाती हुई भाषा केवल तमाशा करती हुई जान पड़ेगी " - **रामचंद शुक्ल।**

चूँकि व्यक्तिगत रूचि और संस्कार अनन्त प्रकार के हैं और भिन्न वस्तु के अर्थ-संबंध भी जो इन रूचियों और संस्कारों को प्रभावित करते है अनन्त प्रकार के हैं इसलिए व्यक्तिगत अनुभूतिमूलक निबंधों की केवल मोटी-मोटी श्रेणियाँ ही बताई जा सकती है। इस क्षेत्र में अनुकरण नहीं चल सकता, क्योंकि कोई भी दो व्यक्ति हू-ब-हू एक ही रूचि और एक ही संस्कार के नहीं होते। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न भाषाओं में ऐसे-ऐसे निबंध-लेखक हैं जिनकी समानता दूसरी भाषाओं में खोजी नहीं जा सकती। ये आधुनिक युग के अत्यन्त सजीव साहित्यांग हैं। उनमें नित्य नवीन तत्वों का समावेश और परिहार होता जा रहा है। निबंध-लेखक भी वस्तुतः एक समालोचक ही है। उसकी समालोचना पुस्तकों की नहीं होती बल्कि उन वस्तुओं की होती है जो पुस्तकों का विषय है।

## 10.4 'पंडितों की पंचायत’: परिचय

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का लिखा यह निबंध उनकी पुस्तक ’कल्पलता’ में संकलित है। ’कल्पलता’ आचार्य द्विवेदी का लिखा हुआ निबंध संग्रह है। डॉ. राजमल बोरा के अनुसार इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1951 में हुआ था। इस आधार पर कहा जा सकता है कि संभवत: यह

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का दूसरा निबंध संग्रह था. इस निबंध संग्रह में 'पंडितों की पंचायत' 'केतु दर्शन' 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' 'ठाकुर जी की बटोर' 'महात्मा का महाप्रयाण ' आदि अनेक महत्वपूर्ण निबंध संकलित हैं। कहना न होगा कि जब इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ तब आचार्य द्विवेदी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद पर कार्यरत थे, परन्तु 1951 में प्रकाशित 'कल्पलता' में संकलित निबंधों का लेखन 1951 से पूर्व के वर्षों में हुआ होगा। आपको स्मरण ही होगा कि काशी विश्वविद्यालय में आने से पूर्व 1930 से 1950 तक आचार्य द्विवेदी शांतिनिकेतन के हिन्दी भवन में कार्यरत थे . वहाँ रहते हुए आचार्य द्विवेदी ने गुरुदेव रविन्द्र

## 10.5 ' पंडितों की पंचायत ': पाठ

**यह** संयोग की ही बात कही जाएगी कि इस बार के एकादशीवाले झगड़े की सभा में मुझे भी उपस्थित रहना पड़ा। मैं बिलकुल ही नहीं जानता था कि काशी के पंचांग-निर्माताओं ने गाँव में रहने वाले विश्वास-परायण पंडितों को आलोडित कर दिया है। वैशाख शुक्ल पक्ष की एकादशी किसी ने बृहस्पतिवार के दिन बता दी है और किसी ने शुक्रवार के दिन। अचानक जब एक दिन पंडितों की पंचायत में मुझे बुला भेजा गया तो एकदम शस्त्रहीन योद्धा की भाँति मुझे संकोच के सहित ही जाना पड़ा। सभा में उपस्थित पंडितों में से अधिकांश मुझे जानते थे, किसी-किसी के मत से मैं घोर नास्तिक भी था, फिर भी न जाने क्यों इन्होंने मुझे बुलाने की बात का समर्थन किया। शायद इसलिए कि मेरा कुछ सम्बन्ध उक्त शास्त्रस से भी था। जो हो, मैंने इसे पंडित-मण्डली की उदारता ही समझी और शुरू से आखिर तक अपना कोई स्वतंत्र मत व्यक्त न करने का संकल्प-सा कर लिया।

मैं जब सभा स्थल पर पहुँचा तो विचार आरंभ हो चुका था। इसीलिए यह जानने का मौका ही नहीं मिला कि सभा का कोई सभापति या सरपंच है या नहीं। शायद इसका निर्वाचन ही नहीं हुआ था। मुझे देखते ही एक पंडित जी ने उत्तेजित भाव से कहा, कि देखिए 'विश्व-पंचांग' वालों ने क्या अनर्थ किया है। इन लोगों का गणित तीन लोकों से न्यारा होता है। भाई, सब जगह जबरदस्ती चल सकती है, लेकिन शास्त्र पर जबरदस्ती नहीं चलेगी।' मैंने मन-ही-मन इसका अर्थ समझ लिया। यह मुझे युद्ध क्षेत्र में आ डटने की ललकार थी। मैं हँसकर रह गया।

शास्त्र पर जबरदस्ती! मेरी भावुकता को जबरदस्त धक्का लगा। मेरा विद्रोही पाण्डित्य तिलमिलाकर रह गया। क्षण-भर में मेरे सामने संपूर्ण ज्योतिषिक इतिहास का रूप खेल गया। एक युग था, जब हमारे देश में लगध मुनि का अत्यंत सूक्ष्म गणित प्रचलित था लेकिन पंडितों का दल संतुष्ट नहीं हुआ, उसने किसी भी प्राचीन शास्त्र को प्रमाण न मानकर अपना अनुसंधान जारी रखा। गणना सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गई। अचानक भारतवर्ष के उत्तरी पश्चिमी किनारे पर यवनवाहिनी का भीषण रण-तूर्य सुनाई पड़ा। देश के विद्यापीठ-गांधार से लेकर साकेत तक एकाधिक बार विध्वस्त हुए। भारतवर्ष कभी जीतता रहा, कभी हारता रहा। कभी सारा भारतीय साम्राज्य समृद्धिशाली नगरों से भर

गया, कभी श्मशान परिणित जनपदों के हाहाकर से झनझना उठा। पर अनुसंधान जारी रहा। भारतीय और ग्रीक पंडितों के ज्ञान का संघर्ष भी चलता रहा, हठात ईसा की चौथी शताब्दी में भारतीय ज्योतिष के आकाश में कई ज्वलंत ज्योतिष्क पिण्ड एक ही साथ चमक उठे। भारतीय गणना बहुत परिमाण में यावनी विद्या से समृद्ध हुई। यावनी विद्या हतदर्प होकर भारतीय गौरव को वरण करने लगी। उस दिन नि:संकोच भारतीय पंडितों ने घोषणा की ' यवन मलेच्छ हैं सही, पर इस (ज्योषतिष) शास्त्रक के अच्छे जानकार हैं। 'वे भी ऋषिवत पूज्य हैं, ब्राह्मण ज्योतिषी की तो बात ही क्या है.' (वृहत् संहिता)।

मैंने कल्पना के नेत्रों से देखा - महागणक आचार्य बराहमिहिर न्यायासन पर बैठकर तत्काल प्रचलित पाँच सिद्धान्तों के मतों का विचार कर रहे हैं। इनमें दो विशुद्ध भारतीय मत के प्राचीनतर सिद्धान्त हैं, दो में यावनी विद्या का असर है , पाँचवा (सूर्य सिद्धान्त) स्वतंत्र भारतीय चिंता का फल है, बराहमिहिर ने पहले दोनों यावनी प्रभावापन्न सिद्धान्तों की परीक्षा की। पौलिश का सिद्धान्तत अच्छा मालूम हुआ, रोमक भी उसके निकट ही रहा। आचार्य ने छोटी-मोटी भूलों का ख्याल न करते हुए साफ-साफ कह दिया-अच्छे हैं। फिर भी सूर्य सिद्धान्त् की जाँच हुई। आचार्य का चेहरा खिल उठा। यह और भी अच्छा था। और अन्त में ब्रह्म और शाकल्य के सिद्धान्तों की बारी आई। आचार्य के माथे पर जरा-सा सिकुड़न का भाव दिखाई दिया, उन्होंने दोनों को एक तरफ ठेलते हुए कहा-उहुँ! यह दूर-विभ्रष्ट- हैं।

**पौलिशकृतोऽस्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमक: प्रोक्त :।**
**स्पिष्टतर: सावित्र: परिशेषौ दूर-विभ्रष्टौ ।। (पंच सिद्धांतिका)**

उस दिन किसी की हिम्मत नहीं थी कि आचार्य को शास्त्र पर जबरदस्ती करने वाला कहे। क्यों कि वह स्वतंत्र चिंता का युग था, भारतीय-समाज इतना रूढिप्रिय और परापेक्षी नहीं था। वह ले भी सकता था और दे भी सकता था। मैंने देखा ब्रह्मगुप्त के शिष्य भास्कराचार्य निर्भीक भाव से कह रहे हैं, इस गणित स्कंध में युक्ति ही एक मात्र प्रमाण है, कोई भी आगम प्रमाण नहीं। यह बात सोलह आने सही थी और भारतीय पंडित-मंडली को सही बात स्वीकार करने का साहस था। पर आज क्या हालत है।

मैं जिस समय यह चिंता कर रहा था उसी समय पंडित लोग निर्णय-सिंधु और धर्म-सिंधु के पन्ने उलट रहे थे। नाना प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध ऋषियों, पुराणों और संहिताओं के वचन पढ़े जा रहे थे और उनकी संगतियाँ लगाई जा रही थीं। मैं उद्विग्न–सा होकर सोच रहा था कि वे निबंध ग्रंथ क्यों बनाए गए ? मुझे ऐसा लगा कि पश्चिम में एक आत्म विश्वासी धर्म का जन्म हुआ है जो किसी से समझौता नहीं जानता, किसी को मित्र नहीं मानता। उसके दाहिने हाथ के कठोर कृपाण के आक्रमण से बड़ी-बड़ी सभ्यताओं के लौह प्राचीर चूरचार हो जाते हैं, और बाँए हाथ के अमृत आश्वासन से

पराजित जन-समूह एक नए जीवन और नए वैभव के साथ जी उठता है। जो एक बार उसके अधीन हो जाता है वही उसके रंग में आपाद-मस्त क रंग जाता है। वह इसलाम है।

इसलाम-विजय-स्फीत वक्ष होकर भारतीय संस्कृति को चुनौती देता है, उसके बारंबार आक्रमण से उत्तरी भारत संत्रस्त हो उठता है और कुछ काल के लिए समूचा हिन्दुकस्तान त्राहि-त्राहि की मर्म-भेदी आवाज से गूँज उठता है। धीरे-धीरे उत्तर के विद्यापीठ दक्षिण और पूर्व की ओर खिसकते जाते हैं। महाराष्ट्र नवीन आक्रमण से मोर्चा लेने के लिए कटिबद्ध होता है और भारतीय विश्वास के अनुसार सबसे पहले अपने धर्म की रक्षा को तैयार होता है। भारतीय पंडितों ने कभी इतनी मुस्तैदी के साथ स्तूपीभूत शास्त्र-वाक्यों की छानबीन नहीं की थी, शायद भारतीय संस्कृति को कभी ऐसे विकट ललकार के सुनने की संभावना नहीं हुई थी। क्षणभर के लिए ऐसा जान पड़ा कि भारतीय मनीषा ने स्वतंत्र चिंता को एकदम त्याग दिया है, केवल टीका, केवल निबंध, केवल संग्रह ग्रंथ! शास्त्र के किसी अंग पर स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखे जा रहे हैं। सर्वत्र टीका-पर-टीका, तिलक-पर-तिलक, तस्यापि तिलक. एक कभी समाप्त न होनेवाली टीकाओं की परम्परा।

देखते-देखते टीका-युग का प्रभाव देश के इस छोर से उस छोर तक व्याप्त हो जाता है। महाराष्ट्र, काशी, मिथिला और नवद्वीप टीकाओं और निबंधों के केंद्र हो उठते हैं। शास्त्र का कोई वचन छोड़ा नहीं जाता है, किसी भी ऋषि की उपेक्षा नहीं की जा रही है पर भयंकर सतर्कता के साथ प्रचलित लोक नियमों का ही समर्थन किया जाता है। इस नियम के विरोध में जो ऋषि-वचन उपलब्ध होते हैं उन्हें 'ननु' के साथ पूर्व पक्ष में कर दिया जाता है और उत्तर पक्ष सदा स्थानीय आचार्यों का समर्थन करता है। पंडितों की भाषा में इसी को संगति लगाना कहा जाता है। संगति लगाने का यह रूप मुझे हतदर्प भारतीय धर्म की सबसे बड़ी कमजोरी जान पड़ी। मैं ठीक समझ नहीं सका कि शास्त्रीय वचनों के इन विशाल पर्वतों को खोदकर ये चुहिया क्यों निकाली जा रही है।

यह जो एकादशी व्रत का निर्णय मेरे सामने हो रहा है, जिसमें बीसियों आचार्यों के सैकड़ों श्लोक उद्धृत किए जा रहे हैं, अपने आप में ऐसा क्या महत्व रखता है जिसके लिए एक दिन सैकड़ों पंडितों ने परिश्रमपूर्वक सैकड़ों निबंध रचे थे और आज आसेतु हिमाचल समस्त भारतवर्ष के पंडित उनकी सहायता से व्रत का निर्णय कर रहे हैं। क्या श्रद्धापूर्वक किसी एक दिन उपवास कर लेना पर्याप्त नहीं था! यदि एकादशी किसी दिन 55 दण्ड से ऊपर हो गई, या किसी दिन उदय काल में न आ सकी, या किसी दिन उदय काल में आ गई तो क्या बन या बिगड़ गया ? किसी भी एक दिन व्रत कर लेना पर्याप्त नहीं है ? मुझे 'ननु' 'तथा च' और 'उक्त च' की धुआँधार वर्षा से मध्य युग का आकाश इतना आविल जान पड़ा कि बीसवीं शताब्दी का ज्ञान लोक अनेक चेष्टाओं के बाद भी निबंधकारों की असली समस्या तक नहीं पहुँच सका। मैंने फिर एक बार सोचा, शास्त्रीय वचनों के इन विशाल पर्वतों को खोदकर यह चुहिया क्यों निकाली जा रही है।

लेकिन आज चाहे कुछ भी क्यों न जान पड़े, टीका-युग का प्रारंभ नितांत अर्थ-हीन नहीं था। मुझे साफ दिखाई दिया, भारतवर्ष की पदध्वस्त संस्कृत हेमाद्रि के सामने खड़ी है, चेहरा उसका उदास पड़ गया है, अश्रुक्षुब्द्ध -नयन कोटर शायी-से दिख रहे हैं, वदन कमल मुरझा गया है। हेमाद्रि का मुख-मंडल गंभीर है, भूदेश किंचित कुचिंत हो गए हैं, विशाल ललाट पर चिंता की रेखाएँ उभर आई हैं, अधरोष्ठ दाँतों के नीचे आ गया है - वे किसी सुदूर की वस्तु पर दृष्टि लगाए हैं। यह दृष्टि कभी अर्थ-हीन नहीं हो सकती, वह किसी निश्चित सत्य पर निपुण भाव से आबद्ध है। शायद यह भारतवर्ष के विच्छिन्न रस्म और रवाजों की बात होगी, शायद वह स्तूपीभूत शास्त्रों के मत-भेद की चिंता होगी, शायद वह संपूर्ण आर्य-सभ्यता को एक कठोर नियम-सूत्र में बाँधने की चेष्टा होगी, शायद वह नवागत प्रतिद्वंद्वी धर्म की अचिन्तनीय एकता के जवाब की बात होगी-पर वह थी बहुत दूर की बात। मुझे उसमें कोई संदेह नहीं रहा। जिस पंडित के लिए समग्र शास्त्र हस्तामलकवत् थे, जिसकी आँखों के सामने भारतीय संस्कृति नित्य कुचली जा रही थी, उस महामानव का कोई प्रयत्न निरर्थक नहीं हो सकता।

अगर सारा भारतवर्ष एक ही दिन उपवास करे, एक ही दिन पारायण करे, एक ही मुहूर्त में उठे-बैठे, तो निश्चिय ही वह एक सूत्र में ग्रंथित हो जाए। हेमाद्रि और उनके अनुयायियों का यही स्वप्न था, वह सफल भी हुआ। आज की यह पंचायत उसी सफलता का सबूत है। इस समय यह विचार नहीं हो रहा है कि विश्व पंचाग का मत मान्य है या और किसी का, बल्कि इस बात का निर्णय होने जा रहा है कि वह कौन-सा एक और एक-दिन होना चाहिए जब सारे भारत के गृहस्थ एक ही चिंता के साथ उत्तेजित होंगे। आज की सभा का यही महत्व है।

हेमाद्रि का स्वप्न सफल हुआ; पर उद्देश्य नहीं सिद्ध हो सका। भारतवर्ष एक ही तिथि को व्रत और उपवास करने लगा, एक मुहूर्त में उठने-बैठने के लिए बद्धपरिकर हुआ; पर एक नहीं हो सका। उसकी कमजोरी केवल रस्मों और रवाजों तक ही सीमित नहीं थी, यह तो उसकी बाहरी कमजोरी थी। जातियों और उपजातियों से उसका भीतरी अंग जर्जर हो गया था, हजारों संप्रदायों में विभक्त होकर उसकी आध्यात्मिक साधना शतच्छिद्र कलश की भाँति संग्रह हीन हो गई थी-वह हतज्योति उलका-पिंड की भाँति शून्य में छितराने की तैयारी कर रहा था।

लेकिन डूबते-डूबते भी सँभल गया। तकदीर ने तंत पर उसकी खबर ली, ज्योंही नाव डगमगाई, त्योंही किनारा दिख गया। और भी सुदूर दक्षिण से भक्ति की निविड़ घनघटा दिखाई पड़ी, देखते-देखते यह मेघखंड सारे भारतीय आसमान में फैल गया और आठ सौ वर्षों तक इसकी जो धारा सार वर्षा हुई, उसमें भारतीय साधना का अनेक कूड़ा बह गया, उसके अनेक बीज अंकुरित हो उठे। भारतवर्ष नए उत्साह और नए वैभव से शक्तिशाली हो उठा। उसने उदात्त कंठ से दृढ़ता के साथ घोषित किया-प्रेम पुमर्थों महान-प्रेम ही परम पुरूषार्थ है। विधि और निषेध, शास्त्र और पुराण, नियम

और आचार, कर्म और साधना, इन सबके ऊपर है यह अमोघ महिमाशाली प्रेम। प्रेमी ,जाति और वर्ण से ऊपर है, आश्रम और संप्रदाय से अतीत है।

जिन दिनों की बात हो रही है, उन दिनों भारतवर्ष का प्रत्येक कोना तलवार की मार से झनझना रहा था, बड़े-बड़े मंदिर तोड़े जा रहे थे, मूर्तियाँ विध्वस्त की जा रही थीं, राज्य उखाड़े जा रहे थे। विच्छिन्न हिंदू-शक्ति जीवन के दिन गिन रही थी। और साथ ही दो भिन्न दिशाओं से उसे संहत करने का प्रयत्न चल रहा था। विच्छेद का संघर्ष नहीं चला था। तब तक दृश्य और अदृश्य एक ही साथ कैसे हो सकती है। पंडित लोग इस बात को इस प्रकार समझाते हैं- पहली तरह की गणना वह जो हमारे प्राचीन आचार्यों ने बताई है . यह ऋषि प्रोक्त गणना है इस पर से यदि ग्रह-गणित करो तो कुछ स्थूल आता है। अर्थात् उस स्थान पर से ग्रह कुछ इधर-उधर हटा हुआ नजर आता है। पर आधुनिक वैज्ञानिक गणना से वह ठीक स्थान पर दिखता है। यह तो कहा नहीं जा सकता कि ऋषियों की गणना गलत है, असल बात यह है कि वह अदृश्य गणना है वह आसमान में ग्रहों को यथास्थान दिखाने की गणना नहीं है; बल्कि एकादशी आदि व्रतों के निर्णय करने की गणना है . ये व्रत भी अदृश्य हैं , इनके फल भी अदृश्य हैं, फिर इनकी गणना भी क्यों अदृश्य न हो ? दृश्य -गणना आधुनिक विज्ञान-सम्मत है। इसका काम ग्रहण, यूति आदि दृश्य–पदार्थों को दिखाना है। कुछ पंडित पहली गणना को ही मानकर पत्रा बनाते हैं, कुछ दूसरी के हिसाब से, कुछ दोनों को मिलाकर। इन दोनों को मिलाने से जिस 'दृश्यादृश्य' नामक विसंष्ठुल गणना का अवतार हुआ है उसमें कई पक्ष हैं, कई दल हैं। कोई सामन, कोई निरयण, कोई रैवत, कोई चैत्र, अनेक मत खड़े हुए हैं। झगड़ा बहुत-सी छोटी-मोटी बातों तक पहुँचा हुआ है। उदाहरण के लिए मान लिया जाए कि किसी प्राचीन पंडित ने कहा कि 'क' से 'ख' स्थान का देशान्तर-काल एक घंटा है और आज के इस वैज्ञानिक युग में प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया है कि एक घंटा नहीं पौन घंटा है। अब कौन-सा मत मान लिया जाए ? कोई एकादशी व्रत के लिए प्राचीनाचार्य की बात पर चिपटा हुआ है, दूसरा इतनी-सी बात में उदार होना पसंद करता है। इन अनेक झगड़ों के कारण एकादशी व्रत का निर्णय करना बड़ा मुश्किल हो गया है। प्रत्येक पत्रा अलग राय देता है, प्रत्येद पंडित अलग-अलग मत का समर्थन करता है। यह पश्चिमी विचारों के संघर्ष का परिणाम है। आज की इस छोटी-सी सभा की सृष्टि हुई। हिंदू सभ्यता नई चेतना के साथ जाग उठी, आज जो आलोचना चल रही है, वह उसी नई चेतना का भग्नावशेष है। उसमें कोई स्फूर्ति नहीं रह गई है। नीरस और प्रलम्बमान तर्क-जाल से उकताकर मैं उद्विग्न हो रहा था। जी में आया, यहाँ से उठ चलूँ और इस विचार के आते ही मेरी कल्पना वहाँ से उठाकर मुझे अन्यत्र ले चली।

मुझे ऐसा जान पड़ा, मैं सारे जगत के छोटे-मोटे व्यापार को देख सकता हूँ। मेरी दृष्टि समुद्र पार करके अद्भुत कर्ममय लोक में पहुँची। यहाँ के मनुष्यों में किसी को फुरसत नहीं जान पड़ी, सबको समय के लाले पड़े थे। सारे द्वीप में एक भी ऐसा गाँव नहीं मिला, जहाँ घंटों तक एकादशी व्रत के निर्णय की पंचायत बैठ सके। सभी व्यस्त, सभी चंचल, सभी तत्पर! मैं आश्चर्य के साथ इनकी अपूर्व

कर्म-शक्ति देखता रह गया। यहाँ से लाल, काली, नीली आदि अनेक तरंगें बड़े वेग से निकल रही थीं और सारे जगत् के वायुमंडल को मुहूर्त भर में तरंगित कर देती थीं। भारतवर्ष के शांत वायुमंडल पर भी ये बार-बार आघात करती हुई नजर आई। वह भी कुछ विक्षुब्धतर हो उठा। ये विचारों की लहरें थीं।

मैं सोचने लगा, यूरोप से आए हुए नए विचार किस प्रकार नित्य प्रति हमारे समाज को अज्ञात भाव से एक विशेष दिशा की ओर खींचे लिए जा रहे हैं। पुस्तकों, समाचार-पत्रों, चल-चित्रों और रेडियों आदि के प्रचार से हमारे समाज के विचारों में भयंकर क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहें हैं भयंकर इसलिए की अभी तक यह समाज क्रांतिकारी विचार के महाभार को सँभालने के योग्य नहीं हुआ है-उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं। उसके कंधे दुर्बल हैं, उसकी छाती धड़क रही है। हम सन्त्रस्त की तरह इन विचारों को देखते हैं; पर जब अज्ञात भाव से ये ही हमारे अंदर घर कर जाते हैं तो या तो हम जान ही नहीं सकते या यदि जान सकते हैं तो घबरा उठते हैं। आज की सभा भी इसी घबराहट का एक रूप है।

जिस दिन तक भारतीय ज्योतिष-शास्त्र के साथ इसका कोई भी पंडित यह बात ठीक-ठीक नहीं समझ रहा है। एकादशी व्रत का यह झगड़ा शारदा एक्ट से कम खतरनाक नहीं है, बाबू भगवानदास के प्रस्तावित क़ानून के कम उद्वेगजनक नहीं है. अगर ये कानून भारतीय संस्कृति को हिला सकते हैं तो यह झगड़ा और भी अधिक हिला देगा।

लेकिन भारतीय संस्कृति क्या सचमुच ऐसी कमजोर नींव पर खड़ी है, कोई एक एक्ट, कोई एक कानून और कोई एक विचार-विनिमय उसे हिला दे ? मैं समझता हूँ, नहीं। मेरे सामने छः हजार वर्षों की और सहस्त्रों योजन विस्तृत देश की विशाल संस्कृति खड़ी है, उसके इस वृद्ध शरीर में जरा भी बुढ़ापा नहीं है, वह किसी चिरनवीन प्रेरणा से परिचालित है। उसके मस्तिष्क में सहस्त्रों वर्ष का अनुभव है; लेकिन थकान नहीं है, उसकी आँखों में अनादि तेज झलक रहा है, पर आलस्य नहीं है! वह अपूर्व शक्ति और अनंत धैर्य को अपने वक्ष-स्थल में वहन करती आ रही है। उसने अपने विराट परिवर्तनशील दीर्घ जीवन में क्या -क्या नहीं देखा है ? कुछ और देख लेने में उसे कुछ भी झिझक नहीं, कुछ भी हिचक नहीं है। जो लोग इस तेजोमय मूर्ति को नहीं देख सकते वही घबराते हैं, मैं नहीं घबरा सकता।

शास्त्र चर्चा अब भी चल रही थी। मैं सोचने लगा क्या यह जरूरी नहीं है कि सभी पंचांगवाले एकमत होकर एक ही तरह का निर्णय करें। शायद नहीं। क्यों कि हमारा देश एक विचित्र परिस्थिति में से गुजर रहा है। वह पुराना रास्ता छोड़ने को बाध्य है, किन्तु नया रास्ता अभी मिला नहीं। वह कुछ पुराने के मोह में और कुछ नए के नशे में भूल रहा है। चलने दो, इन भिन्न-भिन्न मतों को, इन भिन्न–भिन्न पक्षों को, भारतीय जनमत स्वयमेव इनमें से अच्छे को चुन लेगा। इस दृष्टि से इस सभा का बड़ा महत्त्व है. यह भटके हुए लोगों का राह खोजने का प्रयास है। यह अच्छा है।

## 10.6 पंडितों की पंचायत : सार

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं आचार्य क्षितिमोहन सेन के सानिध्य के अतिरिक्त महान चित्रकार नंदलाल वसु, सी.एफ. एण्ड्रूज, विनोदबिहारी मुखर्जी, प्रो.विंटरनित्स, पं विधुशेखर शास्त्री तथा वेणी माधव वाडुवा आदि महापंडितों का समागम प्राप्त किया इसी के चलते आचार्य द्विवेदी के सृजनात्मक शास्त्रीय पाण्डित्य ने बहुसांस्कृतिक स्तर की रचना-दृष्टि प्राप्त की। आचार्य द्विवेदी की यही दृष्टि उनके निबंधों खासकर ललित निबंधों की केन्द्रीय रेखा के रूप में कार्यशील है। ललित निबंधों के रूप में आचार्य द्विवेदी में अपने समाज, संस्कृति, सभ्यता, कला और जीवन के संबंध में कालातीत साहित्य की उद्भावना की है। 'पंडितों की पंचायत' भी इसी श्रेणी का ललित निबंध है। इस निबंध का उद्देश्य एक तरफ जहाँ सहस्रों वर्षो से अर्जित सूक्ष्मतम ज्योतिष विद्या का विकासमान पक्ष उजागर करना है वहीं दूसरी तरफ शास्त्र के समानांतर चलने वाली सृजनबद्ध, सहज लोक-दृष्टि का रेखाकंन एवं महत्त्व प्रतिपादन भी है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का लिखा यह निबंध अपनी सृजनात्मकता, सहजता, पाण्डित्य और सांस्कृतिक-सम्पन्न दृष्टि के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हालाकि 'पंडितों की पंचायत' नामक यह निबंध अपनी विषय वस्तु, संवाद-शैली, भाषा-प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सांस्कृतिक अवधारणा के आधार पर अपनी तरह का अकेला निबंध नहीं है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अन्य कई निबंध अपनी आंतरिक रचनाप्रक्रिया और बाह्य रूपाकार के आधार पर समानशील हैं। इस बात को पुष्ट करने के लिए 'ठाकुर जी की बटोर', 'अशोक के फूल', 'भारतीय मेले', 'घनपति से घनश्याम तक' आदि अन्य कई निबंधों का उदाहरण दिया जा सकता है। सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को महाकाल की अवधारणा के साथ जोड़कर मानव सत्य की सर्वप्रमुखता एवं मानवीय संवेदनों की व्याख्या करना आचार्य द्विवेदी के साहित्य का केन्द्रीय बिन्दु है।

**'पंडितों की पंचायत'** निबंध का स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के भीतर से प्रसरित मानव-सत्य की जिजीविषा पर आधारित है।

अपने गाँव की एक छोटी सी घटना समस्या के बहाने पं. द्विवेदी सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में व्याप्त ज्योतिष विद्या के विकासमान एवं शास्त्रीय स्वरूप की समीक्षा के भीरत वे शास्त्र और लोक के द्वन्द्व को केन्द्रीय बिन्दु के रूप में स्थापित करते हुए शास्त्रीय चिंता के परिप्रेक्ष्य में विकासशील लौकिक ज्ञान को प्रमुखता देते हैं। संस्कृत के पण्डित होते हुए भी आचार्य द्विवेदी लोक ज्ञान की महत्ता को जानते हैं और पंडितों की जड़ पंचायत में बैठे-बैठे सम्पूर्ण मानवीय विकास-चेतना के लिए सूत्र-रत्नों का निर्माण करने का प्रयत्न करने लगते हैं। आचार्य द्विवेदी प्रस्तुत निबंध में भी लोक चिंता से परिचालित दिखाई देते हैं। वे अपने अन्य निबंधों की ही तरह इस निबंध में शास्त्र को लोक का अनुगामी मानने की बात करते हैं। जैसा कि आप ने निबंध में पढ़ा -

" यह जो एकादशी व्रत का निर्णय मेरे सामने हो रहा है, जिसमें बीसियों आचार्यों के सैकड़ों श्लोक उद्धृत किए जा रहे हैं, अपने आप में ऐसा क्या महत्व रखता है जिसके लिए एक दिन सैकड़ों पंडितों ने परिश्रमपूर्वक सैकड़ों निबंध रचे थे और आज आसेतु हिमाचल समस्त भारतवर्ष के पंडित उनकी सहायता से व्रत का निर्णय कर रहे हैं। क्या श्रद्धापूर्वक किसी एक दिन उपवास कर लेना पर्याप्त नहीं था! यदि एकादशी किसी दिन 55 दण्ड से ऊपर हो गई, या किसी दिन उदय काल में न आ सकी, या किसी दिन उदय काल में आ गई तो क्या बन या बिगड़ गया ? किसी भी एक दिन व्रत कर लेना पर्याप्त नहीं है ? मुझे 'ननु' 'तथा च' और 'उक्त च' की धुआँधार वर्षा से मध्य युग का आकाश इतना आविल जान पड़ा कि बीसवीं शताब्दी का ज्ञान लोक अनेक चेष्टाओं के बाद भी निबंधकारों की असली समस्या तक नहीं पहुँच सका। मैंने फिर एक बार सोचा, शास्त्रीय वचनों के इन विशाल पर्वतों को खोदकर यह चुहिया क्यों निकाली जा रही है। "

आचार्य द्विवेदी मानवीय चेतना को सहज और विकासशील मानते हैं । परम्परा का पाठ - पूर्व एवं उत्तर पक्ष के आधार पर करते हुए वे दोनों ही पक्षों को समान भाव से सम्मान की दृष्टि से देखने की पक्षपाती हैं परन्तु शर्त यह है कि मानवीय-सत्य, मानवीय मूल्यों का संवर्धन एवं संरक्षण होता रहे। आचार्य द्विवेदी का सम्पूर्ण साहित्य मानवीय मूल्यों, मानवीय-सत्य, मानवता एवं सम्पूर्ण भारतीय चेतनाधारा पर अखण्ड विश्वास एवं श्रद्धा का साहित्य है। आचार्य द्विवेदी निबंध का अंत करते हुए लिखते हैं – " लेकिन भारतीय संस्कृति क्या सचमुच ऐसी कमजोर नींव पर खड़ी है, कोई एक एक्ट, कोई एक कानून और कोई एक विचार-विनिमय उसे हिला दे ? मैं समझता हूँ, नहीं। मेरे सामने छः हजार वर्षों की और सहस्त्रों योजन विस्तृत देश की विशाल संस्कृति खड़ी है, उसके इस वृद्ध शरीर में जरा भी बुढ़ापा नहीं है, वह किसी चिरनवीन प्रेरणा से परिचालित है। उसके मस्तिष्क में सहस्त्रों वर्ष का अनुभव है; लेकिन थकान नहीं है, उसकी आँखों में अनादि तेज झलक रहा है, पर आलस्य नहीं है! वह अपूर्व शक्ति और अनंत धैर्य को अपने वक्ष-स्थल में वहन करती आ रही है। उसने अपने विराट परिवर्तनशील दीर्घ जीवन में क्या -क्या नहीं देखा है ? कुछ और देख लेने में उसे कुछ भी झिझक नहीं, कुछ भी हिचक नहीं है। जो लोग इस तेजोमय मूर्ति को नहीं देख सकते वही घबराते हैं, मैं नहीं घबरा सकता। शास्त्र चर्चा अब भी चल रही थी। मैं सोचने लगा क्या यह जरूरी नहीं है कि सभी पंचांगवाले एकमत होकर एक ही तरह का निर्णय करें। शायद नहीं। क्यों कि हमारा देश एक विचित्र परिस्थिति में से गुजर रहा है। वह पुराना रास्ता छोड़ने को बाध्य है, किन्तु नया रास्ता अभी मिला नहीं। वह कुछ पुराने के मोह में और कुछ नए के नशे में भूल रहा है। चलने दो, इन भिन्न-भिन्न मतों को, इन भिन्न–भिन्न पक्षों को, भारतीय जनमत स्वयमेव इनमें से अच्छे को चुन लेगा। इस दृष्टि से इस सभा का बड़ा महत्त्व है. यह भटके हुए लोगों का राह खोजने का प्रयास है। यह अच्छा है। "

## अभ्यास प्रश्न

### अभ्यास प्रश्न क - अतिलघु प्रश्न

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म कब और कहाँ हुआ।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी के पिता का नाम क्या था।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी के चार उपन्यासों के नाम बताइये।
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी की मृत्यु कब हुई ?

### लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी का संक्षिप्त जीवन वृत्त लिखिए।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय लिखिए।

### अभ्यास प्रश्न (ख) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ’पंडितों की पंचायत‘ निबंध किस पुस्तक में संकलित है।
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निबंध की कितनी कोटियाँ मानी है ?
3. आचार्य वराहमिहिर की रचना का नाम बताइये।
4. 'पंडितों की पंचायत' किस कोटी का निबंध है।

## 10.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने -

- ❖ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यक्तिगत एवं साहित्यिक जीवन एवं उसके क्रमिक विकास का ज्ञान प्राप्त किया होगा
- ❖ ‘पंडितों की पंचायत’ निबंध का परिचय एवं उसके पाठ द्वारा ललित निबंध का आस्वाद प्राप्त किया होगा।
- ❖ लोक तथा शास्त्र के चिरपरिचित द्वन्द्व के भारतीय जनमानस पर पढ़ने वाले स्वरूप एवं प्रभाव को समझा होगा।

❖ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक महत्त्व का ज्ञान प्राप्त किया होगा।

## 10.8 शब्दावली

1. तिलमिलाकर - गुस्से में,
2. अनुसंधान - खोज, ढूढ़ना
3. शतच्छिद्र - कई सौ छेदों वाला
4. विध्वस्त - टूटना, खण्डित
5. आत्मनिष्ठ - अपने आप में लगा हुआ
6. व्यैक्तिक - व्यक्ति संबंधी
7. आत्मभिव्यक्ति - अपने आप को प्रकट करना
8. परिहार - खत्म, समाप्त

## 10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**अभ्यास प्रश्न (क) के उत्तर**

1. 19 अगस्त, 1907, बलिया (उ.प्र.) में हुआ
2. पं0 अनमोल द्विवेदी
3. बाणभट्ट की आत्मकथा, चारूचन्द्रलेख, अनामदास का पोथा, पुनर्नवा
4. 19 मई 1979, दिल्ली

**अभ्यास प्रश्न (ख) के उत्तर**

1. कल्पलता (1951)
2. 1. वार्तालाप मूलक 2. व्याख्यान मूलक 3. अनियंत्रित गप्प-मूलक 4. स्वगत-चिन्तन मूलक 5. कलह-मूलक
3. वृहत् संहिता

4. ललित निबंध

## 10.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा. राजमल बोरा, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, व्यक्ति और साहित्य, गणपति चंद्र, गुप्त, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़
- हजारी प्रसाद द्विवेदी: चिंतन और व्यक्तित्व , (सं) कृपाशंकर चौबे, कलकत्ता
- साहित्य सहचर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, वाराणसी
- दूसरी परम्परा की खोज, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- व्योमकेश दरवेश, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

## 10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व पर विस्तार से एक निबंध लिखिए।
2. 'पंडितों की पंचायत' निबंध का समीक्षात्मक विवेचन करते हुए आचार्य द्विवेदी की प्रासंगिकता एवं महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

# इकाई 11 उत्तराखण्ड में संतमत और संत साहित्य : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा


11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल: व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व
11.4 उत्तराखण्ड में संतमत और संत साहित्य : पाठ
11.5 निर्गुण संत मत और डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.9 निबंधात्मक प्रश्न


## 11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम से सम्बद्ध है। इस से पूर्व आपने हिंदी साहित्येतिहास के निबंध साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप उत्तराखण्ड के बहुप्रतिष्ठित विद्वान एवं निर्गुण साहित्य के मर्मज्ञ डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल द्वारा लिखित 'उत्तराखण्ड में संतमत तथा संत साहित्य' का अध्ययन करेंगे। यह इकाई मात्र विद्यार्थियों के अध्ययन एवं ज्ञानार्जन के लिए है इस से परीक्षा में व्याख्या हेतु प्रश्न नहीं पूछे जायेंगे।

## 11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- डा. पीताम्बर बड़थ्वाल के जीवन एवं साहित्य से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी साहित्येतिहास के अन्तर्गत निर्गुण सम्प्रदाय की स्थिति तथा उत्तराखंड की भूमि में प्रसारित संत मत विशेषतः निर्गुण संत मत एवं साहित्य के संबंध में ज्ञान लाभ कर सकेंगे।

## 11.3 डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल का जन्म शुक्रवार 24 मार्गशीर्ष सं0 1958 (13 दिसम्बर, 1901) को गढ़वाल में लैंसडाउन के पास पाली नामक एक छोटे से गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. गौरीदत्त बड़थ्वाल था। वे अच्छे ज्योतिषी तथा कर्मकाण्डी विद्वान थे। बालक पीताम्बर का पालन उनके ताऊ पं. मणिराम बड़थ्वाल ने किया, जिनकी अपनी कोई सन्तान नहीं थी। वैसे भी जब बालक पीताम्बर केवल दस वर्ष के थे तो उनके पिता पं. गौरीदत्त जी का देहावसान हो गया था।

आरम्भ में घर पर रहकर ही उन्होंने संस्कृत की पढ़ाई अमरकोष के अध्ययन से आरम्भ की। कुछ समय समीपस्थ विद्यालय में अध्ययन करने के बाद वे श्रीनगर (गढ़वाल) गवर्नमेंट हाई स्कूल में अध्ययन करने चले गए, परन्तु वहां उपयुक्त में कालीचरण हाई स्कूल में प्रवेश लिया, जहां उस समय हेडमास्टर के पद पर हिंदी के दिग्गज बाबू श्यामसुन्दरदास काम कर रहे थे। बाबू श्यामसुन्दरदास अपने विद्यार्थी पीताम्बर दत्त से अत्यधिक प्रभावित हुए और यह परिचय घनिष्ठ होकर बाद में साहित्यिक सहयोग में परिवर्तित हो गया। 1920 में हाई स्कूल सम्मान सहित पास कर, वे एफ.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। तदुपरान्त बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में बी.ए. करने के लिए नाम लिखा लिया था, परन्तु बीमार पड़ने के कारण पढ़ाई न कर सके। लगभग दो वर्ष तक बीमारी की हालत में गांव में रहे। इसी दौरान इनके ताऊ का भी देहान्त हो गया। 1924 में उन्होंने बनारस जाकर इन्हीं दिनों बनारस पुन: पढ़ाई आरम्भ किया। सन् 1926 में बी0ए0 की परीक्षा पास की। सौभाग्यवश इन्हीं दिनों बनारस विश्वविद्यालय में एम0ए0 परीक्षा में प्रथम श्रेणी स्थान प्राप्त किया। उन्हें हिंदी विभाग में शोध कार्य पर नियुक्त किया गया। वे अपना शोध कार्य बड़े मनोयोग से करने लगे और इसी दौरान 1926 में उन्होंने एल.एल.बी. की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली . 1930 में वे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में लेक्चरार नियुक्त किए गए।

अध्यापन कार्य के बाद उन्हें जो भी समय मिलता था उसे वे शोधकर्ता में लगाते थे। उनकी अध्ययनशीलता को देखकर काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें अपने खोज विभाग का अवैतनिक

संचालक नियुक्त किया, साथ-साथ वे स्वयं डाक्टरेट की तैयारी में लगे रहे। दो-तीन वर्ष परिश्रम करने के बाद उन्होंने अपना शोध निबंध 'दि निर्गुण स्कूल ऑफ हिंदी पोयट्री' प्रस्तुत किया।

अपनी साहित्य साधना में वे निरन्तर लगे रहे। जिसके परिणामस्वरूप वे विद्वानों में गिने जाने गले और जगह-जगह महत्वपूर्ण सम्मेलनों में बड़े आदर से बुलाए जाने लगे। यह सब होते हुए भी बनारस में इन्हें असिस्टेंट प्रोफेसर का वेतनमान नहीं दिया गया। महामना मालवीय जी आदि ने हिंदी अध्यापकों को अन्य विषयों के अध्यापकों के समकक्ष वेतन देने से इन्कार कर दिया। डॉ.बड़थ्वाल ने वाइस-चांसलर को सम्बोधित कर अपने 6 मार्च 1938 के अभ्यावेदन में स्पष्ट रूप से लिखा था कि ''अन्य विषयों के डी. लिट्. के समकक्ष मुझे वेतन ने दिए जाने कारण एक ही दिखाई देता है और वह है मेरा हिंदी का स्नातक होना।'' इसके बाद वे लखनऊ चले गए, वहां हिंदी विभाग के प्राध्यापक के रूप में काम करने लगे। परन्तु चाहे जो भी कारण रहा हो लखनऊ का वातावरण उन्हें माफिक नहीं रहा और धीरे-धीरे उनकी शारीरिक तथा मानसिक अस्वस्थता बढ़ती गई। जब काम करना असम्भव हो गया तो अपने गांव आकर रहने लगे जहां सोमवार 24 जुलाई, 1944 (सं0 2001 के श्रावण मास की शुक्ल चतुर्थी) को उनका देहावसान हो गया।

डॉ. बड़थ्वाल का जीवन संघर्ष का जीवन रहा। एक ओर पारिवारिक चिन्ताएँ, दूसरी ओर अर्थाभाव उन्हें घेरे रहा। फिर भी वे निरन्तर हिंदी की सेवा करते रहे।" (सच्चिदानंद कबटियाल )

## 11.4 उत्तराखण्ड में संतमत और संत साहित्य : पाठ

सन्त विचार-परम्परा का गढ़वाल से विशेष संबंध है। संत मत मूल्त: निवृत्ति मार्ग है। उसके सर्वप्रथम आचार्य सनत्कुमार थे छांदोग्य के अनुसार इस संतमत अथवा अध्यात्म-विद्या को सनत्कुमार से नारद से सीखा। इन्हीं नारद की प्रचार की हुई भक्ति में कबीर आदि संतों ने भी डुबकी लगायी। सनत्कुमार ने नारद की वृत्ति को धीरे-धीरे अन्तर्मुख किया। वेद, अन्न, स्मृति, आशा, प्राण, सत्य, मति, श्रद्वा, भूमा आदि के मार्ग से ले जाते हुए वे नारद को वास्वविक आत्मानुभूति की अवस्था तक पहुँचा देते हैं। महाभारत के नारदोपाख्यान के अनुसार नारद की अध्यात्म मार्ग को सीखने के लिए ऐकांतिकों के पास श्वेतद्वीप गये थे। श्वेतद्वीप सूमेरू से उत्तर दिशा में क्षीरसागर के उत्तर तट पर एक द्वीप था। थियासफी के योगविदों के अनुसार यह स्थान चीन के गोबी नामक विस्तीर्ण मरू में-जहाँ पहले क्षीरसागर रहा होगा, अब भी विद्यमान है और इस सृष्टिकाल के सबसे बड़े आचार्य सनत्कुमार अब भी वहाँ रहते हैं। पंडित नरदेव शास्त्री तो हिमगिरि को ही श्वेतद्वीप मानते हैं और गढ़वाल को सनत्कुमार का स्थान।महाभारत के अनुसार जिन लोगों से अध्यात्म-विद्या सीखने के लिए नारद श्वेतद्वीप गये थे वे 'नारायण पर' थे और उसमें संदेह नहीं कि समेरू के निकट नारायणीय धर्म के संबंध रखने वाला सबसे प्रसिद्व स्थान बदरिकाश्रम है जिसका महाभारत-काल में भी आजकल ही के समान अत्यन्त आदर था।

बदरीनाथ बदरीनारायण हैं। बदरिकाश्रम नारायणाश्रम है और नारायण के अवतार व्यासजी का भी मूल आश्रय वही है। वहीं उन्होंने अध्यात्मविद्याके आधार ग्रथ ब्रह्मसूत्र का प्रणयन किया था। वस्तुत: उत्तराखंउ का यह प्रदेश सच्ची तपोभूमि है। प्राचीन काल में तपस्या के द्वारा यहीं बड़े-बड़े तपस्वियों को ज्ञान प्राप्त हुआ। अष्टावक्र ऋषि यहीं विदेहावस्था को प्राप्त हुए। व्यासाश्रम (व्यासगुफा), वसिष्ठाश्रम (हिंदाव) परशुरामाश्रम, बालखिल्याश्रम इस बात का प्रचुर साक्ष्य देते हैं कि यह प्राचीन ऋषियों की तपोभूमि है।

मध्य-युग के सबसे बड़े महात्मा गोरखनाथ ने भी यहीं अपनी सिद्दि प्राप्त की। "रख्वाली" (शरीर-रक्षा के) मंत्रों से पता चलता है कि उन्होंने अपनी घोर तपस्या 'धौलया उढ्यारी' (धवल गुहा) नामक गुफा में की थी। यह स्थान दक्षिण गढ़वाल में अत्यन्त निर्जन और बीहड़ स्थान में है। यहींवीर राजा काली हरपाल को उसकी माता ने बाल्यावस्था में बड़ी कठिनाइयों का यामना करते हुए पाला था। इस सथान का इस प्रकार गढ़वाल के इतिहास में ही नहीं संतों के इतिहास में भी बड़ा महत्व है। स्वयं गोरखनाथ ने तप के क्षेत्र में उत्तराखण्ड का बड़ा महत्व माना है।

**दक्षिणी जोगी रंगा चंगा, पुरबी जोगी वादी।**
**पछिमी जोगी बाला भोला, सिंध जोगी उतराधी।।**

गढ़वाल के मंत्र-साहित्य में गुरू गोरखनाथ का बड़ा प्राधान्य रहा है। जान पड़ता है कि किसी समय में नाथों का भी यहाँ बड़ा प्राधान्य था। अभी भी गढ़वालमें गोरखपंथी नाथ बहुत हैं। ओले, अति वर्षण आदि ईतियों के निवारण के लिए जिन डलियों को 'डाडवार' (वार्षिक वृत्ति) प्रत्येक गढ़वालीघर से मिलता है, वे नाथ ही हैं। दक्षिण गढ़वाल में बहुत नाथ रहते हैं।श्रीनगर में भी नाथों को एक अलग मुहल्ला है। गढ़वाल में बहुत नाथ रहते हैं। गढ़वाल में गोरखपंथियों का सबसे बड़ा स्थान देवलगढ़ के सत्यनाथ का मंदिर है। मूलत: देवलगढ़ देवी का पवित्र स्थान है। त्रिगर्त(काँगड़ा) के देवल नाम के एक प्राचीन राजा ने इस स्थान पर गौरा देवीका मंदिर स्थापित किया था ऐसा परंपरागत प्रवाद है देवल राजा ही के नाम से इस स्थान का नाम देवलगढ़ पड़ा है। देवी का यह मंदिर अब तक देवलगढ़ में विद्यमान है और गोरजा देवीके मंदिर के नाम से प्रख्यात है। गढ़वाल के पँवार राज्यवंश का स्थापित किया हुआ राज-राजेश्वरी का मंदिर भी यहाँ है, परन्तु संतमत की दृष्टि से सत्यनाथ का मंदिर बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके पीछेएक ऐतिहासिक परंपरा है जो एक बड़े ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत करती है। कहा जाता है कि राजा अजयपाल को भैरवनाथ ने सत्यनाथ ने सत्यनाथ योगी के रूप में यहीं दर्शन दिये और उन्हें कंधे पर चढ़ा कर अपना आकार बढ़ते हुए कहा कि जहां तक तुम्हारी दृष्टिजाती है, वहां तक तुम्हारा राज्य फैल गया और उसनेसत्यनाथ से प्रार्थनाकी कि अब अपना आकार न बढ़ाइए। राजा की दृष्टि हिमालय से लेकर शिवालिक (सपाद लक्ष) पर्वत-श्रेणीतक पहुँची और वहाँ तक उसका राज्य फैल गया।

किसी समय उत्तर-भारत में नाथों का खूब बोलबाला रहा है। वे केवल निरीह साधु ही नहीं रहे हैं नवीन राज्यों की स्थापना करने वाले और राज्य-शक्ति का परिचालन करने वाले भी रहे हैं। इसमें तो संदेह नहीं कि गोरखा राजा का नाम गोरखनाथ के नाम से पड़ा है। गोरखा राजा अपने आपको केबल दीवान मानते हैं, गद्दी का वास्वविक स्वामी तो गोरखनाथ माना जाता है। जान पड़ता है कि शिशोदियों की जो शाखा 94वीं शताब्दी के लगभग गोरख और पीछे नेपाल राज्य में अधिष्ठित हुई, उसको वहां लाने के कारण गोरखनाथ ही थे। जोधपुर में 97वीं 98वीं शताब्दी के नाथ लोगों के ही हाथामें प्राय:सारेराज्य की बागडोर रही है। गढ़वाल में पँवार-वंश को गहरी नींव देने में भी जान पड़ता है कि नाथों का कुछ साहाय्य रहा है, यह ऊपर के परंपरागत जनवाद से स्पष्ट है और कई प्रकार से इसकी पुष्टि होती है। गढ़वाल के गाँव-गाँव में सिद्वों के स्थानों का होना इस बात का सूचक है कि गोरक्ष आदि सिद्वों को यहाँ बड़ा माना था। सिद्वों ने गढ़वाल में ग्राम-देवताओं का स्थान ग्रहण कर लिया है और भैरव तथा देवी के साथ-साथ उनकी भी पूजा होती है। बल्कि भैरव और देवी की तो कभी-कभी याद आती है, सिद्धि का स्परण पद-पद पर किया जाता है। गढ़वाल में मंत्र-साहित्य में गोरखनाथ, सत्यनाथ, मछिंद्रनाथ, गरीबनाथ, कबीरनाथ, आदि सिद्वों की आणें पड़ती है।

जान पड़ता है कि देवलगढ़ में सत्यनाथ के मन्दिर की स्थापना संवत् 1683 में आषाढ़18 गते को हुई। उससे पहले वह केवल गुफा मात्र रही होगी। मन्दिर रूप में बन जाने पर पहले पीर हंसनाथ जी थे जिनका नाम मंदिर में संवत् के साथ लिखा हुआ है। किसी प्रभावशाली व्यक्ति प्रभातनाथ ने सम्भवत: उसी समय एक बड़ा भारी भंडारा भी किया था। उसका भी उल्लेख शिलालेख में है। यह भी सम्भव है कि मन्दिर की स्थापना हंसनाथजी ने बहुत प्राचीन काल में की हो और प्रभातनाथजी ने संवत् 1683 में मन्दिर की केवल मरम्मत और भंडारा किया हो। स्वर्गीय वजीर पं. हरीकृष्णजी रतूड़ी का मत है कि राजा अजयपाल ने राज-राजेश्वरी और सत्यनाथ दोनों मन्दिरों की स्थापना संवत् 1512 के लगभग की राजधानी चाँदपुर से हटा कर देवलगढ़ में स्थापित हुई।यह अजयपाल राजा वही हैं जिन्होंने गढ़वाल में बहुत कुछ शांति स्थापित की। इनके समय का चला हुआ देवलिया पाथा (पात्र भर कर अन्न नापने का एक परिणाम द्यूल्या पाथो 'देवलीय प्रस्थ') अब तक गढ़वाल में प्रचलित है। इसके प्रचार संबंधी शिलालेख भी अब तक देवलगकढ़ में विद्यमान हैं।

जान पड़ता है कि नाथों का जो मान अजयपाल ने किया उसके कारण स्वयं वे भी महात्माओं की श्रेणी में आ गये हैं। नाथों या सिद्वों में केवल अजयपाल अजयपाल भरथरी और गोपीचन्द ही ऐसे हैं जिनके नाम से आगे नाथ या पाव ('पाद'-'पा' भी यही है) नहीं आये हैं इससे पता चलता है कि गोपीचन्द और भरथरी के समान सिद्व अजयपाल भी राजा था। कबीर का संत-मत से धनिष्ठ संबंध है। वह भी गढ़वाल में सिद्व मानाजाता है। कहीं-कहीं पर उसको कबीरनाथ भी कहा है। गढ़वाल में कबीर के मत का भी प्रचार हुआ था। गढ़वाल के डोम जो निंकार (निराकर) को पूजा चढ़ाया करते हैं, वस्तुत: कबीर के ही अनुयायी हैं। निरंकार की पूजा में कबीर की 'जागर' लगती है।

यद्यपि कबीर अहिंसावादी थे फिर भी डोम निरंकार की पूजामें बड़ी निर्दयता से सुअरों का बलिदान करते हैं। किन्तु इस बलिदान को भी उन्होंने विलक्षण रूप से कबीर के साथ जोड़ दिया है।

जागर के अनुसार कबीर ने निरंकार को एक टोकरी अन्न और दो नारियल अग्याल (मनौती की अग्रिम भेंट) के रूप में चढ़ाये थे। कबीर जब कहीं बाहर गये हुए थे तब निरंकर स्वयं एक लंगड़े मँगता के वेश में कबीर के घर आया और उसकी स्त्री से भीख माँगने लगा। कबीर की स्त्री ने कहा कि घर में निरंकरकी अग्याल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मँगता ने उसी में से अपने छोटे खप्पर को भरकर भीख मिल जाने का आग्रह किया। कबीर की स्त्री यह आग्रह न टाल सकी। किंतु मँगता का खप्पर तब जाकर भरा जब सारी अग्याल उसमें डाल दी गयी। कबीर की स्त्री अपने किए पर पछताती हुई खाली पात्र रखने के लिए भीतर गयी तो उसने सारा कमरा अन्न से भरा हुआ पाया। अब उसे सूझा कि हो न हो यह भिखमंगा स्वयं निरंकार ही था। परन्तु इससे पहले कि वह बाहर निकल कर उसके चरणों पर पड़े और अनुनय-विनय करे वह लंगड़ाता हुआ भाग खड़ा हुआ। भागने में उसके खप्पर में से दोनों नारियल एक मैले स्थान पर गिर गये और सुअर के रूप में परिवर्तित हो गये। तब से निरंकार के लिए सुअरों की बलि दी जाती है। एक प्रकार से सुअर सुअर नहीं, नारियल हैं और उनको चढ़ाने से अहिंसा का विरोध नहीं होता।

मैं तो समझता हूं कि मुसलमान कुल में पैदा हुए गुरू के चेलों को जब लोग मुसलमान ही गिनने लगे तब उनमें से कुछ को अपना मुसलमान न होना सिद्व करने के लिए शूकर-वध का यह उपाय काम में लाना पड़ा। यह कहा जा चुका है कि व्यासजी ने ब्रह्मसूत्र की रचना बदरिकाश्रम में ही की थी। हिन्दी का भी थोड़ा-सा आध्यात्मिक साहित्य गढ़वाल में लिखा हुआ मिलता है।

मोलाराम का नाम चित्रकारी के लिए प्रसिद्व है। उसने चित्रकारी के साथ-साथ कविता भी की थी। मोलाराम ने नाना विषयों पर लिखा है। मोलाराम ने जो कुछ लिखा है उसका काव्य की दृष्टि से से विशेष महत्व नहीं परन्तु अन्य दृष्टियों से उसका बहुत महत्व है। गढ़वाल के तत्कालीन इतिहास पर उनकी कविताओं से अच्छी तरह प्रकाश पड़ाता है। थोड़ा बहुत अध्यात्म विद्या पर भी उन्होंने लिखा है। साधना पंथ के मनोविज्ञान की दृष्टि से इन कविताओं का बड़ा महत्व है।

कुछ मनस्तत्ववेत्ताओं का मत है कि मनुष्य के सब भावों का मूल्य प्रेरक श्रृंगार ही है। यही एक भाव नाना रूप धारण कर मनुष्य के विविध क्रिया-कलापों में प्रकट होता है। जान पड़ता है कि मोलाराम के विषय में गढ़वाल में भी एक साधना-पंथ ऐसा था जिसके आचार्यो को इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का ज्ञान था और उसी पर उन्होंनेइस पंथ की नींवडाली थी। इस पंथ का नाम मोलाराम के अनुसार मनमथ-पंथ था। यह पंथ का नाम मोलाराम के अनुसार आदि शक्ति ही सर्वोपरि और सृष्टि का मूल है। अकल रूप में वह सदाशिव है, निर्गुण है। सकल या सगुण रूप धारण कर वही सृष्टि रचती है।

**आदि शक्ति रचना जब रची या विश्व माहिं**
**मन मथि कै ध्यान धर् यो मनमथ हुलासा है।**
**मनमथ, सौ इच्छा भई भेग और विलास हूँ की**
**ताके हेत ब्रह्म हरि रूद्र कौं प्रकासा है।।**

इस प्रकार मोलाराम के अनुसार आध्यात्मिक साधना धर्मनीति, समाजनीति, राजनीति, साहित्य, संगीत, कला, वाणिज्य-व्यवसाय सब क्षेत्रों में एक ही मूल प्रवृत्ति नाना रूपों में काम करती है। मनमथ, कामदेव आदि शब्दों के व्यवहार से यह नहीं समझना चाहिए कि जिस पंथ का वर्णन मोलाराम ने किया है, वह व्यभिचार फैलाने वाला पंथ है। मोलाराम ने स्पष्ट शब्दों में कुमार्ग का त्याग दया दाक्षिण्य मुक्त गृहस्थ धर्म को पालना, मन को साधना और अंतर्मुख जीवन बिताना आवश्यक बतलाया है।

**है तुहू अन्दर बैठ निरंतर लेख्यो लिलाट कही नहीं जावैं।**
**छाड़ि कुमारग मारग मैं रहौ, धृस्य कौं मूल दया हितरावै।।**
**साधन तें मन साधले आपनों मोलाराम महा सुष पावै।**
**है तुहु अन्दर दुइत मन्दर क्यौं जग बन्दर सौं भरमावै।**

वस्तुत: इस पंथ ने मनुष्य की वास्तविक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया है और अपनी साधना को दृढ़ आधारशिला पर रखा है, जिससे साधक धोखे में न पड़े। जैसा 'यत: प्रवृति प्रसृता पुराणी' से पता चलता है। गीता भी मानती है कि फैलाव जितना है प्रवृत्ति का है। इसलिए वही पंथ जो इस प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर चलता है, वस्तुत: लाभदायक हो सकता है। अतएव मोलाराम ने जीव से सीव (शिव-ब्रह्म) होने को एक मात्र उपय बताया है। इन मन:शक्ति को उपयुक्त रूप में मंथन कर उसे नाना दिशाओं में दौड़ने से रोक कर एक ही स्थान में लाना यही सारी साधना का सार है, इसी का दूसरा नाम निवृत्ति तथा योग है: मन के साथ जोब-जबर से काम नहीं चलता। उसे बलात एक स्थान पर सिमटाना असंभव है। उसीलिए मन को समझाने का उपदेश है:

**काहू सौं बकवाद नहीं हम करैं करावैं।**
**मनमथ पंथी होय अपनो मन समझावैं।**
**कहा बाद मैं स्वाद जो हम काहूँ सों बादैं।**
**जे सज्जन कुलतन्त सं सो मन कौ साधैं।**
**मोलाराम विचार कही सुनो पंच प्रवीन तुम।**
**भये भक्त जग माहिं जे सब दासन के दास हम।।**

जितने योग के साधन हैं, सबका उद्देश्य मन को समझा-बुझा कर एक ठिकाने पर लाना है। जप, तप, षटचक्र-वेध नादानुसंधान, ज्योति दर्शन सबका मनमथ पंथ में मोलाराम के अनुसार उचित स्थान है। यहाँ पर इतना स्थान नहीं है कि मोलाराम के इस संबंध के पूरे उद्धरण दें। परन्तु इतना तो स्पष्ट हो गया है कि मोलाराम का यह मनमथ पंथ मनस्तत्व और दर्शन के उच्च सिद्धांतों पर टिका हुआ एक शुद्ध साधना मार्ग है। इसमें प्राचीन परम्परा से आती हुई उन बातों का मोलाराम ने सिद्धांत रूप से संवत् 1850 के लगभग उल्लेख कियाथा जिनको मनस्तत्व के क्षेत्र में बड़े-बड़े विद्वान् समझ रहे है कि हम ही पहले पहल आविष्कार कर रहे हैं। उन्हीं बातों के कारणमोलाराम के अनुसार यह पंथ अमृत का सार है। जो उसे जानते हैं उन्हें ब्रह्मनन्द लाभ होता है।

**मनमथ को पथ ऐसो, इमृत को सार जैसो।**

**जानत हैं सोई संत ब्रह्म को बिलासा है।।**

इसी प्रकार स्वामी शशिधर का भी गढ़वाली संत साहित्यकारों में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। महात्मा हरिमुनि शर्मा इनका बड़ा आदर करते थे। सं.1882 में ये ब्रह्मलीन हुए। इनके रचे हुए 1-दोहों की पुस्तक (दोहावली), 2- ज्ञानदीप, 3-सच्चिदानंद लहरी, और 4- योग-प्रेमावली का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (1912-1994) में मिलता है।

ये बड़ी पहुँच के ज्ञानी थे। जीवन-मुक्त होकर इसी शरीर से वे उस ब्रह्म पर को प्राप्त हो गये थे, जहाँ ब्रह्म की सृष्टि और विष्णु के अवतारों की पहुँच नहीं। रूपक की भाषा में उन्होंने ऐसे शहर में व्यापार करने की बात कही है:

**ब्रह्म न रचे जहाँ विष्णु को नहि अवतार।**
**ऐसो सहर में सदा करै सब बसि बजार।।**
**एहि जाने सो ताको पंडित, करै मुतबाल बसाइ।**
**जाने बिना मिले नहीं, मूढ़ करि होत थकाइ।।**

सब को वे उस स्थान तक पहुँचने का आदेश देते हैं। ब्रह्मानुभव के आनंद का उन्होंने बड़ा अच्छा वर्णन किया है:

**ध्यान भजन तहाँ नहिं पूजा, आपे आप अतीत आवरण दूजा।।**
**बंधन-मोक्ष तहाँ पूरण आनंद, आपे आप सहज खेले निरबंद।।**

-सच्चिदानन्द लहरी

इस पद तक पहुँचने का उन्होंने जो मार्ग बतलायाहै उसमें भी मन की शक्तियों का भली-भाँति ध्यान रखा गया है। उन्होंने कहा है कि ब्रह्म-लीन होने के लिए ब्रह्म-बोध होना आवश्यक है और ब्रह्म-बोध तब तक नहीं हो सकता जब तक मन को बोध विषय की प्रतीति नहीं होती।

**मैं क्या कहूँ कहँ यति सति सभ कोई,**

**सभ सभी गावै जो बुझै सो सभ होई।**

**प्रतित सें बोध होवै बोध से लय लागे मन,**

**मन के गति मुनि जाने जाके मिलि गये तन। - ज्ञानदीप**

मन को बिना कष्ट पहुँचाये सुख से अंतर्मुख करने के लिए उन्होंनेमन के सामने कृष्ण का परम प्रेमालुप्त स्वरूप रखा है:

**नमस्ते नन्द कुमार नमस्ते गोपिका बर।**

**बोधात्मा साधनी गावै दीन दास शशिधर।।**

भगवत्भजन और प्रपत्ति की भी उन्होंने महत्ता गायी है।

**काया कर निकर मुख राम भजि**

**भक्ति मन आत्मा जागला।**

**येति निज नाम खेवा खियायि**

**भवाब्धि की बड़ पार लागला।। - योग-प्रमावली**

यहां पर साधना के अतिरिक्त ‘जागला’और ‘लागला’आदि में उनकी भाषा का पहाड़ीपन ध्यान देने योग्य है।

गढ़वाल में संत-साहित्य का मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं। तितिक्षा और वैराग्य का पाठ पढ़ने युग-युगान्तर से साधक लोग इस तपोभूमि में आते रहे हैं। ब्रह्म विद्या का तो इसे घर होना चाहिए। मैंने जो कुछ यहां लिखा है वह तो लेशमात्र है जो मुझे आसानी से प्राप्त हो गया। गढ़वाल ही नहीं समस्त पर्वतीय देशों में अध्यात्म विद्या के ही नहीं किसी प्रकार के साहित्य का भी अभी तक अच्छी तरह से अन्वेषण नहीं हुआ है। उन्मेषशील युवक समाज से आशा की जातीहै कि वह

उत्साहपूर्वक इस काम को अपनेहाथ में लेगा। हमारे वयोवृद्ध उन्हें साहित्य के कल्याण-मार्ग पर सत्प्रेरणा दें और श्रीमंत उनकी कठिन साधना से प्राप्त सामग्री को प्रकाश में लाने के साधन सुलभ करें जिससे एक परिश्रम का साफल्य उत्तरोत्तर और परिश्रमों तथा प्रयत्नों की प्रेरणा करता रहे।("डा. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल के श्रेष्ठ निबंध " पुस्तक से साभार )

## 11.5 निर्गुण संत मत और डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल हिंदी शोध और आलोचना के अग्रदूत रहे है। एक समय जब उच्च्च कक्षाओं में हिंदी का अध्ययन और अध्यापन नहीं होता था और प्राचीन हिंदी ग्रंथों की पर्याप्त खोज नहीं हुई थी, तब डा. बड़थ्वाल ने पं. रामचंद्र शुक्ल और श्याम सुन्दरदास के साथ हिंदी शोध ओर आलोचना की गहरी नींव डाली। पं. रामचंद्र शुक्ल और बाबू श्याम सुन्दर दास आलोचना के क्षेत्र में व्यस्त रहे जब कि डा. बड़थ्वाल ने शोध का कार्य अपनाया। उन्होंने अपने शोध के लिए संत साहित्य को चुना जो तब अंधकार में पड़ा था और जो साहित्य रूप में विशेष चर्चा का विषय भी न था। उन्होंने पहली बार मूल स्रोत तक पहुँचने की कोशिश की और नई मान्यताएं स्थापित की। कबीर आदि संतों और गोरख, रामानंद आदि पर उन्होंने जो कार्य किया वह आज भी नींव के पत्थर की तरह है। डा. बड़थ्वाल ने अनेक दुष्प्राप्य हस्तलिपियों का संग्रह किया था, जिनके अध्ययन के आधार पर उन्होंने नागार्जुन, चौरंगीनाथ, कणोरिपाव, स्वामी राद्यवानन्द, सिद्धान्त पंचमात्रा निरंजनी धारा, हिंदी कविता में योग प्रभाव, कबीर का जीवन वृत, कबीर के कुल का निर्णय आदि जटिल विषयों पर लेख लिखे। डा. बड़थ्वाल के सबसे महत्वपूर्ण लेख वे हैं जो हिंदी साहित्य के इतिहास की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हैं तथा श्रृंखला को जोड़ने में सहायक होते हैं। डा. बड़थ्वाल ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं जिनमें गोरखवानी युग प्रवर्तक रामानंद, सूरदास, रामचंद्रिका, सूरदास, योग प्रवाह, मकरंद आदि उल्लेखनीय हैं। किंतु उनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ 'हिंदी काव्य में निर्गुण धारा' है जो डी.लिट्. का पहला-पहला शोध प्रबंध माना जाता है, प्रस्तुत ग्रंथ शोध और आलोचना का एक मानक प्रस्तुत करता है। संतमत पर उनकी खोजों ने आगे के शोधकर्त्ताओं का मार्ग प्रशस्त किया है हमें इस आधारभूत ग्रंथ को प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष है।

" हिंदी-काव्य के इतिहास का पूर्व-रूप हमें पहले-पहल उन काव्य-संग्रहों में दीख पड़ता है जिन्हें समय-समय पर, कुछ व्यक्तियों ने, अपनी रूचि के अनुसार प्रस्तुत किया था और जिनमें, कवियों से अधिक उनकी कृतियों पर ही ध्यान दिया गया था। इसके अनन्तर कविताओं के साथ-साथ उनके रचयिताओं के संक्षिप्त परिचय भी दिये जाने लगे और उक्त प्रकार से संगृहीत रचनायें, क्रमशः केवल उदाहरणों का रूप ग्रहण करने लगी। ऐसे कवियों का नामोल्लेख, उस समय अधिकतर वर्णक्रमानुसार किया जाता था तथा उनके समय व स्थानादि का निर्देश कर दिया जाता था। उनकी कविताओं में उपलब्ध साम्य व उनकी वर्गीकरण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। इस दूसरे प्रकार के विवरणों का देना, उस समय से आरम्भ हुआ, जब कुछ प्रतिनिधि कवियों के अनुसार

काल-विभाजन की भी प्रथा चल निकली और प्रत्येक वर्ग की चर्चा उसके काल क्रमानुसार की जाने लगी। ऐसा करते समय उन कवियों की विशेषताएं बतलायी जाने लगीं, उनकी पारस्परिक तुलना की जाने लगी और कभी-कभी उनकी रचनाओं का आलोचनात्मक परिचय भी दे दिया जाने लगा। इस प्रकार उक्त कोरे काव्य-संग्रहों का रूप क्रमशः काव्य के इतिहास में परिणत होने लगा और कवियों के साथ-साथ गद्यलेखकों की भी चर्चा आ जाने के कारण इस प्रकार की रचनाएं पूरे हिंदी साहित्य का इतिहास बनकर प्रसिद्ध हो चली। परन्तु नामानुसार किया गया उक्त काल-विभाजन भी आगे चलकर उतना उपयुक्त नहीं समझा गया। कवियों एवं लेखकों की विभिन्न रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते समय अब उनके रचना-काल की परिस्थितियों पर भी कुछ अधिक विचार किया जाने लगा और तात्कालिक समाज के भीतर उनकी भावधारा तथा रचनाशैली की विशेषताओं के कारणों की भी खोज की जाने लगी। तदनुसार एक समान रचनाओं के किसी काल विशेष में ही उपलब्ध होने के कारण क्रमशः उनके रचनाकाल की प्रमुख विचारधाराओं का भी पता लगाना आवश्यक हो गया है और इस प्रकार उक्त काल-विभाजन के आधार में आमूल परिवर्तन कर दिया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' की रचना बहुत कुछ इसी दृष्टिकोण के अनुसार सं. 1986 में की थी और तब से वैसे अन्य इतिहासकार भी अधिकतर इसी नियम का पालन करते आये हैं। वे प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण उनकी विभिन्न धाराओं के अंतर्गत भिन्न-भिन्न कवियों का वर्गीकरण करते हैं और उनका वर्णन करते समय कृतियों की समीक्षा पर भी विशेष ध्यान देते आये हैं। फलतः हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के अंतर्गत 'निर्गुणधारा' एवं 'सगुणधारा' नाम की दो भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों की कल्पना की गयी है और 'निर्गुणधारा' को भी 'ज्ञानाश्रयी' तथा 'प्रेमाश्रयी' नामक दो शाखाओं को विभाजित कर, कबीर, नानक आदि कवियों का परिचय 'ज्ञानाश्रयी शाखा' के अंतर्गत किया जाने लगा है।

कबीर, नानक, रैदास, दादू जैसे संतों के नामों से लोग बहुत दिनों से परिचित थे और उनकी विविध बानियों का प्रचार भी अनेक वर्षों से बढ़ता ही चला जा रहा था। स्वयं उन संतों ने अपने पूर्ववर्ती संतों के नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिये थे और बहुधा उन्हें सफल साधकों व भक्तों की श्रेणी में गिनते हुए उनका स्मरण किया था। इसी प्रकार भक्तमालों के रचयिताओं ने भी अपने पूर्वकालीन संतों के चमत्कारपूर्ण जीवन की झांकियां दिखलाई थी और कभी-कभी उनकी विशेषताओं की ओर लक्ष्य करते हुए उनके महत्व का मूल्यांकन करने की भी चेष्टा की थी। परन्तु, इस प्रकार के वर्णन अधिकतर पौराणिक पद्धति का ही अनुसरण करते आये और इसी कारण इनमें उनके सर्वांगपूर्ण परिचय के उदाहरण नहीं पाये जाते। इसी प्रकार हम उन आलोचनात्मक परिचयों को भी एकॉगी ही कह सकते हैं जो यूरोप तथा भारत के कतिपय विद्वानों-द्वारा विविध धर्मों के इतिहासों में दिये गये मिलते हैं और जिनमें इन संतों की सांप्रदायिक प्रवृत्ति और इनकी सुधार-पद्धति की ओर ही विशेष ध्यान दिया गया है। संतों की कृतियों का अध्ययन उनमें केवल धार्मिक दृष्टिकोध से ही करने का प्रयत्न किया गया है

और इनके नामों के आधार पर निकले हुए पंथों का इतिहास भी बतलाया गया है। इस कारण ऐसी पुस्तकों में विशेष कर प्रचलित भेदों और उपासना-पद्धतियों का विस्तृत वर्णन ही पाया जाता है।

उपर्युक्त साहित्यिक अथवा सांप्रदायिक परिचयों में इन संतों का वर्णन सामूहिक रूप में किया गया नहीं दीख पड़ता। पहले प्रकार के ग्रंथों में इन्हें अन्य कवियों की ही भांति पृथक-पृथक परिचित करा कर इनकी रचनाओं के कुछ विवरण दे दिये गये हैं और इसी प्रकार, उक्त धार्मिक इतिहासों में भी इन्हें निरा धार्मिक प्रचारक मानकर इनका वर्णन अलग-अलग कर दिया गय है। संतों को एक वर्ग-विशेष में गिनते हुए उनके सिद्धान्तों तथा साधनाओं का सामूहिक परिचय देने अथवा उनकी कथनशैली व प्रचार पद्धति पर भी पूर्ण प्रकाश डालने का काम उक्त दोनों में से किसी प्रकार की भी पुस्तकों में किया गया नहीं दीख पड़ता। वास्तव में इन संतों के विषय में सर्व साधारण की धारणा पहले यही रहती आई थी कि ये लोग केवल साधारण श्रेणी के भक्तमात्र थे, इन्होंने अपने-अपने समय के धार्मिक आन्दलनों में भाग लेकर अपने-अपने नामों पर नवीन पंथ चलाने की चेष्टा की थी और अपनी विचित्र प्रकार के रहन-सहन एवं अटपटी बानियों के कारण इन्होंने अपने लिए बहुत से अनुयायी भी बना लिए थे। इनकी अन्य भक्तों से भिन्नता, इनके सिद्धान्तों की एकरूपता, इनकी साधनाओं की विलक्षणता अथवा इनकी मुख्य देन के प्रति किसी ने विचार नहीं किया था।

संतों की इस परंपरा को एक सूत्र में ग्रंथित करने तथा उनके मत का व्यापक रूप निश्चित करने में कई कठिनाइयाँ भी पड़ती थी। केवल दो-एक को छोड़कर इनमें से अन्य संतों का कोई साधारण परिचय भी उपलब्ध नहीं था। इनकी बानियों या तो इनके अनुयायियों के पास हस्तलिखित रूप से सुरक्षित पायी जाती थीं अथवा विकृत होकर यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हुई मिल जाया करती थी। इसके सिवाय इन संतों के नामों पर चलने वाली विविध पंथों के रूप और प्रचार-पद्धति में भी महान् अन्तर आ गया था। जिस उद्देश्य को लेकर उसका सर्वप्रथम संघटन हुआ उसे, काल पाकर, वे भूल से गये थे और अन्य प्रकार के प्रचलित संप्रदायों के अनुकरण में अधिक लग जाने के कारण, वे क्रमशः साधारण हिंदू समाज में ही विलीन होते जा रहे थे। इन पंथों के अनुयायियों ने अपने प्रवर्त्तकों को दैवी शक्तियों से सम्पन्न मानकर उनकी पौराणिक चरितावली भी बना डाली थी और उनके मौलिक सिद्धान्तों के सच्चे अभिप्राय को समझने की प्रायः कुछ भी चेष्टा न करते हुए उन पर अपने काल्पनिक विचारों को आरोपित कर दिया था। इस कारण वास्तविक रूप जान लेना अथवा उनके महत्त्व का समुचित मूल्यांकन करना कोई सरल काम नहीं था।

उक्त बाधाओं के बने रहने के कारण इन संतों के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों की भी धारणा भ्रांतिपूर्ण हो गयी थी। इनकी बानियों को ऐसे लोग अत्यन्त साधारण नहीं दीख पड़ती थी। संत लोग इनके समक्ष कतिपय निम्नश्रैणी की जातियों में उत्पन्न अशिक्षित व्यक्ति थे जिन्हें प्राचीन धर्मग्रंथों अथवा शास्त्रादि का कुछ भी ज्ञान नहीं था और जिन्हें इसी कारण, सच्चे मार्ग की पहचान तक नहीं हो सकती थी। ये उनके लिए सर्वसाधारण में घूम-फिर कर ऊटपटांग बातों का प्रचार करने वाले निरे

साधू व फकीर-श्रेणी के लोग थे और इनके उपदेशों का कोई सुदृढ़ आधार व उद्देश्य भी नहीं था। संतों की बानियों में बिखरे हुए विचारों की संगति वे, किसी पूर्वगत विचारधारा से, लगा पाने में प्रायः असमर्थ रहा करते थे, और इस कारण, उन्हें इनमें कोई व्यवस्था नहीं दीख पड़ती थी और इनकी सार बातें उन्हें किन्हीं अस्पष्ट व क्रमहीन का संग्रहमात्र प्रतीत होती थी। अतएव संतपरम्परा, संतसाहित्य व संतमत की ओर उनका ध्यान पहले एक प्रकार की उपेक्षा का ही रहता चला आया था। इस दिशा में उनका ध्यान सर्वप्रथम उस समय से आकृष्ट होना आरम्भ हुआ जब संतों की बानियों का यत्र-तत्र संग्रह किया जाने लगा और इस प्रकार के ग्रंथ कभी-कभी प्रकाशित भी होने लगे।

विक्रम की बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही वास्तव में संतों और उनकी कृतियों का क्रमशः प्रकाश में आना आरम्भ हुआ। उसके पहले डा. विल्सन के ''ए स्केच ऑफ दि हिंदू सेक्ट्स''सं.1988 में उनके विषय में थोड़ा-बहुत लिखा जा चुका था, गार्सा द तासी ने अपने 'इस्त्वार द ला लितरेत्योर ऐंदुई ए इंदुस्तानी (सं.1896) में कुछ संतों व उनकी रचनाओं की चर्चा की थी और डॉ. ग्रियर्सन ने भी अपने ''मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान सं. 1946 में उनका एक आलोचनात्मक परिचय दिया था जो अधिकतर 'शिवसिंह सरोज' पर आश्रित था। इन लेखकों ने अपने विचार बहुत कुछ अधूरी सामग्रियों के ही आधार पर निश्चित किए थे। उस समय तक न तो स्व. पं. चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी के ''अगबंधू'' व ''स्वामी दादूदयाल की वाणी'', (सं. 1964) स्व. बा. बालेश्वरप्रसाद की 'संतबानी पुस्तक माला' (सं. 1965) व स्व. डा. श्यामसुन्दरदास की 'कबीर ग्रंथावली' जैसे मूल साहित्य को प्रकाशन हो पाया था और न डाक्टर मेकॉलिफ के 'दि सिख रिलीजन सं. 1965 डा. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'वन हण्ड्रेड पोयम्स आफ कबीर'सं. 1980 डॉ. तारादत्त गैरोला के साम आफ दादू सं. 1986 अथवा प्रो. तेजसिंह के ' दि जपजी जैसे सुन्दर अनुवाद ही निकल पाये थे जिनका अध्ययन कर कोई निर्णय किया जाता। रे. वेस्टकाट ; सं. 1964 डॉ. फर्कुहर ;सं.1977, डॉ. भंडारकर ;सं. 1985, डॉ. कीथ ;सं. 1988 जैसे विद्वानों की धार्मिक इतिहास सम्बन्धी रचनाएँ रे. प्रेमचन्द ;सं. 1968 व रे. अहमदशाह ;सं. 1972 द्वारा किए गए बीजक के अनुवाद तथा तथा मिश्रबंधुओं का विनोद ;सं0 1969, पं. रामचन्द्र शुक्ल ;सं. 1986 व डॉ. सूर्यकांत शास्त्री ;सं. 1989 साहित्यिक इतिहास भी इसी काल में निर्मित व प्रकाशित हुए और प्राय: इसी समय से इस विषय पर अच्छे-अच्छे निबंध भी लिखे जाने लगे।" (" हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा " पुस्तक से साभार )

## 11.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- निर्गुण काव्य के मर्मज्ञ विद्वान डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के जीवन एवं उनके साहित्य से परिचित हो चुके होंगे।

- हिंदी साहित्येतिहास में निर्गुण काव्य एवं सम्प्रदाय के प्रसार एवं महत्त्व को जान चुके होंगे।
- उत्तराखण्ड में व्याप्त निर्गुण सम्प्रदाय एवं संतमत-साहित्य के विषय में परिचयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लिया होगा।

## 11.7 शब्दावली

दुष्प्राप्य - जो कठिनाई से प्राप्त हो

समकक्ष - बराबर

अवैतनिक - बिना वेतन के

प्रवाद - झूठी बात

मनस्तत्ववेत्ता - मनोवैज्ञानिक डाक्टर

अन्वेषण - खोज

## 11.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गोविन्द चातक, डा. पीताम्बर दत्तर बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबंध, तक्षशिला नई दिल्ली
2. डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिंदी काव्य की निर्गुण धारा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
3. रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिन्दी -प्रदेश-2 ,किताबघर, नई दिल्ली
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी, प्रचारिणी सभा, बनारस

## 11.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के जीवन एवं साहित्य पर विस्तार से एक निबंध लिखिए
2. उत्तराखण्ड में संत मत एवं निर्गुण साहित्य पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए

# इकाई 12 आत्मकथा 'अपनी खबर ' : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा


12.1 प्रस्तावना
12.2 पाठ का उद्देश्य
12.3 आत्मकथा साहित्य: इतिहास एवं विशेषता
12.3.1 पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' : जीवन परिचय और साहित्य
12.3.2 आत्मकथा साहित्य का इतिहास
12.3.3 आत्मकथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ
12.3.4 आत्मकथा साहित्य और 'अपनी खबर'
12.4 'अपनी खबर': परिचय, पाठ एवं आलोचना
12.4.1 'अपनी खबर': परिचय
12.4.2 'अपनी खबर': पाठ विश्लेषण
12.4.3 'अपनी खबर': आलोचनात्मक मूल्यांकन
12.5 'अपनी खबर': कृति के रूप में प्रदेम
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.10 उपयोगी पाठ सामग्री
12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

## 12.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आपने नाटक, उपन्यास एवं कहानी विधा का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। द्वितीय प्रश्न पत्र अन्य गद्य विधाओं पर केन्द्रित है। इस प्रश्न पत्र में आपने पूर्व में निबंध, आत्मकथा, जीवनी, आलोचना, व्यंग्य, डायरी, यात्रावृत्त, संस्मरण, रेखाचित्र का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। साहित्य की प्रारंभिक दशा में विधागत इतने भेद नहीं हुआ करते थे। प्रारभिक अवस्था में केवल गद्य और पद्य का मोटा विभाजन प्रचलित था किन्तु कालान्तर में सामाजिक एवं एतिहासिक  विकास क्रम में मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति की नयी नयी विधाएँ अस्तित्व लेने लगीं। साहित्यक विधाओं  के अस्तित्व लेने के पीछे ठोस सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण थे। उदाहरणस्वरूप हम प्रमुख विधाओं की उत्पत्ति के पीछे छिपे कारणों की संक्षेप में चर्चा करेंगें। जिससे हम उन विधाओं को और अच्छी तरह समझ सकेंगे। सभी साहित्यिक विधाओं में सबसे प्राचीन विधा कविता का जन्म भय-स्तुति एवं श्रम -परिहार के बीच हुआ है। प्रकृति से भय एवं देवताओं की स्तुति हमारे वेदों की उत्पत्ति का कारण है, उसी प्रकार कृषि - कर्म के दौरान गाये जाने वाले गीत लोक - गीतों का आधार बनते है। नाटक की उत्पत्ति के पीछे जहाँ अनुरण की वृत्ति है वहीं कहानी की उत्पत्ति के पीछे कहने का भाव यानी मनोरंजन है। इसी प्रकार 'महाकाव्य' के अस्तित्व के पीछे मानव समाज एवं संस्कृति को व्यापक रूप में चिन्तित करने की प्रवृत्ति काम कर रही थी।

आधुनिक विधाएँ विशेषकर उपन्यास, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रिपोतार्ज, डायरी, निबन्ध, व्यंग्य, लघु कथा, जैसी विधाएँ आधुनिक जीवन की जटिलताओं के बीच अपने आपको प्रकाशित करने की छटपटाहट के बीच निर्मित हुई है। आइए हम प्रमुख विधाओं के अंतर्सम्बन्ध को एक आरेख के माध्यम से समझने का प्रयास करें।

प्रस्तुत इकाई 'उग्र' की आत्मकथा  'अपनी खबर' के परिचय, पाठ एवं आलोचना पर आधारित है।

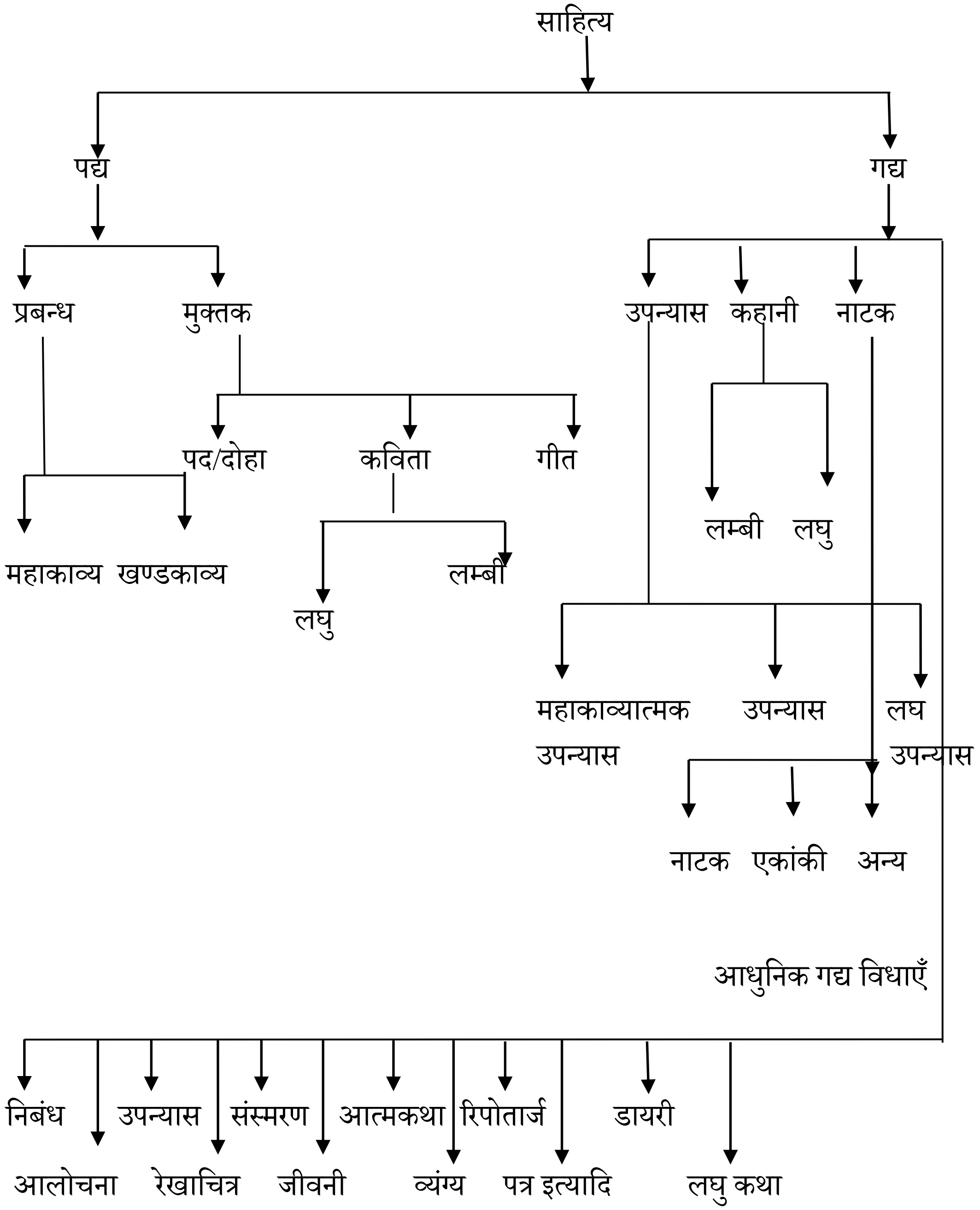
साहित्य
पद्य
गद्य
प्रबन्ध
मुक्तक
उपन्यास
कहानी
नाटक
पद/दोहा
कविता
गीत
लम्बी
लघु
महाकाव्य
खण्डकाव्य
लम्बी
लघु
महाकाव्यात्मक उपन्यास
उपन्यास
लघ उपन्यास
नाटक
एकांकी
अन्य
आधुनिक गद्य विधाएँ
निबंध
उपन्यास
संस्मरण
आत्मकथा
रिपोतार्ज
डायरी
आलोचना
रेखाचित्र
जीवनी
व्यंग्य
पत्र इत्यादि
लघु कथा

ऊपर के आरेख से स्पष्ट है कि ‘आत्मकथा ’ विधा आधुनिक गद्य विधाओं की श्रेणी में आती है। आत्मकथा का तात्पर्य ऐसी गद्य विधा से है, जिसमें लेखक अपने बारे में (समाज भी शामिल है) सृजनात्मक ढंग से अतीत को खंगालता है। आत्मकथा लेखन का बड़ा गुण ईमानदारी मानी जाती है, इस दृष्टि से पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी खबर’ विशेष महत्वपूर्ण है। आगे हम विस्तार से आलोच्य पाठ का परिचय प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

## 12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- आधुनिक साहित्यिक विधाओं के भेदों से परिचित हो सकेंगे।
- आत्मकथा विधा के इतिहास को जान सकेंगे।
- आत्मकथा की प्रमुख विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र ’ के जीवन एवं कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- ’अपनी खबर ’ आत्मकथा की आलोचना का परिचय प्राप्त कर सकेंगे

## 12.3 आत्मकथा साहित्य: इतिहास एवं विशेषता

इस इकाई की प्रस्तावना एवं पाठ का उद्देश्य के माध्यम से आप इस तथ्य से अवगत हो चुके है कि ‘आत्मकथा’ साहित्य आधुनिक युग की उपज है। फिर प्रश्न यह है कि आत्मकथा साहित्य मध्यकाल तक क्यों नही प्रचलित रूप में लिखा जाता था ? हमें मालूम है मध्यकाल तक के साहित्य में लेखक अपने बारे में कम से कम लिखता था । बहुत हुआ तो आत्मानुभूति एवं समाजानुभूति की प्रक्रिया में लेखक पंक्ति में अपना नाम लिख देता था। अपनी जाति, कुल, वंश - परम्परा के बारे में जिक्र कर देना भर आत्मकथा नहीं है। ‘आत्मकथा’ तो संपूर्ण समान की गतिशीलता के बीच लेखक द्वारा अपनी भूमिका की तलाश का सृजनात्मक प्रयास है। आत्मकथा के नाम पर मध्यकाल में भी आत्मकथा मिलती है, लेकिन जिस आधुनिक आत्मकथा साहित्य की यहाँ बात की जा रही है, वह मध्यकाल में कैसे संभव है। आत्मकथा के मूल में आत्मप्रकाशन की भावना मूल रूप में रहती है। हम जानते हैं कि पूँजीवादी विकास क्रम में व्यक्तिगत के प्रकाशन पर बहुत बल

दिया जाने लगा था। पूँजीवादी के विकास से पूर्व अपने बारे में कुछ बोलना या लिखना ‘अंहकार’ का ही सूचना समझा जाता था। आधुनिक युग में सामाजिक विकास की गतिशीलता की प्रक्रिया में एक दूसरे को अपने अनुभवों से लाभ देने की भावना ने आत्मकथा साहित्य के उत्प्रेरक का काम किया। आज समाज से निरपेक्ष कुछ भी नहीं है। व्यक्ति की निजी अनुभूतियाँ सामाजिकता के स्पर्श से सामाजिक संपत्ति बन जाती हैं। व्यक्ति /लेखक में ’स्व’ की अनुभूति जितनी तीव्र होगी वह आत्मप्रकाशन की ओर उतना ही तेजी से मुड़ेगा। अभी आपने पढ़ा कि आत्मकथा साहित्य के उदय की पृष्ठभूमि क्या है। आगे आप आत्मकथा साहित्य के प्रमुख इतिहास से परिचय प्राप्त करेंगे।

### 12.3.1 पाण्डेय बेचन शर्मा ’उग्र’ जीवन परिचय एवं साहित्य

पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ जी का जन्म सन् 1900 ई0 में मीरजापुर (उ.प्र.) के चुनार जिले में हुआ था। आपका पूरा जीवन आर्थिक व सामाजिक - सांस्कृतिक संघर्षों के बीच ही निर्मित हुआ। बाल्यकाल में ही आपके पिता की मृत्यु हो जाने के कारण आप का प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त संकटग्रस्त हो गया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा चुनार एवं वाराणसी में हुई। स्कूली शिक्षा बाधित होने तथा अर्थाभाव के कारण आप बहुत दिनों तक अपने बड़े भाई के साथ अयोध्या के महन्तों की रामलीला मण्डलियों में सीता और भारत का अनुभव करते रहे। बड़े भाई के मण्डली संचालकों से मनमुटाव होने के बाद आपने मण्डलियों में अभिनय करना भी छोड़ दिया। जगह-जगह घूमकर नाटक मण्डली के अभिनय करने के उपरान्त उग्र जी को हुए लोक अनुभव ने आपके साहित्य को काफी समृद्ध किया। नाटक मण्डली के उपरान्त चाचा की कृपा से आपने वाराणसी में फिर शिक्षा आरम्भ की, लेकिन उसे चुनार गये, लेकिन उसे बीच में ही छोड़ना पड़ा। वाराणसी से आप चुनार गये, लेकिन भाई के डर से कलकत्ता भाग गये। आजीविका का पर्याप्त सोत्र न मिल पाने के कारण ‘उग्र’ जी वापस काशी चले आये। सन् 1921 में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण उग्र को जेल जाना पड़ा। उसके पश्चात् आप 1921 से 1924 ई. तक ‘आज’ पत्र में 'अष्टावक्र' उपनाम से राष्ट्रीय कहानियाँ लिखते रहे। 1924 ई. मे उग्र जी ने एक नयी पत्रिका ’स्वदेश’ नाम से निकाली । पत्रिका राष्ट्रीय भाव बोध से परिपूर्ण थी, फलतः आपको सरकारी कोप का भाजन बनना पड़ा। सरकारी वारण्ट से बचने के लिए आप पुनः कलकत्ता चले गये। कलकत्ते में ‘उग्र’ जी तत्कालीन प्रसिद्ध पत्र ‘मतवाला’ के संपादन से जुड़े। ‘मतवाला’ पत्र ने ‘उग्र’ जी की साहित्यिक प्रतिभा निखारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ’मतवाला’ की आर्थिक स्थिति बिगड़ने के पश्चात् आप बम्बई चले गये। वहाँ आप फिल्मों में लेखन का कार्य करने लगे। इसी बीच ’स्वदेश’ संपादन के जुर्म में गिरफ्तार कर आपको गोरखपुर लाया गया। कैद से छूटकर उग्र जी पुनः ‘आज’ पत्र मे काम करने लगे। काशी से

‘उग्र’ जी इन्दौर चले गये। जहाँ आपने ‘वीणा’ और ’स्वराज’ का संपादन किया। इसी बीच आपने कुछ दिन उज्जैन रहकर ’विक्रम’ नामक पत्र का संपादन भी किया।

### 12.3.2 आत्मकथा साहित्य का इतिहास

छात्रो ! पूर्व में आपने साहित्य का विभाजन तथा गद्य साहित्य की प्रमुख विधाओं के बारे में संक्षिप्त रूप से अध्ययन किया। आपने आधुनिक गद्य विधाओं की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि को भी समझने का प्रयास किया। इसी क्रम में आपने आत्मकथा साहित्य की पृष्ठभूमि को भी समझने का प्रयास किया। आत्मकथा साहित्य आधुनिक काल में ही क्यों लोकप्रिय और प्रतिष्ठित हुआ ? आप इस प्रश्न के उत्तर से भी परिचित हो चुके हैं। अब आप आत्मकथा साहित्य के संक्षिप्त इतिहास का अध्ययन करेंगे।

हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा मध्यकाल में लिखी गई थी। बनारसीदास जैन की आत्मकथा ‘अर्द्धकथानक’ को हिंदी की पहली आत्मकथा होने का गौरव प्राप्त है। 1641 ई. में ‘अर्द्धकथानक’ का लेखन वर्ष है। कृति में लेखक ने रचनाकाल का उल्लेख किया है। ‘‘सोलहवै अट्ठानवे, संवत् अगहन मास। सोमवार तिथी पंचमी, सुबल पक्ष परगास"। कृति के नामकरण के सम्बन्ध में उन्होंने तर्क दिया है कि चूँकि मनुष्य की उम्र 110 वर्ष लगभग है, इसलिए इसकी आधी 55 वर्ष का विवरण कृति में विवरण दिया है। अतः ग्रन्थ का नाम अर्द्धकथानक सार्थक है। अपनी कृति की भाषा को लेखक ने मध्यदेश की बोली कहा है। रचना की भाषा का मूल ढाँचा ब्रजभाषा का है जिससे खड़ी बोली का पुट है। अर्द्ध कथानक 675 छंदों में समाप्त हुआ है। अर्द्धकथानक का प्रधान छन्द चौपाई और दोहा है। आत्मकथा मे ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख हुआ है। जो इतिहास की पूर्ति कर पाने मे सक्षम है। अपने जीवन के उतार - चढ़ाव का वर्णन हो या तत्कालीन व्यापार व्यपस्था या राजतंत्र सभी का आभाष कृति में मिलता है। अर्द्धकथानक के अतिरिक्त मध्यकाल मे किसी अन्य प्रामाणिक रचना की सूचना प्राप्त नहीं हुई है। फिर क्या कारण है कि ‘अर्द्धकथानक’ और आधुनिक आत्मकथाओं में भेद किया गया है। इस संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि ‘अर्द्धकथानक’ ब्रज भाषा में लिखित पद्धबद्ध रचना है। आधुनिक आत्मकथा का मूल गुण सामाजिक जीवन की गतिशीलता की प्रक्रिया से अपनी भूमिका को जोड़ने का सृजनात्मक प्रयास है। आइए अब हमें आधुनिक प्रमुख आत्मकथाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें।

आधुनिक काल में आत्मकथा साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ‘कुछ आपबीती, कुछ जगबीती’ नाम से आत्मकथा लिखी है, जो अधूरी है। भारतेन्दु की आत्मकथा उनके जीवन के प्रारम्भिक वर्षो के चिरण और सामाजिक अवरूद्धता के चित्रण के लिए

जानी जाती है। स्वामी दयानन्द जी की आत्मकथा का बड़ा हिस्सा उनके याथानों से संबंधित है। भारतेन्दु युग के पश्चात् 'द्विवेदी युग ' में आत्मकथा के छुटपुट प्रयास होते रहे। सन् 1901 ई० में अम्बिकादत्त व्यास ने 'निजवृत्तान्त 'नामक आत्मकथा लिखी। स्वामी श्रृद्धानन्द की आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पक्षिक ' नाम से प्रकाशित हुई है। आत्मकथा साहित्य का वास्तविक विकास छायावादी साहित्य के उत्थान काल के बाद शुरू होता है। छायावाद ने पहली बार 'स्व' के प्रकटीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। प्रेमचन्द के संपादकत्व में 'हंस' पत्रिका का सन् 1932 में प्रकाशित ' आत्मकथा विशेषांक 'इस ढंग का हिंदी में पहला प्रयास है। इस विशेषांक के माध्यम से आत्मकथा साहित्य की अनिवार्यता के पक्ष या विपक्ष में विचारोंन्तेक बहस हुई, जिससे इस विधा के प्रचार - प्रसार एवं प्रतिष्ठा में काफी बल मिला। आत्मकथा के विधान की दृष्टि से श्यामसुन्दर दास की 'मेरी आत्मकहानी' हिंदी की पहली व्यवस्थि आत्मकथा है । यह आत्मकथा सन् 1941 में प्रकाशित हुई। इसी क्रम में राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' भी महत्वपूर्ण रचना है। यह आत्मकथा लेखक के व्यक्तिगत जीवन की सूचना के साथ ही साथ सम्पूर्ण समकालीन घटनाओं, व्यक्तियों एवं आन्दोलनों की भी प्रामाणिक रूप से हमारे सामने प्रस्तुत करती है। इसी परम्परा में कुछ और आत्मकथाएँ है। - गुलाबराय की 'मेरी असफलताएँ', सियारामशरण गुप्त की 'झूठ - सच', 'बाल्य स्मृति ' , राहुल सांकृप्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा', यशपाल की आत्मकथा 'सिंहावलोकन', वियोगीहरि की आत्मकथा 'मेरा जीवन - प्रवाह' इत्यादि । हिंदी साहित्य में सर्वाधिक चर्चित आत्मकथा हरिवंशराय बच्चन की चार खण्डों में प्रकाशित आत्मकथा – 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर', ' बसेरे से दूर एवं दशद्वार से सोपान तक' रही है।

### 12.3.3 आत्मकथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ

जैसा कि आपने पूर्व में पढ़ लिया है कि आत्मकथा साहित्य आधुनिक युग की गद्य विधा है। आत्मकथा या अत्य गद्य विधाएँ पद्य में क्यों नहीं लिखी जा सकतीं ? क्योंकि आधुनिक जीवन बुद्धि एवं विचार प्रधान युग है और इसके लिए गद्य के माध्यम ही उपयुक्त होते हैं पद्य के नहीं । पद्य मूलतः बिम्ब के आधार पर निर्मित होते है और मूलत: भाव को लेकर चलते हैं इसलिए सारी आधुनिक साहित्यिक विधाएँ गद्य में ही निर्मित हुई हैं । प्रश्न उठता है कि 'आत्मकथा ' साहित्य की शुरूआत किन परिस्थितियों में हुई ? आपने आत्मकथा साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते हुउ देखा कि मध्यकाल तक आत्मकथा उस रूप में यह आज लिखी जाती है। मध्यकालीन कवि कभी-कभार एक दो पंक्तियों में अपने जीवन संबंधी विवरण दे दिया करते थे , किन्तु वह आत्मकथा की शर्तों का पालन नहीं करते हैं।

आइए अब हम देखें कि आत्मकथा साहित्य की मूल प्रवृत्ति क्या है ? 'आत्मकथा' दो शब्दों से मिलकर बना है। आत्म ओर कथा यानी लेखक द्वारा खुदी की लिखी गई जीवनी । जिस विधा में लेखक अपने प्रारंभिक जीवन से लेकर संम्पूर्ण जीवन का सृजनात्मक ढंग से रेखांकन करता है, उसे हम आत्मकथा कह सकते हैं। ' आत्मकथा के लिए यह शर्त नहीं है कि वह संम्पूर्ण जीवन का रेखांकन प्रस्तुत करे । हो सकता है कि कोई लेखक अपने जीवन के किसी एक समय को ही रेखांकित करे । इसीलिए ज्यादा अच्छा यह होता है कि लेखक जीवन के लम्बे हिस्से को अपनी लेखनी का विषय बनाये । आत्मकथा के लिए कहा गया है कि इसमें लेखक द्वारा अपनी खबर लेना और अपनी खबर पाठकों को देना - ये दोनों प्रक्रियाएँ शामिल हैं । आत्मकथा में लेखक सबसे पहले तो आत्मान्वेषण करता है । इस प्रक्रिया में सामाजिक अन्वेषण एवं सत्यान्वेषण की प्रक्रिया भी साथ चलती रहती है । इसीलिए आत्मकथा का एक बड़ा गुण प्रामाणिकता मानी जाती है। इसमें लेखक जिन आकंड़ो, तथ्यों को प्रस्तुत कर रहा है, वे सत्य हों । चूँकि लेखक के जीवन में घटित घटनाओं का साक्षी स्वयं लेखक होता है, इसीलिए सत्य का एकमात्र प्रामाणिक स्तोत भी स्वंय लेखक ही होता है। इसीलिए आत्मकथा में प्रामाणिकता का होना इसकी बड़ी शर्त मानी गई है। आत्मकथा में जीवन की प्रामाणिक एवं तथ्यपरक घटनाओं की अपेक्षा होती है, इसीलिए इसमें कल्पना एवं कुत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं होता। आत्मकथा मे अतीत की घटनाएं ही केंद्र में रहती हैं इसलिए भी इसमें प्रामाणिकता की संभावना ज्यादाहोती है। चूँकि आत्मकथाके मूल में आत्मनिर्माण या आत्म-परीक्षण अथवा दुनिया के जटिल परिवेश में अपने आपको जानने-समझने की इच्छा मख्य होती है, इसलिए आत्मकथा लेखक का बहुत बड़ा गुण उसकी ईमानदारी होती है। ईमानदारी के अभाव में आत्मकथा के आत्मप्रशंसा-प्रशस्ति बन जाने का बहुत बड़ा खत्तरा होता है। आत्मकथा में लेखक के जीवन का वास्तविक साक्ष्य चूँकि लेखक के ही पास होता है, इसीलिए भी लेखक से ईमानदारी की बहुत अपेक्षा होती है। आत्मकथा का एक अन्य गुण यह है कि लेखक के बहाने पाठक को एक युग के जीवन और समाज का प्रामाणिक दस्तावेज प्राप्त होता है। आत्मकथा वैसे ता ज्यादातर महापुरूषों, लेखकों, सफल पुरूष/युवतियों या चर्चित व्यक्तित्व द्वारा ही लिखे जाते हैं, लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। आत्मकथा के लिए लेखकं का महान् आदमी होना जरूरी नहीं । आम आदमी (जिसका जीवन संघर्ष के बीच निर्मित हुआ है), जिसके जीवन-संघर्ष से हमें प्रेरणा मिलती है, द्वारा भी आत्मकथा लिखी जा सकती हे। फिर भी ज्यादातर जीवन में सफल व्यक्तित्व द्वारा ही आत्मकथाएँ लिखी जाती हैं क्योंकि उनके जीवन संघर्ष से हमें प्रेरणा मिलती है। आत्मकथा वही श्रेष्ठ समझी जाती है, जिसमें लेखक अपने जीवल को व्यापक परिवेश के बीच चित्रित करता है। आत्मकथा में जीवन की घटनाओं का संबंध सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक

पहलुओं से जुड़ी होनी चाहिए। आत्मकथा लिखने का उद्देश्य क्या है ? कई बार यह प्रश्न किया जाता है। दरअसल आत्मकथा का मूल उद्देश्य आत्मनिर्माण, आत्मपरीक्षण या आत्मसमर्थन होता है। इसमें लेखक अपने आपका मूल्यांकन भी करता है और अपना पक्ष भी प्रस्तुत करता है। कई बार ऐसा होता है कि लेखक को समाज से यह शिकायत होती है कि उसे संपूर्णता में नहीं समझा गया है। अतः लेखक अपने जीवन - संघर्ष के माध्यम से अपना पक्ष समाज के सामने प्रस्तुत करता है।' आत्मकथा लिखने का एक उद्देश्य यह भी है कि लेखक चाहता है कि उसके जीवनानुभव का लाभ अन्य लोग भी उठायें। श्रेष्ठ आत्मकथाएँ इसीलिए आगामी युग में अपने युग तथा समाज के प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में पढ़ी जाती हैं। जैसे महात्मा गाँधी की आत्मकथा- सत्य के प्रयोग गाँधीजी के जीवन - संघर्ष के साथ ही उनके युग का भी एक प्रामाणिक दस्तावेज बन गई है।

आत्मकथा लेखन का एक बड़ा गुण निर्व्यैक्तिकता या तटस्थता को माना गया है। श्रेष्ठ आत्मकथा लेखक द्वारा अपने बीते हुए जीवन के तटस्थ सिंहावलोकन का सार्थक प्रयास है। व्यापक जीवन संघर्ष की पृष्ठभूमि में अपने जीवन की सृजनात्मक ऊर्जा की खोज का प्रयास ही आत्मकथा साहित्य है। इसरे शब्दों में कहा जाये तो यह कि सरल भाषा में लेखक द्वारा स्वयं के जीवन की सृजनात्मक अन्वेषण की प्रक्रिया का नाम ही आत्मकथा है। आत्मकथा में लेखक अपने अतीत के जीवन को अपनी रचना का विषय बनाता है। लेकिन इस क्रम में वह घटनाओं को अपनी रचना का विषय नहीं बनाता । वह केवल सृजनात्मक तथ्यों को ही अपनी रचना में प्रस्तुत करता है।

### 12.3.4 आत्मकथा साहित्य और 'अपनी खबर'

अब तक आपने आधुनिक गद्य विधाओं की उत्पत्ति एवं इतिहास का अध्ययन किया। आधुनिक गद्य विधाओं के संदर्भ में आत्मकथा के अंतर्सम्बन्ध का भी अपले अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त आत्मकथा साहित्य की मूलभूत विशेषता क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर पाने का भी आपने प्रयास किया। आइए अब हम आत्मकथा साहित्य के व्यावहारिक धरातल के आधार पर 'अपनी खबर' आत्मकथा की भूमिका की तलाश करें। 'आत्मकथा ' के लिए कहा जाता है कि यह जीवन के उत्तराई मे लिखी जाये। यानी जीवन का एक बड़ा हिस्सा लेखक ने गुजार दिया हों। वर्ष्य - विषय के रूप में लेखक के जीवन का एक बड़ा हिस्सा आत्मकथा का विषय बने। आत्मकथा में एक क्रमिकता हो, अर्थात् घटनाओं में पूर्वापर सम्बन्ध स्थापित होता हो।' आत्मकथा' का एक बड़ा गुण उसकी प्रवहमानतर है। आत्मकथाएँ चूँकि पूर्वादीप्ति शैली में लिखी जाती है, इसलिए भी उसमें कथारस के साथ - ही - साथ प्रवाह का गुण अनिवार्य समझा जाता है। आत्मकथा का वर्ण्य-विषय चूँकि लम्बे कालखण्ड तक फैला होता है, इसलिए इसमें लेखक के महत्वपूर्ण में अति महत्वपूर्ण

घटनाओं के चुनाव -विवेक की परीक्षा होती है। अतीत की सारी घटनाएँ कभी भी महत्वपूर्ण नहीं होती। हमारे जीवन की वही घटनाएँ हमारे लिए महत्वपूर्ण होती हैं जो हमारे जीवन को महत्वपूर्ण दिशा दे पाने में समर्थ होती है। एक ही घटना किसी व्यक्ति के लिए अलग महत्व रखती है, दूसरे के लिए अलग। यह लेखक के आलोचनात्मक बोध पर निर्भर करता है कि वह अतीत का मूल्यांकन किन धरातल पर कर रहा है। 'आत्मकथा ' विधा मे कई साहित्यिक विधाओं के गुण हो सकते हैं, लेकिन अपनी मूल संरचना में वह आत्मकथा ही है। एक ओर आत्मकथा में कहानी ओर उपन्यास की तरह कथा रस का होना अनिवार्य है, वहीं दूसरी तरी संस्मरण -रेखाचित्र की तरह काल ओर समय का जीवंत चित्र प्रस्तुत करना भी अनिवर्य है। आत्मकथा भी हो सकता है और डायरी शैली में भी लिखा जा सकता है। वहीं आत्मकथा की सार्थकता उसके आलोचनात्मक मूल्यांकन में निहित होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मकथा कई साहित्यिक विधाओं का स्पर्श करती है, लेकिन अपनी संपूर्ण बुनावट एवं संरचना में वह अपनी अलग विधागत पहचान स्थापित करती है। आत्मकथा के साथ कई बार यह समस्या खड़ी होती है कि इसमें लेखक कई बार सामाजिक न्यायकार, आलोचक, उपदेशक, नीतिकार एवं पथ - प्रदर्शक की भूमिका निभाने लगता है, ऐसे स्थलों पर ज्यादातर आत्मकथाएँ कमजोर होने लगती है।

**अभ्यास प्रश्न 1**

**(क) सत्य/असत्य का चयन कीजिए।**

1. आत्मकथा पद्य विधा है। (सत्य/असत्य)
2. आत्मकथा के मूल में आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति रहती है। (सत्य/असत्य)
3. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का जन्म वर्ष 1900 ई. है। (सत्य/असत्य)
4. हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा आधुनिक काल में लिखी गई। (सत्य/असत्य)
5. अर्द्धकथानक के लेखक बनारसीदास जैन हैं। (सत्य/असत्य)

**(ख) टिप्पणी लिखिए।**

1. आत्मकथा साहित्य की दो रचनाएँ।

   1. ................................

2. .................................

2. आत्मकथा साहित्य की दो विशेषताएँ।

1. ................................
2. ................................

## 12.4 'अपनी खबर': परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई के पिछले बिन्दुओं में आपने आत्मकथा साहित्य के सैद्धान्तिक आधारों का संक्षिप्त अध्ययन प्राप्त कर लिया हैं। आप आत्मकथा की उत्पत्ति के कारणों एवं इतिहास से भी परिचित हो चुके हैं । अब हम पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी खबर' का परिचय प्राप्त करेंगे। इसके उपरान्त हम आलोचनात्मक 'आत्मकथा' के पाठ की आलोचना भी करेंगे।

### 12.4.1 'अपनी खबर': परिचय

'अपनी खबर' हिंदी की चर्चित आत्मकथाओं में से एक है। इसके रचनाकार हिंदी के प्रसिद्ध लेखक 'पाण्डेय बेचन शर्मा' 'उग्र' है। 'उग्र' जी का लेखन अपनी बेबाकी और यर्थाथवादी दृष्टि के कारण प्रसिद्ध रहा है। कुछ लोगों ने इसी कारण इन्हें 'प्राकृतवादी लेखक' भी कहा है। जैसा कि पूर्व में हमने अध्ययन किया कि आत्मकथा की प्रमुख विशेषता उसकी ईमानदारी और तटस्थता होती है इस दृष्टि से यह आत्मकथा हिंदी में विशेष चर्चित रही है। 'अपनी खबर' का प्रकाशन वर्ष 1960 ई. है। लेखक ने साठ वर्ष की आयु के उपरान्त यह आत्मकथा लिखी है, लेकिन आत्मकथा में उसने अपने जीवन के प्रारम्भिक 21 वर्षों को ही रचना का आधार बनाया है। इसका क्या कारण है ? इसका संतोषजनक समाधान देना कठिन है। 'अपनी खबर' की अनुक्रमाणिका में कुल मिलाकर 17 अध्याय है। 'दिग्दर्शन', 'प्रवेश',जीवन -संक्षेप' और 'असम्बल गान' जैसे शीर्षको को हटा दिया जाये तो आत्मकथा की दृष्टि से 13 अध्याय महत्वपूर्ण हैं। पुस्तक अलग - अलग शीर्षको में, अध्यायों में लिखी गई है। 13 प्रमुख अध्यायों में 9 अध्याय प्रमुख व्यक्तियों से संबंधित है। 2 अध्याय 'चुनार' एवं 'बनारस और कलकत्ता' स्थान से संबंधित है। आत्मकथा अपने आप में जीवन - संक्षेप ही है फिर 'जीवन - संक्षेप' नामक 16 वाँ अध्याय लिखने की क्या आवश्यकता थी ? 'अपनी खबर' चूँकि उस प्रकार की आत्मकथा नहीं है जिस प्रकार की आत्मकथा सामान्यतौर पर हुआ करती है, इसलिए लेखक ने अपने व्यक्तित्व के अनुकूल ही उसे अलग रूप (फार्म) में लिखा है। पुस्तक में कुल मिलाकर 17 अध्याय है, जो क्रमवार ढ़ग के इस प्रकार है -

1. दिग्दर्शन
2. प्रवेश
3. अपनी खबर
4. धरती और धान
5. चुनार
6. नागा भगवत दास
7. राममनोहरदास
8. भानुप्रताप तिवारी
9. बच्चा महाराज
10. पं. जगन्नाथ पाँडे
11. लाला भगवान ’दीन’
12. पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर
13. बाबू शिवप्रसाद गुप्त
14. पं. कमलापति त्रिपाठी
15. बनारस और कलकत्ता
16. जीवन संक्षेप
17. असम्बल गान।

### 12.4.2 ‘अपनी खबर’: पाठ विश्लेषण

आत्मकथा का पहला अध्याय ’दिग्दर्शन’ है। व्यापक रूप से अपने को देखने की कोशिश का नाम ही ‘दिग्दर्शन’ है। तुलसीदास के ‘विनय पत्रिका’ के दैन्य, ग्लानि की तरह ‘उग्र’ के जीवन का आत्मविश्लेषण भी कुछ इसी प्रकार का है - ’जब जनमि -जनमि जग, दुख दुखहू दिसि पायो।’ तुलसी की तरह ‘उग्र’ जी की आत्मस्वीकारोक्ति देखें - ‘‘सच कहता हूँ, कौन सा ऐसा नीच नाच होगा जो लघुलोभ ने मुझ बेशरम को न नचाया होगा ! किन्तु ‘‘आप ! ’’आह ! लालच से ललचाने के सिवाय ‘नाथ ! हाथ कछु नही लग्यो!’ पश्चिमी आत्मकथा परम्परा करने में ‘आत्मग्लानि’ जैसे तत्व के साथ रचना की शुरूआत करने का प्रचलन नहीं है, यह भारतीय रचना परम्परा है, जिसका पालन ’उग्र’ जी ने किया है। आत्मकथा लिखने की वास्तविक शुरूआत तब होती हैं जब यह स्पष्ट हो जाये कि आत्मकथा क्यों लिखी जा रही है। इस दृष्टि से प्रवेश जी ने अपनी

आत्मकथा लिखने का कारण 'प्रवेश' शीर्षक अध्याय में लिखा है। यह अध्याय इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें आत्मकथा लिखने का कारण, आत्मकथा पढ़ते समय सावधानी और आत्मकथा के खतरे का संकेत 'उग्र' जी ने किया है। 'प्रवेश' का प्रारम्भ उस घटना से होता है जिसमें आचार्य नलिन विलाचन शर्मा, जैनेन्द्र कुमार तथा शिवपूजन सहाय 'उग्र जी' के घर आते हैं। यहीं पर शिवपूजन सहाय 'उग्र जी' से अपनी आत्मकथा लिखने को कहते हैं। लेखक को शंका इस बात की होती है कि ''..........बहुतों के बारे मे सत्य प्रकट हो जाये तो उनके यश और जीवन का चिराग ही लुप् - लुप् करने लगे। '' आत्मकथा लिखने का उद्देश्य बताते हुए लेखक लिखता है - ''........जिन्हें मैं बहुत निकट से जानता हूँ, ऐसो के बारे में अपने संस्मरण यदि कभी मैंने लिखे तो उसका उद्देश्य भण्डाफोड़ या व्यक्तिगत विद्वेष नहीं होगा। उद्देश्य होगा यह प्रमाणित करना कि कुछ सत्य ऐसे भी होते हैं जिन्हें कल्पना तक छू नहीं सकती।'' आत्मकथा के खतरे की ओर संकेत करते हुए 'उग्र जी' ने लिखा है - '' अपनी याददाश्त पब्लिक की जानकारी के लिए लिखने में आत्म – प्रशंसा और अंहकार - प्रदर्शन का बड़ा खतरा रहता है। ऐसे संस्मरणों में किसी एक मन्द घटना के कारण अनेक गुण - सम्पन्न पुरूष पर अनावश्यक आँच भी आ सकती है। '' अपनी आत्मकथा को सावधानी से पढ़ने की माँग करते हुए पाठकों से उग्रजी कहते हैं - '' इन संस्मरणों को पढ़ने पर किसी को ऐसा लगे कि मैंने निन्दा या बुराई किसी की है तो मानता होगा कि मुझे ठीक तरह से लिखना आया नहीं । दूसरा तर्क यह है कि आइने में अपना मुँह देख कोई यह कहे कि दर्पण तो उसका निन्दक है, दुष्ट दोस - दर्शक, तो ठीक है। '' 'प्रवेश' का अधिकांश प्रकाशक महोदयों एवं 'निराला' पर केंद्रित है, जिनका पाण्डेय बेचन शर्मा ' उग्र ' जी के जीवन से घनिष्ठ संबंध है। आत्मकथा का तीसरा अध्याय 'अपनी खबर ' है जो पुस्तक का भी शीर्षक है। इसमें लेखक ने अपनी खबर दी भी है 'ली' भी है। अध्याय का प्रारम्भिक अंश जन्म, पारिवारिक स्थिति, 'बेचन' नामकरण के इतिहास, सनातन ब्राह्मण धर्म के पाखण्ड पर केंद्रित है। इसके बाद का अंश पारिवारिक - सामाजिक व्यभिचार (वेश्या - जुआ) के यर्थाथ चित्रण पर आधारित है। असामयिक पितस कर मृत्यु , भाई का जुआ खेलना - गिरफ्तार होना, परिवार का कर्जदार होना और तत्पश्चात् बड़े भाईयों के साथ रामलीला - मण्डलियों में काम करने का बड़ा जीवन्त दृश्य उग्र जी ने चित्रित किया है ' धरती और धान ' अध्याय पिता वैजनाथ पांडे और माता जयकली के संस्मरण पर आधारित है। जनजमानी वृत्ति वाले पिता,अच्छे तो थे - लेकिन अनबैलेन्स्ड भी कम नहीं थे। सो उन्हें क्षय - रोग हुआ, जिससे असमय में ही उनके जीवन-स्त्रोत का क्षय हो गया। इसी प्रकार माँ के झगड़ालू परिश्रमी , गुणी रूप के स्वरूप को उग्र जी ने स्मरण किया है । माता - पिता के संस्मण के साथ ही घर की आर्थिक स्थिति (दरिद्रता) का बड़ा हृदय विदारक दृश्य उपस्थित किया है। धर्म का लोप हो रहा था, परिवार टूट रहा था यानी धर्म-

टका युग का उदय हो रहा था, इसका संकेत इस अध्याय में किया गया है। 'चुनार' शीर्षक अध्याय में जन्मभूमि के प्रति लेखक का लगाव व्यक्त हुआ है। चुनार की प्राकृतिक रमणीयता का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है "चुनार विन्ध्याचल का आँगन ही तो है। मीठे जीवनप्रद कुएँ , निर्मल नीरपूर्ण तालाब, बावलियाँ, बाग, उपवन, वन, सहस्र - सहस्र वर्षों के इतिहासों के चरण-चिह्न चुनार में चतुर्दिक फैले हुए हैं । ..................... "चुनार से सटी विन्ध्याचल की सुखद घाटियों में पारिजात के ,पलाश के, बहेड़े के महुवे के वन - के - वन हैं । जब शरद ऋतु में सारी घाटी पारिजात पुष्पों की सुखद सुगन्ध से भर जाती है, लगता है, यही तो नन्दन - वन है। '' प्राकृतिक वर्णन के साथ ही पौराणिक - ऐतिहासिक संकेत की दृष्टि से यह अध्याय महत्वपूर्ण है। जरासन्ध के दुर्ग से विक्रमादित्य , भर्तृहरि के प्रसंग के साथ ही लेखक ने आल्हा - ऊदल के सम्बन्ध को भी जोड़ा है। इस किले से सम्राट हुमायूँ , शेरशाह सूरी, वारेन हेस्टिंग्स , चेतसिंह , पंजाब की महारानी ज़िंदा , वाजिद अली शाह का सम्बन्ध भी जोड़ा जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के युद्धबंदियों को ब्रिटिश सरकार इसी किले मे रखती थी। देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों की तो यह मुख्य धुरी है ही। चुनार के दर्शनीय स्थानों में एक दरगाह भी है - मशहूर मुस्लिम बली हजरत कासिम सुलेमानी की। ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रिटिशों की बस्ती (लोअर लाइन्स) 'चर्च का वर्णन विशेष रोचक बन पड़ा है। गोरे सोल्जरों द्वारा ग्रामीण पुरूषों - महिलाओं पर मनमाने अत्याचार का वर्णन रोंगटे खड़े कर देने वाला है। नागा भगवतदास अध्याय के केंद्र में 1910 ई. के आसपास की घटना है। इस अध्याय में पश्चिमी पाकिस्तान (उस समय के पंजाब ) के रामलीला मंडली के साथ लेखक के अनुभवों का चित्र है। इसी तरह महन्त राममनोहर दास अध्याय के केंद्र में 1911-12 ई. की घटना है। घटना के केंद्र में अयोध्या की रामलीला मंडली का दृश्य है। रामलीला मंडली में व्याप्त अनैतिकता - व्यभिचार के दृश्यों को , उग्र के प्रथम एकतरफा प्रेम (अभिरामा श्यामा से) का दृश्य भी इसी अध्याय में है।

अगले दो अध्याय भानुप्रताप तिवारी और बच्चा महाराज पर आधारित है। दोनो व्यक्तियों का उग्रजी के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। भानुप्रताप तिवारी की रामायण टीका एवं पुस्तकों के संग्रह का लेखक के आध्यन से गहरा सम्बन्ध रहा है। इसी अध्याय में उग्रजी ने अपने प्रपितामह सुदर्शन पांडे के चमत्कारी कार्यो का भी स्मरण किया है। इसी अध्याय में उग्रजी ने स्वयं को हरकू-ब्रह्म के कुल का बताया है। पुस्तकों की ओर झुकाव लेखक को भानुप्रताप तिवारी के कारण हुआ हो तो आश्चर्य नहीं। बच्चा महाराज का चरित्र वैसे तो अराधकता और विलासिता का जीता - जागता उदाहरण है, लेकिन उनकी विचित्रता जैसे दुर्गा सप्तशती का पाठ, गीतगोविन्द के पद, विनय पत्रिका के पद, ज्योतिष, तन्त्र और मन्त्रों में उनकी अद्भुत गति ने उग्र जी को उनकी ओर आकृष्ट किया।

अगला अध्याय लेखक के चाचा द्वारा गोद लिये जाने एवं पढ़ाई प्रारम्भ से शुरू होता है। चाचा द्वारा आजीविका कर दिये जाने पर चुनार की पढ़ाई बन्द हो गई तो लेखक काशी आकर पढ़ने लगा। आठवीं तक पढ़ने के बाद आर्थिक स्थिति खराब होने से लेखक को पुनः चुनार आना पड़ता है। चुनार से कलकत्ता और फिर कलकत्ते से काशी। लाला भगवान 'दीन' अध्याय लेखक के गुरू परिचय से प्रारम्भ होता है। इस अध्याय के केद्र में है लाला भगवान दीन जो लेखक के दूसरे गुरू माने जाते हैं। इनमें लाला भगवान दीन और अन्य गुरुओं का सान्निध्य में 'उग्र ' की साहित्यिक प्रतिभा के विकास का चित्र है। पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर अध्याय ' आज ' पत्र के माध्यम से उग्र के प्रतिष्ठित होने की कहानी है। इस अध्याय में उग्र जी के शशिमोहन शर्मा और 'अष्टावक्र ' उपनाम की कहानी भी है। इस अध्याय में ही दस आने के हिसाब से मजदूरी मिलने का जिक्र भी है। बाबू शिवप्रसाद गुप्त' अध्याय उन्हीं को समर्पित है। बाबू शिवप्रसाद गुप्त के अतिशय राष्ट्र प्रेम सम्पादक, समाजसेवक एवं सखा यानी कुल मिलाकर देवता तुल्य रूप का बखूबी वर्णन लेखक ने किया है। इस अध्याय में घोषित तौर पर आजकल का अर्थ सन् 1921 तक है, लेकिन पं कमलापति त्रिपाठी अध्याय में यह सीमा सन् 1948-49 तक चली गई है यह अध्याय कमलापति त्रिपाठी के राष्ट्र प्रेमी रूप से मंत्री बनने तक की कहानी है। इस अध्याय से लेखक राष्ट्र पर सत्ता की विजय का संकेत भी करता है अगला अध्याय बनारस और कलकत्ता पर आधारित है बनारसी संस्कृति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है उसके उपरान्त जीवन संक्षेप ओर असम्बद्ध गान से आत्मकथा समाप्त हो जाती है।

### 12.4.3 अपनी खबर : आलोचनात्मक मूल्यांकन

जैसा कि पूर्व में ही संकेत कर दिया गया था कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का व्यक्तित्व विद्रोही और स्वच्छन्द किस्म का रहा है। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी रचनाओं पर विशेष रूप से पड़ा है। 'अपनी खबर' आत्मकथा भी उपरोक्त तत्वों से संचालित हुई है। आत्मकथा का कलेवर अन्य गद्य विधाओं से भिन्न किस्म का होता है। इसमें लेखक अपनी संपूर्ण जीवन यात्रा को तटस्थ ढंग से विश्लेषित करता है। आत्मकथा में घोषित तौर पर 21 वर्षों का वर्णन है, लेकिन यह वर्णन क्रमवार नहीं है। कहीं-कहीं सन् 1921 के बाद की घटना का भी वर्णन है जैसे कमलापति त्रिपाठी शीर्षक अध्याय। आत्मकथा चूकि लेखक द्वारा खुद के जीवन का क्रमवार आलोचनात्मक मूल्याकन ही होता है, बावजूद इसके एक अध्याय 'जीवन संक्षेप' नामक रखा गया है। आत्मकथा में घटनाओं की क्रमिकता कई बार खंडित होती है। नौ अध्याय अलग-अलग व्यक्तियों से संबधित है। अच्छा होता यदि घटना-क्रम में व्यक्तियों का जिक्र होता। अलग-अलग व्यक्ति पर अध्याय रखने से

आत्मकथा की निरन्तरता प्रभावित हुई हैं। 'दिग्दर्शन' और 'असम्बल गान' शीर्षक अध्यायों का भी पूरी आत्मकथा से तारत्म्य स्थापित नहीं हो पाता।

**अभ्यास प्रश्न 2**

**(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए ।**

1. अर्द्धकथानक रचना का प्रकाशन वर्ष............. है।
2. अर्द्धकथानक.............छंदों में रचित है।
3. अर्द्धकथानक की भाषा ................है।
4. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की आत्मकथा का नाम............ है।
5. निजवृत्तान्त आत्मकथा के लेखक.............. हैं ।

**(ख) सुमेलित कीजिए।**

| | **रचना** | **रचनाकार** |
|---|---|---|
| 1. | मेरी आत्मकहानी | गुलाबराय |
| 2. | सिंहावलोकन | राहुल सांकृत्यायन |
| 3. | बसेरे से दूर | यशपाल |
| 4. | मेरी असफलताएँ | पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' |
| 5. | मेरी जीवन यात्रा | हरिवंशराय बच्चन |
| 6. | अपनी ख़बर | श्यामसुन्दर दास |

## 12.5 अपनी खबर : कृति के रूप में प्रदेय

अपनी खबर की प्रदेयता यह है कि इसने आत्मकथा संबंधी रूप-विधान से अलग रूप-विधान निर्मित जैसा किया है। परश्चाप्य आत्मकथा ज्यादातर अंकों में विभक्त होती है, लेकिन 'अपनी खबर' को लेखक ने विभिन्न शीर्षकों में विभक्त कर दिया। लेखक के इस प्रयोग से आत्मकथा केवन लेखक का निजी दस्तावेज न रहकर सामाजिक दस्तावेज भी बन गई है। कह सकते हैं कि लेचाक के इस प्रयोय से आत्मकथा व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सहयोग का ताना-बाना बुनती है। आत्मकथा में स्कूल घटनाओं की अपेक्षा देश-काल की गति से अपने को तालमेल बैठाने की कोशिश काता नजर आता है लेखक।

## 12.6 सारांश

'अपनी खबर' आत्मकथा सत्रह अध्यायों में विभक्त है। अध्याय संख्या देखते हुए आत्मकथा की पृष्ठ संख्या (पृष्ठ संख्या 108) काफी कम लगती है। आत्मकथा में लेखक चूंकि अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाओं को ही अपनी रचना का विषय बनाता है। इस दृष्टि से आत्मकथा में शब्द - स्फीति कम ही दिखती है। आत्मकथा 'दिग्दर्शन ' से प्रारम्भ होती है। यह आत्मनिवेदन, आत्मग्लानि का ही प्रतिरूप है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह कि यह आत्ममूल्यांकन का सचेतन प्रयास है। इसके पश्चात 'प्रवेश' के माध्यम से लेखक ने अपनी आत्मकथा लेखन का उद्देश्य स्थिर किया है। इसके पश्चात् 'अपनी खबर ' के माध्यम से उग्र जी ने अपने जन्मकाल, पारिवारिक, स्थिति और तत्कालीन समाज का यर्थाथवादी चित्र खींचा है। आगे का अध्याय जन्मभूमि चुनार की प्राकृतिक शोभा एवं उसके पौराणिक-ऐतिहासिक महत्व पर केंद्रित है। क्रमश: बीच - बीच में उग्र जी अपने पारिवारिक चित्र भी प्रस्तुत करते जाते हैं। प्रारम्भिक जीवन काल के पश्चात उग्र जी का साहित्यिक एवं सामाजिक जीवन प्रारम्भ होता है। आठवां एवं नवां अध्याय विभिन्न व्यक्तियों पर आधरित है। उन व्यक्तियों के माध्यम से लेखक ने अपने जीवन के विकास क्रम भी दर्शाया है, जाहिर है सामाजिक विकास क्रम भी साथ - साथ है। पूरी आत्मकथा मोटे तौर पर उग्र जी के जीवन के प्रारम्भिक हिस्सों को अपने में समेटती है। सीमित कालावधि के चित्रण के उपरान्त भी आत्मकथा अपने गठन में सफल है।

## 12.7 शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| स्तुति | – | श्रद्धेय की प्रशंसा, अर्चना करना। |
| श्रम-परिहार | – | काम की थकान को दूर करना |
| सृजनात्मक | – | रचनात्मक कार्य। |
| खंगालना | – | अच्छी तरह देखना। |
| अन्वेषण | – | खोज |
| सत्यान्वेषण | – | सत्य के प्रति अन्वेषण करना। |
| आत्मानुभूति | – | अपनी अनूभूति का ज्ञान |

| | | |
|---|---|---|
| आत्मप्रकाशन | – | अपने गुणों का प्रकाशन करना |
| प्रवहमानता | – | समाज के सकारात्मक बढ़ाव की प्रवृत्ति |
| पूर्वदीप्ति शैली | – | अतीत की घटनाओं को स्मृति के आधार पर पुन: रचित करने की शैली। |
| प्राकृतवाद | – | मन के अवचेतन के सत्य का उद्घाटन, अतियर्थाथवाद। |
| लुप-लुप करना | – | दीये/जिन्दगी के बुझने का संकेत। |
| व्यभिचार | – | वासना की अतिरंजना |
| चतुर्दिक | – | चारों ओर |
| अनैतिकता | – | गलत आचरण |
| विद्रोह | – | रूढ़ियों के प्रति विरोध की भावना। |
| स्वच्छन्द | – | निर्बन्ध |

## 12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**अभ्यास प्रश्न 1 के उत्तर**

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य

**(क) (1)**

1. अपनी ख़बर
2. क्या भूलूँ क्या याद करूँ

(2) 1. आत्मप्रकाशन

2. आत्मपरीक्षण

**अभ्यास प्रश्न 2 के उत्तर**

**(क)**

1. 1641 ई0
2. 675
3. ब्रजभाषा
4. कुछ आप बीती कुछ जग बीती
5. अम्बिका दत्त व्यास

**(ख)**

1. श्यामसुन्दर दास
2. यशपाल
3. हरिवंशराय बच्चन
4. गुलाबराय
5. राहुल सांकृत्यायन
6. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

## 12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी प्रकाशन, बनारस
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सिहं, बच्चन, लोकभारती प्रकाशन,नई दिल्ली
3. हिन्दी भाषा और संवेदना का विकास - चतुर्वेदी,रामस्वरूप , लोकभारती प्रकाशन ,इलाहाबाद
4. अपनी खबर - उग्र, पाण्डेय बेचन शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1,2 - वर्मा धीरेन्द्र, ज्ञानमण्डल प्रकाशन, काशी

## 12.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी, रामचन्द्र - हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी।

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी प्रकाशन, बनारस

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सिहं, बच्चन, लोकभारती प्रकाशन,नई दिल्ली

## 12.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आत्मकथा से आप क्या समझते हैं ? आत्मकथा विधा एवं साहित्य की विशेषताएँ बताइए।

2. 'अपनी खबर' का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

# इकाई 13 जीवनी - निराला : परिचय,पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा


13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 जीवनी साहित्य : इतिहास एवं विशेषता

13.3.1 रामविलास शर्मा : जीवन परिचय एवं साहित्य

13.3.2 जीवनी साहित्य का इतिहास

13.3.3 जीवनी साहित्य की विशेषता

13.4 'निराला' : परिचय, पाठ एवं आलोचना

13.4.1 'निराला' : रचना परिचय

13.4.2 'निराला' : पाठ विश्लेषण

13.4.3 'निराला' : आलोचनात्मक मूल्यांकन

13.5 सारांश

13.6 शब्दावली

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.10 निबंधात्मक प्रश्न


## 13.1 प्रस्तावना

स्नातक प्रथम वर्ष का द्वितीय प्रश्न पत्र गद्य साहित्य की अन्य विधाओं पर केंद्रित है। इस प्रश्न पत्र में मुख्यत: आधुनिक गद्य विधाओं का विवेचन किया गया है। अब तक आपने अन्य गद्य विधाओं की उत्पत्ति, वर्गीकरण एवं भेद का अध्ययन कर लिया है। यह इकाई 'निराला' शीर्षक जीवनी के प्रयोगिक पाठ से संबंधित है।

जीवनी साहित्य आधुनिक युग की गद्य विधा है। हालांकि मध्यकाल के 'भक्तमाल' जैसे ग्रंथ जीवनी साहित्य के ही अंग हैं, लेकिन उनमें जीवनी साहित्य की आधुनिक विशेषताओं का नितान्त अभाव है। जीवनी साहित्य का प्रारम्भ समाज की संक्रान्तिकालीन परिस्थितियों में ज्यादा

होता है। जीवनी साहित्य का विषय महत्वपूर्ण व्यक्तित्व बनता है, लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। जीवनी विधा एक व्यक्तित्व को केंद्रित करके भी पूरे समाज का प्रामाणिक दस्तावेज बन जाती है। इस दृष्टि से इस विधा की अपनी उपयोगिता है। 'निराला' निराला के व्यक्तित्व पर केंद्रित करके लिखी गई है। इस रचना के लेखक रामविलास शर्मा हैं, जो स्वयं ही बड़े साहित्यकार हैं। जीवनी के मूल पाठ के आलोचनात्मक अध्ययन के माध्यम से हम निराला के व्यक्तित्व एवं रामविलास शर्मा की अभिव्यक्ति शैली का परीक्षण करेंगे।

## 13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- निराला के प्रामाणिक जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- रामविलास शर्मा के कृतित्व एवं उनके लेखन शैली से परिचित हो सकेंगे।
- जीवनी साहित्य के इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- जीवनी साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

## 13.3 जीवनी साहित्य : इतिहास एवं विशेषता

जीवनी विधा आधुनिक कालीन संक्रमणशील युग की उपज है। जब-जब समाज में व्यक्तित्व का अभाव एवं जड़ता आती जायेगी, तब-तब जीवनी साहित्य की प्रासंगिकता बनी रहेगी। आगे के बिन्दुओं में हम जीवनी साहित्य की पृष्ठभूमि, इतिहास एवं विशेषता से परिचित होंगे। उसके पूर्व आइए, हम 'निराला' नामक जीवनी के लेखक एंव प्रसिद्ध साहित्यकार राम विलास शर्मा के जीवन एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें।

### 13.3.1 रामविलास शर्मा : जीवनी, परिचय एवं साहित्य

रामविलास शर्मा हिंदी प्रगतिशील परम्परा के प्रसिद्ध आलोचक हैं। आपका जन्म 1912 ईसवीं में तथा मृत्यु 2000 ई. में हुई। अपने विचारोत्तेक आलोचना के कारण आपने हिंदी समीक्षा को नई दिशा प्रदान की। लेकिन आप केवल आलोचक नहीं हैं वरन् इसी के साथ ही विचारक, भाषा चिंतन जीवनीकार, आत्मकथाकार एवं कवि भी हैं। रामविलास शर्मा उन थोड़े से हिंदी लेखकों में से हैं जिन्होंने हिंदी आलोचना को ऐतिहासिक बोध एवं सास्कृतिक गरिमा प्रदान की है।

रामविलास शर्मा जी का जन्म उन्नाव, उत्तर प्रदेश में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा झांसी से तथा उच्च शिक्षा लखनऊ से हुई। आपने अंग्रेजी विषय में एम0ए0 तथा पी0एच0डी0 की उपाधि

धारण की। आपके शोध का विषय – रोमैंटिक कवि कीट्स से संबंधित है। आपके अध्यापन की शुरूआत लखनऊ विश्वविद्यालय से हुई। उसके उपरान्त शर्मा जी बलवन्त कॉलेज, आगरा में अध्यापन का कार्य किया। आगरा के के.एम. हिंदी संस्थान, आगरा में आपने निदेशन का दायित्व भी संभाला। रामविलास शर्मा उन थोड़े से लोगों में हैं जिन्होंने अंग्रेजी विषय को छोड़कर हिंदी भाषा एवं भारतीय संस्कृति को अपना जीवन समर्पित किया।

रामविलास शर्मा की पहली आलोचना कबीर पर 1934 ई. में प्रकाशित हुई थी। उसके उपरान्त निराला पर 1939 में आपकी दूसरी आलोचना प्रकाशित हुई। हिंदी में आपने सर्वाधिक लिखा है और उच्चस्तर का लिखा है। रामविलास शर्मा जी की अब तक शताधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनके माध्यम से उन्होंने हिंदी की गतिशील परम्परा को पकड़ने की कोशिश की है। यहाँ हम रामविलास जी की कुछ प्रमुख पुस्तकों को प्रस्तुत कर रहे हैं –

- प्रेमचंद – (1941 ई.)
- भारतेन्दु-युग – (1943 ई.)
- निराला – (1946 ई.)
- प्रगति और परम्परा – (1949 ई.)
- साहित्य और संस्कृति – (1954 ई.)
- प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ – (1954 ई.)
- प्रेमचंद और उनका युग – (1952 ई.)
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र – (1953 ई.)
- साहित्य और संस्कृति – (1954 ई.)
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना – (1955 ई.)
- लोकजीवन और साहित्य – (1955 ई.)
- स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य – (1956 ई.)
- आस्था और सौन्दर्य – (1961 ई.)
- भाषा और समाज – (1961 ई.)
- भारत की भाषा समस्या – (1965 ई.)
- साहित्य : स्थायी मूल्य और मूल्यांकन – (1968 ई.)
- निराला की साहित्य साधना I – (1969 ई.)

- निराला की साहित्य साधना II – (1970 ई.)
- भारतेन्दु युग और हिंदी –साहित्य की विकास परम्परा – (1975 ई.)
- निराला की साहित्य साधना III – (1976 ई.)
- महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण – (1977 ई.)
- नई कविता ओर अस्तित्ववाद – (1978 ई.)
- भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी – (तीन खंड, 1979, 80,81)
- परम्परा का मूल्यांकन – (1981 ई.)
- भाषा युगबोध और कविता – (1981 ई.)
- भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद – (दो खंड 1982 ई.)
- कथा विवेचन और गद्य शिल्प – (1982 ई.)
- मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य – (1984 ई.)
- लोकजागरण और हिंदी साहित्य – (1985 ई., संपादित)
- हिंदी जाति का साहित्य – (1986 ई.)
- भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ – (1986 ई.)
- मार्क्स और पिछड़े हुए समाज- (1986 ई.)
- पंचरत्न – 1980 (रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, पत्र का संग्रह)
- घर की बात – 1983 (आत्मकथा)
- तार सप्तक – 1983 (कविताएँ संकलित)
- गांधी, आम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ
- भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश
- पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद
- भारतीय साहित्य और हिंदी जाति के साहित्य की अवधारणा

### 13.3.2 जीवनी साहित्य का इतिहास

जीवनी साहित्य का इतिहास मध्यकालीन बहि:साक्ष्य के रूप में हमारे सामने मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी बाबा बेनी माधव दास की गुसाई चरित और रघुवरदास की तुलसी

चरित मिलती है। इस दिशा में पहला व्यवस्थित प्रयास नाभादास के 'भक्तमाल' में मिलता है। जिसमें 252 भक्तों का जीवन वृत्तात संकलित है। इस दिशा में महत्वपूर्ण पुस्तक 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दौ सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' है। किन्तु इन ग्रंथों में वैज्ञानिक दृष्टि का पूर्ण अभाव है। हिंदी में आधुनिक ढंग की जीवनियाँ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखी गई। गोपाल शर्मा शास्त्री द्वारा लिखित दयानन्द दिग्विजय (1881 ई.), चिम्मनलाल वैश्य कृत 'स्वामी दयानन्द'। 1893 ई. में कार्तिक प्रसाद खत्री ने मीराबाई का जीवन-चरित्र लिखा। इसी परम्परा में बाबू राधाकृष्ण दास कृत 'भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र' (1904 ई.) बाबू शिवनंदन सहाय कृत 'हरिशचन्द्र' (1905 ई.) महत्वपूर्ण जीवनियाँ हैं। राजनीतिक व्यक्तित्व के ऊपर लिखी जीवनियों में गंगाप्रसाद गुप्त कृत दादाभाई नौरोजी (1906 ई.) संपूर्णानंद कृत 'धर्मवीर गांधी' (1914 ई.), राजेन्द्र प्रसाद लिखित 'चम्पारन में महात्मा गाँधी' (1919 ई.), मन्मथनाथ गुप्त लिखित 'चन्द्रशेखर आजाद' एवं सीताराम चतुर्वेदी कृत 'महामना मालवीय' (1938 ई.) प्रमुख जीवनी है। विदेशी महापुरूषों पर भी कुछ उल्लेखनीय जीवनी लिखी गई है। रामवृक्ष बेनीपुरी कृत कार्ल मार्क्स (1951 ई.) राहुल सांकृत्यायन कृत 'माउप्से तुंग' (1954 ई.), कार्ल मार्क्स (1954 ई.) आदि उल्लेखनीय हैं। हिंदी में वैसे तो समृद्ध जीवनी साहित्य का अभाव है, किन्तु इस दिशा में कुछ उल्लेखनीय प्रयास हुआ है। हिंदी में प्रेमचन्द पर तीन जीवनी लिखी गई है। प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी ने 'प्रेमचन्द घर में' (1944) नाम से जीवनी लिखी है वहीं उनके पुत्र अमृत राय ने 'कलम का सिपाही' (1962 ई.) नाम से अच्छी जीवनी लिखी है। तीसरी जीवनी मदन गोपाल ने 'कलम का मजदूर' (1964 ई.) नाम से लिखी है। डा. भगवतीप्रसाद सिंह ने कविराज गोपीनाथ की जीवनी- मनीषी की लोकयात्रा शीर्षक से लिखा है। इस दिशा में हिंदी में सर्वाधिक महत्वपूर्ण काम रामविलास शर्मा ने किया है। रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' नाम से निराला के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को तीन खण्डों में प्रस्तुत किया है। यह जीवनी जहाँ निराला काव्य को समझने में हमारी मदद करती है वहीं दूसरी ओर छायावादी आन्दोलन एवं तत्कालीन सामाजिक-साहित्यिक परिवेश को समझने में हमारी मदद भी करती है। विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित 'आवारा मसीहा' (1974 ई.) हिंदी की श्रेष्ठ जीवनी में से एक है। विष्णु प्रभाकर जी ने बंगला उपन्यासकार शरतचन्द्र के जीवन को सृजनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। शांति जोशी ने सुमित्रानंदन पंत की जीवनी 'सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य' शीर्षक से दो खण्डों में लिखा है। (प्रकाशित 1970, 1977 ई.) शिवसागर मिश्र ने 'दिनकर एक सहज पुरूष' (1981 ई.) शीर्षक दिनकर की सुन्दर जीवनी लिखी है। शोभाकान्त मिश्र कृत 'बाबू जी' (1991 ई.) नागार्जुन के ऊपर लिखी गई जीवनी है। श्री विष्णुचन्द्र शर्मा की 'अग्निसेतु' (1976 ई.) शीर्षक से नजरूल इस्लाम की जीवनी 'जिन्होंने जीना जाना' (1971 ई.) इस दिशा में एक नया प्रयोग है। इसमें सात साहित्यकारों, को राजनेताओं, एक विचारक, एक कलाकार और एक अभिनेत्री का जीवन प्रस्तुत किया गया है।

### 13.3.3 जीवनी साहित्य की विशेषता

सामान्यत: जीवनी साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा जाता है कि – यह एक लेखक द्वारा महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के जीवन को सृजनात्मक ढंग से प्रस्तुत करने वाली गद्य विधा है। यानी इसमें दो पक्ष अनिवार्य हैं – एक लेखक और दूसरे जीवनी का विषय अर्थात् महत्वपूर्ण व्यक्तित्व। जीवनी लेखक के लिए दूसरे का जीवन अनिवार्य होता है। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि जीवनी विधा की आवश्यकता क्यों पड़ती है ? अर्थात् वह कौन सी परिस्थितियाँ हैं जो किसी लेखक को जीवनी लिखने के लिए बाध्य करती हैं । आपने जीवनी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते हुए देखा कि यह आधुनिक गद्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित है, जबकि चरित काव्य या जीवनी लेखन के स्फुट प्रयत्न पहले से भी होते रहे हैं। फिर पुराने चरित काव्य या वार्ता ग्रंथ या जीवनी लेखन से आधुनिक जीवनी साहित्य का मुख्य भेद क्या है ? पुराने चरित काव्य वस्तुत: धार्मिक प्रेरणावश या स्तुति रूप में लिखे गये हैं जबकि जीवनी साहित्य की पहली शर्त यह है कि यह वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से युक्त होकर लिखी जाए। यह प्रश्न कि जीवनी साहित्य क्यों लिखा जाता है ? इसका तात्कालिक उत्तर यही हो सकता है कि जब-जब समाज के सामने संक्रमणशील स्थितियाँ होंगी, जब-जब सामज में व्यक्तित्व का अभाव होगा, तब-तब जीवनी लेखन की आवश्यकता बढ़ती जायेगी। जीवनी अपने मूल रूप में व्यक्तित्व निर्माण की ही विधा है। अकारण नहीं कि राष्ट्रीय पराधीनता के समय में सर्वाधिक जीवनी लेखन का कार्य हुआ। वैसे जीवनी लेखन की प्रासंगिकता हमेशा ही वर्तमान रहती है, क्योंकि समाज को हमेशा ही आदर्श व्यक्तित्व की आवश्यकता महसूस होती है। आइए अब हम यह देखें कि एक जीवनीकार के लिए जीवनी लिखने की शर्तें क्या हैं ? जीवनी साहित्य की सैद्धान्तिकी पर चर्चा करते हुए शिप्ले ने लिखा है – जीवनी को नायक के सम्पूर्ण जीवन अथवा उसके यथेष्ट भाग की चर्चा करनी चाहिए और अपने आदर्शरूप में यह विशिष्ट इतिहास होना चाहिए। यहाँ विशिष्ट इतिहास का तात्पर्य यह है कि नायक के जीवन-संघर्ष के चित्रण करने के क्रम में जीवनीकार तत्कालीन युग-परिस्थिति का भी प्रामाणिक वृत्त प्रस्तुत करे। जीवनी –साहित्य के विभिन्न भेद भी किए गए हैं। आत्मीय जीवनी, लोकप्रिय जीवनी, विद्वतापूर्ण जीवनी, मनोवैज्ञानिक जीवनी, व्याख्यात्मक जीवनी, कलात्मक जीवनी तथा व्यंग्यात्मक जीवनी। किन्तु शिप्ले इन्हें एक ही वर्ग में समाहित कर देता है। जीवनी के लिए यह आवश्यक है कि जीवनीकार नायक के चरित्र का विकास तत्कालीन परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के बीच दिखाये। जीवन-समाज के संघर्षों से अछूती जीवनी महान् जीवनी नहीं बन सकती।

जीवनी की सामग्री के स्रोत कैसे विकसित करें। इस संबंध में कैसेल ने कुछ बिन्दु निर्धारित किए हैं – (क) उसी विषय अथवा सम्बद्ध विषयों पर लिखी गई पुस्तकें, (ख) मूल सामग्री, यथा-पत्र, डायरी या प्रामाणिक गवेषणा-सामग्री, (ग) समकालीनों के संस्मरण, (घ) यदि वर्ण्य विषय बहुत पहले का नहीं है तो जीवित व्यक्तियों की यादगारें, (ड़.) जीवनी-लेखक यदि अपने चरितनायक के सम्पर्क में रहा है तो उसके अपने संस्मरण और (च) उन स्थलों का भ्रमण तथा पर्यवेक्षण जहाँ चरित-

नायक रहा था। (हिंदी साहित्य कोश, भाग एक, पृष्ठ-260) कैसेल द्वारा जीवनी साहित्य के लेखन के लिए उपर्युक्त सामग्री-स्तोत का विवरण महत्वपूर्ण है। लेकिन इस संबंध में हमें यह ध्यान रखना होगा कि हर जीवनी के स्रोत भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इस संबंध में किसी सैद्धान्तिकी को हर जीवनी पर लागू करना उचित नहीं है।

जब भी कोई लेखक जीवनी लेखन की दिशा में प्रवृत्त होता है तब सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की होती है कि वह जिस पर जीवनी लिख रहा है, उसके बारे में संपूर्ण तथ्यात्मक सूचनाओं का संग्रह करें। वह जो तथ्य, विवरण इकट्ठा कर रहा है, वह प्रामाणिक है कि नहीं, इस पर जीवनी की प्रामाणिकता निर्भर करती है। इस संबंध में यह प्रश्न उठाया गया है कि प्रामाणिक जीवनी के लिए लेखक का आलोच्य व्यक्तित्व को समकालीन होना अनिवार्य है! जीवनी की प्रामाणिकता के लिए यह अच्छा है कि जीवनीकार अपने वर्ण्य विषय व्यक्तित्व का समकालीन हो, लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। कोई लेखक इतिहास की छानबीन करके, तथ्य संग्रह करके एवं सहानुभूतिपूर्वक किसी व्यक्तित्व पर अच्छी जीवनी लिख सकता है। जीवनी लेखन का सबसे बड़ा लाभ या उपयोगिता यह है कि किसी महत्वपूर्ण व्यक्तित्व/क्रतित्व से आगे आने वाली पीढ़ी लाभान्वित हो सके और उसका लाभ उठा सके। जीवनी के संबंध में यह प्रश्न भी उठाया गया है कि चर्चित व्यक्तित्व ही केवल जीवनी के विषय क्यों बनते हैं। इस तर्क के पीछे कारण यह है कि सफल व्यक्तित्व का अनुकरण प्राय: लोग करते हैं, लेकिन यह हो सकता है कि सामाजिक रूप से कम सफल व्यक्तित्व का जीवन-संघर्ष भी महान हो और वह हमें प्रेरणा दे सकने की क्षमता रखता हो, ऐसी स्थिति में जीवनीकार किसी भी व्यक्तित्व को अपने लेखन का विषय बना सकता है। शर्ते यह है कि आलोच्य व्यक्तित्व का जीवन संघर्ष प्रेरणादायक हो। जीवनी लेखन के लिए सावधानी यह होनी चाहिए कि जीवनीकार किसी गलत तथ्य को न प्रस्तुत करे। जीवनी में तथ्य का बहुत महत्व है। गलत तथ्य से युक्त जीवनी प्रामाणिक नहीं हो सकती । जीवनी लेखन में वस्तुनिष्ठता का गुण अनिवार्य होना चाहिए। जीवनीकार को अपने नायक को महान सिद्ध करने का अनावश्यक प्रयत्न नहीं करना चाहिए। अपने नायक के अंतर्विरोधों को वस्तुनिष्ठ ढंग से प्रस्तुत करना ही जीवनी की सफलता है। जीवनी के लिए यह भी आवश्यक माना गया है कि उसमें क्रमबद्धता हो। पूरे जीवनी में घटनाओं की क्रमिकता बरकरार रहे। एक घटना से दूसरे घटना का क्रमानुसारी संबंध स्थापित होता हो। कोई घटना बिना कार्य-कारण सम्बन्ध के जीवनी में न आई हो। जीवनीकार के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपने नायक को संपूर्णता में चित्रित करे, लेकिन उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जीवनी में अति-महत्वपूर्ण घटनाओं को ही समावेशित करना चाहिए। जीवन का हर क्षण, हर घटना महत्वपूर्ण नहीं होते, सृजनात्मक नहीं होते। इस दृष्टि से विशेष का चयन जीवनी को सघन एवं महत्वपूर्ण बनाता है।

**अभ्यास प्रश्न 1**

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. निराला का जन्म वर्ष..............है।
2. 'निराला' पुस्तक के लेखक............है।
3. निराला की पुत्री का नाम............था।
4. निराला का जन्म...........में हुआ था।
5. निराला के जीवन पर प्रकाश डालने वाले लेखक...............हैं।

(ख) टिप्पणी लिखिए

1. जीवनी साहित्य

   ..........................................................................................
   ..........................................................................................
   ...............................................................................................
   .....................................................................................
   ..........................................................................................

2. निराला

   ..........................................................................................
   ..........................................................................................
   ..........................................................................................
   ..........................................................................................
   ..........................................................................................

3. रामविलास शर्मा

   ........................................................................................
   ..........................................................................................
   ...............................................................................................
   .....................................................................................

## 13.4 मूल पाठ

भरे-पूरे परिवार में निरालाजी का जन्म हुआ था। माता थीं, पिता थे, चाचा थे, सभी कुछ था। अबध में अपना गाँव छोड़करयह परिवार बंगाल की एक रियासत में जा बसा था। हिन्दुस्तान की दूसरी रियासतों की तरह बंगाल की शस्य–श्यामला भूमि पर महिषादल का भी एक राज्य था। वन

प्रकृति, आम, नारियल, कटहल, बाँस के पेड़, तालाब, नदियाँ, बेला, जुही, हरसिंगार, सब कुछ था; लेकिन जनता भूखी थी। यहीं पर संवत् 1953 की बसंतपंचमी को पण्डित रामसहाय त्रिपाठी के घर बालक सूर्यकुमार का जन्म हुआ। तीन वर्ष की अवस्था में बालक के जीवन में एक कभी न पूरा होने वाला अभाव छोड़कर माता स्वर्ग चली गई। कवि को "अनगिनत आ गये शरण में जन -जननी" से उस अभाव की पूर्ति करनी पड़ी। पिता पंडित राम-सहायअवध के सीधे-साधे किसान थे, जो सिपाही बन गये थे। स्वभाव की रूक्षता पहले से कुछ और बढ़ गई थी। यद्यपि अभी उनकी वैसी अवस्था न थी, फिर भी उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। पत्नी की मृत्यु के उपरान्त वे सत्रह साल तक और जीवित रहे और इन्फ्लुएंजा से उनकी आकाल मृत्यु हुई।

यह आशा की जा सकती थी कि पत्नी के अभाव में वे अपना सारा स्नेह अपनी एकमात्र संतान पर उड़ेल देंगे। यह सम्भावना भी थी कि बहुत लाड़ प्यार से वे अपने प्यारे इकलौते बेटे को बिगाड़ देंगे। परन्तु ऐसे भय या आशंका का कोई कारण न रहा। एक बार हाजत रफा करने के बाद बालक ने यूरोपवासियों की तरह आधुनिक ढंग से वैंगन के पत्ते से कागज का काम लिया। ज्योंही तनवृत्त होकर रसोईघर में जाना चाहता था कि भाभी ने रोक लिया और झरोखे से जो कुछ देखा था, उसे पिताजीसे निवेदन कर दिया। पिताजी ने गरजकर डाट बताई, लेकिन इतना काफीनहींथा। बालक को टाँग पकड़कर उठा लियाऔर तालाब तक ले जाकर अपने हाथ से कई बार डुबकियाँ लगवाई जैसे किसी गन्दी चीज को साफ कर रहे हों। इस तरह बालक की अपवित्रता निवारण करके अब उसे निकट से छने योग्य समझकर उन्होंने उसे वास्त्विक दंड देना शुरू किया। दूसरी बार बालक के पिता सुझाया- तुम्हारे मातहत इतने सिपाही हैं, तुम इस राजा को लूट क्यों नहीं लेते। पिता ने साचा कि यह भी किसी दुश्मन का जाल है जो इस तरह भेद लेना चाहता है। पुत्र से वह रहस्य जानने की चेष्टा करने लगे और चिरंजीव इस सूझ के लिए अपनी मौलिक प्रतिभा की दुहाई देने लगे। परन्तु पिता को विश्वास न हुआ; जब बालक बेसुध हो गया, तभी ताड़न-क्रिया बन्द हुई।

तीसरी बार अपने गाँव में वेश्या के लड़कों के हाथ से पानी पीने के कारण फिर वही दशा हुई। "मारते वक्त पिताजी इतने तनमय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाये हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं। मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूमहो गई थी। "

मातृहीन भावुक-हृदय बालक पर इस व्यवहार का क्या प्रभाव पड़ा होगा, पाठक सहज ही कल्पना कर सकते हैं। घर के बाहर भी उसकाजीवन सुखी नहीं था। तुलसीदास की रामायण पढ़कर उसने हनुमान की उपासना करना सीखा था। सरोवर से लाल कमल लाकर वह उनका सिंगार करता था। उस वीर भावना के साथ ऊँच-नीच और छोटे-बढ़े के विचार का मेल न खाता था। राज्य में

कायस्थ, ब्राह्मण, कुलीन और अकुलीन का प्रश्न राष्ट्रीय समस्या की तरह हल न हो पाता था। स्वामी प्रेमानन्दजी के महिषादल पधारने पर ब्राह्मण और कायस्थ एक ही पाँति में भेजन पाने बैठे। कायस्थों को गर्व हुआ कि उन्हीं की जाति के सन्यासी का अब इतना आदर हो रहा है। इस पर विप्र वर्ग का भी ब्रह्मतेज जागा। एक ब्राह्मण ने नवयुवक की आर इंगित करके अपमानजनक शब्द कहे। जब स्वामीजी गढ़ का मन्दिर देखने गये, तब भी युवक को उनके साथ जाने से रोका गया। एक ब्रह्मण ने बड़े मार्के की बात कही, "देवता राजा के हैं, किसी प्रजा के नहीं। "

इस तरह की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बालक से पाये हुए उद्वत स्वभाव के कारण अपने जीवन के सभी काम निर्भीक भाव से करता रहा। स्कूल की शिक्षा नवीं कक्षा तक मिली, फिर अनेक प्रतिभाशाली साहित्यकारों की तरह उसनेसकूल को नमस्कार किया। खेल-कूद से उसे काफी दिलचस्पी थी और क्रिकेट और फुटबाल का अच्छा खिलाड़ी था। सहपाठियों में उसके जीवन का अकेलापन बहुत कुछ दूर हो जाता था। संगीत की भी उसे शिक्षा मिली और 'चोटीकी पकड़' का 'बिन्दा कहत करो हमसों न रार'' तभी से उसके कंठ में बैठा हुआ है। राजा साहब के बड़ हारमोनियम पर युवक कभी-कभी गाता भी था।

सम्पूर्ण बाल्यकाल महिषादल में नहीं बीता। जब तब वह अपने गाँव भी आया करता था। कानपुर-रायबरेली लाइन पर बीघापुर स्टेशन से लगभग दो कोष पर गढ़ाकोला गाँव बसा हुआ है। लोन नदी को पार करने पर गाँव के कच्चे घर दिखाई पड़ने लगते हैं। और घरोंकी तरह चौपाल, छप्पर,दहलीज, आँगन, खमसार और अटारी के नक्शे पर पण्डित रामसहाय का मकान भी बना हुआ है। अवध का यह भाग बैस ठाकुरों की बस्ती के कारण बैसवाड़ा कहलाता है। ताल, छोटी नदियाँ और नाले, घनी अमराइयाँ यहाँ की शोभा हैं। इसे हम अवध का हृदय कह सकते हैं। अवधी का सबसे मधुर रूप यहीं बोला जाता

है। इस भाषा में ओज और कोमलता दोनों का ही विचित्र सम्मिश्रण है। यहाँ के किसान परिश्रमी, ताल्लुकदार सरकारी पिट्ठू, वाले, विप्र वर्ग दंभी और निम्न जातियाँ बहुत ही सताई हुई हैं, परन्तु शिक्षाऔर व्यवसाय में उन्होंने विशेष उन्नति नहीं की। कुछ दिन पहले हर गाँव में दो-चार परिवार ऐसे निकल आते थे जिनके लोग फौज में सिपाही, हवलदार या सूबेदार तक होते थे। बड़ी-बड़ी दाढ़ी या गलमुच्छे रखनेवाला पेन्शनभोगी यह वर्ग अब मिट-सा गया है।

बालक सूर्यकुमार ने पितासे अच्छी काठी पाई थी। चौदह वर्ष की अवस्था ही में कसरत-कुश्ती का शैकीन वह एक अच्छा युवक बन गया। बैसवाड़े में, देश के बहुत से अन्य भागों की तरह, बचपन में ब्याह करना एक गौरव की बात समझी जाती है। अल्प अवस्था में सूर्यकुमार का भी विवाह हो गया। सासुजी ने लड़के को बुलाकर देख लिया, मन बैठा लिया और बात पक्की कर ली।

परन्तु यह जानकर कि उनकी बिटिया को दूर परदेश जाना पड़ेगा, उन्होंने यह शर्त रक्खी कि छः महीने वह सासरे रहेगी ओर छः महीने मायके। श्वसुर उन्हें परदेश भी न ले जायेंगे।

विवाह वर के योग्य हुआ। स्वर्गीया मनोहरा देवी रूपवती और गुणवती दोनों थीं। रंग कति का-सा था, यानी खुलता गेहुँआ, मुँह लम्बा-सा, घने लम्बे केश, गाने में अत्यन्त निपुण, सौ-डेढ़ सौ स्त्रियों में धाक जमाने वाली, विवाह के समय साहित्य में कवि से अधिक योग्य। गौने से कवि का रोमांस शुरू हुआ। अपनी शिक्षा जारी रखने के लिए महिषादलआना पड़ा लेकिन "वामा वह पथ में हुई वाम सरितोपम" – शिक्षा का क्रम आगे न चल सका। कुछ दिन तक डलमऊ रहे। दूध-बादान में सास का दिवाला निकालते-निकालते छोड़ा। रूह की मालिश कराई, कुल्ली की संगति की। गंगा के किनारे एक हाथ से कैथे फेंककर और दूसरे से लोकते हुए क्रिकेट का शौक पूरा करते थे। वैवाहिक जीवन का सुख अधिक दिन तक नहीं बदा था। श्रीमती मनोहरा देवी ने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म देकर इन्फ्नुएंजा की बीमारी में शरीर त्याग किया। उस समय युवक पति महिषादल में था। पत्नी की मृत्यु मायके में, माँ की गोद में हुई। सब कुछ समाप्त होने के बाद सूर्यकुमार भी वहाँ आ पहुँचा। इस बज्रपात से उसकाबुरा हाल था। घंटों श्मशान में बैठा रहता। कहीं कोई चूड़ी का टुकड़ा, हड्डी या राख मिल जाती, तो उसे हृदय से लगाये घूमा करता। इन्फ्लुएंजा में इतने मनुष्य नष्ट हुए थे कि गंगा के किनारे दिन-रात चिताओं की जोत कभी मन्द न होती थी। अवधूत टीने पर बैठा युवक कवि घंटों तक बहती हुई लाशों का दृश्य देखा करता।

डलमऊ को अगर एक मनहूस जगह कहा जाय तो बेजा न होगा। जीवन से अधिक यह मृत्यु का स्थान है। किसी समय वह व्यापार की मण्डी था। पृथ्वीराज और जयचन्द के समय इसका राजनीतिक महत्व भी था। भर राजाओं के विशाल किले के ध्वंसावशेष उसके ऐतिहासिक गौरव के साक्षी है। आज भी कतकी के दिनों में बड़े-बड़े आम और इमली के बगाइच जन-समूह से भर जातेहैं। धनुषाकार गंगा नगर को घेरे हुए है। अनेक स्थानों से नही का चौड़ा फाट, दूसरी ओर की बनराजि और किले से कोसों तक फैले हुए मैदानों का दृश्य दिखाई देता है। परन्तु अब नदी पर धनी व्यापारियों के बजरों की भीड़ नहीं होती। व्यवसाय नष्ट हो गया है। मकान खण्डहर हो गये हैं। जगह-जगह कच्ची मिट्टी के स्तूप-से बन गये हैं जिनमें जहाँ-तहाँ मानों बिलों में प्रवेश करके मनुष्य नामधारी जीव जीवन-व्यापार में लगे रहते हैं। नगर में अधिकतर गंगा-पुत्रों की बस्ती है। घाट की जमींदारी में ज्यादा गुंजायश न होने से बहुत से लोग नगर छोड़कर बाहर जा रहे हैं। धर्म-भीरू किसान यात्रियों से पैसा झटकना, फुर्सत में जुआ खेलना, दलबन्दी करके गंगा के किनारे लम्बी-लम्बी लाठियाँ लेकर युद्व करना-यह भी यहाँ की संस्कृति में शमिल है। वैसे दो-चार विद्वानों, संगीतज्ञों और अन्य गुणीजनों से डलमऊ कभी खाली नहीं रहा। प्रथम महायुद्व के बाद इन्फ्लुएंजा से जब घर खाली

हो रहे थे, तब डलमऊ और उसके श्मसान क्या रहे होंगे, इसकी कल्पना डलमऊ जाकर ही की जा सकती है।

इस महामारी में कवि की पत्नी की ही मृत्यु नहीं हुई । पिता, चाचा आदि एक के बाद एक सभी स्वर्ग सिधारे। चार भतीजे और अपनी दो संतान का भार 21 साल के युवक के कन्धों पर पड़ा। कन्या को, जो अभी सवा साल की थी, नानी ने पाल-पोसकर जीवित रक्खा। नौकरी की खोज शुरू हो गई। महिषादल में नें नहीं पटी और उसे छोड़ना पड़ा। कलम की मजदूरी का अभ्यास शुरू हो गया। मौलिक रचना, अनुवाद, जो काम मिलता उसे उठा लेते। इस समय की अनेक प्रारम्भिक रचनाएँ, उपन्यास, नाटक आदि भी नष्ट हो गये। आचार्य द्विवेदी से परिचय हुआ और उन्होंने बाबू शिवप्रसाद गुप्त को एक पत्र लिखा कि ज्ञान मण्डल में इन्हें कुछ कार्य दे दें। प्रयत्न विफल ही रहा। अक्तूबर सन् 1921में प्रताप प्रेस से बातचीत चली। मालिक लोग बीस-पच्चीस रूपये देने को राजी थे। उधर रामकृष्ण मिशन को एक सम्पादक की आवश्यकता थी। उस जगह का विज्ञापन भी निकला। द्विवेदी जी ने स्वामी माधवानन्दजी को पत्र लिखा और कानपुर में मुलाकात होने पर कम से कम पचास रूपये मासिक वेतन पर इन्हें रख लेने को कहा। दिसम्बर सन् ‘ 21 में द्विवेदीजी ने निरालाजी को लिखा, ‘‘जान पड़ता है स्वामीजी ने बहाना कर दिया है। पसंद किसी और ही को किया होगा। खैर उनकी इच्छा। इधर बनारस जाने में भी आपने देर कर डाली।’’ आगे चलकर निरालाजी ने रामकृष्ण मिशन में काम किया और साल भर तक ‘समन्वय’ का सम्पादन किया। इसी समय रामचरितमानस पर उन्होंने वे निबन्ध लिखे जिनमें सप्त सोपान आदि की नई व्याख्या उन्होंने तुलसीदास को रहस्यवादी सिद्व किया है।

सन् 1913 में बाबू महादेव प्रसाद सेठ ने ‘मतवाला’निकाला साल भर तक निराजाली वहाँ रहे। ‘मतवाला’ के पहले अंक में रक्षाबन्धन पर कविता छपी है, ओर उसी के साथ ‘मतवाला’के सम पर गढ़ा हुआ ‘निराला’ नाम भी प्रकाशित हुआ है। अठारहवें अंक में ‘जूही की कली’ छपी है जिसके साथ पहली बार कवि का पूरा नाम पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ प्रकाशित हुआ है। उनके जीवन में बहुत दिनों के बाद ऐसा सुखद वर्ष आया था। महादेव बाबू बड़ी खातिर करते थें। बहुत दिनों के बाद अवरूद्व साहित्यिक प्रतिभा को प्रकाश में आने का अवसर मिला था। शाम को भाँग छानना, दिन-भर सुरती फाँकना, थियेटर देखना, साहित्यिकों से सरस वार्तालाप करना, मुक्त छन्द में कविता लिखना, छद्म नामों से हिन्दी के आचार्यो की भाषा व्याकरण और मुहावरों की भूलें दिखाना,और यों समस्त हिन्दी संसार की चुनौती देना- उनके जीवन का कार्यक्रम था। उस समय ऐसा लगता था कि मुंशी नवजादिक लाल, बाबू शिवपूजन सहाय, और पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ एक तरफ और सारी खुदाई एक तरफ है। बंगाल में स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ

ठाकुर का कार्य देखकर हिन्दी-भाषी प्रान्तों में साहित्यिक और सामाजिक क्रान्ति करने के लिए प्रबल आकांक्षा जाग उठी थी परन्तु साधन कम थे और विरोध अधिक था।

ग्रहों की विशेष कृपा होने से निरालाजी साल दो साल तक ही एक जगह पैर जमाकर रह सकते थे। साल भर बाद ही वह 'मतवाला' से अलग हो गये और अगले पाँच वर्ष अस्थिरता, आर्थिक चिन्ता, शारीरिक और मानसिक रोग में बीते। कलकत्ते से चलते हुए उन्होंने बाबू बालमुकुन्द डागा, पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे, पण्डित सकल नारायण शर्मा और पं0 जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी से अपनी योग्यता के प्रमाणपत्र लिये। चतुर्वेदीजी नई कविता, विशेष रूप से मुक्त छन्द के प्रबल विरोधी थे। कवि-सम्मेलनों में वे निरालाजी की नकल उतारा करते थे। सम्वत् 1983 में अपने दिये हुए प्रमाण-पत्र में उन्होंने विरोध का जिक्र न करते हुए लिखा था, "आपके निराले ढंग के पद्यो ने हिन्दी संसार में युगान्तर-सा उपस्थित कर दिया है।" पता नहीं, कहाँ तक इन प्रमाण पत्रों ने आर्थिक प्रश्न हल करने में सहायता की।

सन् '26 से '28 तक का समय उनकी घोर अस्वस्थता का समय भी था। इन वर्षो में प्रसादजी,शान्तिप्रिय द्विवेदी, विनादशंकरजी व्यास, पंण्डित कृष्ण विहारी मिश्र, प्रेमचन्दजी आदि ने उन्हें जो पत्र लिखे है, उनमें बराबर बीमारी की चर्चा है। तो कभी में फोड़ा,तो कभी और कुछ। उस समय आज की तरह का भारी शरीर नहीं था। 'सुधा'में छपे हुए उनके पुराने चित्र में उनका बहुत कुछ वहीं हुलिया है जो आजकल उनके पुत्र पण्डित रामकृष्ण त्रिपाडी का है। प्रेमचन्दजी ने फरवरी सन् '28 में अपने पत्र में लिखा था, "मीयादी बुखार क्या इसीलिए आपकी ताक में बैठा था कि घर से निकलें तो धर दबाऊँ। किस्मत ने वहाँ भी आपका साथ न छोड़ा। बीमारी ने तो आपकों दबा डाला होगा। पहले ही कहाँ के ऐसे मोटे-ताजे थे।" रोग और आर्थिक कष्टों से यह लड़ाई अधिकतर गढ़ाकोला के उसी कच्चे मकान में हुई।जब-तब कलकत्ता जाते रहतेथे। बाजार के काम से जो कुछ मिलता उसमें से खाने-खरचने के बाद यथाशक्ति भतीजों को भी भेजते थे। उनके पुराने कागज-पत्रों में कुछ मनीआर्डर की रसीदें हैं जिनसे पता लगता है कि गृहस्थी के प्रति वे नितान्त उदासीन न थे। सन् '26 में पण्डित मन्नीलाल शुक्ल, मार्फत रामगोपाल त्रिपाठी, के नाम कलकत्ते से पचास रूपये भेजे थे। कलकत्ते से भी वे घर की छोटी-छोटी बातों के लिए निर्देश किया करते थे। एक उदाहरण काफी होगा। सितम्बर सन् 27 में उन्होंने अपने भतीजे श्री केशव प्रसाद को लिखा था, "तमने जो लोगों के दाम दे दिये और अनाज खरीद लिया, से अच्दा किया। पण्डितजी ने बाग का चारा 22 रूपये में बेच डाला यह भी अच्छा हुआ। देखना, पेड़ न चर जाएँ, जो पौधे हैं। रूपया पण्डितजी को हम बहुत जल्द भेजते हैं।............... तुम लोगों को जड़वर भेजेंगे।" सन् '28 में एक पत्र में उन्होंने बाग बेच डालने का जिक्रकिया है और लिखा है, "खर्च की तकलीफ हो तो बर्तन बेच डालना। तकलीफ न सहना।" शायद इन्हीं सब बातों को सोचकर 'सरोज स्मृति' में उन्होंने लिखा था-

"दुख ही जीवन की कथा रही

क्या कहुँ आज, जो नहीं कही।"

इसी समय उनहोंने 'ध्रुव', 'प्रहलाद', 'राणा प्रताप', रवीनद्र-कविताकानन', 'हिनदी-बंगला शिक्षा', 'रामकृष्ण वचनामृत', आदि पुस्तकें लिखीं या अनुवाद कीं। 'हैक वर्क' या बाजार का काम उन्हें बराबर करना पड़ा लेकिन प्रकाशकों की ठग-विद्या के कारण उसे भी वे जमकर नहीं कर सके। पत्रों के सम्पादक काम माँगने पर क्वालिफिकेशन पूछते थे।

चण्डीदास के पदों का अनुवाद करने के लिए इसी वर्ष छतरपुर से भी बुलावा आया। उस समय बाबू गुलाबराय महाराज साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी थे।

अन्यत्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का अनुवाद करने की बात भी चल रही थी। कोपीराइट के झगड़े के कारण राय श्रीकृष्णदासको अनुवाद कराने का विचार छोड़ना पड़ा। सन् '28 के शुरू में 'माधरी' के सम्पादक ने पूछा कि सम्पादन विभाग में जगह मिलने पर क्या वह सम्पादक की जिम्मेदारियों को निभा सकेंगे। हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के बारे में उनकी योग्यता की जाँच करते हुए यह भी पूछा गया था, "प्रूफरीडिंग का कैसा अभ्यास है ?" हिन्दी में प्रूफरीडर और सम्पादक, ये दोनों शबद पर्यायवाची से हैं। सम्पादकके पत्र के उत्तर में उन्होंनेजो कुछ लिखा हो, अगले महीने 'माधुरी' कार्यालय ने लिख भेजा, "इन शर्तो पर अभी आपकों न बुला सकूँगा।"

सन् '28 से उन्होंने स्थायी रूप से गंगा-पुस्तक-माला कार्यालय में काम करना शुरू किया। 'सुधा'के लिए वे संपादकीय नोट लिखते थे और उसके सम्पादन का सारा भार सँभलते थे। यहींपर'अप्सरा', 'अल्का' उपन्यास और 'लिनी'की कहानियाँ लिखीं । उनका अध्ययन-क्रम भी पहले की अपेक्षा सुव्यवस्थित हुआ। विश्वविद्यालय के छात्रों का एक ऐसा दल भी तैयार हुआ जो इनके साहित्य का समर्थन करता था और अपने साहित्य के लिए इनसे प्रोत्साहन पाता था। अचल, कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह, रामरतन भटनागर 'हसरत',दयानन्द गुपत आदि उनके निकट संपर्क में आने वाले तरूण साहित्यिक थे।

प्रसादजी उनसे स्नेह ही न करते थे, इनकी देखभाल भी करते थे। रूग्णावस्था में उन्होंने औषधि आदि का प्रबन्ध करने में बड़ी सहायता की थी। तथी श्री सुमित्रानन्दन पन्त से पत्र-व्यवहार शुरू हुआ और एक ही साहित्यिक आन्दोलन में काम करने के कारण साक्षात् परिचय न होने पर भी सहज मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गया।'पल्ल' की भूमिका में आक्षेप करने के कारण निरालाजी ने 'पल्लव'पर एक ध्वंसात्मक लेख लिखा। आगे भी 'भारत' आदि पत्रों में वादविवाद चला, परन्तु

उससे उनकी मैत्री में कभी अन्तर नहीं आया। शायद ही किसी युग के तीन कवियों में ऐसा स्नेह सम्बन्ध रहा हो जैसा प्रसाद, निराला और पन्त में था और शायद ही किन्हीं दो व्यक्तियों के स्वभाव में इताना अन्तर हो जितना पन्त और निराला के। फिर भी दोनों ने न जाने कितने दिन घण्टों एक साथ रहकर बिताये है।। इसका यही कारण है कि वे एक दूसरे को जितनी अच्छी तरह जानते पहचानते हैं, उतना शायद दूसरा नहीं।

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, रामरतन भटनागर 'हसरत' दूसरी कोटि के मिश्र थे। इनमें चन्द्रप्रकाशजी को निराजाली पर सबसे ज्यादा श्रद्धा थी। उनके गीतों पर महाकवि की शैली की छाप है। 'अप्सरा'के बारे में वाद विवाद होने पर उन्होंने उसमें हिस्सा लिया था । भार्गव मैजेस्टिक होटल टूटने पर वह मकान लेकर रहने लगे। 58 नं0 नारियल वाली गली के दुमंजिले मकान में वह कई साल तक रहे। कभी रामकृष्णजी और स्वर्गीय सरोज आकर साथ रहती थीं। सरोज के चले जाने पर वे उसमें बहुधा अकेले ही रहे। कलकत्ते के बालकृष्ण प्रेस और गढ़ाकोला के घर की तरह इस मकान का भी साहित्यिक महत्व है। 'तुलसीदास', 'प्रभावती', 'गीतिका' के अधिकांश गीतों की रचना इसी समय हुई। गंगा-पुस्तकमाला के संचालक श्री दुलारेलाल भार्गव से उनकी अच्छी ही निभी। निरालाजी सम्पादन-कार्य ही न करते थे, दुलारेलालजी की साहित्यिक कार्यवाही में भी सहायता करते थे। 'दुलारे दोहावली' की पहली भूमिका उन्होंने लिखी थी और उसके दोहों के बारे में परामर्श दिया था। 'वीणा' में एक दोहे के अनेक अर्थ करके उन्होंने अपनी समझ में दोहवली का बड़ा अच्छा समर्थन किया था। उनके प्रिय मित्र बनारसीदासजी चौबे ऐसे मौकों की ताक में ही रहते थे अपनी समझ में उन्होंने भी खूब फायदा उठाया। गंगा-पुस्तक-माला से अलग होने के समय 'गीतिका' प्रेस में जा चुकी थी। उस समय जितने गीत लिखे गये थे, निरालाजी ने उनकी टीका भी की थी। सौदा न पटने के कारण पुस्तक प्रेस से मांग ली गई और वह फिर लीडर प्रेसमें छपी। लखनऊ छोड़ने पर अधिकतर वे इलाहाबाद ही रहे। सालभर तक मकान बन्द पड़ा रहा। पिछला किराया उतारने के लिए नया चढ़ाते रहे। लीडर प्रेस से लौटकर एक मुश्त किराये की बड़ी रकम अदा की। 'गीतिका', 'अनामिका', 'निरूपमा', पुस्तकें लीडर प्रेस से प्रकाशित हुई ।

इसके बाद कुछ दिन के लिए वे फिर लखनऊ में आकर रहने लगे। नारियल वाली गली से थोड़ा आगे चलकर भूसामण्डी हाथीखाना में उन्होंने मकान लिया। यह पहले कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल का जमाना था। इन्हीं दिनों पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी से भी उनका परिचय हुआ। चतुर्वेदीजी प्राचीन साहित्य के प्रेमी हैं। छायावाद के प्रति उनकी वैसी सहानुभूति नहीं है। आर्यनगर में उनके घर पर अक्सर साहित्यिक विवाद हुआ करता था। भूसामण्डी के मकान में रहते हुए निरालाजी ने इण्डियन प्रेस के लिए बंकिम बाबू के उपन्यासों के अनुवाद का काम किया। दो-तीन उपन्यास अनुवाद करने के बाद मालूम हुआ कि इंडियन प्रेस के व्यवस्थापक अनुवाद के शब्दों के हिसाब से इन्हें काफी

रूपया दे चुके हैं। निरालाजी के अनुसार यह हिसाब-किताब गलत था और उन्होंने काम बन्द कर दिया।

महायुद्ध छिड़ चुका था जब वे कर्वी गये। वहॉं बुरी तरह बीमार पड़ गये और उनकी वास्तविक स्थिति से उनके अधिकांश मित्र अपरिचित ही रहे। इसी बीमारी से करीब 70 पौण्ड वजन कम हो गया। उस बार स्वास्थ्य गिरने से वे फिर अच्छी तरह संभल नहीं पाये। दारागंज, प्रयाग में उन्होंने एक छोटा-सा मकान लिया जिसके एक भाग में उसके मकान-मालिक भी रहते थे। इसकी छत इतनी नीची थी कि आदमी उसे हाथ उठाकर छू सकता था। निरालाजी के लिए यह मकान कठघरे जैसा था। इसी में ‘चोटी की पकड़‘, ‘काले कारनामे‘, ‘नये पत्ते‘ ‘बेला‘ आदि पुस्तकें उन्होंने लिखीं। प्रातःकाल गंगा नहाते थे और स्वयं भोजन पकाते थे। बर्तन धोना, घर साफ करना- जब भी वे उसे साफ करते हों- उनका अपना काम था। इसमें रहते हुए उनकी दशा बराबर चिन्ताजनक रही। श्रीमती महादेवी वर्मा ने साहित्यकार संसद के द्वारा और वैसे भी उनकी देखरेख करने का प्रयत्न किया। कुछ लोगों की धारणा है कि निरालाजी को जो कुछ रूपया मिलता है, वे सब खा-पी डालते हैं। इसके विपरीत सत्य यह है कि अधिकांश वे दान कर देते थे। कहीं कोई कवि-सम्मेलन हुआ, बुलावा आने पर बड़े ही व्यावसायिक ढंग से सौदा पटाया, पेशगी रूपया मॅंगाकर कपड़े-लत्ते बनवाये, जिसमें दरी, चादर, रजाई, तकिया, जूते वगैरह सभी कुछ शामिल है। दूसरे कवि-सम्मेलन तक उनके पास जूते छोड़कर शायद और कुछ भी नहीं रह जाता। इसीलिए फिर पेशगी मांगने और पहले से अच्छा सौदा पटाने की जरूरत पड़ती थी। जिस तरह जवानी मं वह बच्चों के लिए खर्च भेजते थे, उसी तरह अब भी गृहस्थी की ओर उनका बराबर ध्यान रहता था। पहली पुत्रवधू का देहान्त होने पर उन्होंने रामकृष्णजी का दूसरा विवाह किया और इन सब कामों में काफी रूपया खर्च किया। अब भी यथासम्भव वह उनकी सहायता करते हैं।

## 13.5 निराला : परिचय,पाठ एवं आलोचना

### 13.5.1 ‘निराला’ : रचना, परिचय

‘निराला’ पुस्तक हिंदी के शीर्ष समालोचक रामविलास शर्मा द्वारा लिखित है। इस पुस्तक का प्रकाशन वर्ष 1946 ई. है। हिंदी साहित्य में निराला पर लिखित यह प्रथम स्वतंत्र पुस्तक है। निराला का काव्य - संसार इतना वैविध्य पूर्ण, प्रयोगधर्मो रहा है कि वे बहुत दिनों तक समालोचकों एवं पाठकों के बीच अबूझ ही बने रहे। निराला की मुक्त छंद संबंधी अवधारणा हो या अन्य प्रयोग वे सदैव अलग ही खड़े दिखे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे समीक्षक भी निराला साहित्य की ‘बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा’ को तो सराहते हैं लेकिन स्वयं उस प्रतिभा के विश्लेषण का प्रयास नहीं करते। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने अवश्य छायावाद के संदर्भ में ‘विशाल भारत’ में महत्वपूर्ण लेख लिखा, लेकिन उसका विस्तार उन्होंने बहुत बाद में निराला पर ‘कवि निराला’ नामक

आलोचनात्मक पुस्तक लिखकर किया। इस दृष्टि से बच्चन सिंह ने अवश्य रामविलास शर्मा जी की पुस्तक के तुरन्त बाद ही 'क्रान्तिकारी निराला' नामक पुस्तक लिखा, लेकिन रामविलास शर्मा जैसी तार्किक दृष्टि का बच्चन सिंह में अभाव है। कहने का भाव यह है कि रामविलास शर्मा ऐसे पहले आलोचक हैं और 'निराला' ऐसी पहली पुस्तक है जिसने महाकवि निराला को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान की। इस पुस्तक का क्रान्तिकारी महत्व इस बात में भी है कि इसके प्रकाशन से पूर्व छायावादी परिधि में निराला की स्थिति जयशंकर प्रसाद एवं सुमित्रानन्दन पंत के बाद मानी जाती थी, किन्तु इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् निराला छायावाद के तो प्रथम पांक्तेय हुए ही, हिंदी कविता के भी शीर्षस्थ कवि स्वीकार कर लिये गए। 'निराला' पुस्तक में कुल 16 अध्याय हैं। भूमिका को भी शामिल कर लिया जाये तो इनकी संख्या 17 हो जाती है। अध्यायों के शीर्षक हैं वैसवाड़े का जीवन, साहित्य की पृष्ठभूमि, एक आकर्षक व्यक्तित्व, सांस्कृतिक जागरण और परिमल, रीतिकालीन परम्परा और छायावाद, नया कथा-साहित्य, गीत, विराट की उपासना, 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा, कथा-साहित्य में नई प्रवृत्तियाँ, प्रगति और प्रयोग, निराला जी की युद्धकालीन कविताएँ, जीवन-दर्शन और कला, उदात्त-अनुदात्त, मृत्युन्जयी निराला, "यह मतवाला – निराला''। चूँकि यहाँ हमारे विवेचन का केंन्द्र-बिन्दु जीवनी साहित्य है, इस दृष्टि से निराला जी के जीवन संबंधी ज्ञान की दृष्टि से 'बैसवाड़े का जीवन' अध्याय विशेष रूप से प्रासंगिक है, इसीलिए इस अध्याय का चयन किया गया है।

### 13.5.2 'निराला' : पाठ विश्लेषण

आलोच्य पाठ 'बैसवाड़े का जीवन' परिमाण में छोटा है किन्तु अपने लघु कलेवर में यह बड़ा जीवन-परिदृश्य समेटे हुए है। पाठ का प्रारम्भ निराला जी की पारिवारिक पृष्ठभूमि से होता है। किसी साहित्यकार के गठन में उसकी पारिवारिक-भौगोलिक पृष्ठभूमि कैसे सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बन जाती है, इसका संकेत लेखक ने पाठ के प्रारम्भ में ही करा दिया है – भरे-पूरे परिवार में निराला जी का जन्म हुआ था। माता थीं, पिता थे, चाचा थे, सभी कुछ था। अवध में अपना गाँव छोड़कर यह परिवार बंगाल की एक रिआसत में जा बसा था।.............बंगाल की शस्य-श्यामला भूमि पर महिषादल का भी एक राज्य था। वन, प्रकृति, आम, नारियल, कटहल, बाँस के पेड़, तालाब, नदियाँ, बेला, जूही, हरसिंगार, सब कुछ था; लेकिन जनता भूखी थी। यहीं पर संवत् 1953 की बसंतपंचमी (1897 ई.) को पण्डित रामसहाय त्रिपाठी के घर बालक सूर्यकुमार का जन्म हुआ था।" 'जनता भूखी' और 'यहीं पर' के विरूद्धों से कैसे हिंदी का क्रान्तिकारी कवि निराला जन्म लेता है, इस पृष्ठभूमि को बड़े सुन्दर ढंग से लेखक ने दिखाया है। माँ की मृत्यु के अभाव की पूर्ति कवि कैसे "अनगिनत आ गये शरण में जन-जननि'' लिखकर कवि कर सका है, इस पृष्ठभूमि का संकेत भी रामविलास जी ने किया है। किसी कवि के निर्माण में उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ कैसे योगदान करती हैं, इस दृष्टि से आलोच्य पाठ महत्वपूर्ण है।

निराला जी के व्यक्तित्व निर्माण में महिषादल के साथ ही बैसवाड़े के जीवन की भूमिका रही है। बैसवाड़े का परिचय लेखक ने इन शब्दों में दिया है : "अवध का यह भाग वैसे ठाकुरों की बस्ती के कारण बैसवाड़ा कहलाता है। ताल, छोटी नदियाँ और नाले, घनी अमराइयाँ यहाँ की शोभा हैं। इसे हम अवध का हृदय कह सकते हैं। अवधी का सबसे मधुर रूप यहीं बोला जाता है। इस भाषा में ओज और कोमलता दोनों का ही विचित्र सम्मिश्रण है।" निराला रचना में ओज और कोमलता दोनों ही है और अपने समुन्नत रूप में है।

निराला के जीवन में मनोहरा देवी का आगमन और एक पुत्र और एक कन्या को जन्म देकर इन्फ्लुएंजा की बीमारी से मृत्यु एक साथ ही रोमानीवृत्ति और करूणा दोनों भाव दे गया। पत्नी मृत्यु के उपरान्त 'घंटों श्मशान में बैठा रहता। कहीं कोई चूड़ी का टुकड़ा, हड्डी या राख मिल जाती, तो उसे हृदय से लगाये घूमा करता।' 'जूही की कली' की रचना श्मशान में बैठकर ही की गई है। दु:ख जहाँ कविता बनती है, वहाँ निराला का सघर्ष और सृजन है। भारतीय परम्परा में शिव की सती के लिए विलाप, कालिदास का अज-विलाप इत्यादि ऐसे प्रसंग हैं जो निराला के जीवन में साक्षात होते हैं। डलमऊ का मृत्यु साक्षात श्मशान का वर्णन तत्कालीन भारतीय परिवेश का जीता-जागता उदाहरण बन गया है। इस महामारी में कवि के पिता, चाचा भी स्वर्गवासी हुए। 21 वर्ष के युवक के कंधे पर चार भतीजे और दो संतान का भार। ऐसी विषम परिस्थिति में साहित्यिक-संघर्ष की शुरूआत भी होती है : "लौटी रचना लेकर उदास/ताकता हुआ में दिशाकाश'' का समय भी यही है। लेकिन जो लेखक अपने आत्मसंघर्ष को सार्वजनीन बना देता है और सामाजिक संघर्ष को व्यक्तिगत संघर्ष बना देता है – वही निराला है। 'राम की शक्ति पूजा' और 'सरोज स्मृति' जैसी रचनाएँ इसी संघर्ष की साहित्यिक प्रतिध्वनियाँ हैं। 'समन्वय; 'मतवाला' पत्रों के माध्यम से निराला की साहित्यिक प्रतिध्वनियाँ हैं। 'समन्वय; 'मतवाला' पत्रों के माध्यम से निराला की साहित्यिक प्रतिभा कैसे निखरती है, इसका संकेत रामविलास शर्मा जी ने बहुत ही सुन्दरता के साथ किया है। 1928-30 तक का समय निराला जी के शारीरिक अस्वस्थता और साहित्यिक विकास का समय है। निराला जी के साहित्यिक संघर्ष, उनकी रचनाओं के प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के दायित्व को रामविलास जी ने उनके समानधर्माओं के सम्बन्ध पर केंद्रित है। निराला को प्रारंभिक समय में जितना विरोध झेलना पड़ा था, उतना ही उनके प्रशंसकों का वर्ग भी उनके पक्ष में खड़ा होता गया। भारतीय जनता के जीवन संघर्ष के स्वर को निराला ने पहचाना और निराला के संघर्ष को रामविलास जी ने। अब रामविलास शर्मा जी के इस कर्म को आगे आने वाली पीढ़ी को समझने की जरूरत है।

### 13.5.3 'निराला' : आलोचनात्मक मूल्यांकन

निराला को महाकवि के रूप में प्रतिष्ठा देने वाले आलोचक रामविलास शर्मा की यह निराला पर लिखी गई प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक है (निराला पुस्तक में लेखक का वक्तव्य)। 'निराला' पुस्तक मूल रूप से आलोचना की पुस्तक है, जीवनी नहीं। किन्तु 'बैसवाड़े का जीवन'

शीर्षक एक अध्याय अपनी व्यापकता एवं गहराई से जीवनी साहित्य की सारी विशेषताओं को अपने में समेटे हुए है। निराला का जन्म, उनकी पारिवारिक परिस्थिति, उन्नाव (गढ़ाकोला) एवं महिषादल की सामाजिक भौगोलिक परिस्थिति और छायावादी युग का साहित्यिक परिवेश सभी कुछ एक छोटे से अध्याय में रामविलास जी ने समेटा है। चूँकि यह अध्याय के रूप में निराला की जीवनी है, अत: जीवनी साहित्य की संपूर्ण विशेषता का इसमें आशा करना व्यर्थ ही है। निराला के जीवन और उसमें भी उनके साहित्यिक संघर्ष को इस अध्याय में जगह मिली है, अपेक्षाकृत संक्षिप्त रूप में। निराला साहित्य के प्रारम्भिक स्वरूप का विस्तार भी इसमें कम है। लेकिन संकेत रूप में लेखक ने सूर्यकान्त त्रिपाठी के 'निराला' में रूपान्तरण का जिक्र अवश्य कर दिया है। इस पाठ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें रामविलास शर्मा जी ने किसी रचनाकार के परिवेश से उसके व्यक्तित्व के विकास के अंतर्सम्बन्ध को बड़ी सूक्ष्मता से उद्घाटित किया है। लेखक की भाषा प्रवाहपूर्ण है। यह गद्य की समस्त विशेषताओं से युक्त है तथा अनावश्यक अलंकरण के भार से मुक्त भी है। कुल मिलाकर जीवनी साहित्य के रूप-विधान के प्रश्न से हटकर विचार करें तो यह रचना अपने लक्ष्य में सफल रही है।

**अभ्यास प्रश्न 2**

**(क) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए**

1. जीवनी विधा का संबंध आधुनिक काल से है। (सत्य/असत्य)
2. जीवनी लेखक के लिए चरित नायक का समकालीन होना आवश्यक है। (सत्य/असत्य)
3. 'भक्तमाल' रचना नाभादास की है। (सत्य/असत्य)
4. कार्तिक प्रसाद खत्री ने मीराबाई का जीवन चरित्र लिखा है। (सत्य/असत्य)
5. 'हरिश्चन्द्र' ग्रन्थ के रचनाकार शिवनंदन सहाय हैं। (सत्य/असत्य)

**(ख) सुमेलित कीजिए**

| क | ख |
|---|---|
| **रचना** | **रचनाकार** |
| 1. कार्लमार्क्स | जगदीशचन्द्र माथुर |
| 2. प्रेमचंद घर में | राहुल सांकृत्यायन |
| 3. निराला की साहित्य साधना | शोभाकान्त मिश्र |
| 4. आवारा मसीहा | शिवरानी देवी |
| 5. बाबू जी | विष्णु प्रभाकर |
| 6. जिन्होंने जीना जाना | रामविलास शर्मा |

## 13.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि –

- जीवनी विधा आधुनिक कालीन चेतना की उपज है। जीवनी विधा किसी महत्वपूर्ण, संघर्षशील चरित्र को सामाजिक गतिशीलता के बीच रखकर देखने का अनुशासनात्मक प्रयास है।
- रामविलास शर्मा हिंदी की प्रगतिशील, जनवादी परम्परा के शीर्षस्थ आलोचक हैं। रामविलास शर्मा जी का कृतित्व हिंदी साहित्य में परिमाण एवं गुणात्मक दोनों दृष्टियों से अनुकरणीय है।
- निराला का जीवन 'दुख ही जीवन की कथा रही' तो रहा ही है किन्तु इसी के साथ ही वह संघर्ष एवं विद्रोह का जीता-जागता स्वरूप भी है।
- निराला पर रामविलास शर्मा जी ने विस्तार से लिखने की बजाय विश्लेषात्मक ढंग से लिखा है। किसी रचनाकार का निर्माण उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ किस प्रकार करती हैं, निराला की जीवनी इसका अच्छा उदाहरण है।

## 13.7 शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| मातहत | - | अधीन, अंतर्गत |
| रहस्यवादी | - | परोक्ष सत्ता को मानने वाला |
| अस्थिरता | - | अनिश्चित स्थिति |
| उदासीन | - | काम के प्रति लापरवाह |
| ध्वंसात्मक | - | नष्ट करने का भाव |
| वज्रपात | - | बिजली गिरना, कठिन समय |
| जोत | - | लौ |

## 13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**अभ्यास प्रश्न 1**

(क) 1. 1897 ई.
2. रामविलास शर्मा
3. सरोज
4. महिषादल

5. रामविलास शर्मा

**अभ्यास प्रश्न 2**

(क) 1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

(ख) 1. राहुल सांकृत्यायन
2. शिवरानी देवी
3. रामविलास शर्मा
4. विष्णु प्रभाकर
5. शोभाकान्त मिश्र
6. जगदीशचन्द्र माथुर

## 13.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, रामविलास , निराला

2. तिवारी, रामचन्द्र , हिंदी का गद्य साहित्य

## 13.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, धीरेन्द्र (सं) – हिंदी साहित्यकोश I , ज्ञानमण्डल प्रकाशन
2. कोश, कविता – गूगल साइट

## 13.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. निराला के व्यक्तित्व पर निबंध लिखिए
2. रामविलास शर्मा के लेखन शैली पर प्रकाश डालिए

# इकाई 14 संस्मरण - पथ के साथी : परिचय,पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा


14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 संस्मरण साहित्य

14.3.1 संस्मरण साहित्य का इतिहास

14.3.2 संस्मरण साहित्य की विशेषता

14.4 संस्मरण और पथ के साथी

14.4.1 लेखिका परिचय

14.4.2 कृति परिचय

14.5 मूल पाठ

14.6 पाठ विश्लेषण

14.6.1 अंतर्वस्तु के धरातल पर

14.6.2 शिल्प के धरातल पर

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.12 निबंधात्मक प्रश्न


## 14.1 प्रस्तावना

यह प्रश्न पत्र विभिन्न गद्य विधाओं के परिचय, पाठ एवं आलोचना पर केंद्रित है। पूर्व में आपने अन्य गद्य विधाओं का अध्ययन किया। आपने इस क्रम में अध्ययन में जाना कि अन्य गद्य विधाओं का सम्बन्ध आधुनिक कालीन चेतना से है। आधुनिक युगीन चेतना को अभिव्यक्त करने के क्रम में जब पुरानी साहित्यिक विधाएँ अपर्याप्त सिद्ध होने लगीं तो नई साहित्यिक विधाओं का, विशेषकर गद्य विधाओं का जन्म हुआ। मानव जीवन दिन-प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है। जटिल

परिस्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्यिक विधाओं के स्वरूप में भी परिवर्तन आया। 'संस्मरण' विधा की उत्पत्ति इसी क्रम में है।

आधुनिक अन्य गद्य विधाओं में संस्मरण का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्मरण का संबंध स्मृति से है। संस्मरण में लेखक द्वारा अतीत की वह स्मृतियाँ रचना का अंग बनती हैं, जिसमें वह ऐसे व्यक्तित्व को याद करता है जो उसके जीवन के अभिन्न अंग रहे है और उसे प्रभावित किया हो। एक दृष्टि से देखा जाये तो संस्मरण विशिष्ट व्यक्तियों पर लेखक द्वारा स्मृतिचित्र है। जैसा कि संकेत किया गया कि संस्मरण विधा आधुनिक विधा है। विशेषकर इस विधा का संबंध 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों से है। राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिशील चेतना ने इस विधा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संस्मरण विधा के उन्नयन में महादेवी वर्मा का महत्वपूर्ण योगदान है। आलोच्य स्ंस्मरण 'पथ के साथी' पुस्तक से संबंधित है, जिसमें उन्होंने सुभद्राकुमारी चौहान के व्यक्तित्व को बड़ी ही आत्मीयतापूर्ण ढंग से स्मरण किया है।

## 14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- संस्मरण विधा की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- संस्मरण विधा के इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्मरण विधा में महादेवी वर्मा के योगदान को समझ सकेंगे।
- 'पथ के साथी' रचना की अंतर्वस्तु से परिचित हो सकेंगे।
- संस्मरण विधा की प्रमुख रचनाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्मरण के माध्यम से सामाजिक परिस्थितियों को समझ सकेंगे।

## 14.3 संस्मरण साहित्य

### 14.3.1 संस्मरण साहित्य का इतिहास

आपने अध्ययन किया कि संस्मरण विधा आधुनिक काल की देन है। संस्मरण विधा के स्तर पर आधुनिक काल की देन हैं, लेकिन हमें यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि संस्मरण में स्मृति आधार बिन्दु है और प्राचीन काल से हर देश व संस्कृति में पूज्य पुरूषों एवं महापुरूषों के कृत्यों को स्मृरित किया जा रहा है। यहाँ प्रश्न उठता है कि प्राचीन स्मृति ग्रंथ एवं संस्मरण में मूलभूत अंतर क्या है ? प्राचीन स्मृति ग्रंथों में श्रद्धा, चमत्कार एवं अतिप्राकृत घटनाओं की बहुतायत रहती थी, किन्तु

संस्मरण विधा में स्मृति-नायक को आत्मीय तटस्थता के साथ संस्मरणकार हमारे सामने प्रस्तुत करता है। एक के लिए श्रद्धा-स्तुति अनिवार्य है तो दूसरे के लिए तटस्थता-संपूर्णता। इसीलिए संस्मरण विधा को आधुनिक युग में आकर स्वीकृति मिली।

स्मरण विधा के इतिहास के संदर्भ में हम देखते हैं कि 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक से इसकी शुरूआत होती है। सन् 1928 के लगभग प्रकाशित पद्मसिंह शर्मा के 'पद्मपराग' से संस्मरण विधा का प्रारम्भ स्वीकार किया जाता है। किन्तु व्यापक रूप से इसे स्वीकृति बाद के दशक में मिली। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा विशेष उल्लेखनीय हैं। रेखाचित्र – संस्मरण विधा के संधि बिन्दु पर उनकी चार रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। अतीत के चलचित्र (1941 ई.), स्मृति की रेखाएँ (1943 ई.), पथ के साथी (1956 ई.) और 'मेरा परिवार' (1972 ई.)। इन रचनाओं में संस्मरण की दृष्टि से स्मृति की रेखाएँ तथा पथ के साथी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इसी क्रम में बनारसीदास चतुर्वेदी की हमारे आराध्य, संस्मरण (1952 ई.), शिवपूजन सहाय रचित वे दिन वे लोग (1946 ई.), माखनलाल चतुर्वेदी कृत समय के पाँव (1962 ई.), जगदीशचन्द्र माथुर कृत दस तस्वीरें (1963 ई.), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर रचित 'भूले हुए चेहरे' आदि रचनाएँ उल्लेख हैं। संस्मरण विधा की अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं –

- बच्चन निकट से (1968 ई.) अजित कुमार और ओंकार नाथ श्रीवास्तव
- गाँधी संस्मरण और विचार (1968 ई.) – काका कालेलकर
- संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ (1969 ई.) –रामधारी सिंह दिनकर
- व्यक्तित्व की झांकियाँ (1970 ई.) - लक्ष्मीनारायण सुधांशु
- अंतिम अध्याय (1972 ई.) – पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
- स्मृति की त्रिवेणिका (1974 ई.) – लक्ष्मी शंकर व्यास
- चंद संतरें और (1975 ई.) – अनीता राकेश
- मेरा हमदम मेरा दोस्त (1975 ई.) – कमलेश्वर
- रेखाएँ और संस्मरण (1975 ई.) – क्षेमचन्द्र सुमन
- मैंने स्मृति के दीप जलाये (1976 ई.) – रामनाथ सुमन
- स्मरण को पाथेय बनने दो (1978 ई.) – विष्णुकान्त शास्त्री
- अतीत के गर्त से (1979 ई.) – भगवतीचरण वर्मा
- श्रद्धांजलि संस्मरण (1979 ई.) – मैथिलीशरण गुप्त
- पुन: (1979 ई.) – सुलोचना रांगेय राघव

- यादों की तीर्थयात्रा (1981 ई.) – विष्णु प्रभाकर
- औरों के बहाने (1981 ई.) – राजेन्द्र यादव
- जिनके साथ जिया (1981 ई.) – अमृतलाल नागर
- सृजन का सुख-दुख (1981 ई.) – प्रतिभा अग्रवाल
- युगपुरूष (1983 ई.) – रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
- दीवान खाना (1984 ई.) – पद्मा सचदेव
- स्मृति लेखा (1986 ई.) – अज्ञेय
- हजारी प्रसाद द्विवेदी कुछ संस्मरण (1988 ई.) – कमल किशोर गोयनका
- भारतभूषण अग्रवाल : कुछ यादें कुछ चर्चाएँ (1989 ई.) – बिन्दु अग्रवाल
- हम हशमत (1977 ई.) – कृष्ण सोबती
- आदमी से आदमी तक (1982 ई.) – भीमसेन त्यागी।

### 14.3.2 संस्मरण साहित्य की विशेषता

संस्मरण साहित्य पर टिप्पणी करते हुए डा. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है, "संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है जो महत्, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। संस्मरण में विषय और विषय दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिए इसमें स्मरणकर्ता पूर्णत: तटस्थ नहीं रह पाता। वह अपने 'स्व' का पुन: सर्जन करता है।" (हिंदी का गद्य-साहित्य, पृष्ठ 297) कहने का अर्थ यह हैं कि लेखक किसी व्यक्तिव की स्मृति को शब्दों के माध्यम से पुन: जीने की कोशिश करता है तो संस्मरण विधा की उत्पत्ति होती है। विधा के स्तर पर रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा से संस्मरण का निकट का संबंध है। लेकिन संस्मरण विधा की अपनी निजी कुछ विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य विधाओं से अलग करती हैं। जीवनी में भी किसी का जीवन केन्द्र में होता है। जीवनी और संस्मरण में भी, लेकिन दोनों में अंतर है। जीवनी जहाँ चरित नायक के जीवन के संपूर्ण पक्ष पर आधारित होती है वहीं संस्मरण सीमित जीवन पर जीवनी की हर घटना में लेखक की सहभागिता अनिवार्य नहीं है लेकिन संस्मरण की प्रत्येक घटना लेखक द्वारा अनुभूत व संवेदित होनी अनिवार्य है। इस दृष्टि से संस्मरण में अंतरंगता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संस्मरणकार किसी व्यकित की जीवनी तथ्य-ब्यौरे के आधार पर भी लिख सकता है लेकिन संस्मरण तब तक नहीं लिखे जा सकते जब तक कि लेखक का स्मर्यमाण व्यक्ति से अंतरंग संबंध न हो। यहाँ तक कि रेखाचित्र के लिए भी अंतरंगता उतनी अनिवार्य नहीं है जितनी संस्मरण लेखक के लिए। किसी

पागल को सड़क पर देखकर रेखाचित्र तो लिखा जा सकता है, लेकिन संस्मरण नहीं। लेखक किसी व्यक्ति से जब तक हार्दिक रूप से किसी व्यक्तित्व से नहीं जुड़ता तब तक वह उस व्यक्ति के आन्तरिक व्यक्तित्व का न तो चित्रण कर सकता है और न ही मूल्यांकन। संस्मरण उसी व्यक्ति पर लिखा जा सकता है जिस व्यक्ति से लेखक का घन्टिष्ठ संबंध है। संस्मरण का नायक इसके केन्द्र में होता है। लेकिन जीवनी विधा की तरह केवल नायक ही इसकी रचना के केन्द्र में नहीं होता बल्कि इसमें लेखक की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। संस्मरण लेखक और नायक के संबंध, लगाव व हार्दिकता से जुड़ी रचना है। एक तरह से यह रचना लेखक की दृष्टि में स्मर्यमाण व्यक्ति का चरित्रांकन है, इसलिए इसमें विषय और विषयी दोनों का महत्व होता है। संस्मरण के लिए अतीत अनिवार्य है। इसलिए इसमें 'स्मृति' का बहुत महत्व है। लेखक अतीत की घटनाओं को अपनी स्मृति के माध्यम से पुन: जीवंत करता, इस क्रम में काल एवं स्मृति का कुशल संयोजन संस्मरण की विशेषता है। संस्मरण में चूँकि वही घटनाएँ स्थान पाती हैं इसलिए इसमें सघनता का गुण पाया जाता है। अतीत की स्मृति में वही चीजें स्थायी हो पाती हैं, जो अति-महत्वपूर्ण होती हैं। अत: इस दृष्टि से संस्मरण अतीत की स्मृति का सृजनात्मक प्रयास है। अतीत की स्मृति महत्वपूर्ण होकर भी लेखक का ध्येय नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण है वह रचनात्मक प्रयास जो पाठक को दिशा दे सके या प्रभावित कर सके। संस्मरण के संदर्भ में यह प्रश्न हमेशा उठाया जाता है कि संस्मरण क्यों लिखा जाता है या संस्मरण लेखन के उद्देश्य क्या हैं ? संस्मरण विधा अन्य सृजनात्मक विधाओं की ही तरह मानवीय जरूरतों की पूर्ति का एक 'स्मृति-प्रयास' है। संस्मरण तब ज्यादा लिखे जाते हैं जब सृजनात्मक व्यक्तित्व का अधिकता किसी समाज में ज्यादा हो। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में या राष्ट्रीय आन्दोलन की ऊर्जा से निर्मित व्यक्तित्व ही हिंदी संस्मरण विधा में रचना का केन्द्र बने हैं। इससे स्पष्ट है कि संस्मरण के केन्द्र में व्यक्तित्व निर्माण का प्रयास आधारभूत रूप में है। लेकिन जीवनी की तरह यह सामाजिक प्रेरणा के वशीभूत होकर ही नहीं रचित होता। इस विधा में संस्मरण नायक का संस्मरणकार के ऊपर पड़े प्रभाव की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक तरह से यह बर्हिमुखी और आत्ममुखी दोनों गुणों से युक्त विधा है।

**अभ्यास प्रश्न**

**निर्देश : (1) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए**

1. महादेवी वर्मा का जन्म....................वर्ष में हुआ।
2. महादेवी वर्मा को..................कृति पर ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला।
3. महादेवी वर्मा मुख्यत: .................हैं।
4. पथ के साथी का प्रकाशन वर्ष.............है।
5. संस्मरण विधा के प्रारंभिक लेखक .....................हैं।

**(2) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।**

1. महादेवी वर्मा के संस्मरण और रेखाचित्र एक दूसरे के बहुत निकट हैं।
2. मेरा हमदम मेरा दोस्त की रचना है।
3. स्मृति लेखा अज्ञेय की रचना है।
4. संस्मरण विधा वर्तमान पर आधारित विधा है।
5. संस्मरण के लिए लेखक का नायक से साहर्चय अनिवार्य है।

**(3) सुमेलित कीजिए**

| **रचना** | **रचनाकार** |
|---|---|
| स्मृति की रेखाएँ | विष्णुकांत शास्त्री |
| पद्मपराग | बनारसीदास चतुर्वेदी |
| संस्मरण | महादेवी वर्मा |
| वे दिन वे लोग | पद्मसिंह शर्मा |
| औरों के बहाने | शिवपूजन सहाय |
| स्मरण को पाथेय बनने दो | राजेन्द्र यादव |

## 14.4 संस्मरण और पथ के साथी

### 14.4.1 लेखिका परिचय

छायावाद चतुष्टय के नाम से प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा प्रसिद्ध हैं। महादेवी वर्मा काव्यमय व्यक्तित्व से सम्पन्न थी। वे जीवन की कृत्रिमताओं से मुक्त उन्मुक्त हंसनेवाली एवं शुभ व उज्ज्वल नारी थी।

26 मार्च 1907 को होली के शुभ दिन पर उत्तरप्रदेश के फरूखाबाद जिले में महादेवी वर्मा का जन्म हुआ था। इनका परिवार सुसम्पन्न व सुशिक्षित था लेकिन इस परिवार में लगभग सात पीढ़ियों तक कन्याएं जन्म के साथ मार-डाली जाती थी। दो सौ सालों के बाद कन्या के रूप में इनका जन्म हुआ था अतः इनके बाबू बांके बिहारी जी ने नाम महोदवी (घर की देवी) रख दिया। महादेवी वर्मा ने स्वयं इसका उल्लेख किया है ‘‘जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया वैसे ही घर एक कोने से दूसरे कोने तक एक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। ‘‘महोदेवी वर्मा के हृदय में बचपन से ही जीवमात्र के प्रति दया थी, करूणा भावना थी। उनके रेखाचित्रों से बाल्य जीवन की झांकिया मिल जाती है। अतीत के चलचित्र के पहले तीन संस्मरणों में ‘रामा‘, ‘भाभी‘ तथा ‘बिन्दा‘

का सम्बन्ध इनके बाल्यजीवन से है। महादेवी वर्मा की शादी बचपन में मात्र 9 वर्ष की अवस्था में कर दी गई थी। परन्तु इन्होंने अपनी पढ़ाई 1932 तक जारी रखी और प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. संस्कृत विषय में उत्तीर्ण किया। बाद में प्रधानाचार्य के रूप में शिक्षा क्षेत्र की सेवा में लग गईं।

होली के दिन जन्मी महादेवी का व्यक्तित्व होली की विविधता और रंगमयता से भरा था। इनके व्यक्तित्व में संवेदना, दृढ़ता व आक्रोश का अद्भुत संतुलन मिलता है। वे विदुषी, अध्यापिका, कवि, गद्यकार, चित्रकार, कलाकार व समाजसेवी के रूप में हमारे सामने आती हैं। अध्ययनशील व संवेदनशील मनोवृत्ति, सफाई व स्वच्छता प्रिय, गंभीरता व धैर्य इनमें विशिष्ट गुण थे।

महादेवी वर्मा 1952 को उत्तर प्रदेश की विधान परिषद की सदस्य मनोनीत की गई। महादेवी को कई पुरस्कार व सम्मान से नवाजा गई। महादेवी की रचनाएं आरम्भ काल से अर्थात् 1930 से 1975 तक साहित्य जगत को आकर्षित करती रहीं। भारत सरकार द्वारा इन्हें मरणोपरांत ‘पद्य विभूषण‘ उपाधि से अलंकृत किया गया। महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य जगत की प्रसिद्ध कवयित्री और उल्लेखनीय गद्य लेखिका थीं। उन्हें नीरजा कृति पर 1933 में सेकसरिया पुरस्कार मिला। 1944 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने ‘मंगलाप्रसाद‘ पुरस्कार और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ‘विशिष्ट साहित्य पुरस्कार‘ सन् 1973 को प्रदान कर इनकी सेवाओं को सम्मानित किया गया। 1969 में विक्रम विश्वविद्यालय और 1980 को दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट. की उपाधि दी गई। 1982 में लखनऊ के हिन्दी संस्थान द्वारा ‘भारत-भारती‘ पुरस्कार प्रदान किया गया। 1983 को उनके काव्य संग्रह ‘यामा‘ और ‘दीपशिखा‘ के लिए भारतीय ज्ञानपीठ ने अपने पुरस्कार से वर्मा जी का सम्मान किया। 11 सितम्बर 1987 को महादेवी का निधन हुआ था।

परिग्रही जीवन को अस्वीकार करके इन्होंने अपना कोई सीमित परिवार नहीं बनाया, पर इनका अपना विशाल परिवार व उनका पोषण सब के वश की बात नहीं है। गायें, हिरण, गिलहरी, बिल्लियां, खरगोश, मोर, कबूतर तो इनके चिरसंगी रहे। वृक्ष, पुष्प, लताएं इनकी ममता के आगोश में पले-बढ़े थे। परिवार के नौकर पारिवारिक सदस्य ही थे।महादेवी वर्मा जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का परिचय सुमद्रा कुमारी चौहान, कृष्णा, हरिसिंह (जवाहरलाल नेहरू की बहन), सुमित्रानन्दन पंत, निराला, गोपीकृष्ण गोपेश, महात्मा गांधी जैसी विभूतियों से था। बचपन से ही महादेवी वर्मा जी का स्वभाव रहा कि इन्होंने अपने जीवन-विकास के लिए जो उचित और उपयुक्त समझा सो किया, हठ और भीषण विद्रोह के साथ किया। प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षुणी बनने की इच्छा ने शायद इनको पारिवारिक जीवन व गृहस्थ से दूर रहने की प्रेरणा दी होगी। व्यक्तित्व में करूणा का अंश और भीतर के द्वन्द्व का समन्वय करने में सफलता इसीलिए प्राप्त हुई। महादेवी वर्मा अत्यन्त सरल व विनम्र, गंभीर व महान हृदया थी।

जीवन और साहित्य के पट में इतने विभिन्न रंगी सूत्रों का सम्मिलन बहुत ही विरल होता है। रहस्यवादी कवि, यथार्थवादी गद्यकार, समन्वयवादी समालोचक होने के साथ ही वे अद्वितीय

रेखाचित्रकार, संस्मरण लेखिका, सामाजिक एवं ललित निबंधकार, उच्चकोटि की चित्र कर्त्री और प्रबुध समाज सेविका तथा राष्ट्रीय संस्कृति की संरक्षिका थीं। इनके रचनात्मक कार्यों के प्रतीक प्रयाग महिला विद्यापीठ और साहित्यकार संसद के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्थायें और पाठशालाएँ हैं। विशेषता यह है कि इन सभी क्षेत्रों में इनके व्यक्तिव की अखण्डता सर्वथा अक्षुण्ण है।

**कृतित्व**

विद्यार्थी जीवन में ही महोदेवी वर्मा ने कविताएं लिखनी शुरू कर दी थी। प्रारम्भिक कविताएं छन्दबद्ध थीं और 'रोला', 'हरिगीतिका' छन्द में लिखी गई। महादेवी वर्मा की काव्य कृतियां नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1935), सांध्यगीत (1936), दीपशिखा (1942), सप्तपर्णा (अनुदित)(1966), हिमालय (1963), अग्निरेखा (1980) है। महादेवी का प्रथम काव्य संग्रह नीहार है। नीहार में जीवन संसार की नश्वरता, वेदना व करूणा में खो जाने की इच्छा है। 'रश्मि' कविता संकलन में कवयित्री ने अतृप्ति, अभाव और दुख आदि को मनुष्य के जीनव का मौलिक सत्य माना है। सांध्यगीत में उनकी कविताओं में उपासना का भाव है। विरह का अभिशाप वरदान के रूप में है और विरह व अभाव आनन्द देने वाला है। दीपशिखा महादेवी के चित्रमय काव्य का मूर्त रूप है। इन गीतों में उनके निर्भय व स्वाभिमानी भावना का परिचय मिलता है जैसे ''पंथ होने दो अपरिचित, प्राण, रहने दो अकेला''- इसी तरह ''तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देखलूं उस पार क्या है?'' 'सप्तपर्णा' संकलन संस्कृति और पाली भाषा के साहित्य के कुछ चुने हुए अशों का अनुवाद है। 'अग्निरेखा में' दीपक को प्रतीक मानकर रचना की गई है।

**बाल कविताएं -**

बाल कविताओं के दो संग्रह छपे हैं (क) ठाकुर जी भोले हैं (ख) आज खरीदेंगे हम ज्वाला। ठाकुर जी बोले है संग्रह बच्चों के भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है -

ठण्डा पानी से नहलाती

ठण्डा चन्दन इन्हें लगाती

इनका भोग हमें दे जाती

फिर भी कभी नहीं बोलें है

माँ के ठाकुर जी भोले हैं।

**महादेवी की गद्य कृतियां** :-

अतीत के चलचित्र (1941), श्रृंखला की कड़ियां (1942), स्मृति की रेखाएं (रेखा चित्र)(1943), पथ के साथी (संस्मरण)(1956), क्षणदा (निबन्ध)(1956), साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध (1960), संकल्पिता (आलोचना)(1963), मेरा परिवार (पशु-पक्षी संस्मरण)(1971) और चिन्तक के क्षण (1986) आदि महादेवी वर्मा द्वारा रचित गद्य रचनाएं हैं।

### 14.4.2 कृति परिचय

महादेवी वर्मा के संस्मरण की प्रसिद्ध पुस्तक 'पथ के साथी' का प्रकाशन 1956 ईसवी में हुआ था। 'पथ के साथी' में महादेवी वर्मा ने अपने साथी साहित्यकारों की सृजन यात्रा का स्मरण किया है। पथ के साथी में महादेवी वर्मा ने सबसे पहले रवीन्द्रनाथ टैगोर को स्मरण किया है। इसी कम में बाद में उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और सियारामशरण गुप्त को स्मरण किया है। पथ के साथी में महादेवी वर्मा ने जिस कलात्मकता, संयम एवं गतिशीलता में अपने साथी साहित्यकारों को स्मरण किया है वह अद्भुत है। डा. रामचन्द्र तिवारी ने इस रचना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है – "महादेवी ने उन स्मृति-संदर्भों को सँजोकर जिनमें उनके अग्रज और छवियाँ अंकित की हैं वे अपनी संश्लिष्टता में अन्यतम हैं। बाहत आकार-प्रकार, उनमें लक्षित होने वाली जीवन-संघर्ष, जीवन-संघर्ष की तीव्रता के सामाजिक कारण और सामाजिक दबाव के कारण व्यक्तित्व में उभरने वाली मानसिक असंगतियाँ यह सब दबे-उभरे रूप में साकार हो गये हैं। यही नहीं महादेवी ने अपने पथ के साथियों के साहित्य में उनके व्यक्तित्व की असंगतियों का सामन्जस्य भी ढूँढ़ने की चेष्टा की है और वे प्राय: सफल रही हैं। इससे उनकी तलस्पर्शी दृष्टि और मनोवृत्ति विश्लेषिणी प्रज्ञा का परिचय मिलता है। महादेवी की चित्र-व्यन्जना का चरम विकास 'पथ के साथी' में लक्षित होता है।

## 14.5 मूल पाठ

हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय-प्रवाह का पाठ ज्यों-ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों-त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं। पर जिनसे ऐसा संबंध नहीं होता वे फीके होते-होते इस प्रकार स्मृति से धुल जाते हैं कि दूसरों के स्मरण दिलाने पर भी उनका स्मरण कठिन हो जाता है।

मेरे अतीत की चित्रशाला में बहिन सुभद्रा से मेरे सख्य का चित्र, पहली कोटि में ही रखा जा सकता है, क्योंकि इतने वर्षों के उपरान्त भी उनकी सब रंग-रेखायें अपनी सजीवता में स्पष्ट हैं।

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, क्या तुम कविता लिखती हो? दूसरी ने सिर हिला कर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं तरल हो

कर एक हो गये थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति-अस्वीकृति की संधि से खीझ कर कहा, 'तुम्हारी क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो! दिखाओं अपनी कापी' और उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर वह कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़ कर खींचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गई। नित्य व्यवहार में अपने वाली गणित की कापी को छिपाना संभव नहीं था, अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़ कर बैठी हुई तुकबंदियाँ अनायास पकड़ में आ गई। इतना दंड ही पर्याप्त था। पर इससे संतुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक हाथ में वह चित्र-विचित्र कापी थामी और दूसरे में अभियुक्ता की उँगलियाँ कस कर पकड़ी और वह हर कमरे में जा-जाकर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी।

उस युग में कविता रचना अपराधों की सूची में थी। कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनने वालों के मुख की रेखायें इस प्रकार वक्रकुंचित हो जाती थीं मानों उन्हें कोई कटु-तिक्त पेय पीना पड़ता हो।

ऐसी स्थिति में गणित जैसे गंभीर महत्वपूर्ण विषय के लिए निश्चित पृष्ठों पर तुक जोड़ना अक्षम्य अपराध था। इससे बढ़कर कागज का दुरूपयोग और विषय का निरादर और हो ही क्या सकता था। फिर जिस विद्यार्थी की बुद्धि अंकों के बीहड़ वन में पग-पग पर उलझती है उससे तो गुरू यही आशा रखता है कि वह हर साँस को अंक जोड़ने-घटाने की क्रिया बना रहा होगा। यदि वह सारी धरती को कागज बना कर प्रश्नों को हल करने के प्रयास से नहीं भर सकता तो उसे कम से कम सौ-पचास पृष्ठ, सही न सही तो गलत प्रश्न-उत्तरों से भर लेना चाहिए। तब उसकी भ्रान्त बुद्धि को प्रकृतिदत्त मान कर उसे क्षमा दान का पात्र समझा जा सकता है, पर जो तुकबन्दी जैसे कार्य से बुद्धि की धार गोंठिल कर रहा है वह तो पूरी शक्ति से दुर्बल होने की मूर्खता करता है, अतः उसके लिए न सहानुभूति का प्रश्न उठता है न क्षमा का।

मैंने होंठ भींच कर न रोने का जो निश्चय किया वह टूटा तो न टूटा। अन्त में मुझे शक्ति परीक्षा में उत्तीर्ण देख सुभद्रा जी ने उत्फुल्ल भाव से कहा, 'अच्छी तो लिखती हो। भला सवाल हल करने में एक दो तीन जोड़ लेना कोई बड़ा काम है! 'मेरी चोट अभी दुख रही थी, परन्तु उनकी सहानुभूति और आत्मीय भाव का परिचय पाकर आँखे सजल हो आई 'तुमने सब को क्यों बताया? का सहास उत्तर मिला 'हमें भी तो यह सहना पड़ता है। अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए।'

बहिन सुभद्रा का चित्र बनना कुछ सहज नहीं है क्योंकि चित्र की साधारण जान पड़ने वाली प्रत्येक रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ति 'संचारिणी दीपशिखेव' बनकर उसे असाधारण कर देती है। एक-एक कर के देखने से कुछ भी विशेष नहीं कहा जाएगा, परन्तु सब की समग्रता में जो उद्भासित होता था, उसे दृष्टि से अधिक हृदय ग्रहण करता था।

मझोले कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखे, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़ता सूचक ठुड्ढी.......सब कुछ मिला कर एक अत्यन्त निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे। पर उस व्यक्तित्व के भीतर जो बिजली का छन्द था, उसका पता तो तब मिलता था, जब उनके और उनके निश्चित लक्ष्य के बीच में कोई बाधा आ उपस्थित होती थी। 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना' कहने वाली की हँसी निश्चय ही असाधारण थी। माता की गोद में दूध पीता बालक जब अचानक हँस पड़ता है, तब उसकी दूध से धुली हँसी जैसी निश्चिन्त तृप्ति और सरल विश्वास रहता है, बहुत कुछ वैसा ही भाव सुभद्रा जी की हँसी में मिलता था। वह संक्रामक भी कम नहीं थी क्योंकि दूसरे भी उनके सामने बात करने से अधिक हँसने को महत्व देने लगते थे।

वे अपने बचपन की एक घटना सुनाती थीं। कृष्ण और गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बन कर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूँढ़ने जायेगी।

दूसरे दिन वह लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गई । गोधूली वेला में चरवाहे और गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई। उसके पैरों में काँटे चुभ गए, कँटीली झाड़ियों में कपड़े उलझा कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने को प्रस्तुत नहीं हुई। रात होते देख घर वालों ने उन्हें खोजना आरम्भ किया और ग्वालों से पूछते-पूछते अँधेरे करील-वन में उन्हें पाया।

अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब-कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था। क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थीं, तभी उनका विवाह हुआ और उन्होंने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया। स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं और उनके पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुतः जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी। और उन्होंने बसाई भी वहीं। पर इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर के मंगल चौक पर रखे मंगल कलश, तुलसी चौरे पर जलते हुए घी के दीपक और हर कोने से स्नेहभरी बाहें फैलाए हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अंधकार, आँधी और तूफान को तौला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुन्दर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अँधेरे रास्ते पर काँटों से उलझती चल पड़ी हो। उन्होंने हँसते-हँसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें इतनी अधिक फूल-मालायें मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं और लेटकर पुष्पशैय्या के सुख का अनुभव करती थी।

एक बार भाई लक्ष्मणसिंह जी ने मुझसे सुभद्रा जी की स्नेहभरी शिकायत की, 'इन्होंने मुझ से कभी माँगने का अधिकार माँग लिया था महादेवी! यह ऐसे ही होशियार हैं, माँगती तो वचन-भंग का दोष मेरे सर पड़ता, नहीं माँगा तो इनके अहंकार को ठेस लगती है।'

घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरंभ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं। यही सोचकर विस्मय होता है। कारागार में जो सम्पन्न परिवारों की सत्याग्रही मातायें थीं, उनके बच्चों के लिए बाहर से न जाने कितना मेवा-मिष्ठान आता रहता था। सुभद्रा जी की आर्थिक परिस्थितियों में जेल-जीवन का एक और क्लास समान ही था। एक बार जब भूख से रोती बालिका को बहलाने के लिए कुछ नहीं मिल सका तब उन्होंने अरहर दलने वाली महिला-कैदियों से थोड़ी-सी अरहर की दाल ली और उसे तवे पर भून कर बालिका को खिलाया। घर आने पर भी उनकी दशा द्रोणाचार्य जैसी हो जाती थी, जिन्हें दूध के लिए मचलते हुए बालक अश्वत्थामा को चावल के घोल से सफेद पानी देकर बहलाना पड़ा था! पर इन परीक्षाओं से उनका मन न कभी हारा न उसने परिस्थितियाँ को अनुकूल बनाने की लिए कोई समझौता स्वीकार किया।

उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रंथि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठ कर वे कोमल और ओज भरे छंद लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे पाथती थीं। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थीं। आँगन लिपने की कला में मेरा भी कुछ प्रवेश था, अतः प्रायः हम दोनों प्रतियोगिता के लिए आँगन के भिन्न-भिन्न छोरों से लीपना आरम्भ करते थे। लीपने में हमें अपने से बड़ा कोई विशेषज्ञ मध्यस्थ नहीं प्राप्त हो सका, अत: प्रतियोगिता का परिणाम सदा अघोषित ही रह गया पर आज मैं स्वीकार करती हूँ कि ऐसे कार्य में एकान्त तन्मयता केवल उसी गृहणी में संभव है जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थीं। उस छोटे से अधबने घर की छोटी-सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संगृहीत किया। छोटे-बड़े पेड़, रंग-बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियाँ, ऋतु के अनुसार तरकारियाँ, गाय, बच्छे आदि-आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी। अपने इस आकार में छोटे साम्राज्य को उन्होंने अपनी ममता के जादू से इतना विशाल बना रखा था कि उसके द्वार पर न कोई अनाहूत रहा और न निराश लौटा। जिन संघर्षों के बीच से उन्हें मार्ग बनाना पड़ा वे किसी भी व्यक्ति को अनुदार और कटु बनाने में समर्थ थे। पर सुभद्रा के भीतर बैठी सृजनशील नारी जानती थी कि काँटो का स्थान जब चरणों के नीचे रहता है तभी वे टूट कर दूसरों को बेचने की शक्ति खोते हैं। परीक्षायें जब मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को क्षत-विक्षत कर डालती हैं तब उनमें उत्तीर्ण होने-न-होने का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

नारी के हृदय में जो गंभीर ममता-सजल वीर-भाव उत्पन्न होता है वह पुरूष के उग्र शौर्य से अधिक उदात्त और दिव्य रहता है। पुरूष अपने व्यक्तित्व या समूहगत रागद्वेष के लिए भी वीर धर्म के

लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए रूद्र बनती है। अतः उसकी वीरता के समकक्ष ही भीमाकृति चंडी,वत्सला अम्बा भी है, जो हिंसात्मक पाशविक शक्तियों को चरणों के नीचे दबारक अपनी सृष्टि के मंगल की साधना करती है।

सुभद्रा जो महिमामयी माँ थी, उसकी वीरता का उत्स भी वात्सल्य ही कहा जा सकता है। न उनका जीवन किसी क्षणिक उत्तेजना से संचालित हुआ न उनकी ओज भरी कविता वीर-रस की घिसी-पिटी लीक पर चली। उनके जीवन में जो एक निरन्तर निखरता हुआ कर्म का तारतम्य है वह ऐसी अंतर-व्यापिनी निष्ठा से जुड़ा है जो क्षणिक उत्तेजना का दान नहीं मानी जा सकती। इसी से जहॉ दूसरों को यात्रा का अन्त दिखाई दिया वहीं उन्हें नई मंजिल का बोध हुआ।

थक पर बैठने वाला अपने न चलने की सफाई खोजते-खोजते लक्ष्य पा लेने की कल्पना कर सकता है, पर चलने वाले को इसका अवकाश कहाँ!

जीवन के प्रति ममता भरा विश्वास ही उनके काव्य का प्राण है:

सुख भरे सुनहले बादल
रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास प्रेम साहस हैं।
जीवन के साथी मेरे।

मधुमक्षिका जैसे कमल से लेकर भटकटैया तक और रसाल से लेकर आक तक, सब मधुर तिक्त एकत्र करके उसे अपनी शक्ति से एक मधु बनाकर लौटती, बहुत कुछ वैसा ही आदान-सम्प्रदान सुभद्रा जी का था। सभी कोमल-कठिन, साह्य-असह्य अनुभवों का परिपाक दूसरों के लिए एक ही होता था। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनमें विवेचन की तीक्ष्ण दृष्टि का अभाव था। उनकी कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार किया और कभी अपने निष्कर्ष के साथ और कभी दूसरों के निष्कर्ष के लिए उन्हें बड़े चमत्कारिक ढंग से उपस्थित किया।

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतंत्र नहीं माना जाता था तब वे कहती हैं, 'मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है। फिर चाहे वह स्त्री-शरीर के अन्दर निवास करती हो चाहे पुरूष-शरीर के अन्दर। इसी से पुरूष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग रहता है।' जब समाज और परिवार की सत्ता के विरूद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था तब वे कहती हैं, 'समाज और परिवार व्यक्ति को बन्धन में बाँधकर रखते हैं। ये बन्धन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुँचाने लगते हैं। बन्धन कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न नियत किए गये हों, हैं बंध नही, और जहाँ बन्धन है वहाँ असन्तोष है तथा क्रान्ति हैं।'

परंपरा का पालन ही जब स्त्री का परम कर्त्तव्य समझा जाता था तब वे उसे तोड़ने की भूमिका बाँधती है, 'चिर-प्रचलित रूढ़ियों और चिर-संचित विश्वासों को आघात पहुँचाने वाली हलचलों को हम देखना-सुनना नहीं चाहते। हम ऐसी हलचलों को अधर्म समझ कर उनके प्रति आँख मींच लेना उचित समझते हैं, किन्तु ऐसा करने से काम नहीं चलता। वह हलचल और क्रांति हमें बरबस झकझोरती है और बिना होश में लाये नहीं छोड़ती।'

अनेक समस्याओं की ओर उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कही सरल कहानी का अंत भी हमें झकझोर डालता है।

वे राजनीतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रहीं, अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतार कर उसे सृजन का रूप दिया था।

सुभद्रा जी के अध्ययन का क्रम असमय ही भंग हो जाने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा तो नहीं मिल सकी, पर अनुभव की पुस्तक से उन्होंने जो सीखा उनकी प्रतिभा ने सर्वथा निजी विशेषता दे दी है।

भाषा,भाव,छंद की दृष्टि से नये, 'झांसी की रानी' जैसे वीर-गीत तथा सरल स्पष्टता में मधुर प्रगीत मुक्त, यथार्थवादी मार्मिक कहानियाँ आदि उनकी मौलिक प्रतिभा के ही सृजन हैं।

ऐसी प्रतिभा व्यावहारिक जीवन को अछूता छोड़ देती तो आश्चर्य की बात होती।

पत्नी की अनुगामिनी, अर्धांगिनी आदि विशेषताओं को अस्वीकार कर उन्होंने भाई लक्ष्मणसिंह जी को पत्नी के रूप में ऐसा अभिन्न मित्र दिया जिसकी बुद्धि और शक्ति पर निर्भर रह कर अनुगमन किया जा सके।

अजगर की कुंडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कस चर-चर कर देने वाले अनेक सामाजिक बंधनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन आज संभव नहीं है।

उस समय बच्चों के लालन-पालन में मनोविज्ञान को इतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला था और प्रायः सभी माता-पिता बच्चों को शिष्टता सिखाने में स्वयं अशिष्टता की सीमा तक पहुँच जाते थे। सुभद्रा जी का कवि-हृदय यह विधान कैसे स्वीकार कर सकता था! अतः उनके बच्चों को विकास का जो मुक्त वातावरण मिला उसे देख कर सब समझदार निराशा से सिर हिलाने लगे। पर जिस प्रकार यह सत्य है कि सुभद्रा जी ने अपने किसी बच्चे को उसकी इच्छा के विरूद्ध कुछ करने के लिए बाध्य नहीं किया, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि किसी बच्चे ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिससे उसकी महीयसी माँ को किंचित् भी क्षुब्ध होने का कारण मिला हो। उनके वात्सल्य का विधान ऐसा ही अलिखित और अटूट था।

अपनी संतान के भविष्य को सुखमय बनाने के लिए उनके निकट कोई भी त्याग अकरणीय नहीं रहा। पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा।

उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं, जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूक-भाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरूद्ध उन्होंने घोषणा की, 'मैं कन्यादान नहीं करूँगी। क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकारी है ? क्या विवाह के उपरांत मेरी बेटी नहीं रहेगी ? उस समय तक किसी ने, और विशेषतः किसी स्त्री ने, ऐसी विचित्र और परंपरा-विरूद्ध बात नहीं कही थीं।

देश की जिस स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपने जीवन के वासंती सपने अँगारों पर रख दिए थे, उसकी प्राप्ति के उपरांत भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखाई दी जब उन्होंने अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया। उनक उग्रता का अंतिम परिचय तो विश्ववन्द्य बापू की अस्थिविसर्जन के दिन प्राप्त हुआ। वे कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ-साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँची। पर अन्य सम्पन्न परिवारों की सदस्यायें मोटरों पर ही जा सकीं। जब अस्थिप्रवाह के उपरांत संयोजित सभा के घेरे में इन पैदल आने वालों को स्थान नहीं दिया गया तब सुभद्रा जी का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था । उनका क्षात्रधर्म तो किसी प्रकार के अन्याय के प्रति क्षमाशील हो नहीं सकता था। जब उन हरिजनों को उनका प्राप्य दिला सकीं तभी वे स्वयं सभा में सम्मिलित हुई।

सातवीं और पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनियों के सख्य को सुभद्रा जी के सरल स्नेह ने ऐसी अमिट लक्ष्मण-रेखा से घेर कर सुरक्षित रखा कि समय उस पर कोई रेखा नहीं खींच सका। अपने भाई-बहनों में सबसे बड़ी होने के कारण मैं अनायास ही सब की देखरेख और चिंता की अधिकारिणी, बन गई थी। परिवार में जो मुझसे बड़े थे उन्होंने भी मुझे ब्रह्मसूत्र की मोटी पोथी में आँखे गड़ाये देखकर अपनी चिंता की परिधि से बाहर समझ लिया था। पर केवल सुभद्रा पर न मेरी मोटी पोथियों का प्रभाव पड़ा न मेरी समझदारी का। अपने व्यक्तिगत संबंधों में हम कभी कुतूहली बाल-भाव से मुक्त नहीं हो सके। सुभद्रा के मेरे घर आने पर भक्तिन तक मुझ पर रौब जमाने लगती थी। क्लास में पहुँच कर वह उनके आगमन की सूचना इतने ऊँचे स्वर में इस प्रकार देती कि मेरी स्थिति ही विचित्र हो जाती 'ऊ सहोदरा विचरि अऊ तो इनका देखै बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी हैं। अउर इनका कितबियन से फुरसत नाहिन बा'। एम0ए0, बी0ए0 के विद्यार्थियों के सामने जब एक देहातिन बुढ़िया गुरू पर कर्त्तव्य-उल्लंघन का ऐसा आरोप लगाने लगे तो बेचारे गुरू की सारी प्रतिष्ठा किरकिरी हो सकती थी। पर इस अनाचार को, रोकने का कोई उपाय नहीं था। सुभद्रा जी के सामने न भक्तिन को डाँटना संभव था न उसके कथन की अपेक्षा करना। बँगले में आकर देखती कि सुभद्रा जी रसोई घर में या बरामदे में भानमती का पिटारा खोले बैठी हैं और उसमें से अद्भुत

वस्तुएँ निकल रही हैं। छोटी-छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेलन, चुटीली, नीली सुनहरी चूड़ियाँ आदि-आदि सब कुछ मेरे लिए आया है, इस पर कौन विश्वास करेगा! पर वह आत्मीय उपहार मेरे निमित्त ही आता था।

ऐसे भी अवसर आ जाते थे जब वे किसी कवि-सम्मेलन में आते-जाते प्रयाग उतर नहीं पाती थीं और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियाँ होती ही रहती थीं। वे अपने थैले से दो चमकीली चूड़ियाँ निकाल कर हँसती हुई पूछती, 'पसंद हैं ? मैंने दो तुम्हारे लिए दो अपने लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूँ।' पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठतीं।

हम दोनों जब साथ रहती थीं तब बात एक मिनिट और हँसी पाँच मिनट का अनुपात रहता था। इस से प्रायः किसी सभा-समिति में जाने के पहले न हँसने का निश्चय करना पड़ता था। एक दूसरे की ओर बिना देखे गंभीर भाव से बैठे रहने की, प्रतिज्ञा करके भी वहाँ पहुँचते ही एक-न-एक वस्तु या दृश्य सुभद्रा के कुतूहल मन को आकर्षित कर लेता और मुझे दिखाने के लिए वे चिकोटी तक काटने से नहीं चूकतीं। तब हमारी शोभा-सदस्यता की जो स्थिति हो जाती थी, उसका अनुमान सहज है।

अनेक कवि-सम्मेलनों में हमने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन मैंने अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अंत तक कभी उन्होंने मेरे निश्चय के विरूद्ध कोई आग्रह नहीं किया। आर्थिक स्थितियाँ उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने के लिए विवश कर देती थीं, परंतु मेरा प्रश्न  उठते ही वे कह देती थीं, 'मैं तो विवशता से जाती हूँ, पर महादेवी नहीं जायेगी, नहीं जायेगी।

साहित्य-जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्द्धा, ईर्षा-द्वेष है, उस सीमा तक तब नहीं था, यह सत्य है। पर एक दूसरे के साहित्य-चरित्र-स्वभाव संबंधी निंदा-पुराण तो सब युगों में नानी की कथा के समान लोकप्रियता पा लेता है। अपने किसी भी परिचित-अपरिचित साहित्य-साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना और उसके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्रा जी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असंभव थी।

वसंत पंचमी को पुष्पाभरणा, आलोकवसना धरती की छवि आँखों में भर कर सुभद्रा ने विदा ली। उनके लिए किसी अन्य विदा की कल्पना ही कठिन थी।

एक बार बात करते-करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। मैंने कहा, 'मुझे तो उस लहर की-सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है।' सुभद्रा बोली, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूँ मेरी एक समाधि हो,

जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियाँ गाती रहें और कोलाहल होता रहे। अब बताओं तुम्हारी नामधाम रहित लहर से यह आनंद अच्छा है या नहीं।

उस दिन जब उनके पार्थिव अवशेष को त्रिवेणी ने अपने श्यामल-उज्जवल अंचल में समेट लिया तब नीलम-फलक पर श्वेत चंदन से बने उस चित्र की रेखाओं में बहुत वर्षों पहले देखा एक किशोर-मुख मुस्कराता जान पड़ा।

‘यही कहीं पर बिखर गई वह छिन्न विजय-माला-सी!

## 14.6 पाठ विश्लेषण

पाठ विश्लेषण का तात्पर्य है – मूल पाठ की सामाजिक उपयोगिता की जाँच करना है या मूल्यांकन करना। पाठ विश्लषण तब ज्यादा प्रमाणिक हो उठता है जब मूल पाठ पाठक के सामने हो और आलोचक उसकी व्याख्या कर रहा हो। इस विश्लेषण की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है इसमें पाठक को आलोचक की दृष्टि आरोपित रूप में ग्रहण नहीं करनी पड़ती। मूल पाठ का उपलब्धता से पाठक स्वयं पाठ विश्लेषण कर सकता है या आलोचक के पाठ विश्लषण की जाँच कर सकता है। आलोच्य संस्मरण महादेवी वर्मा की लेखनी की सजीवता का सुन्दर उदाहरण है। आइए हम आलोच्य संस्मरण के पाठ विश्लेषण द्वारा उसकी अंतर्निहित संभावना को समझें।

### 14.6.1 अंतर्वस्तु के धरातल पर

संस्मरण के प्रारम्भ में ही महादेवी वर्मा ने संस्मरण लिखने के कारण का जिक्र करते हुए लिखा- "शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते है।" स्पष्ट है कि संस्मरण उन्हीं पर लिखा जा सकता है जिनसे रागात्मक संबंध लेखक का रहा हो। लेखिका ने संस्मरण की शुरूआत-नायिका लेखिका से दो कक्षा आगे है, इस थोड़े से बड़े होने का एहसास उसे है और स्वयं लेखिका को भी हैं। स्नेहवश प्रश्न–प्रतिप्रश्न के बीच-‘हमें भी तो यह सहना पड़ता है। अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए।' विकसित होता है। लेखिका ने सुभद्रा जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है – "अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था।" सुभद्रा जी की यह अडिगता संस्मरण में जगह-जगह दिखती है। "नववधू के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुत: जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी। और उन्होंने बसाई भी वहीं।"

"उन्होंने हँसते-हँसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें इतनी अधिक फूल-मालायें मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं।" सुभद्रा जी के जीवन संघर्ष के साथ ही उनके संतुलन और संयम का चित्र भी लेखिका ने खींचा है – "घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरम्भ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं यह सोचकर विस्मय होता है।" इसी प्रकार सुभद्रा जी कर्मठ एवं सहज जीवन का चित्र महादेवी ने इस प्रकार खींचा है –"उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रंथि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठकर वे कोमल और ओज भरे छन्द लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे पाथतीं थी। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थीं।" सुभद्रा कुमारी चौहान को प्राय: वीररस की कवयित्री मानकर इतिश्री कर दिया जाता है। इस प्रव्रत्ति से असंतोष प्रकट करते हुए महादेवी वर्मा ने लिखा है –"उनकी कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार किया है।" अपने इस कथन को पुष्ट करने के लिए लेखिका ने सुभद्रा जी के मूल वक्तव्य भी उद्धत किए हैं। इसी प्रकार लेखिका ने सुभद्रा जी बाल मनोविज्ञान की समझ को भी सराहा है। सुभद्रा जी न केवल श्रेष्ठ कवयित्री थीं, वरन् सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में भी अग्रणी थीं – "पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं, जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूक भाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरूद्ध उन्होंने घोषणा की, "मैं कन्यादान नहीं करँगी। क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकार है ? उस समय तक किसी ने, और विशेषत: किसी स्त्री ने, ऐसी विचित्र और परम्परा-विरूद्ध बात नहीं कही थी।" इसके अतिरिक्ति संस्मरणकार ने सुभद्रा जी के उनके बाल स्वभाव एवं सदाशयता का परिचय जगह-जगह दिया है।

### 14.6.2 शिल्प के धरातल पर

संस्मरण की भाषा एवं शिल्प से यह अपेक्षा की जाती है कि वह कथ्य को सघन, संक्षिप्त एवं प्रभावी रूप में प्रस्तुत कर पा रहा है या नहीं। महादेवी वर्मा मूलत: कवियत्री हैं, इसलिए उनकी संस्मरण की भाषा भी कहीं-कहीं काव्यात्मक अलंकरण से अलंकृत हो गई है, जो संस्मरण को और अधिक प्राणवान और जीवंत बनाने में सफल हुआ है। महादेवी वर्मा के भाषा की विशेषता जहाँ सघनता से युक्त है वहीं वह अपनी केंद्राभिसारी प्रभावान्विति में भी सफल है। आलोच्य पंक्तियों में एक ओर लेखिका ने जहाँ संस्मरण की मूल विशेषता को लक्षित किया है वहीं घटना के समय की शुरूआत का संकेत भी कर दिया है – "हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय-प्रवाह का पाठ ज्यों–ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों-त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली

आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं।" इन पंक्तियों में लेखिका की भाषा सघनता एवं संकेतात्मकता से तो परिपूर्ण है ही इसके साथ ही वह उसकी भाषा की विशेषताओं को भी इंगित कर रही है। लेखिका की भाषा में एक ओर जहाँ तत्सम शब्दों की बहुतायत है (वार्धम्य, शैशवकालीन, लक्षित, मधुमक्षिका, मधुर, तिक्त इत्यादि) वहीं वह लोक रंगों से भी अछूती नहीं है – 'ऊसहोदरा विचरि अऊ तो इनका देखै बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी हैं। अउर इनका कितबियन से फरसत नाहिन बा।'

महादेवी वर्मा चित्र उकेरने की कला में सिद्धस्त हैं। वह कवयित्री होने के साथ-ही-साथ रेखाचित्रकार भी हैं, जिससे उनके संस्मरण भी जीवंत बन पड़े हैं। सुभद्रा जी का परिचय देने में उनकी चित्रात्मक शैली देखते ही बनती है – "मझोल कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़ता सूचक ठुड्ढी.....सब कुछ मिला कर एक अत्यंत निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे।" संस्मरण चूँकि पूर्वदीप्ति शैली की रचना है, अत: इस विधा में वही सफल हो सकता है जिसमें चित्रात्मक भाषा में, अपनी स्मृति को पात्रानुकूल ढ़ालने की क्षमता हो। महादेवी वर्मा ने परिस्थितिजन्य एवं पात्रानुकूल भाषा-शिल्प का परिचय देकर श्रेष्ठ संस्मरण लिखे हैं और आलोच्य संस्मरण भी उपयुक्त गुणों से परिपूर्ण है।

## 14.7 सारांश

इस इकाई का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि –

- संस्मरण विधा आत्मीयता पूर्ण ढंग से संपर्क में आये हुए व्यक्तियों की स्मृति की रचनात्मक प्रस्तुति है।
- 'पथ के साथी' रचना अपनी आत्मीयता एवं सहज संप्रेष्य शैली में विशिष्ट रचना है।
- सुभद्राकुमारी चौहान न केवल कवयित्री रही हैं वरन् मनुष्यता के धरातल पर भी उनके व्यक्तित्व में महानता के तत्व रहे हैं।

## 14.8 शब्दावली

वार्धक्य - बुढापा

वक्र-कुंचित - टेढ़ी-मेढ़ी

| | | |
|---|---|---|
| कटु-तिक्त | - | कड़वा और तीखा |
| कृश | - | कमजोर |
| संचारिणी दीपशिखा | | निरंतर जलने वाली दीये की लौ |
| भाव स्नात | - | भाव से सराबोर |
| कीकर | - | बबूल |
| आलोकवसना | - | प्रकाश के वस्त्र पहने हुए |

## 14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**(1) रिक्त स्थान पूर्ति**

1. 1907
2. यामा
3. कवयित्री
4. 1956
5. पद्मसिंह शर्मा

**(2) सत्य/असत्य**

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य

**(3) सुमेलित कीजिए –**

| | | |
|---|---|---|
| स्मृति की रेखाएँ | - | महादेवी वर्मा |
| पद्मपराग | - | पद्म सिंह शर्मा |
| संस्मरण | - | बनारसी दास चतुर्वेदी |
| वे दिन वे लोग | - | शिवपूजन सहाय |
| औरों के बहाने | - | राजेन्द्र यादव |

स्मरण को पाथेय बनने दो - विष्णुकांत शास्त्री

## 14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची


1. तिवारी, रामचन्द्र, हिंदी का गद्य साहित्य – विश्वविद्यालय प्रकाशन।
2. वर्मा, धीरेन्द्र – हिंदी साहित्य कोश 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।


## 14.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. नगेन्द्र, डॉ – महादेवी वर्मा
2. मानव, विश्वम्भर – महादेवी वर्मा


## 14.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य की रचना शैली पर प्रकाश डालिए।
2. संस्मरण और अन्य गद्य विधाओं का पारस्परिक साम्य/वैषम्य निरूपित कीजिए।

# इकाई 15 प्रयोजनमूलक हिन्दी

इकाई की रुपरेखा


15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 प्रयोजनमूलक हिन्दी
15.3.1 अर्थ एवं परिभाषा
15.3.2 प्रयोजनमूलक हिन्दी का इतिहास
15.4 प्रयोजनमूलक हिन्दी के क्षेत्र
15.4.1 प्रयोजनमूलक हिन्दी की शैलियाँ और प्रयुक्ति
15.5 प्रयोजनमूलक हिन्दी का प्रदेय एवं मूल्यांकन
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.11 निबन्धात्मक प्रश्न


## 15.1 प्रस्तावना

प्रयोजनमूलक हिन्दी का अर्थ - शासकीय तथा कार्यालियी भाषा से है। भारतीय संविधान द्वारा खड़ी बोली को राजभाषा स्वीकार करने के पश्चात् हिन्दी भाषा के प्रति सोच या कहें कि अवधारणा में काफी परिवर्तन हुआ। सांविधानिक भाषा बनने से पूर्व हिंदी भाषा का तात्पर्य होता था बोलचाल की हिन्दी या साहित्यिक हिन्दी से। संविधान द्वारा हिन्दी की स्वीकृति के पश्चात् हिन्दी कार्यालय, व्यापार तथा वाणिज्य की भाषा के रूप में व्यवहार होने लगी। भाषा व्यवहार के इस क्रम में कई प्रारंभिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। हिन्दी भाषा के पास पर्याप्त पारिभाषिक शब्द नहीं थे। अपनी शैली और प्रयुक्ति नहीं थे। भाषा नियोजन तथा मानकीकरण की समस्याएँ भी आईं। हिन्दी भाषा के बढ़ते विस्तार के कारण हिन्दी की प्रयुक्तियाँ भी विकसित हुई। किसी भी समृद्ध भाषा की पहचान होती है कि उसकी प्रयुक्तियाँ कितनी विकसित हुईं है, इस दृष्टि से हिन्दी भाषा ने अभूतपूर्व विकास किया है। भाषा नियोजन तथा मानकीकरण के हमारे संगठित प्रयास सफल हुए। स्वत्रन्ता पूर्व

जो हिंदी केवल साहित्यिक स्तर पर समृद्ध मानी जाती थी, आज वह प्रशासनिक तथा व्यापारिक स्तर पर भी समृद्धता के निकस तय कर रही है।

## 15.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

- हिन्दी भाषा अर्थ समझ सकेंगे।
- प्रयोजनमूलक हिन्दी का अर्थ समझ सकेंगे।
- प्रयोजनमूलक हिन्दी की विविध परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगे।
- प्रयोजनमूलक हिन्दी के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- प्रयोजनमूलक हिन्दी की विविध शैलियों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रयोजनमूलक हिन्दी की विभिन्न शब्दावलियों के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- साहित्यिक भाषा और प्रयोजनमूलक भाषा का अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
- वर्तमान काल में चल रही प्रयोजनमूलक भाषा के भविष्य कों समझ सकेंगे।

## 15.3 प्रयोजनमूलक हिन्दी

### 15.3.1 अर्थ एवं परिभाषा

प्रयोजनमूलक हिन्दी, अग्रेजी शब्द 'फंक्शनल हिंदी' का पर्याय है। प्रयोजनमूलक हिंदी का अर्थ क्या हो ? इस पर विचार करने की आवश्यकता है। शाब्दिक ढंग से विचार करें तो इसका अर्थ होगा -ऐसी विशेष हिंदी जिसका उपयोग किसी विशेष प्रयोजन के लिए किया जाए। श्री रमाप्रसन्न नायक आदि इसे प्रयोजनमूलक के बजाय व्यावहारिक हिंदी कहना ज्यादा सार्थक समझते है। उनके अनुसार प्रयोजनमूलक कहने से ऐसा आभास होता है जैसे निष्प्रयोजनपरक भाषा का भी कोई रूप होता है। रमाप्रसन्न नायक इस प्रकार की हिंदी के लिए व्यावहारिक शब्द प्रयोग ज्यादा उचित मानते है। प्रयोजनमूलक हिंदी का कामकाजी हिंदी भी कहा गया है। डा. नगेन्द्र तथा डा. ब्रजेश्वर वर्मा ने 'प्रयोजनमूलक' शब्द को ही ज्यादा सार्थक और अर्थगर्भित माना है। डा. नगेन्द्र ने इस संदर्भ में लिखा है - "वस्तुत प्रयोजनमूलक हिंदी के विपरीत अगर कोई हिंदी है तो वह निष्प्रयोजनमूलक नही वरन् आनन्दमूलक हिंदी है। आनन्द व्यक्ति सापेक्ष है और प्रयोजन समाज सापेक्ष। आनन्द स्वकेन्द्रित होता है और प्रयोजन समाज सापेक्ष। आनन्द स्वकेन्द्रित होता और प्रयोजन समाज की ओर इशारा करता है। हम आनन्दमूलक हिंदी के विरोधी नहीं हैं इसलिए आनन्दमूलक साहित्य के

हम भी हिमायती हैं। पर सामाजिक आवश्यकताओं के सदर्भ में हम सम्प्रेषण के बुनियादी आधार के भी अपनी नजर से ओझल नहीं करना चाहते।'' डा. ब्रजेश्वर वर्मा ने 'प्रयोजनमूलक' शब्द की निहित व्यंजना को अधिक स्पष्ट ढंग से समझाया है। उन्होंने कहा है - ''निष्प्रयोजन हिंदी कोई चीज नहीं है लेकिन प्रयोजनमूलक विशेषण उसके व्यावहारिक पक्ष को अधिक उजागर करने के लिए प्रयुक्त किया गया ।'' प्रयोजनमूलक हिंदी की व्यावहारिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर कुछ लोग इसे 'व्यावहारिक हिन्दी' भी कहते है। प्रश्न है कि व्यावहारिक हिन्दी क्या है ? व्यावहारिक हिन्दी का तात्पर्य हो सकता है -ऐसी हिन्दी से जो दैनिक जीवन में कार्य-साधन के लिए प्रयुक्त की जाती है। ऐसी भाषा जिसमें व्याकरण की अनिवार्यता के बजाय व्यावहारिक उपयोगिता अधिक हो। इसके विपरीत प्रयोजनमूलक भाषा में प्रशासन, संपर्क तथा सम्प्रेषण आवश्यक तत्व के रूप में निहित होता है। आज हम जिस 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' शब्द का व्यवहार करते हैं वह अंग्रेजी शब्द 'फक्शनल लैंग्वेज' के हिन्दी पर्याय के रुप में सर्वस्वीकृत - सा हो चुका है। प्रयोजनमूलक हिन्दी पाठ्यक्रम के आरम्भिक प्रस्तावकों में से एक मोटूरि सत्यनारायण ने लिखा है - ''जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाई जाने वाली हिन्दी ही प्रयोजनमूलक हिन्दी है।'' सामान्यतः भाषा के तीन मुख्य प्रकार्य होते हैं। एक भाषा का सम्बन्ध सामान्य जीवन की व्यावहारिक क्रियाओं को करने के लिए लाई जाने वाली शब्दावली से है। दूसरे प्रकार की भाषा का सम्बन्ध विचार तथा आनन्द प्रदान करने का व्यवहार करने से है, वह सामान्य प्रकार की भाषा से भिन्न होता है। प्रथम तथा द्वितीय भाषा से इतर तीसरे प्रकार की भाषा का संबंध हमारी जीविका तथा प्रशासन से जुड़ा हुआ है। व्यापार, प्रशासन तथा कार्यालय में हम जिस भाषा का व्यवहार करते है, वह दैनिक बोलचाल तथा साहित्यिक भाषा से भिन्न होती है। भाषा के इस व्यवहार को ही प्रयोजनमूलक कहा गया है। आगे चलकर हम इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे।

### 15.3.2 प्रयोजनमूलक हिन्दी का इतिहास

प्रयोजनमूलक हिन्दी का इतिहास वैसे तो काफी पुराना है। चूँकि मनुष्य सचेतन प्राणी है, इसलिए उसके सारे सामाजिक प्रयास (भाषाई प्रकार्य भी) किसी-न-किसी सार्थक प्रयोजन से जुड़े होते है। इस दृष्टि से देखा जाये तो प्रयोजनमूलक भाषा का व्यवहार समृद्ध संस्कृति से मुक्त देशों ने बहुत पहले से ही शुरु कर दिया था। व्यापार की भाषा, कानून की भाषा, अध्यात्म की भाषा, न्याय शास्त्र की भाषा रोजमर्रा जिन्दगी की भाषा , साहित्य की भाषा इत्यादि भाषाएँ अपने उद्देश्यगत प्रयोजन के कारण परस्पर भिन्न रही हैं। भाषा वस्तु क आधार पर अपने शैली का चुनाव करती है। प्रयोजन, वक्ता, संदर्भ के अनुसार भाषा अपना अर्थ सुनिश्चित करती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब से हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया। (14 सितम्बर 1949 ई) तब से हिन्दी के प्रयोग और भूमिकाओं में वृद्धि हुई। उसके पूर्व हिन्दी केवल साहित्य की भाषा के रुप में ही प्रतिष्ठित थी। राजभाषा बनने के उपरान्त हिंदी अन्य क्षेत्रों में भूमिका के लिए तैयार होने

लगी। उस समय हिन्दी के विरोधियों द्वारा यह प्रश्न भी खड़ा किया गया कि क्या हिन्दी भाषा में इतनी सामर्थ्य है कि वह अन्य सामाजिक व्यवहारों की अभिव्यक्ति करने में समर्थ है ? इस शंका में थोड़ी सच्चाई भी थी, क्योकि उस समय तक हिन्दी भाषा ने अपनी प्रयुक्ति, उप - प्रयुक्ति का समुचित निर्माण कार्य नहीं किया था। भारत सरकार द्वारा सरकारी कामकाजों के निर्वाह के लिए शब्दावली आयोग का निर्माण किया गया, जिसके माध्यम से हिन्दी के शब्द भंडार में काफी वृद्धि हुई। हिन्दी के मानक व्याकरण का निर्माण, कोश निर्माण कार्य के अतिरिक्त व्यापार, कानून, सरकारी कार्य के अनुरुप हिन्दी शब्दोंका निर्माण किया गया। एक विषय के रुप मे प्रयोजनमूलक हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का श्रेय श्री मोटूरि सत्यनारायण को जाता है जिन्होंने सन् 1975 में केंद्रीय हिन्दी संस्थान के माध्यम से इस विषय को राष्ट्रीय मान्यता प्रदान की। इसी वर्ष प्रयोजनमूलक हिन्दी पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हिन्दी संस्थान ने किया, जिसके माध्यम से प्रयोजनमूलक हिन्दी के पाठ्यक्रम की रुपरेखा तैयार हुई। दक्षिण भारत में प्रयोजनमूलक का पाठ्यक्रम दक्षिण भारत प्रचार सभा के उच्च शिक्षा और शोध संस्थान के हैदराबाद और धारवाड़ परिसरों में एम. ए. स्तर पर सर्वप्रथम चला है। पुणे विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में एम. ए. पाठ्यक्रम भी बहुत पहले शुरु हो चुका था। बी.एच.यू ने प्रयोजनमूलक हिन्दी में एम. ए. पाठ्यक्रम की शुरुआत सन् 1999 से की। यू. जी.सी,ने स्नातक स्तर पर प्रयोजनमूलक हिन्दी के पाठ्यक्रम को अब तो हर विश्वविद्यालय के लिए अनिवार्य कर दिया है।

**अभ्यास प्रश्न 1**

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1. 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' नामकरण का औचित्य सिद्ध कीजिए।

....................................................................................................................
....................................................................................................................
....................................................................................................................
....................................................................................................................
....................................................................................................................
....................................................................................................................
....................................................................................................................
..........................................................................

2. प्रयोजनमूलक हिन्दी की अवधारणा बताइए।

.....................................................................................................................
.....................................................................................................................
.....................................................................................................................
.....................................................................................................................
.....................................................................................................................
.....................................................................................................................
.....................................................................................................................
.........................................................................

**(ख) हाँ / नहीं का चुनाव कीजिए :-**

1. सामान्य बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा एक ही है। (हाँ/नहीं)

2. प्रयोजनमूलक हिन्दी का सम्बन्ध व्यावसायिक हिन्दी से है। (हाँ/नहीं)

3. प्रयोजनमूलक हिन्दी का एक नाम व्यावसायिक हिन्दी भी है। (हाँ/नहीं)

4. प्रयोजनमूलक हिन्दी, फंक्शनल हिन्दी का पर्याय है। (हाँ/नहीं)

5. प्रयोजनमूलक हिन्दी के विकास में केंद्रीय हिन्दी संस्थान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। (हाँ/नहीं)

## 15.4 प्रयोजनमूलक हिन्दी के क्षेत्र

हमने पढ़ा कि प्रयोजनमूलक हिन्दी का अर्थ क्या है तथा विभिन्न विद्वानों के उस पर क्या अभिमत हैं। हमने यह भी अध्ययन किया कि सामान्य बोलचाल की भाषा और प्रयोजनमूलक भाषा का क्या अन्तर है। आइए अब हम प्रयोजनमूलक हिन्दी का शब्द-सपंदा के आधार पर निर्मित क्षेत्र का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें। हमने अध्ययन किया कि जीविकोपार्जन के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा ही प्रयोजनमूलक भाषा है। अब प्रश्न यह है कि इस भाषा के क्षेत्र कौन से हैं। सामाजिक जीवन क्रम में, विकास की स्थिति में, भाषा विस्तार की स्थिति में भाषा के कई क्षेत्र हो जाते है। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा के अनुसार प्रयोजनमूलक हिन्दी के दो मुख्य भेद होते हैं और उसके अनेक उपभेद होते हैं। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने प्रयोजनमूलक हिन्दी के दो मुख्य भेद किए है

1. Core Hindi

2. Advanced Hindi

Core Hindi को डॉ. वर्मा ने पुनः चार उपभेदों में विभाजित किया है - क. कार्यालयी हिन्दी ख. व्यावसायिक हिन्दी ग. तकनीकी हिन्दी घ. समाजी हिन्दी । एम. सत्यनारायण ने प्रयोजनमूलक हिन्दी के क्षेत्र विभाजन करते हुए लिखा है - 1. सामान्य सम्प्रेषण माध्यम 2. सामाजिक 3. व्यावसायिक 4.कार्यालयी 5. तकनीकी 6. सामान्य साहित्य। डॉ. भोलानाथ तिवारी तथा विनोद गोदरे ने प्रयोजनमूलक हिन्दी के क्षेत्र विस्तार को स्पष्ट रुप से समेटते हुए उसके प्रमुख भेद स्वीकार किए हैं -

**1. बोलचाल की हिन्दी** - इसके अंतर्गत बोलचाल के सामान्य रुप की हिन्दी भाषा आती है।

**2. व्यापार की हिन्दी** - व्यापार की हिन्दी के अंतर्गत बाजार, सर्राफे एवं मंडी की भाषा आती है।

**3. कार्यालय हिन्दी** - कार्यालय हिन्दीके अन्तर्गत कार्यालय में प्रयोग की जाने वाली भाषा आती है।

**4. शास्त्रीय हिन्दी** - प्रयोजनमूलक इस भाषा के अन्तर्गत विभिन्न काथ कलाएँ तथा मानवीय एवं सामाजिक विज्ञान के विषयों से संबंधित भाषा आती है।

**5. वैज्ञानिक तथा तकनीकी हिन्दी** - प्रयोजनमूलक हिन्दी के इस रुप के अन्तर्गत इंजीनियरिंग के विभिन्न क्षेत्र तथा विज्ञान के विविध क्षेत्रों की भाषा आती हैं ।

**6. समाजी हिन्दी** - प्रयोजनमूलक हिन्दी के इस क्षेत्र के अन्तर्गत समाज के उच्च क्रिया कलाप का अध्ययन किया जाता है।

**7. साहित्यिक हिन्दी** - प्रयोजनमूलक हिन्दी के इस क्षेत्र के अन्तर्गत कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी जैसी विधाओं की भाषा आती हैं।

**8. प्रशासनिक हिन्दी** - प्रयोजनमूलक हिन्दी के इस क्षेत्र के अन्तर्गत प्रशासनिक कार्यों में प्रयुक्त भाषा एवं उसकी पारिभाषिक शब्दावली का अध्ययन किया जाता है।

**9. जनसंचार माध्यम की हिन्दी** - प्रयोजनमूलक हिन्दी के इस क्षेत्र के अन्तर्गत जनसंचार माध्यमों जैसे दूरदर्शन, रेडियो,कम्प्यूटर एवं समाचार पत्रों की भाषा आती है। विनोद गोदरे द्वारा रचित ' प्रयोजनमूलक हिन्दी ' पुस्तक में हिन्दी के प्रयोजनमूलक उपर्युक्त भेद मिलते हैं। क्षेत्र विभाजन के इस भेद में अतिव्याप्ति दोष है। प्रयोजनमूलक भाषा के अंतर्गत साहित्यिक हिन्दी, बोलचालीय हिन्दी तथा समाजी हिन्दी को भी समाविष्ट कर लिया गया हैं। वस्तुतः प्रयोजनी हिन्दी के अंतर्गत ऐसी भाषा को ही समाविष्ट किया जा सकता है जो व्यापक रुप से रोजगार, व्यवसाय एवं तकनीक से जुड़ी हुई हो।

### 15.4.1 प्रयोजनमूलक हिन्दी की शैलियाँ और प्रयुक्ति

प्रयोजनमूलक भाषा का संबंध भारत के संदर्भ में सन् 1947 के बाद प्रारम्भ हुआ। 1947 ईसवी से पूर्व भारत वर्ष के अधिकांश कार्यो की भाषा अंग्रेजी थी। कचहरियों में हाँलाकि देवनागरी को स्वीकृति प्रदान कर दी गई थी, लेकिन वहाँ अंग्रेजी और उर्दू भाषा की ही प्रधानता थी। व्यापार की भाषा पर अंग्रेजी भाषा का आधिपत्य था। वही स्थिति कार्यालय तथा प्रशासन की भाषा का भी था। भारतीय संविधान में यह प्रावधान किया गया कि भारतीय संघ की राजभाषा हिन्दी होगी तथा लिपि देवनागरी होगी। हिन्दी के राजभाषा के रुप में स्वीकृति के पश्चात् भाषा के मानकीकरण एवं नियोजन की प्रक्रिया को भी बल मिला। भाषा नियोजन की संकल्पनाएँ सामने आई। डॉ.दिलीप सिंह ने प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रयुक्तिपरक विश्लेषण पर टिप्पणी करते हुए लिखा हैः ‘‘आधुनिक भाषा विज्ञान में भाषा को देखने की दो दृष्टियाँ प्रचलित हैं। एक दृष्टि यह बताती है कि भाषा क्या है? उसकी व्याकरणिक व्यवस्था कैसी है? और संरचना के उसके नियम क्या है? दूसरी दृष्टि भाषा के व्यावहारिक पक्ष से संबद्ध होकर यह बताती है कि भाषा किन प्रयोजनों को साधती है, उसके प्रयोक्ता भाषा से क्या कार्य लेते हैं। इस दूसरी दृष्टि के संदर्भ में यह तथ्य भी स्वीकार्य ह। कि कोई भाषा व्यवहार में समरुपी नहीं होती। ’’ भाषा की विषय विविधता या रुपता भाषा प्रयोग के धरातल पर परखी जाती है। विषय के अनुसार जिस प्रकार भाषा बदलती है, उसी प्रकार उसका प्रकार्यात्मक रुप भी बदलता रहता है। उदाहरण स्वरुप यदि हम इसे समझना चाहें तो कह सकते है कि विधि क्षेत्र की भाषा, बैक , पत्रकारिता, विज्ञान, व्यवसाय, मनोरंजन, साहित्य, कार्यालय इत्यादि की भाषा एक दूसरे से भिन्न होती है। डाँ. दिलीप सिंह के अनुसार ‘‘भाषा अध्ययन की इस दूसरी दृष्टि ने ही प्रयोग के स्तर पर विषय परक या व्यपहार क्षेत्र बाधित भाषा रुपों को प्रयुक्ति (Register) की संज्ञा दी है। भाषा प्रयुक्ति को समझाने के लिए इसे ‘सीमित भाषा रुप’ कहा गया है। भाषा के व्यापक स्वरुप को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भाषा के व्यापक स्वरुप से निसृत यह एक सीमित रुप है जो किसी विशिष्ट व्यवहार क्षेत्र में संप्रेषित होती है।

भाषा, सामाजिक सम्प्रेषण की प्रक्रिया में ही अस्तित्व ग्रहण करती है। एक सामाजिक व्यक्ति को समाज के अनुरुप कई भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। आजकल सफल व्यक्ति वही है जो सामाजिक सम्प्रेषण की विभिन्न प्रयुक्तियों से परिचित हो। व्यापक सम्प्रेषण की प्रक्रिया से जुटने के लिए व्यक्ति को ‘व्यापक कोड’ और ‘सीमित काड’ की भूमिका से परिचित होना पड़ता है। भाषा के संदर्भगत विशिष्ट प्रयोग को ही ‘सीमित काड’ कहा गया है। जैसे - वैज्ञानिक पाठ का कोड, धार्मिक अनुष्ठान या कर्मकाण्ड का कोड, व्यापार का कोड, अपराध जगत का कोड, सिनेमा - मीडिया का कोड, शेयर बाजार का कोड, कार्यालय का कोड, या किसी भी अन्य कारण से समाज का एक वर्ग जो अन्य लोगों के बिना ही अपनी संप्रेषण की प्रक्रिया पूरी कर पाने मे सक्षम सिद्ध हो रहा है। भाषा के इस

सीमित कोड को हम 'प्रयुक्ति' कहते है। यहाँ हमें बोलियों और प्रयुक्ति के बीच के अन्तर को समझ लेना चाहिए। जहाँ बोलियों के रुप भेद का कारण "प्रयोक्ता" होता है वहीं प्रयुक्तियों के भेद का आधार 'प्रयोग' अर्थात् विषय होता है। भाषा - प्रयुक्ति के विभिन्न भाषा रुपों के दो संदर्भ होते हैं - एक, भाषा शैली का संदर्भ और दूसरे , भाषा प्रयुक्ति का संदर्भ। भाषा प्रयोग के धरातल पर कई संदर्भो एवं विषयगत प्रयोगों के विश्लेषण के आधार पर संचालित होती है। भाषा - प्रयुक्ति पर कार्य करने वाले अध्येता हैलिडे ने प्रयुक्ति का वर्गोकरण कर इसे तीन आयामों मे विभक्त किया है - वार्ता क्षेत्र, वार्ता प्रकार और वार्ता शैली । तीनों आयामों को हम कुछ उदाहरणों के माध्यम से समझ सकते हैं। वार्ता क्षेत्र का संबंध विषय क्षेत्र से है। जैसे कार्यालय -हिन्दी में भाषा प्रयुक्ति होगी - गोपनीय, तत्काल, कार्रवाही करें, अग्रसारित, आदेशित, सूचित किया जाता है, देख लें 'आख्या हेतु प्रस्तुत' इत्यादि । क्रिकेट की हिन्दी का उदाहरण देखें - रन आउट, एल.पी.डब्ल्यू, सिली प्वाइंट, छक्का, चौका, रन रेट, थर्ड अपांयर, थर्ड मैन, पिच, स्लो, फास्ट, इत्यादि । शेयर बाजार में प्रयुक्त हिन्दी को देखें - चाँदी लुढ़की, सोना उछला, दाल नरम, बाजार तेज, धनिया नरम, चावल गरम, इत्यादि। विज्ञापन में प्रयुक्त भाषा - प्रयुक्ति देखें - डर के आगे जीत है, जीवन के साथ भी, जीवन के बाद भी , कुछ मीठा हो जाये, ठंडा मतलब कोका कोला, ठंडा-ठंडा कूल-कूल, ढूढ़ते रह जाओगे , खबसूरती को और क्या चाहिए, ये दिल माँगे मोर, टेस्ट द ठंडा, देश की धड़कन -हीरो होन्डा, इत्यादि।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि विषय क्षेत्रों के आधार पर भाषा रुप बदल जाते हैं और उन भाषा रुपों को वार्ता क्षेत्र की प्रयुक्ति कहा जाता है। वार्ता - प्रकार की प्रयुक्ति का सम्बन्ध संदर्भ, प्रयोक्ता और प्रयोजन के निहितार्थ पर आधारित है। एक ही व्यक्ति अपनी सामाजिक भूमिका के अनुसार अलग-अलग शब्द- रूपों का व्यवहार करता है। एक व्यक्ति पत्नी, माँ, बहन, भाई, मित्र, कार्यालय, समाज और लेखन में परस्पर भिन्न भाषा का व्यवहार करता है। वार्ता प्रकार को समझने के लिए संस्कृत काव्यशास्त्र का ध्वनि सम्प्रदाय भी हमारी थोड़ी मदद कर सकता हैं। **शाम हो गई** वाक्य का निहितार्थ अलग-अलग हो सकता है। यदि यह वाक्य कोई सास अपने बहू से कहती है तो इसका अर्थ है कि अब रात के खाने - पीने का इन्तजाम करो। इसी वाक्य को कोई पुजारी अपने शिष्य से कहता है तो उसका अर्थ होगा कि अब संध्या - पूजन की तैयारी करो। कोई राहगीर दूसरे साथी राहगीर से कहता है तो उसका अर्थ होगा कि अब रात्रि - विश्राम की व्यवस्था करो । कह सकते है कि वार्ता - प्रकार संदर्भ, प्रकरण, प्रयोक्ता, ग्राहक, काल, इत्यादि कई तत्वों से संयोजित प्रयुक्ति है। वार्ता - क्षेत्र एवं वार्ता - प्रकार के आधार पर वार्ता - शैली निर्धारित होती है। कह सकते हैं कि प्रयोजनमूलक भाषा की प्रयोजनमूलक शैलियों को ही प्रयुक्ति कहा जाता है। (दिलीप सिंह) विषय से बँधकर भाषा जिन भेदों को जन्म देती है, वह भेद ही प्रयुक्ति है। **विशिष्ट विषय परक प्रयोग** ही भाषा की प्रयोजनमूलकता का आधार है।

**अभ्यास प्रश्न 2**

**(क) निम्नलिखित शब्दों पर टिप्पणी लीखिए।**

1) सामान्य हिंदी

…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………

2) साहित्यिक हिन्दी

…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………

3) प्रयुक्ति

…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………

4) प्रशासनिक हिंदी

…………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………

..................................................................................................................................
..................................................................................................................................
..................................................................................................................................
.............................................................................................

5) वैज्ञानिक तथा तकनीकी हिन्दी

..................................................................................................................................
..................................................................................................................................
..................................................................................................................................
..................................................................................................................................
..................................................................................................................................
..................................................................................................................................
.......................................................................................

**(ख) कोष्ठक में दिए गए विकल्पों में से सही विकन्प का चुनाव कीजिए**

1) प्रयोजनमूलक हिन्दी का पर्याय है (कामकाजी/समाजी/साहित्यिक)

2) ब्रजेश्वर वर्मा के अनुसार प्रयोजनमूलक हिंदी के मुख्य भेद हैं (2/4/6)

3) जनसंचार माध्यम के अंतर्गत आते हैं। (दूरदर्शन/शेयर/कार्यालय)

4) तकनीकी हिंदी के अंतर्गत हैं। (वैज्ञानिक/कार्यालयी/ विधि)

5) 'चाँदी लुढ़की' प्रयुक्त का संबध हैं। (शेयर/कार्यालय/ विज्ञान)

## 15.5 प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रदेय एवं मूल्यांकन

पूर्व में आपने पढ़ा कि प्रयाजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता तब महसूस की जाने लगी, जब भाषा अपनी सामाजिक अभिव्यक्ति /सम्प्रेषणीयता में अक्षम सिद्ध होने लगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक हिंदी साहित्य की दृष्टि से तो श्रेष्ठ भाषा बन गई थी, किन्तु इसमें रोजगार के अवसर परम्परागत रूप से अध्यापन को छोड़कर अन्य कुछ न थी। हिंदी समाचार पत्र भी निकल रहे थे, लेकिन उनमें भी वही व्यक्ति सफल था जो साहित्य में था या साहित्यक पत्रकारिता करता था। कुल मिलाकर हिंदी भाषा का तात्पर्य साहित्यिक हिंदी से ही समझा जाता था। सन् 1949 ई. में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्रदान कर दिये जाने के उपरान्त हिंदी भाषा में सरकारी काम काज की बाध्यता

महसूस की जाने लगी। इसी क्रम में संपूर्ण भारतीय क्षेत्र को खण्ड - क,ख, एवं ग के रूप में विभक्त किया गया। खण्ड क एवं ख क्षेत्रों में हिंदी भाषा में पत्राचार को अनिवार्य कर दिया गया। इस कार्य से हिंदी भाषा का प्रचार प्रसार तो बढा ही , रोजगार के नये अवसर भी बढ़े। भाषा के प्रयोजनमूलक स्वरूप् को ध्यान में रखते हुए भाषा की सामाजिक उपयोगिता पर नये सिरे से विचार -विमर्श किया जाने लगा।

भारत के सरकारी कामकाज की भाषा से हिंदी बहुत समय से विच्छिन्न रही है। प्राचीन कान में राजदरबार की भाषा संस्कृत बनी, मध्यकान मे फारसी एवं आधुनिक काल में अंग्रेजी । सत्ता और भाषा का गहरा सम्बन्ध होता है। सत्ता को जिस भाषा से वर्चस्व में मदद मिलती है, वह उसे अपनाती है। हिंन्दी इस दृष्टि से वर्चस्व एवं सत्ता की भाषा कभी नहीं बनी। लैटिन , फेंच एवं अंग्रेजी की तरह सत्ता एवं बाजार खेल की बजाय यह बराबर लोक भाषा बनी रही । सरकारी कामकाज की भाषा स्वीकृत होने के बावजूद इसने कभी भी आधिपत्यकारी भावनाओं को बढ़ावा नही दिया, हाँलाकि इसके आरोपी इसके ऊपर बराबर यह आरोप लगाते रहे । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी के प्रयोजनमूलक रुप ने भारतीय समाज व्यवस्था अर्थव्यवस्था एवं सांस्कृतिक - शैक्षिक उन्नति के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाई । प्रयोजनमूलक हिन्दी ने शब्दों के मानकीकरण, कोश, व्याकरण, शब्दावली के क्षेत्र मे मूलभूत कार्य किया । लोक से जुड़ा व्यक्ति शब्दों का इस्तेमाल किन संदर्भ विशेष में करता है, उसका सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थ तो हमें मालूम था, लेकिन उसका व्यावहारिक एवं आर्थिक कारण हमें नहीं मालूम था। प्रयोजनमूलक अवधारणा का मूल सम्बन्ध रोजगार से है। कार्यालय, व्यवसाय, विधि, पत्रकारिता जैसे क्षेत्रों में रोजगार के व्यापक अवसर प्रयोजनमूलक अवधारणा की ही देन है।

## 15.6 सारांश

प्रयोजनमूलक हिंदी से तात्पर्य है कामकाजी हिन्दी या व्यावसायिक हिन्दी से। स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी भाषा का तात्पर्य था बोलचाल की हिन्दी या साहित्यिक हिंदी से । लेकिन वर्तमान युग में वही भाषा जीवित रह सकती है जिसके पास समृद्ध साहित्य और संस्कृति तो है ही इसके अतिरिक्त बाजार की जरुरतों के अनुरुप सम्प्रषण की क्षमता भी हो । विधि की भाषा या विज्ञान की भाषा जाहिर है सामान्य बोलचाल की भाषा या साहित्यिक की भाषा से भिन्न होगी। पत्रकारिता या जनसंचार की भाषा, व्यवसाय की भाषा, शेयर मार्केट की भाषा इत्यादि की भाषा बोलचाल की भाषा से भिन्न होती है। भाषा के इसी सीमित प्रयोग को 'प्रयुक्ति' कहा गया है । विषय भेद के अनुसार प्रयुक्तियों के भी उप-विभाजन हो जाते हैं, जिन्हें उप-प्रयुक्ति कहते है। प्रयोजनमूलक हिन्दी

के नामकरण के संदर्भ में भी भ्रम फैलाया गया ? वस्तुत: व्यवसाय एवं रोजगार के प्रयोजन से विकसित हिन्दी ही प्रयोजनमूलक हिन्दी है।

## 15.7 शब्दावली

- प्रयोजनमूलक - किसी खास उद्देश्य से किया गया कार्य,भाषा के संदर्भ में रोजगार परक भाषा को प्रयोजनमूलक भाषा कहा गया हैं
- वाणिज्य - व्यापार
- मानकीकरण - भाषा के रुप को स्थिर करने की प्रक्रिया
- प्रयुक्ति -भाषा का संदर्भगत प्रयोग
- वार्ता क्षेत्र - भाषा व्यवहार का विषय क्षेत्र
- व्यापक कोड - भाषा का व्यापक संदर्भ में प्रयोग
- सीमित कोड - भाषा का सीमित संदर्भ में प्रयोग
- रुपान्तरण - भाषा का सामाजिक संदर्भ के अनुसार परिवर्तन
- नियोजन - भाषा को विषय वस्तु एवं व्याकरण के अनुसार संयोजित करना
- विश्लेषण - भाषा का सामाजिक संदर्भ के अनुसार उसकी भूमिका का निर्धारण

## 15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**अभ्यास प्रश्न 1**

ख) 1. नहीं 2. हॉ 3. हॉ 4. हॉ 5. हाँ

**अभ्यास प्रश्न 2**

1. कामकाजी 2. 2 3. दूरदर्शन 4. वैज्ञानिक 5. शेयर

## 15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोदरे, विनोद, प्रयोजनमूलक हिन्दी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. गवेषणा पत्रिका 67 -68,केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।
3. प्रयोजनमूलक हिन्दी , केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।
4. प्रयोजनमूलक हिन्दी का स्वरुप, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय, नई दिल्ली।
5. गोस्वामी, कृष्णकुमार, प्रयोजनमूलक हिन्दी ओर कार्यालयी हिन्दी, कलिंगा प्रकाशन, नई दिल्ली।

## 15.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, प्रयोजनमूलक हिन्दी: चर्चा-परिचर्चा।
2. कंसल, हरिबाबू व बंधु, सुधांशु, राजभाषा हिन्दी: सघंर्षो के बीच।

## 15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी की सामाजिक उपयोगिता पर निबन्ध लिखिए।
2. प्रयोजनमूलक हिन्दी की उप - प्रयुक्तियों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

# इकाई16. पत्राचार: कार्यालय पत्र, व्यावसायिक पत्र

इकाई की रूपरेखा


16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 पत्राचार : अर्थ एवं विशेषताएं
16.4 पत्राचार के प्रमुख अंग
16.5 कार्यालयी पत्राचार के विभिन्न रूप
16.6 व्यावसायिक पत्र के अर्थ और प्रकार
16.7 व्यावसायिक पत्र के अंग
16.8 सारांश
16.9 शब्दावली
16.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
16.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.12 निबंधात्मक प्रश्न


## 16.1 प्रस्तावना

प्रयोजनमूलक हिंदी पाठ्यक्रम के चतुर्थ ब्लॉक की सोलहवीं इकाई है। इसमें आप 'पत्राचार' के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। पत्राचार जीवन का अनिवार्य अंग है चाहे वह पत्र लेखन के रूप में हो या ई-मेल के रूप में या एस.एम.एस. के रूप में। कार्यालय और व्यवसाय में तो पत्राचार की विशिष्ट भूमिका होती है। इसके बिना न तो कार्यालय का कार्य-संपादन हो सकता है और न ही व्यवसाय को गति मिल सकती है। इस इकाई में आप पत्राचार का अर्थ, उसके अंग और उसके विभिन्न रूपों से परिचित होंगे। आप पत्राचार की विशेषताओं को भी जान पाएंगे और उसके प्रारूप से भी अवगत होंगे ताकि आप विषय को समझते हुए सामग्री संकलित कर सकें और पत्र लेखन कर सकें। आशा है कि इस पढ़ने के बाद आप पत्राचार को भली भांति समझ सकेंगे और उसका लेखन करने में आपको इससे मदद मिल सकेगी।

## 16.2 उद्देश्य

इस इकाई का पढ़ने के बाद आप यह जान पाएंगे कि -

- पत्राचार क्या है ? उसके कौन- कौन से अंग हैं ?
- कार्यालय पत्र क्या है और उसके कौन-कौन से अंग हैं ?
- कार्यालय पत्र का लेखन किस प्रकार किया जाता है ?
- व्यावसायिक पत्र क्या है और उसके कौन-कौन से अंग हैं ?
- व्यावसायिक पत्र का लेखन किस प्रकार किया जाता है ?
- पत्रों की भाषा कैसी होनी चाहिए।

## 16.3 पत्राचार : अर्थ एवं विशेषताएं

पत्राचार मूल रूप से पत्र लेखन है। यह एक कला है और जो इस में निपुण होता है वह सरकारी और व्यावसायिक दोनों प्रकार के पत्र लेखन को कर सकता है। 'पत्राचार' शब्द का निर्माण दो शब्दों के मेल से हुआ है। इसमे एक शब्द है 'पत्र' और दूसरा शब्द है 'आचार'। 'पत्र' एक स्थान से दूसरे स्थान तक संप्रेषण का एक माध्यम है, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के बीच संपर्क का एक सूत्र है। इसी का विकसित रूप आप आज ईमेल के रूप में देख रहे हैं। 'आचार' शब्द 'व्यवहार' का प्रकट करता है। लेखन से लिखने का बोध होता है। इस प्रकार 'पत्राचार' उस प्रक्रिया या पद्धति को कह सकते हैं जिसमें पत्र लेखन से लेकर पत्र प्राप्ति निहित है। यह उर्दू में 'खत-किताबत' कहलाता है और अंग्रेजी में इसे 'करेंस्पोंडेंस' कहा जाता है। रघुनंदन प्रसाद शर्मा इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं कि कार्यालयों आदि में सरकार की रीति नीति की व्याख्या और कार्य के संबंध में किसी भी संगठन, संस्था, व्यक्ति आदि को लिखित रूप में जो कुछ भी कहा अथवा बताया जाता है, उसे पत्राचार की संज्ञा दी जाती है। (पृ0-31) सरकारी क्षेत्र में और व्यावसायिक क्षेत्र में पत्राचार का विशेष महत्व है क्योंकि वहां लिखित शब्द की सत्ता है न कि उच्चरित शब्द की।

पत्राचार को रोचक, आकर्षक और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक है-

1. **सरलता, सहजता और रोचकता -** पत्राचार सरल होना चाहिए तभी उसमें रोचकता आएगी। पत्राचार में भाषा सीधी -सादी होनी चाहिए। उसमें बनावटीपन नहीं होना चाहिए। अतः किसी पत्र के अनुवाद से बचना चाहिए और अनुवाद करके किसी को भी पत्र नहीं भेजना चाहिए।

पत्राचार सहज लगे इसके लिए जरूरी है कि उसमें जो कुछ भी व्यक्त किया जाए, वह कार्यालय की रीति, नीति और कार्य के अनुरूप हो। पत्र में कृत्रिमता नहीं होनी चाहिए। इसीलिए पत्रों की भाषा में बहुज्ञता के प्रकाशन की आवश्यकता नहीं होती। तथ्यों की प्रस्तुति पर विशेष बल रहना चाहिए, चाहे पत्र सरकारी हो या व्यावसायिक।

2. **संक्षिप्तता, स्पष्टता और पूर्णता -** पत्राचार के लिए यह एक आवश्यक शर्त है कि पत्र में जो कुछ लिखा जाए वह संक्षेप में हो लेकिन अपने में स्पष्ट और पूर्ण हो। ऐसा न हो कि मूल कथ्य ही कमजोर पड़ जाए। मुख्य बात पत्र में अवश्य आ जानी चाहिए। स्पष्टता के लिए आवश्यक है कि पत्र में लिखावट पढ़ने योग्य हो। सबसे अच्छा तो यह है कि पत्र टाइपराटर या कंप्यूटर से टंकित हो। यदि पत्र लंबा लिखना हो तो उसके लिए पर्याप्त समय, सामग्री और धैर्य अपेक्षित है।

3. **आकर्षक और सुरुचिपूर्ण -** पत्राचार को आकर्षक और सुरुचिपूर्ण भी बनाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि भाषा विषय के अनुकूल हो। शब्द चयन नितांत सटीक और वाक्य छोट-छोटे हों। लंबे वाक्यों के प्रयोग से पत्र लेखक को बचना चाहिए। यदि कोई कठिन शब्द है जो उसका सरल रूप प्रयोग में लाना चाहिए। अनुच्छेद भी छोटे-छोटे और एक ही भाव को व्यक्त करने वाले हों। भाषा-शैली एक विशेष शिष्ट स्वरूप लिए होनी चाहिए जिससे पत्र लेखक की शालीनता का बोध हो सके। यदि मुद्रित पत्र शीर्ष वाले कागज का प्रयोग पत्राचार के लिए किया गया है तो उसकी साज सज्जा आकर्षक और मनोहारी होनी चाहिए। सादे कागज पर लिखा गया पत्र भी अपनी लिखावट की सुंदरता, स्पष्टता, उचित लेखन-शैली, संबोधन, अभिवादन आदि से भी पाठक का ध्यान आकृष्ट कर लेता है।

4. **विराम चिह्नों का उचित प्रयोग -** इस ओर पत्र लेखक को विशेष ध्यान देना चाहिए। इसे भाषा और भावों को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है। अनावश्यक रूप से विराम, कॉमा, कोष्ठक आदि को लगा देने से कभी अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है और पत्र का उत्तर प्रतिकूल भी मिल सकता है।

## 16.4 पत्राचार के प्रमुख अंग

पत्राचार की विभिन्न विशेषताओं से आप अवगत हो गए होंगे। अब यह जरूरी है कि आपको पत्राचार के विभिन्न अंगों से भी परिचित करा दिया जाए। पत्राचार के अंगों को सुविधा की दृष्टि से निम्न प्रकार से बांटा जा सकता है-

1. **शीर्षक** - शीर्षक प्रायः छपा हुआ होता है। इसमें प्रेषक संस्था का नाम, तार का पता और टेलीफोन नंबर हाता है। आजकल मोबाइल नंबर और ईमेल भी दिया जाता है।

2. **प्रेषक का पता** - यह पत्र के दाहिनी ओर रहता है। इसमें संस्था का पूरा पता, नगर का नाम, पिन कोड, ई मेल का पता आदि दिया जाता है।

3. **पत्र संख्या** - यह बाईं ओर लिखी जाती है। इससे फाइल में रखने और साथ लगाने में सहयोग मिलता है।

4. **दिनांक** - संदर्भ के लिए दाहिनी ओर लिखा जाता है।

5. **प्राप्तकर्ता** - यह वह व्यक्ति है जिसे पत्र भेजा जा रहा है। इसका पूरा पता ऊपर बाईं ओर दिया जाता है।

6. **विषय** - यह पत्र के भाव का संक्षिप्त रूप होता है। इसका लाभ यह होता है कि प्राप्तकर्ता तुरंत समझ लेता है कि पत्र किस संबंध में है और इससे समय की बचत भी होती है।

7. **संबोधन** - यह अलग-अलग पत्रों में अलग-अलग प्राप्तकर्ता के अनुसार होता है। जैसे- कहीं 'प्रिय महोदय', कहीं 'महोदय,' कहीं 'प्रियवर' और कहीं 'प्रिय श्री'।

8. **प्रारंभ** - पत्र के प्रारंभ में संदर्भ, दिनांक और विषयवस्तु को लिया जाता है।

9. **कलेवर** - यह पत्र का महत्वपूर्ण भाग है। इसे मूल कथ्य या मुख्य भाग भी कहा जाता है। इसमें प्रेषक प्राप्तकर्ता को बताने वाली और पूछने वाली बातों का अलग-अलग अनुच्छेद में उल्लेख करता है। प्रत्येक अनुच्छेद अपने पूर्व के अनुच्छेद से जुड़ा हुआ होना चाहिए। भाषा स्पष्ट और सहज हो, द्वियर्थक शब्दों का प्रयोग पत्र के कलेवर में न हो। वाक्य छोटे-छोटे होने चाहिए।

10. **उपसंहार** - इसे समापन भी कहते हैं लेकिन इससे पूर्व धन्यवाद ज्ञापन किया जाना चाहिए।

11. **अधोलेख** - इसे हस्ताक्षर से पूर्व लिखा जाता है, जैसे- भवदीय, आपका, आपका आज्ञाकारी आदि।

12. **हस्ताक्षर** - अधोलेख के बाद प्रेषक के हस्ताक्षर होते है ।

13. **प्रेषक का नाम** - इसे हस्ताक्षर के बाद लिखा जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि कभी कभी हस्ताक्षर सुपाठ्य नहीं होते। अर्ध सरकारी पत्र में इस स्थान पर पदनाम न देकर केवल नाम दिया जाता है। जहां किसी बड़े अधिकारी के स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति हस्ताक्षर करता है तो वहां कृते, कुलसचिव आदि का प्रयोग किया जाता है।

14. **प्रेषक का पदनाम** - इसे प्रेषक के नाम के बाद लिखा जाता है। (कहीं-कहीं यह नहीं भी दिया जाता है)

15. **संलग्नक** - ये पत्र के साथ लगने वाले कागज होते हैं और इनका उल्लेख बाईं ओर किया जाता है।

इन सभी अंगों को इस रूप में भी समझा जा सकता है-

(1) भारतीय संचार निगम लिमिटेड, नई दिल्ली

तार : ...................................
फोन : ..................................

(2) जे - 25, कंचनजंघा बिल्डिंग,
कनॉट प्लेस पो0 आ0
नई दिल्ली-110001

(3)संख्या............ दिनांक...............

(5) सर्वश्री........................
...........................
...........................

(6) विषय:

(7) महोदय,

(8) प्रारंभ

(9) कलेवर

(10) समापन

(11) भवदीय

(12) हस्ताक्षर

(13) नाम

(14) पदनाम

(15) संलग्नक

यहां उल्लेखनीय है ये सभी अंग पत्राचार के सभी रूपों में समान रूप से हों यह आवश्यक नहीं है। कई रूपों में अनेक अंग नहीं होते और अनेक रूपों में इनके स्थान बदल जाते हैं। जैसे कार्यालय ज्ञापन और ज्ञापन में संबोधन और अधोलेख नहीं होता। पत्र में प्राप्तकर्ता का नाम ऊपर होता है जबकि कार्यालय ज्ञापन और ज्ञापन में नीचे होता है। तार और अर्धसरकारी पत्रों में विषय नहीं दिया जाता। कई पत्रों में भवदीय या आपका बाईं ओर रहता है तो कई में दाहिनी ओर। अक्सर दाहिनी ओर ही लिखा जाता है।

## 16.5 कार्यालयी पत्राचार के विभिन्न रूप

कार्यालयी पत्राचार के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं-

- पत्र
- अर्धसरकारी पत्र
- तार
- त्वरित पत्र
- मितव्यय पत्र/कूट पत्र
- कार्यालय ज्ञापन
- ज्ञापन
- कार्यालय आदेश
- आदेश
- परिपत्र
- अनुस्मारक
- सूचना
- पृष्ठांकन
- विज्ञापन
- निविदा सूचना
- अधिसूचना
- प्रेस विज्ञप्ति और प्रेस नोट
- अनौपचारिक टिप्पणियां
- आवेदन-पत्र

- अभ्यावेदन
- प्राप्ति सूचना
- संकल्प

1. **पत्र:** इसका प्रयोग विदेशी सरकारों, राज्य सरकारों, संबद्ध और अधीनस्थ कार्यालयों, सरकारी उपक्रमों, निर्वाचन आयोग, सार्वजनिक निकायों आदि से औपचारिक पत्र-व्यवहार के लिए किया जाता है। यही नही जनता और सरकारी कर्मचारियों का संस्थाओं अथवा संगठनों के सदस्यों के साथ भी पत्र-व्यवहार हेतु पत्र का प्रयोग किया जाता है लेकिन भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के बीच पत्र-व्यवहार हेतु इसका प्रयोग नहीं होता। पत्रों में संबोधन 'महोदय' के रूप में होता है और पत्र के अंत में अधोलेख के रूप में 'भवदीय' का प्रयोग होता है।

यहां सरकारी पत्र का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन

सेक्टर 15,

नोएडा,

दिनांक..................

संख्या.............

डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
38, वृंदावन अपार्टमेंट्स,
प्लॉट नं. 110,
नई दिल्ली-110092

विषय: कार्यशाला में व्याख्यान हेतु निमंत्रण

प्रिय महोदय,

उक्त संदर्भ में कृपया दिनांक............के पत्र सं. ............का अवलोकन करें। हम अपने कार्यपालकों के लिए 21 मई 2012 को एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन कर रहे हैं। इसके

द्वितीय सत्र में निम्नलिखित कार्यक्रम के अनुसार कार्यशाला में व्याख्यान देने के लिए पधारने के कृपा करें-

समय - 2: 30 बजे विषय - पारिभाषिक शब्दावली

इसके लिए संस्थान के नियम के अनुसार मानदेय देने की भी व्यवस्था है।

धन्यवाद

आपका
द्विजेश उपाध्याय
राजभाषा अधिकारी

पत्र का प्रारंभ करते समय मूल रूप से निम्न प्रकार के वाक्य लिखे जाते हैं-

आपके दिनांक.............के पत्र संख्या.............के प्रसंग में निवेदन है कि पत्र संख्या...........को संबोधित आपके दिनांक..............के पत्र सं0 के उत्तर में मुझे यह सूचित करने का निदेश हुआ है कि...........................................

या

इस कार्यालय के पत्र संख्या...........दिनांक........के संदर्भ में-की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करते हुए निवेदन है कि............................

या

आज आपके प्रतिनिधि से टेलीफोन/मोबाइल पर बातचीत हुई उसकी पुष्टि में मुझे यह कहना है..........................

इस प्रकार के अन्य अनेक रूप हो सकते हैं।

2. **अर्ध सरकारी पत्र:** सरकारी अधिकारियों के आपसी पत्र-व्यवहार में विचारों और सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए अर्ध सरकारी पत्रों का प्रयोग किया जाता है। इन पत्रों में किसी निर्धारित क्रिया-विधि की आवश्यकता नहीं होती। जब अनुस्मारक भेजने पर भी कोई उपयुक्त उत्तर नहीं मिलता और किसी मामले पर किसी अधिकारी को ध्यान दिलाना हो या आकर्षित करना हो तो वहां अर्ध सरकारी पत्र लिखा जाता है। ये पत्र व्यक्तिगत रूप से किसी अधिकारी को उसके नाम से लिखे जाते हैं और अंत ‘आपका’ से होता है। अधिकारी इस पर हस्ताक्षर करते समय उसके नीचे आम तौर पर अपना नाम नहीं लिखते। इसमें विषय नहीं लिखा जाता और पत्र भेजनेवाले अधिकारी

का नाम और पदनाम ऊपर बाईं और दिया जाता है और प्राप्त करने वाले का पूरा पता बाईं ओर दिया जाता है। यहां इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है-

............... अ. स. प. स.

संयुक्त सचिव भारत सरकार,

नारकोटिक्स निदेशालय, ग्वालियर

दिनांक

प्रिय श्री.................

दिल्ली और अन्य महानगरों में क्रेंद्रीय स्वास्थ्य योजना लागू है। इसमें केंद्रीय कर्मचारियों को संतोषप्रद चिकित्सा सुविधाएं मिल रही हैं। मैंने अपने यहां भी यह योजना लागू करने के लिए आपसे वार्ता की थी।

अतः आपसे निवेदन है कि ऐसे जिला मुख्यालयों में जहां केंद्रीय कर्मचारियों की संख्या अधिक है, वहां केंद्र सरकार स्वास्थ्य योजना लागू करने पर विचार करें। आप इस संदर्भ में विचारों से अवगत कराएं।

आपका

क ख ग

संयुक्त सचिव

स्वास्थ्य मंत्रालय,

भारत सरकार

**3. तार:** ये अत्यंत जरूरी अवसर पर ही भेजे जाते हैं लेकिन आजकल वायरलेस, फैक्स, एस.एम.एस. और इंटरनेट की सुविधा होने के कारण इसकी उपयोगिता कम हो गई है। इसमें कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कही जाती है और अत्यंत सावधानी रखी जाती है। बात का मंतव्य बिल्कुल स्पष्ट और संक्षिप्त होता है लेकिन संक्षिप्तता के फेर में अटपटी भाषा के प्रयोग से बचना चाहिए अन्यथा अस्पष्टता आ जाएगी। तार दो प्रकार के होते हैं- शब्दबद्ध तार और बीजंक (कूट भाषा)। जैसे - निदेशक बीस को सुबह कालका मेल से चंडीगढ़ पहुंच रहे हैं

**4. त्वरित पत्र:** इन पत्रों की भाषा तार की ही तरह होती है और ये डाक से भेजे जाते हैं। प्राप्त करने वाले को भी उतनी ही प्राथमिकता देनी होती है। इसमें भेजने वाले और प्राप्त करने वाले के पते विस्तार से नहीं लिखे जाते और न ही विषय लिखा जाता है। इसका संकेत लाल रंग का होता है जो पत्र के ऊपर चिपका दिया जाता है और जिस पर एक्सप्रेस लिखा होता हैं। अब इसका प्रचलन समाप्त होता जा रहा है। यथा-

प्रेषक: रेलवेज, नई दिल्ली

सेवा में: सी0 सी0 सी0, मुगलसराय,

नई दिल्ली, दिनांक................

सं0.............विगत मास हुई रेल दुर्घटनाओं का विस्तृत ब्यौरा आपसे अभी भी अपेक्षित (,) मामला (,) कृपया तुरंत भिजवाएं (,) यदि कोई विशेष ब्यौरा नहीं मिल पाया हो तो उसकी सूचना भी तुरंत दीजिए (,)

संजीव कुमार सिंह
उप निदेशक,
रेलवे बोर्ड

**5. मितव्यय पत्र/कूट पत्र:** जब विदेशों में स्थित अपने दूतावासों तथा अन्य कार्यालयों से पत्राचार करते समय कोई गुप्त बात कहनी हो जिसे कूटभाषा में लिखना आवश्यक हो तो त्वरित पत्र के स्थान पर मितव्यय पत्र/कूट पत्र भेजा जाता है। इसे साइफर तार की तरह कूट भाषा में लिखकर राजनयिक थैले या रजिस्ट्री बीमा द्वारा भेजा जाता है। इसके द्वारा समुद्री तार का व्यय बचाया जाता है इसलिए इसे मितव्यय पत्र की संज्ञा दी गई है।

**6. कार्यालय ज्ञापन:** इनका प्रयोग विभिन्न मंत्रालयों द्वारा आपसी पत्राचार हेतु किया जाता है। इसे अन्य पुरुष की शैली में लिखा जाता है और संख्या सबसे ऊपर रहती है। इसमें संबोधन (महोदय, आदि) और अधोलेख (भवदीय, आदि) नहीं होता है। केवल लिखने वाले का पदनाम और हस्ताक्षर होते हैं। कार्यालय ज्ञापन जिस मंत्रालय को भेजा जाता है, उसका नाम हस्ताक्षर के नीचे पृष्ठ के बिल्कुल बाईं ओर लिखा जाता है।

संख्या.....................
भारत सरकार
................. मंत्रालय
नई दिल्ली दिनांक..................

विषय: केंद्रीय विश्वविद्यालयों में राजभाषा हिंदी को उचित स्थान देना

विभिन्न केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में अनेक विषयों की पढ़ाई हिंदी माध्यम में होती है लेकिन अनेक विभाग इस संबंध में उपेक्षित दृष्टिकोण अपनाते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों में राजभाषा हिंदी को उचित स्थान दिया जाए। मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि विवरणिकाएं, वार्षिक विवरण आदि हिंदी में मुद्रित की जाएं। इन सभी बिंदुओं को सुनिश्चित करने के

लिए एक समिति बनाई जाए जो विश्वविद्यालयों में हिंदी के प्रयोग के कार्यान्वयन में सहयोग कर सके।

हस्ताक्षर

क ख ग

अवर सचिव, भारत सरकार

सेवा में,

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग,

कुलपति, विभिन्न केन्द्रीय विश्वविद्यालय

प्रतिलिपि जानकारी के लिए मंत्री, केंद्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद, नई दिल्ली को प्रेषित।

हस्ताक्षर

क ख ग

अवर सचिव, भारत सरकार

7. **ज्ञापन:** ज्ञापन का प्रयोग छुट्टी की स्वीकृति/अस्वीकृति, विलंब से आने के कारण, प्रार्थियों को नौकरी आदि के संबंध में जानकारी देने के लिए किया जाता है। यह सरकारी आदेश के समान नहीं होते और अन्य पुरुष में इन्हें लिखा जाता है और न ही इसमें संबोधन होता है और न अधोलेख, केवल अधिकारी का हस्ताक्षर और उसका पदनाम होता है। पाने वाले का नाम और या पदनाम हस्ताक्षर के नीचे बाईं ओर लिखा जाता है। इसके विपरीत अंतरकार्यालय ज्ञापन का प्रयोग सरकारी उपक्रमों में एक विभाग/कार्यालय को सूचना के आदान-प्रदान के लिए किया जाता है। ये भारत सरकार के मंत्रालयों/कार्यालयों/विभागों में नहीं लिखे जाते। यथा-

विषय: छुट्टी की स्वीकृति

श्री.......................................जो कि इस समय उपकुलसचिव के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय में काम कर रहे हैं किंतु मूलतः वे...............................................मंत्रालय के हैं, के दिनांक.........................के आवेदन के संदर्भ में और दिल्ली विश्वविद्यालय के दिनांक...................के ज्ञापन से आगे श्री................................को निम्न रूप में छुट्टी में वृद्धि स्वीकार की जाती है-

1. असाधारण छुट्टी...............दिन,...........से..............तक

2. अर्जित छुट्टी.....................दिन,............से.............तक

श्री..........को छुट्टी के पहले............और बाद में............जोड़ने की भी अनुमति दी गई है/थी।

अवर सचिव,
भारत सरकार

सेवा में,
श्री..........................
द्वारा ..........................
प्रतिलिपि

1.

2.

कृते अवर सचिव, भारत सरकार

**8. कार्यालय आदेश:** इसका प्रयोग मंत्रालयों, विभागों तथा कार्यालयों में स्थानीय प्रयोजनो के लिए होता है। अनुभागों या अधिकारियों के बीच कार्य-विभाजन, कर्मचारियों की तैनाती, स्थानांतरण, छुट्टी, पदोन्नति आदि विषयों पर 'कार्यालय आदेश' के रूप में आदेश प्रसारित किए जाते हैं। कार्यालय आदेश के ऊपर संख्या, सरकार और मंत्रालय/कार्यालय का नाम अंकित रहता है। उसके बीचोंबीच कार्यालय आदेश और साथ संख्या लिखी जाती है। नीचे

दाहिनी ओर आदेश देने वाले अधिकारी के हस्ताक्षर और पद नाम होता है। इसका लेखन भी अन्य पुरुष में किया जाता है। उदाहरणार्थ-

भारत सरकार
.............मंत्रालय
................आयोग, नई दिल्ली.
दिनांक........................

कार्यालय आदेश संख्या...........................

......................पर छात्रवृत्ति से संबंधित सभी कार्य...........आयोग में संयुक्त निदेशक (छा0 क0) देख रहे थे। कार्य की अधिकता के कारण उपनिदेशक (छा0क0) का एक नया पद सृजित किया गया है। उस पद पर श्री...................ने कार्यभार संभाल लिया है। अब छात्रवृत्ति से संबंधित कार्य उक्त दोनों अधिकारियों में निम्नलिखित रूप में आवंटित किया गया है-

संयुक्त निदेशक (छा0 क0) उप निदेशक (छा0 क0)

1. 1.

2. 2.

3. 3.

**9. आदेश:** इस प्रकार के पत्रों के माध्यम से केंद्र सरकार के कार्यालयों, विभागों आदि में नए पदो के सृजन, कर्मचारियों से संबंधित महत्वपूर्ण विषयों पर सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों की जानकारी, प्रशासनिक मामलों में की गई कार्रवाई की सूचना, शक्तियों के प्रत्यायोजन आदि की जानकारी दी जाती है। यथा-

संख्या.....................
भारत सरकार
विभाग.................... नई दिल्ली,
दिनांक..........

दिनांक.......................... के आदेश संख्या.......................की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है जिसमें यह निर्धारित किया गया हे कि सभी कार्य दिवसों में मध्यांतर दोपहर बाद 1.30 से 2.00 बजे तक होगा। सभी कर्मचारियों को यह सूचित किया जाता है कि वे मध्यांतर की अवधि 30 मिनट तक सीमित रखे और 2 बजे आकर अपना कार्य शुरू कर दें।

क ख ग
अवर सचिव, भारत सरकार

**10. परिपत्र:** परिपत्र उन पत्रों, कार्यालय ज्ञापन, ज्ञापन, सूचनाएं, आदेश आदि को कहा जाता है जिनकी जानकारी अनेक स्थानों को देनी पड़ती है या जिनके आधार पर अनेक स्थानों से जानकारी मंगानी होती है। इन पत्रों को एक साथ अनेक स्थानों पर भेजा जाता है। परिपत्र में सबसे ऊपर दाई ओर संख्या होती है और शेष स्वरूप वही रहता है जिस रूप (पत्र, कार्यालय ज्ञापन, ज्ञापन आदि) में वे जारी होते हैं। सरकारी पत्र और परिपत्र में मुख्य अंतर यह है कि सरकारी पत्र में जो भवदीय/भवदीया/आपका जैसे शब्दों का प्रयोग होता है, वह प्रयोग परिपत्र में नहीं किया जाता। यह अन्य पुरुष के रूप में लिखा जाता है। इसमें संख्या, स्थान, दिनांक आदि सरकारी पत्र की भांति होता है। इसे 'गश्ती पत्र' भी कहा जाता है। यहां परिपत्र का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

क्रमांक.............

दिल्ली सरकार

...........विभाग, नई दिल्ली..........

पिछले कुछ दिनों से यह देखा गया है कि कॉलेजों में सफाई की व्यवस्था ठीक नहीं हो रही है। कमरों और बरामदों में जगह-जगह गंदगी है और मकड़ी के जाले लगे हुए हैं। समिति ने विभिन्न कॉलेजों के निरीक्षण में इसे अत्यंत आपत्तिजनक माना है। अतः सभी सफाई कर्मचारियों को इस परिपत्र द्वारा सूचित किया जाता है कि यदि उनके कार्य में भविष्य में कोई कमी पाई गई तो उनके विरुद्ध कार्रवाई की जाएगी।

मदन मोहन जोशी
सचिव,
शिक्षा मंत्रालय
दिल्ली सरकार

11. **अनुस्मारक:** अनुस्मारक किसी पूर्व पत्र या अन्य किसी रूप (कार्यालय ज्ञापन, ज्ञापन, अर्ध सरकारी पत्र, तार आदि) को किसी को स्मरण कराने के लिए भेजा जाता है। इसीलिए इसका अपना कोई रूप नहीं होता। यदि एक ही विषय पर एक से अधिक बार अनुस्मारक भेजा जाता है तो सबसे ऊपर दाईं ओर लिख दिया जाता है कि 'दूसरा अनुस्मारक', 'तीसरा अनुस्मारक।' इससे पत्र पढ़ने का ध्यान तत्काल उस पर जाता है। जैसे-

संख्या................
भारत सरकार
...........विभाग, नई दिल्ली

दिनांक..............

विषय: .................................

महोदय,

श्रम मंत्रालय के.................दिनांक................के संबंध में यह पूछने का निर्देश हुआ है कि उक्त विषय संबंधी आपका अभिमत अभी तक नहीं मिला है। वह आप कब तक भेजेंगे ?

आपका
विश्वासपात्र
सचिव,भारत
सरकार

**12. नोटिस:** इसे सूचना भी कहते हैं। इसके द्वारा किसी वर्ग विशेष/सर्व साधारण को जानकारी दी जाती है जो देने योग्य होती है और इसे नोटिस बोर्ड पर लगा दिया जाता है। इसे परिपत्र की तरह सभी अनुभागों में भेजा भी जाता है और कुछ मामलों में (कोर्ट आदि से संबंधित नोटिस) डाक से प्रेषित किया जाता है। उदाहरणार्थ-

संख्या...........
भारत सरकार
...........विभाग नई दिल्ली, दिनांक.........

यह देखा गया है कि चतुर्थ श्रेणी के अनेक कर्मचारी, जिन्हें वर्दी प्रदान की गई है वे बिना वर्दी पहने कार्यालय में आते हैं। सभी चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को यह चेतावनी दी जाती है कि जो भी प्रदान की गई वर्दी के बिना कार्यालय में पाया जाता है तो उसके विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई की जाएगी और लगातार ऐसा करने वालों को नौकरी से निकाला भी जा सकता है। सभी को अपनी वर्दी साफ रखनी चाहिए।

क ख ग
अवरसचिव,
भारत सरकार

**13. पृष्ठांकन:** जब कोई कागज मूल रूप में भेजने वाले को ही लौटाना हो या किसी और मंत्रालय या संबद्ध या अधीनस्थ कार्यालय को सूचना, टीका-टिप्पणी या निपटाने के लिए मूल पत्र या उसकी नकल के रूप में भेजना हो तब इसका प्रयोग किया जाता है। पृष्ठांकन में औपचारिक संबोधन, उपसंहार और समापन नहीं होता। इसमें अत्यधिक संक्षेप में लिखा जाता है। जैसे-

-को मूल रूप में प्रेषित

-को उनके पत्र संख्या-दिनांक-के संबंध में प्रेषित

-को सूचनार्थ व उचित कार्रवाई के लिए प्रेषित

-को आवश्यक जांच के लिए प्रेषित

-को इस अनुदेश के साथ प्रेषित कि-

उदाहरण

संख्या.........
भारत सरकार
नारकोटिक्स विभाग,
नई दिल्ली, दिनांक.................

......................को आयोजित किए गए विदेशी प्रतिनिधियों के सम्मेलन के शुभ अवसर पर नारकोटिक्स विभाग द्वारा निकाली जा रही विवरणिका की प्रति अवलोकन हेतु भेजी जा रही है।

क ख ग
अवर सचिव

सेवा में ......................

.................................

**14. विज्ञापन:** इसका अर्थ होता है विशेष रूप से सूचना देना। विभिन्न कार्यालय अनेक प्रकार के विज्ञापन निकालते हैं जो नौकरी से संबंधित भी होते हैं, नीलामी से भी संबंधित भी होते है और कार्यालय के स्थान और समय के परिवर्तन आदि से भी संबंधित भी होते हैं।

**15. निविदा सूचना:** इस प्रकार के पत्रों में सरकार की ओर से सामान खरीदने, निर्माण कार्य को पूरा करने या किसी कार्य को करने के लिए निविदा सूचनाएं जारी की जाती हैं। इसमें जो भी कार्य किया जाना है उसका पूरा विवरण दिया जाता है। इसका एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है-

दिल्ली नगर निगम
निविदा सूचना नं0 3, सन् 2011-2012
शास्त्री नगर, दिल्ली-110052 में ए ब्लॉक की 5 गलियों पर सीमेंट की सड़क बनाने हेतु दिल्ली नगर निगम द्वारा योग्य वर्ग में पंजीकृत ठेकेदारों की ओर से निर्धारित प्रपत्रों में निविदाएं आमंत्रित करता है। प्रपत्र दिल्ली नगर निगम, टाउन हाल से 17-05-2011 से 16-06-2011 तक प्राप्त किए जा सकते हैं। भरे हुए मोहरबंद निविदा प्रपत्र, दिल्ली नगर निगम, टाउन हाल में दिनांक 30-06-2011 को शाम 4.00 बजे तक स्वीकार किए जाएंगे।

निविदा राशि...................

अनुमानित राशि................

धरोहर राशि......................

पूरा करने का समय...........

अधिशासी अभियंता (परियोजना)

**16. अधिसूचना:** नियमों और प्रशासनिक आदेशों की घोषणा, शक्तियों का सौंपा जाना, राजपत्रित अधिकारियों की नियुक्ति, छुट्टी, तरक्की आदि का भारत के राजपत्र में प्रकाशित करके अधिसूचित करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त अध्यादेश, अधिनियम, स्वीकृत विधेयक तथा संकटकालीन घोषणाएं भी अधिसूचित की जाती है। कभी-कभी यदि अधिसूचना बहुत महत्वपूर्ण है तो 'असाधारण राजपत्र' भी प्रकाशित किया जाता है। उदाहरणार्थ-

संख्या.............................

दिल्ली प्रशासन
नई दिल्ली

दिनांक...............

अधिसूचना

भूकंप आपदा प्रबंधन से संबंधित निदेशक श्री............................ने अपने वर्तमान पद का कार्यभार दिनांक.............................के पूर्वाह्न से संभाला।

आदेश से

योगेश मिश्रा
अवर सचिव,
दिल्ली प्रशासन

प्रतिलिपि निम्नलिखित के सूचनार्थ प्रेषित

-सचिव

-मुख्य अभियंता

-राजपत्र में प्रकाशनार्थ

**17. प्रेस विज्ञप्ति या प्रेस नोट:**सरकार के किसी निर्णय अथवा महत्वपूर्ण जानकारी, जिसका बहुत अधिक प्रचार करने की आवश्यकता होती है, उसके लिए प्रेस विज्ञप्ति या प्रेस नोट जारी किया जाता है। प्रेस विज्ञप्ति प्रेस नोट की अपेक्षा अधिक औपचारिक होती है इसलिए उसे यथावत छापा जाता है। इसमें कोई हेर-फेर नहीं हो सकता जबकि प्रेस नोट को आवश्यकता के अनुसार छोटा या बड़ा किया जा सकता है। यथा-

(सोमवार..................को प्रातः.............बजे से पूर्व प्रकाशित या प्रसारित न किया जाए)

प्रेस विज्ञप्ति

भारत सरकार और पाकिस्तान सरकार के बीच कूटनीतिक संबंध

भारत सरकार और पाकिस्तान की सरकार आपस में इस बात पर पूर्ण रूप से सहमत हो गई हैं कि दोनों देशों में फिर से कूटनीतिक संबंध स्थापित किए जाएं। दोनों देश इस बात पर भी सहमत है कि किसी भी आतंकी गतिविधि को स्वीकार न किया जाए और पाकिस्तान किसी भी स्थिति में अपनी भूमि का उपयोग भारत के विरुद्ध आतंकी गतिविधि होने के लिए प्रयोग नहीं करने देगा। पाकिस्तान के इस वचन को भारत सरकार ने सराहा। मुख्य सूचना अधिकारी, प्रेस सूचना ब्यूरो, नई दिल्ली को इस प्रेस विज्ञप्ति को जारी करने तथा इसे विस्तृत रूप से प्रसारित करने हेतु प्रेषित।

ह.................

(.....................)

संयुक्त सचिव,

भारत सरकार

विदेश मंत्रालय,

नई दिल्ली,

दिनांक.............

**18. अनौपचारिक टिप्पणियां:** किसी मंत्रालय या मंत्रालय से संबद्ध कार्यालय के बीच प्रस्ताव पर अन्य मंत्रालयों के विचार, टीका-टिप्पणी आदि प्राप्त करने के लिए, मौजूदा अनुदेशों के बारे में स्पष्टीकरण आदि कराने के लिए या कोई सूचना या कागज-पत्र मंगवाने के लिए पत्राचार के इस तरीके का प्रयोग किया जाता है। इसे अशासनिक ज्ञापन भी कहा जाता है। इसमें संबोधन या अंत में किसी प्रकार के आदरसूचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता तथा संख्या और दिनांक प्राप्त करने वाले मंत्रालय/विभाग के नीचे रेखा खींचकर दी जाती है। इसे दो रूपों में भेजा जाता है। इसे या तो मिसिल पर अपनी टिप्पणी लिखकर उसी को मंत्रालय/कार्यालय को भेजा जाता है या एक नोट शीट पर टिप्पणी लिखकर तथा टंकित कराकर भेजा जाता है जो अपने आपमें पूर्ण होती है। इसमें न तो कोई संख्या डाली जाती है और न संबोधन होता है और न कोई आदरसूचक शब्द। केवल पदनाम के साथ हस्ताक्षर कर दिया जाता है और जहां भेजना है, उसका नाम व पता होता है। सेवा में नहीं लिखा जाता। सबसे नीचे एक रेखा खींचकर भेजने वाले मंत्रालय/कार्यालय का नाम पता, संख्या और दिनांक अंकित किया जाता है। जैसे-

रेल मंत्रालय

विषय: हल्द्वानी में रेलवे कंप्यूटरीकृत आरक्षण केंद्र के लिए स्थान

हल्द्वानी में रेलवे ने पर्यटकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए एक कंप्यूटरीकृत आरक्षण केंद्र खोलने का निश्चय किया है। इसके लिए वहां कोई सरकारी भवन उपलब्ध नहीं है। इससे पूर्व कि मामले पर अंतिम निर्णय किया जाए, निर्माण और आवास मंत्रालय देखे और यह बताने की कृपा करें कि क्या नए आरक्षण क्रेंद्र खोलने के लिए प्रस्तावित स्थान का किराया उपयुक्त है।

क ख ग

अवर

सचिव

निर्माण तथा

आवास मंत्रालय

रेल मंत्रालय अ0 ट0 सं0.............................

दिनांक...................................................

**20. आवेदन पत्र:** ये नौकरी आदि के संबंध में भी होते हैं और कार्यालय में कार्यवाही (छुट्टी, स्थानांतरण, वेतन वृद्धि, अग्रिम राशि, आवास आवंटन आदि) से भी संबंधित होते हैं। इनकी विविधता समय और विषय के अनुसार निर्भर करती है।

सेवा में,

प्राचार्य,

हिंदू कॉलेज,

दिल्ली

महोदय,

निवेदन है कि अस्वस्थ होने के कारण मैं कार्यालय में उपस्थित होने में असमर्थ हूं। कृपया मुझे 2 दिन का आकस्मिक अवकाश देकर अनुगृहीत करें।

सधन्यवाद

दिनांक.................. भवदीय

हस्ताक्षर

................

नाम

.................

पदनाम ..................

**21. अभ्यावेदन:** यह भी आवेदन पत्र का एक ही रूप है। इसे प्रार्थी अपने प्रति हो रहे दुर्व्यवहार, अनाचार, अत्याचार आदि को दूर कराने हेतु प्रशासन, प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति आदि को लिखता है। इसमें करुणा और दया पैदा करने वाले शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

निवेदन है कि कार्यालय आदेश संख्या.....................दिनांक................द्वारा मेरी पदोन्नति वरिष्ठ हिंदी व्याख्याता के रूप में की गई थी लेकिन अभी तक पदोन्नति के उपरांत (1 वर्ष बीतने पर भी) मुझे वेतन संबंधी लाभ नहीं दिया गया है। अनुरोध है कि मेरे पदानुसार मेरा वेतन शीघ्र नियत किया जाए और बकाया भुगतान का भी आदेश दिया जाए।

सधन्यवाद

भवदीय

क ख ग

**22. प्राप्ति सूचना:** इस प्रकार के पत्रों में पत्र या कार्यालय ज्ञापन भेजने वाले कार्यालय इस बात का उल्लेख कर देते हैं कि इसकी प्राप्ति स्वीकार करें। ऐसी स्थिति में प्राप्त करने वाले कार्यालय को लिखित रूप में पत्र की प्राप्ति की सूचना देनी होती है। उदाहरण के लिए-

संख्या....................

भारत सरकार

.........................विभाग

नई दिल्ली,

दिनांक............

विषय: .............................................................

महोदय,

उपर्युक्त विषय पर आपके दिनांक..................के पत्र संख्या..............की प्राप्ति स्वीकार की जाती है।

भवदीय
क ख ग
कृते अवर सचिव,
भारत सरकार

**23. संकल्प:** यह सरकारी पत्राचार का एक ऐसा रूप है जिसका प्रयोग विशेष परिस्थितियों में किया जाता है। ये परिस्थितियां निम्नांकित हो सकती हैं-

-जब सरकार नीति संबंधी किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर सार्वजनिक घोषणा करती है।

-जांच आयोग/समिति के प्रतिवेदनों पर कोई घोषणा करनी होती है।

-जब किसी जांच आयोग/समिति की घोषणा की जाती है और उसके क्षेत्राधिकार व शक्तियों का उल्लेख किया जाता है।

यह अन्य पुरुष में लिखा जाता है और राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है। प्रस्तावना (पृष्ठभूमि), संकल्प (रूपरेखा), आदेश और आवश्यक निर्देश (जिनको इसकी प्रति भेजनी है) इसके चार अंग होते हैं। इसमें संबोधन, अधोलेख का स्थान नहीं होता।

## 16.6 व्यावसायिक पत्र के अर्थ और प्रकार

अब तक आप कार्यालयी पत्राचार के स्वरूप और उदाहरणों से परिचित हो गए होंगे। अब आपको व्यावसायिक पत्राचार के बारे में भी समझाना आवश्यक है क्योंकि आज के समय में व्यवसाय चलाने के लिए इन पत्रों की विशेष उपयोगिता है। व्यावसायिक पत्र वे होते हैं जो कोई व्यक्ति, कंपनी या संस्था अपने व्यवहार हेतु प्रयोग करते हैं। इन पत्रों को अनेक वर्गों में बांटा जा सकता है, जैसे-

1. बैंक पत्र
2. निविदा पत्र
3. बीमा पत्र
4. मूल्य सूची मांगने के लिए पत्र
5. दर जानने के लिए पत्र
6. क्रयादेश संबंधी पत्र
7. भुगतान संबंधी पत्र
8. विक्रय प्रस्ताव संबंधी पत्र
9. एजेंसी लेन-देन से संबंधित पत्र
10. व्यापारिक संदर्भ संबंधी पत्र
11. वस्तु विशेष का नमूना मंगाने संबंधी पत्र आदि।

## 16.7 व्यावसायिक पत्र के अंग

व्यावसायिक पत्र के निम्नलिखित अंग होते हैं-

1. मुद्रित शीर्ष (संस्था या संस्थान का)

   तार पता

   दूरभाष संख्या/फैक्स नं0/ईमेल का पता

   कूट संकेत (कोड)

   पूरा पता

2. दिनांक
3. पत्र संख्या

4. प्राप्तकर्ता का नाम (संस्था/संस्थान का नाम-पता सहित)

5. संदर्भ

6. औपचारिक संबोधन

7. आरंभिक वाक्य

8. कथ्य विषयवस्तु

9. अंतिम अनुशंसात्मक वाक्य

10. प्रेषक या उसके स्थानापन्न व्यक्ति के हस्ताक्षर

11. पद-स्वामी, प्रबंधक आदि

12. संलग्न पत्र या अन्य सामग्री आदि का निर्देश (यदि है तो)

13. पुनश्च (यदि आवश्यक हो)

यहां विषय की समझ को विकसित करने के लिए आपके सामने व्यावसायिक पत्राचार के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं

एजेंसी की प्राप्ति के लिए पत्र

महेंद्र कुमार दिनेश कुमार
इलेक्टॉनिक उत्पादों के थोक व्यापारी,
2331, लक्ष्मी नगर
दिल्ली-110054

दिनांक - 15 मई 2012

पत्र संख्या - एजेंसी 235/क/2012

सेवा में,
व्यवसाय प्रबंधक,
वीडियोकॉन बंगलौर

विषय: वीडियोकॉन के उत्पादों की एजेंसी

प्रिय महोदय,

हम आपके द्वारा दिए गए विज्ञापन के संदर्भ में वीडियोकॉन के इलेक्टॉनिक उत्पादों की एजेंसी लेने के लिए आवेदन कर रहे हैं। हम पिछले 5 वर्षों से इलेक्टॉनिक उत्पादों के व्यापारी हैं। इस समय हमारे पास सैमसंग और ओनिडा की एजेंसियां हैं। आप हमारी कार्य-कुशलता और साख के संबंध में इन संस्थानों से पूछताछ कर सकते हैं। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि हमारे पास आपकी एजेंसी होने से आपके व्यापार में पर्याप्त बढ़ोत्तरी होगी। एजेंसी लेने हेतु जो आपकी शर्तें हैं वे सभी हमें स्वीकार हैं और हमारे पास आपके उत्पादों की प्रदर्शनी हेतु पर्याप्त स्थान है। हमारे आसपास किसी व्यापारी के पास वीडियोकॉन की एजेंसी नहीं है।

अतः आपसे निवेदन है कि आप हमें अपनी सेवा का अवसर अवश्य दें।

सधन्यवाद,

भवदीय

आशुतोष शुक्ला
प्रबंधक,
नवरंग इलेक्टॉनिक्स,
दिल्ली - 26457894

एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है जो बीमा के संबंध में है।

प्रेषक: उर्वी मिश्र
3/45 बी, सदर,
मथुरा (उ0 प्र0)

सेवा में,

शाखा प्रबंधक,
जीवन बीमा निगम,
मथुरा शाखा
उ0 प्र0

संदर्भ: जीवन बीमा पॉलिसी संख्या 02353644

महोदय,

निवेदन है कि मेरी जीवन बीमा पॉलिसी (संख्या 02354644) गत वर्ष दिसंबर में पूर्ण (मैच्योर) हो चुकी है। मैंने अप्रैल 1990 में 50 हजार रुपए की 20 वर्षों के लिए मनी बैक पॉलिसी कराई थी। इस दौरान मैं अपने बीमा की वार्षिक किश्तें नियमित रूप से जमा करती रही हूं जिसकी सभी रसीदें मेरे पास हैं। अतिंम किस्त दिसंबर 1990 में जमा कराई गई थी। अंतिम किश्त जमा करने के बाद भी एक वर्ष बीत चुका है।

अतः आपसे अनुरोध हैं कि मेरी पॉलिसी की पूरी रकम, लाभांश और ब्याज सहित यथाशीघ्र भिजवाने की व्यवस्था करें।

धन्यवाद

दिनांक भवदीय
15 मई, 2012 उर्वी
मिश्र

संलग्नक:

1. जीवन बीमा पॉलिसी संख्या 02354644
2. उपर्युक्त पॉलिसी की अंतिम किश्त की रसीद

## 16.8 सारांश

पत्राचार की इस इकाई में पत्राचार की परिभाषा पर विचार किया गया है। पत्राचार जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। कार्यालय और व्यवसाय में तो इसकी सर्वाधिक उपयोगिता है हालांकि आज ई-मेल और फैक्स की सुविधा भी प्राप्त है। 'पत्राचार' एक प्रक्रिया या पद्धति है जिसमें पत्र लेखन से लेकर पत्र प्राप्ति निहित है। यह उर्दू में 'खत-किताबत' कहलाता है और अंग्रेजी में इसे 'करेंस्पोंडेंस' कहा जाता है। वास्तव में कार्यालयों आदि में सरकार की रीति नीति की व्याख्या और कार्य के संबंध में किसी भी संगठन, संस्था, व्यक्ति आदि को लिखित रूप में जो कुछ भी कहा अथवा बताया जाता है, वह सब पत्राचार की कोटि में आता है। पत्राचार सरल, सहज और स्पष्ट होना चाहिए। संक्षिप्तता पत्राचार का अनिवार्य गुण है लेकिन उसे अपने आप में पूर्ण होना चाहिए। पत्र आकर्षक और सुरुचिपूर्ण होना चाहिए। उसमें रोचकता होना चाहिए और यथास्थान विराम चिह्नों का सटीक प्रयोग होना चाहिए ।मूल रूप से यहां कार्यालयी पत्र और व्यावसायिक पत्र और उनके अंगों तथा लेखन-पद्धति पर पर विचार किया गया है। प्रेषक, प्राप्तकर्ता, विषय, दिनांक, संदर्भ, कलेवर, अधोलेख, पदनाम, हस्ताक्षर, संबोधन, समापन आदि पत्राचार के मुख्य अंग है जिनसे आप पूर्व लिखित वर्णन में भली भांति अवगत हो गए होंगे। पत्राचार की भाषा भी शालीन, स्पष्ट, छोटे-छोटे वाक्यों वाली होनी चाहिए। सभी अनुच्छेद परस्पर संबद्ध होने चाहिए।

## 16.9 शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| उच्चरित | - | बोला हुआ |
| बहुज्ञता | - | बहुत अधिक जानने का भाव |
| मनोहारी | - | मन को हरने वाला |
| शालीनता | - | स्वभाव का अच्छापन , सज्जनता |
| प्रतिकूल | - | उलटा , विपरीत |
| ब्यौरा | - | विवरण |
| सृजित | - | निर्माण करना |

## 16.10 संदर्भ ग्रंथ सूची


- रघुनंदनप्रसाद शर्मा, (1992) प्रयोजनमूलक हिंदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
- गिरधर रावत, (2011), कार्यालयीन हिंदी, आशा बुक्स, ई-1/265, सोनिया विहार, दिल्ली
- कैलाशचंद्र भाटिया, (2005), प्रयोजनमूलक हिंदी: प्रक्रिया और स्वरूप, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली


## 16.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री


- प्रयोजनमूलक हिंदी, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित व डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह
- प्रयोजनमूलक भाषा और कार्यालयी हिंदी, डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी
- प्रयोजनमूलक हिंदी, डॉ. दंगल झाल्टे
- कार्यालयीन हिंदी, डॉ. केशरीलाल वर्मा
- प्रयोजनमूलक हिंदी, डॉ. राकेश कुमार पाराशर

## 16.11 निबंधात्मक प्रश्न

1 . पत्राचार क्या है? स्पष्ट कीजिए तथा उसकी प्रमुख विशेषताओं एवं पत्राचार के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालिए .

2 . व्यावसायिक एवं कार्यालयी पत्र लेखन से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से समझाएँ

# इकाई 17 भाषा कंप्यूटिंग (कंप्यूटर और हिंदी)

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 कंप्यूटर और उसकी उपयोगिता
17.4 कंप्यूटर और हिंदी
17.5 कंप्यूटर और हिंदी अनुवाद
17.6 कंप्यूटर और हिंदी शिक्षण
17.7 कंप्यूटर और श्रुतलेखन, यूनिकोड
17.8 कंप्यूटर पर हिंदी-प्रयोग के विकास में सहायक अन्य सॉफ्टवेयर
17.9 इंटरनेट और हिंदी
17.10 सारांश
17.11 शब्दावली
17.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
17.13 निबंधात्मक प्रश्न

## 17.1 प्रस्तावना

भाषा जीवन का अनिवार्य अंग है, उसी प्रकार कंप्यूटर भी जीवन का अनिवार्य अंग हो गया है। भाषा भी जरूरी है और कंप्यूटर भी। एक प्रकार से ज्ञान और तकनीक के संबंध से विकसित हुए लाभों से आपका साक्षात्कार होगा। इस इकाई में भाषा कंप्यूटिंग की चर्चा की जा रही है। इस इकाई में आप कंप्यूटर और उसकी उपयोगिता से परिचित होंगे। आप कंप्यूटर और हिंदी के संबंध को भी जान पाएंगे। आपको हिंदी को विकसित करने वाले सॉफ्टवेयरों से भी परिचित कराया जाएगा और इंटरनेट पर हिंदी की जो स्थिति है, उसका भी परिचय आपको मिलेगा। हिंदी अनुवाद में कंप्यूटर की क्या उपयोगिता है, इसे भी आपके सामने प्रस्तुत किया जाएगा। यूनिकोड पर विशेष बल इस इकाई में दिया गया है। आशा है कि इसे पढ़ने के बाद आप भाषा कंप्यूटिंग को भली-भांति समझ सकेंगे।

## 17.2 उद्देश्य

इस इकाई का पढ़ने के बाद आप यह जान पाएंगे कि-

- कंप्यूटर क्या है और उसकी कौन-कौन से लाभ हैं ?
- कंप्यूटर और भाषा का कैसा संबंध (विशेषतः हिंदी भाषा) है ?
- कंप्यूटर पर हिन्दी में अनुवाद की क्या स्थिति है ?
- कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी कैसे सीखी जा सकती है और हिंदी-ज्ञान का मूल्यांकन कैसे किया जा सकता है।
- यूनिकोड क्या है और उसका उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है ?
- हिंदी भाषा के प्रयोग को कंप्यूटर पर सरल बनाने वाले विभिन्न सॉफ्टवेयर की जानकारी भी इस इकाई में मिलेगी।

## 17.3 कंप्यूटर और उसकी उपयोगिता

कंप्यूटर 'कम्प्यूट' शब्द से बना है जिसका अर्थ है गणना। लेकिन आज कंप्यूटर केवल गणना तक ही सीमित नहीं है बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में उसकी उपयोगिता बढ़ती जा रही है। बिल गेटस का कथन है कि 'समूची संचार क्रांति महज कंप्यूटर के विभिन्न उपयोग मात्र हैं।' कंप्यूटर में अपार गति होती है वह जटिल से जटिल गणनाओं को भी अत्यंत तीव्रता से हल कर देता हैं उसमे अपार संग्रह क्षमता होती है। कंप्यूटर के परिणाम शुद्ध और त्रुटिहीन होते हैं। वह स्वचालित होता है बस आपको उसे क्रमबद्ध रूप में निर्देश देना पड़ता है। इसे आम भाषा में प्रोग्राम कहा जाता है। जब कभी प्रयोग करने वाला व्यक्ति गलती करता है तो कंप्यूटर उसे रास्ता भी बताता है। एक बहुआयामी उपकरण होने के कारण इसका उपयोग शिक्षा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, वाणिज्य, लेखन, प्रकाशन, कानून आदि सभी क्षेत्रों में हो रहा है। यह एक ऐसा यंत्र है जो मनुष्य के मस्तिष्क की भाँति काम करता है लेकिन मनुष्य के मस्तिष्क से कई गुना अधिक तेज। यह गणितीय गणनाओं और विभिन्न आँकड़ों का विश्लेषण करने के साथ-साथ उन्हें अपनी स्मृति में रख सकता है। यह वस्तुतः एक इकाई नहीं बल्कि विभिन्न इकाइयों का समूह है। कंप्यूटर का कार्य आदेश लेना, आदेशों को कार्यक्रम के रूप में संचित करना, उसका क्रियान्वयन करना, परिणाम संचित करना और आदेशानुसार परिणामों को सामने रखना है। बारम्बार निर्विघ्न आवृत्ति इसकी विशेषता है।

कंप्यूटर आज मानव जीवन का अनिवार्य अंग बन गया है। जिस प्रकार रेडियो और टेलीविजन मानव जीवन के आवश्यक अंग बन गए थे, ठीक वही स्थिति आज कंप्यूटर की है। भारतीय जनमानस को इस ओर गतिशील करने के लिए सरकार भी प्रयासरत है। इस दिशा में सरकार

ने 'आकाश' टैबलेट निकाला है। अन्य प्राइवेट कंपनियां भी अलग-अलग प्रयोगों को लेकर नए-नए टैबलेट निकाल रही हैं ताकि अधिक-से अधिक लोगों की पहुंच में कंप्यूटर पर काम करने में हो। कंप्यूटर मनुष्य की गतिशीलता में वृद्धि करता है, विभिन्न दस्तावेजों का रिकार्ड रखने में मदद करता है और बहुत सारी सूचनाएं प्रदान करता है। इंटरनेट के प्रयोग द्वारा वह व्यक्ति को विश्व समुदाय से जोड़ता है और संसार से अपरिचित नहीं रहने देता। इसीलिए इसकी उपयोगिता अत्यधिक है। रेलवे आरक्षण केन्द्र, विश्वविद्यालयों, कार्यालयों आदि सभी में इसके लाभ को आप देख सकते हैं, महसूस कर सकते हैं।

प्रारंभ में कंप्यूटर को ज्ञान-विज्ञान के भंडार के रूप में देखा जाता था। फिर उसे मनोरंजन से जुड़ा हुआ स्वीकार किया गया और धीरे-धीरे यह हमारी रोजमर्रा की जीवन-शैली का अंग बन गया। ई बैंकिग, ई पॉलिटिक्स, ई ट्रेडिंग आदि सभी कुछ कंप्यूटर के सहयोग से हो रहा है। यह बात और है कि इन मामलों में पर्याप्त सावधानी की अपेक्षा है। कंप्यूटर और इंटरनेट के संयुक्त प्रभाव ने पूरे संसार को एक 'वैश्विक ग्राम' बना दिया है जहां दूरियां सिमट गई हैं।

## 17.4 कंप्यूटर और हिंदी

कंप्यूटर से परिचय के बाद आपके लिए यह जानना आवश्यक है कि कंप्यूटर और हिन्दी का संबंध क्या है ? कंप्यूटर का प्रांरभ पश्चिमी देशों में हुआ अतः सबसे पहले जो भाषा कंप्यूटर में प्रयुक्त हुई वह अंग्रेजी थी। अंग्रेजी का वर्चस्व काफी समय तक कंप्यूटर पर छाया रहा लेकिन लोगों को लगा कि इसकी महती उपयोगिता है तो अनेक देशों ने कंप्यूटर के लिए अपनी भाषा में कार्य करने को प्राथमिकता दी। भारत सरकार ने भी इसी दृष्टि से कंप्यूटर के लिए भारतीय भाषाओं के विकास पर ध्यान दिया जिनमें राजभाषा हिंदी पर विशेष ध्यान दिया गया। हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा और राजभाषा दोनों है और आज कंप्यूटर के युग में हिंदी ने कंप्यूटर के साथ मिलकर अपना अपरिमित विकास किया है। कंप्यूटर पर हिंदी के निरंतर प्रयोग और विकास ने यह साबित कर दिया कि कंप्यूटर पर केवल अंग्रेजी का ही वर्चस्व नहीं रहेगा, उस पर हिंदी भी अपना अधिकार कर सकती है। आज कंप्यूटर पर हिंदी के बढ़ते प्रयोग ने भी इस बात का आधारहीन कर दिया है कि बिना अंग्रेजी के कंप्यूटर ज्ञान न तो हासिल किया जा सकता है और न कंप्यूटर पर काम किया जा सकता है।

मूल रूप से कंप्यूटर पर हिंदी का काम दो प्रकार का होता है। पहला तो पत्र, टिप्पणी, लेख, रिपोर्ट आदि तैयार करना, पत्रिका छापना आदि। दूसरा आंकड़ों को रखना अर्थात् वेतन पर्ची, परीक्षा परिणाम, पुस्तक सूची, सामान सूची आदि तैयार करना। इन सबके विकास के लिए अनके पैकेज बाजार में उपलब्ध हैं जो द्विभाषिक है और काफी उपयोगी हैं।कंप्यूटर पर अंग्रेजी का जो रथ सवार था अब उसे उतारने की पूरी तैयारी हिंदी ने कर ली है। हिंदी कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के विकास ने इसे

अत्यंत सुगम बना दिया है। सी-डेक ने आम भाषा में सॉफ्टवेयर उतारकर भाषा-ज्ञान की समस्या ही समाप्त कर दी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि संवादहीनता की जो स्थिति थी, वह खत्म हो गई है। सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने 'ओआरजी' तकनीक का प्रयोग कर इस भाषाई अंतराल का दूर कर दिया है। इससे जहां एक ओर कंप्यूटर तकनीक और साक्षरता को बढ़ावा मिलेगा वहीं घर बैठे अपनी भाषा में लोगों को जानकारियां मिल सकेगीं। हिंदी कंप्यूटिंग को बढ़ावा देने में जहां एक ओर सरकार प्रयास कर रही है वहीं अनेक गैर सरकारी संस्थाएं भी इस क्षेत्र में प्रयत्नशील हैं। यह कार्य दो स्तरों पर किया जा रहा है। एक राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से और दूसरे जनभाषा के रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से। भारत सरकार ने राजभाषा नीति हिंदी के प्रचार-प्रसार और प्रोत्साहन के लिए ही बनाई है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि राजभाषा संबंधी संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों को लागू करने के कार्यालयी हिंदी के प्रयोग में आ रही कठिनाइयों को दूर किया जाए और हिंदी को सरल, प्रभावी और सुविधाजनक बनाया जाए। कंप्यूटर आ जाने से हिंदी के विकास में सरकार को काफी मदद मिली है। राजभाषा विभाग सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ हिंदी के प्रयोगकर्ताओं को देने में लगा हुआ है। इसके तहत सी-डेक पुणे के माध्यम से भाषा प्रयोग उपकरण नाम योजना को लागू किया जा रहा है। परिणामस्वरूप आज ऐसे अनेक सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं।

## 17.5 कंप्यूटर और हिंदी अनुवाद

अब तक आप कंप्यूटर और हिंदी का संबंध जान गए होंगें। अब आपसे कंप्यूटर और हिंदी अनुवाद के बारे में चर्चा करना ठीक रहेगा। हिंदी अनुवाद के क्षेत्र में कंप्यूटर ने काफी योगदान दिया है। सबसे पहले भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर ने अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद की दिशा में 'कारपोर' उदाहरण आधारित कंप्यूटर अनुवाद उपकरण विकसित किया जिसमें स्वास्थ्य मंत्रालय के मैनुअलों का अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद कार्य प्रारंभ हुआ। यह कंप्यूटर अनुवाद उपकरण अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद कर सकता है और अनुवादकों की सहायता के लिए पर्याप्त अनुवाद के विकल्प प्रस्तुत कर सकता है। बाद में 1995 में इसी क्षेत्र में 'नेशनल कौंसिल फॉर सॉफ्टवेयर टेक्नोलॉजी', मुंबई ने 'मात्रा' नामक कंप्यूटर अनुवाद उपकरण विकसित किया। यह अंग्रेजी समाचार कथाओं का हिंदी में अनुवाद करता है। सी-डेक ने 'एन-ट्रांस' नाम सॉफ्टवेयर तैयार किया जो अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं और भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का अनुवाद करता है। इसमें पहला भाग शब्दकोश है और दूसरे भाग में सशक्त स्वतः प्रणाली विन्यास है जो एक तरह का संदर्भ स्रोत हैं इस सॉफ्टवेयर का एक नमूना इस प्रकार देखा जा सकता है-

**अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद**

Designation – Dy. Director पदनाम - उप निदेशक

**हिंदी से अंग्रेजी**

मूल - Basic , वेतन - Pay

प्रिया इलेक्ट्रॉनिक्स, पुणे ने 'परिवर्तन' नाम सॉफ्टवेयर बनाया है जिसकी मदद से हिंदी में बनाई गई कोई भी कंप्यूटर फाइल उपलब्ध हिंदी फांट या सॉफ्टवेयर में पढ़ना और फाइल में लिखित सूचना प्राप्त करना आसान हो गया। इसमें एक उत्पादक के फांट में बनाई गई फाइल दूसरे उत्पादक के फांट में बदलने की सुविधा भी है।

मेट एक ऐसा सॉफ्टवेयर है जो अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करता है। इसे प्राकृतिक भाषा संसाधन प्रयोगशाला ने विकसित किया है। इस मशीन साधित अनुवाद प्रणाली से 85 प्रतिशत पद व्याख्या और 60 प्रतिशत सही अनुवाद प्राप्त होता है। इसमें वाक्यों को शुद्ध करने की सुविधा है, संपादन की भी सुविधा है। इसमें द्विभाषी शब्दकोश भी है। वर्तनी को जांचने की भी सुविधा इस सॉफ्टवेयर में है।अनुवाद संबंधी एक और महत्वपूर्ण सॉफ्टवेयर सी-डैक ने बनाया है मंत्र राजभाषा। यह एक मशीन साधित अनुवाद टूल है जो विशिष्ट विषय क्षेत्र के अंग्रेजी पाइ का हिंदी में एक भाषा से अन्य भाषा में अनुवाद करता है। यह राजपत्रित अधिसूचना, कार्यालय आदेश, कार्यालय ज्ञापन, परिपत्र और वित्त क्षेत्र संबंधी दस्तावेजों को अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करता है। इसमें अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी व्याकरण की प्रस्तुति के लिए नियमानुरूप ट्री एडजाइनिंग ग्रामर का प्रयोग किया जाता है। इसे सी-डेक के अप्लाइड आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ग्रुप ने तैयार किया है और भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने प्रायोजित किया है। इसके अनेक संस्करण उपलब्ध हैं-

1. मंत्र राजभाषा (स्टैंडअलोन संस्करण) - यह संस्करण उन प्रयोक्ताओं के लिए विकसित किया गया है जो बिना नेट कनेक्टिविटी के अपने कंप्यूटर पर अनुवाद सिस्टम का प्रयोग करना चाहते हैं। सिस्टम में पर्सनल लॉगइन आइडी, पासवर्ड और इनबॉक्स की सुविधा भी हैं जिसमें अनुवादित दस्तावेज रखा जा सकता है।

इस अंतःक्रियात्मक सिस्टम में अनेक सहायक उपकरण (जैसे शब्दकोश आदि) भी दिए गए हैं।

2. मंत्र राजभाषा (इंट्रानेट संस्करण) - यह मंत्र राजभाषा स्टैंडअलोन का उन्नत संस्करण है और डिस्ट्रिब्यूटिड आरकिटेक्चर पर आधारित है। इसमें सर्वर के साथ-साथ क्लाइंट कंप्यूटिंग पॉवर का प्रयोग कर अनुवाद शीघ्रता से किया जाता है। क्लाइंट की मशीन पर अनुवाद किया जाता है जहां सर्वर मुख्य लेक्सिकॉन का काम करता है।

3. मंत्र राजभाषा (इंटरनेट संस्करण) - इस संस्करण का विकास और डिजाइन थिनक्लाइंट आरकिटेक्चर पर आधारित है। इसमें सारा अनुवाद सर्वर पर ही होता है। इसलिए दूरवर्ती स्थानों में भी इंटरनेट कनेक्शन उपलब्ध लो-एंड सिस्टम पर भी दस्तावेजों के अनुवाद करने के लिए इस सुविधा का प्रयोग किया जाता है। इसमें अपने अनुवाद सिस्टम को दूसरों के साथ बांटा जा सकता है।

कुल मिलाकर मंत्र राजभाषा की विशेषताओं को इस प्रकार देखा जा सकता है-

1. यह मानक अनुवाद करने वाला सिस्टम है।
2. इसमें अनुवादित फाइल को प्रयोगकर्ता द्वारा संपादित किया जा सकता हैं या अनुवादित पाठ में प्रत्यक्ष रूप से टंकित कर सकता है।
3. इसमें लंबे दस्तावेजों को खंडित किया जा सकता है और खंडित भागों का अनुवादित दस्तावेजों को जोड़ा जा सकता है।
4. अनुवाद से पहले दस्तावेज में फ्रेज मार्क कर सकते हैं, जिससे जुड़े हुए शब्दों का सही अनुवाद प्राप्त कर सकते हैं।
5. अंग्रेजी दस्तावेज का प्रारूप हिंदी आउटपुट में बना रहता है।
6. अनुवाद के दौरान अनुवाद हेतु वाक्यों के अनेक विकल्प उपलब्ध होते है जिनमें से उचित विकल्प का चयन किया जा सकता है।
7. शब्दकोश में नए शब्दों, वाक्यांश तथा अभिव्यक्ति को शामिल किया जा सकता है।
8. प्रयोग करने वाले को बहुअर्थी चयन करने की सुविधा भी उपलब्ध है।
9. प्रयोग करने वाला व्यक्ति अपने डाटाबेस को अपडेट और संपादित कर सकता है।
10. अनुवाद के किसी भी स्तर पर हिंदी को प्रत्यक्ष रूप से टाइप किया जा सकता है।
11. अनुवाद के लिए लिखित टंकित सामग्री को स्कैनर की मदद से कंप्यूटर में समाहित कर दिया जाता है और कंप्यूटर में लगा यह सॉफ्टवेयर उस सामग्री का हिंदी में अनुवाद कर देता है।

## 17.6 कंप्यूटर और हिंदी शिक्षण

इस दिशा में लीला राजभाषा एक महत्वपूर्ण सॉफ्टवेयर है। यह अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के माध्यम से हिंदी सीखने का पैकेज है। यह ऑनलाइन हिंदी सीखने का पाठ्यक्रम है और हिंदी प्रबोध, हिन्दी प्रवीण और हिंदी प्राज्ञ के पाठ्य विवरण पर आधारित है। लीला हिंदी प्रबोध में 26 अध्याय हैं और शब्दकोश मॉडयूल के साथ प्राथमिक स्तर का पाठ्यक्रम है। लीला हिंदी प्रवीण में 31 अध्याय हैं और शब्दकोश मॉडयूल के साथ द्वितीय स्तर का पाठ्यक्रम है। लीला हिंदी प्राज्ञ में पत्राचार के विभिन्न रूपों को सिखाने के लिए तृतीय स्तर का पाठ्यक्रम विकसित किया गया है। इस पैकेज की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. इसमें हिंदी अक्षरों को लिखने और पढ़ने की सुविधा है।

2. प्रयोग करने वाले के लिए हिंदी अक्षर और उसकी मात्राओं को ट्रेसर से लिखने, लेखन विधि को देखने, उच्चारण सुनने और पढ़ने की सुविधा उपलब्ध कराई गई है।

3. शुद्ध उच्चारण के अभ्यास के लिए स्पीच इंटरफेस उपलब्ध है और यह सुविधा शब्द, वाक्य और पैरा तीनों स्तरों पर उपलब्ध है।

4. इनमें शब्दावली उपलब्ध कराई गई है। प्रबोध में शब्दावली चित्र सहित है जबकि प्राज्ञ में प्रशासन संबंधी शब्दावली दी गई है।

5. तीनों पाठ्यक्रमों के लिए ऑनलाइन शब्दकोश उपलब्ध है और जहां आवश्यक है वहां सांस्कृतिक टिप्पणियां भी दी गई हैं।

6. ये पाठ शैक्षणिक दृष्टि से नियंत्रित हैं। प्रयोग करने वाले को सबसे पहले पदक्रम, लिंग, वचन आदि का अध्ययन करना होगा। हर मूल पाठ के साथ एक वीडियो चलचित्र भी उपलब्ध है। साथ ही रिकार्ड और कंपेयर की सुविधा भी है जिसके द्वारा प्रयोग करने वाला व्यक्ति अपने उच्चारण को सुधार सकता है।

7. हर पाठ के साथ व्याकरणिक टिप्पणी दी गई है और स्वमूल्यांकन की सुविधा भी प्रयोग करने वाले व्यक्ति के लिए है।

इस पैकेज के प्रमुख प्रारूप इस प्रकार हैं-

**क) सुपरवाइजर मॉडयूल -** यह बाकी मॉडयूल्स का पर्यवेक्षण करता है। इसमें स्टूडेंट लर्निंग पैकेज, अकाउंट विवरण, प्रगति तथा डेमो संस्करण से संबंधित डाटाबेस है। यह टेस्ट मॉडयूल को नियंत्रित करता है, परीक्षाओं में प्राप्त अंकों से संबंधित जानकारी रखता है और एक प्रकार से सीखने वाले की प्रगति पर अपनी नजर रखता है।

**ख) छात्र मॉडयूल -** यह छात्र के सभी कार्यों की देखभाल करता है । इसमें स्टूडेंट डाटाबेस रखा जाता है जिसमें उसकी प्रगति की रिपोर्ट और अंक भी शामिल होते हैं और कोई भी छात्र एक-दूसरे को प्राप्त अंकों से संबंधित समाचार का एक्सेस नहीं कर सकता।

**ग) पाठ मॉडयूल -** यह पूरे पैकेज का प्रमुख मॉडयूल है। इसमें हर पाठ को विभिन्न खंडों (उद्देश्य, वाक्य संरचना, पाठ, शब्द परिवार, व्याकरण, अभ्यास) में बांटा गया है। पाठ को अनुवाद, उदाहरण, वीडियो क्लिप, हाईपर टेक्स्ट, शब्दकोश तथा व्याकरणिक नियमों के आधार पर समझाया गया है।

**घ) टेस्ट मॉडयूल -** इसमें छात्र का मूल्यांकन कराया जाता हैं। इसमें विभिन्न पाठों पर आधारित प्रश्नों का डाटाबेस है जो परीक्षा हेतु छात्र का अनुरोध मिलते ही एक परीक्षा-पत्र प्रस्तुत कर देता है। इसके बाद मूल्यांकन किया जाता है और प्राप्त अंकों की सूचना स्क्रीन पर आ जाती है तथा अंकों से संबंधित समाचार सुपरवाइजर मॉडयूल को भेज दिया जाता है।

**ड) अल्फाबेट मॉडयूल -** इसमें हिंदी वर्णमाला से छात्र का परिचय कराया जाता है और अक्षरों को पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है।

**च) डिक्शनरी मॉडयूल -** इसमें सारे पाठों में और पूरे पैकेज में आने वाले शब्द होते हैं। हर शब्द के लिए अर्थ, व्याकरणिक विवरण तथा उच्चारण भी उपलब्ध होता है।

**छ) शब्दावली मॉडयूल -** इसमें सरकारी क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली, कार्यालयों के नाम, पदनाम व साधारण शब्दावली दी गई है।

सी-डेक द्वारा मोबाइल फोन के लिए 'लीला हिंदी प्रबोध सॉफ्टवेयर' को एक मीडिया मेमरी चिप (एमएमसी) पर उतारा गया है और जब इस चिप को किसी मोबाइल सेट के साथ जोड़ दिया जाता है तो वह मोबाइल हिंदी सिखाने का काम आरंभ कर देता है। इस चिप में हिंदी अक्षरों का पढ़ने, उनका उच्चारण सुनाने ओर सही उच्चारण और फॉर्मेशन के लिए स्पीच इंटरफेस उपलब्ध है। इसमें हिंदी की वाक्य संरचनाओं के उदाहरण भी हैं, अनुवाद की सुविधा भी है, शब्दकोश भी है और मूल पाठ के साथ-साथ आडियो-वीडियो भी है। अंतःक्रियात्मक अभ्यास भी इसमें किया जा सकता है और हिंदी-अंग्रेजी शब्दावली के साथ स्वमूल्यांकन की सुविधा भी है। इस प्रकार मोबाइल हिंदी-शिक्षण का एक अच्छा उपकरण सिद्ध हो रहा है। जब तक इच्छा हो तब तक हिंदी सीखो और जब इच्छा न हो तो बटन बंद कर दो

## 17.7 कंप्यूटर और श्रुतलेखन, यूनिकोड

इस संबंध में श्रुतलेखन राजभाषा एक महत्वपूर्ण सॉफ्टवेयर है। यह एक स्पीकर इंडिपेंडेंट, हिंदी स्पीच रिकग्निशन सिस्टम है, जिसके माध्यम से प्रयोग करने वाला व्यक्ति कंप्यूटर के साथ संपर्क रखता है और हिंदी में बोले गए कथनों को हिंदी यूनिकोड में टंकित करता है। स्पीच प्रोसेसिंग के लिए रिकग्नाइजर एनलॉग सिग्नल को डिजीटल सिग्नल में रूपांतरित करता है। प्रोसेसिंग के बाद एक स्ट्रीम ऑफ टेक्स्ट उत्पन्न किया जाता है। इसके लिए अनेक मॉडल प्रयोग में लाए जाते हैं । ये इस प्रकार हैं-

1. नॉइज रिक्शन मॉडल
2. लैंग्वेज मॉडल

3. एकाउस्टिक मॉडल

4. ग्रैमर मॉडल

5. फोनीम मॉडल

6. यूनीफोम मॉडल

7. ट्रै फोन मॉडल

श्रुतलेखन राजभाषा सॉफ्टवेयर की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं हैं-

1. यह हिंदी यूनिकोड में आउटपुट देता है।

2. यूनिकोड टैक्स्ट को ISFOC फॉन्ट में रूपांतरित करने की सुविधा भी देता है।

3. ज्ञान आधारित स्क्रिप्ट फॉन्टस्।

4. शब्द-संशोधन और शब्द-सुधार सुविधा भी उपलब्ध है।

5. टैक्स्ट का संख्याओं, तारीख और मुद्राओं में रूपांतरण किया जा सकता है।

6. द्विभाषिक टंकण की सुविधा भी उपलब्ध है।

कंप्यूटर पर हिंदी प्रयोग के बारे में राजभाषा विभाग राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र , सी-डेक व एन0 पी0 टी0 आई0 के सहयोग से हर साल 100 प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कराता है। इसके अलावा इन सॉफ्टवेयरों पर आधारित एक प्रस्तुति भी तैयार की गई है जिसकी जानकारी विभिन्न मंत्रालयों को दी गई हैं। ये सॉफ्टवेयर राजभाषा विभाग के पोर्टल www.rajbhasha.nic.in पर लिंक के माध्यम से निःशुल्क प्राप्त किए जा सकते हैं। श्रुतलेखन राजभाषा एक निर्धारित मूल्य पर उपलब्ध है जिसे सी-डेक पुणे से प्राप्त किया जा सकता है।

यूनिकोड प्रत्येक अक्षर के लिए एक विशेष नंबर प्रदान करता है, चाहे कोई भी प्लेटफॉर्म हो, चाहे कोई भी भाषा हो, चाहे कोई भी प्रोग्राम हो। यहां उल्लेखनीय है कि कंप्यूटर विभिन्न भाषाओं को नहीं समझ सकता। वह केवल बाइनरी नंबर (0 और 1) को ही समझ सकता है। अतः हम जो भी अक्षर टंकित करते हैं वे अंततः 0 और 1 में बदल जाते हैं और तब कंप्यूटर उन्हें समझ सकता है। किसी भाषा के किसी शब्द के लिए कौन सा नंबर प्रयुक्त होगा ? इसका निर्धारण करने के नियम विभिन्न कैरेक्टर सैट या संकेत लिपि प्रणाली द्वारा निर्धारित होते हैं। यूनिकोड का आविष्कार होने से पहले ऐसे नंबरों को देने के लिए अनेक संकेत लिपि प्रणालियां थीं और किसी एक संकेत लिपि में पर्याप्त अक्षर नहीं थे। इन संकेत लिपियों में आपस में तालमेल भी नहीं था। परिणामस्वरूप दो संकेत

लिपियां दो विभिन्न अक्षरों के लिए एक ही नंबर प्रयोग कर सकती हैं या समान अक्षर के लिए अलग-अलग नंबरों का प्रयोग कर सकती हैं। इससे डाटा खराब होने का खतरा बना रहता है। इन सभी समस्याओं को समाप्त करने के लिए तथा एकात्म बनाए रखने के लिए यूनिकोड को विकसित किया गया। यह सभी भाषाओं के लिए एक-सा ही काम करता है। यह कोडिंग सिस्टम फांट्समुक्त, प्लेटफॉर्ममुक्त और ब्राउजरमुक्त है। इसे अनेक कंपनियों ने अपनाया है और आज अधिकतर उत्पाद यूनिकोड समर्थित हैं। विडोंज 2000 या उससे ऊपर के सभी पी.सी. यूनिकोड को सपोर्ट करते हैं।

विंडो एक्स्पी पर इसे इस प्रकार डाउनलोड किया जा सकता है-

कंट्रोल पैनल पर जाएं और फिर रीजिनल और लैंग्वज ऑप्शंस पर क्लिक करें।

लैंग्वेजिस टैब पर क्लिक करें और उस डब्बे को चैक (टिक) करें जो इंस्टाल फाइल्स फार काम्प्लैक्स स्क्रिप्ट को बताता है।

यह विधि विन एक्सपी सीडी के लिए पूछेगी। सीडी ड्राइव में सीडी रखें और संस्थापन (इंस्टालेशन) आरंभ होने दीजिए।

एक बार संस्थापन पूरा हो जाए तो यदि आवश्यकता हो तो सिस्टम को बूट करें और पुनः चरण 2 पर जाएं।

अब डीटेल्स टैब पर क्लिक करें। अपनी पसंद की भाषा को जोड़ने के लिए एड पर क्लिक करें।

सिस्टम ट्रे में एक छोटा ईएन दिखाई देगा। ईएन पर बायां क्लिक करें और टाइप के लिए भाषा का चयन करें।

इसके इनेबल करने से आपकी मशीन में इंसिक्रिप्ट की-बोर्ड ड्राइवर तथा यूनिकोड समर्थित मंगल तथा एरियल यूनिकोड एम एस फोंट आ जाएंगे।

## 17.8 कंप्यूटर पर हिंदी-प्रयोग के विकास में सहायक अन्य सॉफ्टवेयर

इनके अतिरिक्त कंप्यूटर पर हिंदी में काम करने के लिए अनेक शब्द संसाधन पैकेज उपलब्ध हैं। ये सभी भिन्न-भिन्न क्षमताएं, विशेषताएं और उपयोगिता रखते हैं। इन्हें निम्न प्रकार से देखा जा सकता है-

सुलिपि सॉफ्टवेयर के द्वारा लोकप्रिय पैकेजों जैसे डी बेस, लोटस, वर्डस्टार, क्लिपर, साफ्टबेस, फाक्सबेस, पैराडाक्स, बेसिका जैसे वेतन पर्ची, वित्तीय खाता लेखन, वस्तु सूची आदि के माध्यम से हिंदी-अंग्रेजी में संसाधन क्षमता प्रदान की गई है। इसका लैन प्रारूप भी उपलब्ध है। यह हिंदी में

टाइपिंग या स्वर आधारित कुंजी पटल का विकल्प देता है। सुविंडो साफ्टवेयर विंडो के लिए है। यह सुलिपि आधारित हिंदी डॉस फाइलों को अनुकूल फार्मेट में बदलता है। इसमें लिप्यंतरण, शब्दों और पदबंधों के शब्दकोश स्थानापन्न तथा हिंदी वर्तनी की जांच की सुविधा उपलब्ध है। यह डी0 टी0 पी0 और बहुमाध्यम (मल्टीमीडिया) के लिए किसी भी विंडो प्रोग्राम में कार्य कर सकता है। इसके द्वारा परिपत्र, आदेश द्विभाषा में भेजे जा सकते हैं और छंटाई भी की जा सकती है।

श्रीलिपि एक बहुभाषी सॉफ्टवेयर है जो विंडोज पर आधारित है। यह केवल सी0 डी0 पर उपलब्ध है। इसमें लिपि संसाधक, शब्द संसाधक और निजी डायरी है। इसमें दिन, तारीख और समय को भारतीय भाषाओं में डाला जा सकता है और व्यक्तिगत सूचनाएं आदि रखे जा सकते हैं। इसमें ऑटोसेव सुविधा भी उपलब्ध है।

बैंक मित्र द्विभाषिक बैंकिंग सॉफ्टवेयर है जो विंडो पर आधारित है। ये अंग्रेजी के साथ-साथ प्रमुख भारतीय भाषाओं में भी काम करता है। इसके द्वारा ग्राहक सेवा संबंधी कार्य (चैक बुक, पास बुक, ब्याज लगाना, ऋण सीमा पर नजर रखना आदि कार्य) किए जा सकते हैं।

जिस्ट शैल एक ऐसा सॉफ्टवेयर है जो एम0 एस0 डॉस अनुप्रयोग पर आधारित है। यह पाठ्य सामग्री की प्रविष्टि, भंडारण, प्रदर्शन और भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी के साथ मुद्रण को संभव बनाता है। इसके सहयोग से अपना पसंदीदा सॉफ्टवेयर अपनी भाषा में प्रयोग किया जा सकता है।

जिस्ट कार्ड एक ऐसा कार्ड है जो कंप्यूटर के साथ संलग्न किया जाता है। इसके सहयोग से भारतीय और अन्य लिपियों में अंग्रेजी सहित पाठ्य आधारित पैकेजों जैसे लोटस 1-2-3, वर्डस्टार, क्यूबोसिक आदि पर काम किया जा सकता है।

जिस्ट टर्मिनल के द्वारा किसी भी भारतीय लिपि और अंग्रेजी के सभी पाठ्य आधारित एप्लीकेशन पैकेजों जैसे कोबोल, वर्ड परफैक्ट, फाक्सबेस आदि में काम किया जा सकता है। यह डेक वी टी 52/100/220/320 के समान है।ए0 पी0 एस0 कॉरपोरेट में पाठ्य प्रविष्टि, स्पैड शीट और फोक्स के द्वारा आंकडों और संसाधक के विकल्प उपलब्ध हैं।फैक्ट एक ऐसा सॉफ्टवेयर है जो कंप्यूटर को निर्णय में सहयोग करने वाली मशीन के रूप में बदल देता है। यह एक बहुभाषी व्यापार लेखा सॉफ्टवेयर है और इसमें एकाउटिंग, इन्वेंट्री आदि की सुविधा है। इस सुविधा के लिस जिस्ट कार्ड या जिस्ट शैल सॉफ्टवेयर की आवश्यकता होती है। लीप ऑफिस 2000 एक ऐसा सॉफ्टवेयर है जिसे भारतीय भाषाओं के लिए तैयार किया गया है। इसमें अंग्रेजी के अलावा अनेक भारतीय लिपियों (हिंदी, संस्कृत, असमी, बंगाली, गुजराती, मराठी, उड़िया, पंजाबी, कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगू) में काम किया जा सकता है। इसकी मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. पाठ को भारतीय लिपियों में बदलना और मुद्रित करना।

2. अनुवाद हेतु राजभाषा शब्दकोश उपलब्ध कराना।

3. विंडो आधारित एम0 एस0 ऑफिस, पेजमेकर, एक्सल आदि में भारतीय भाषाओं में काम करने की सुविधा।

4. वर्तनी जांच करने की सुविधा।

5. सभी भाषाओं के लिए समान कंुजीपटल, डायनैमिक फॉण्ट उपलब्ध।

6. ध्वन्यात्मक कुंजीपटल जो उच्चारण के अनुसार टंकण करने में सहायक होता है।

आकृति विंडोज का एक अंतर्पृष्ठ है जिसमें हिंदी और अंग्रेजी को एक ही फॉण्टस में मिश्रित करने के लिए विशेष फॉण्टस हैं। इसे बिना फॉण्टस बदले एक द्विभाषिक सॉफ्टवेयर के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। यह विंडोज 95 के तहत काम करता है। इसमें चित्र भी उपलब्ध हैं जो प्रस्तुतीकरण को आकर्षक बनाते हैं।

हिंदवाणी सॉफ्टवेयर पीसी डॉस आधारित है। यह हिंदी टैक्स्ट फाइलों को स्पीच में बदल देता है। यह नेत्रहीन लोगों के लिए तो उपयोगी है ही, रेलवे, हवाई जहाज तथा पर्यटन संबंधी सूचनाओं के लिए भी उपयोगी है।डॉ. मुरलीधर पाहूजा ने 'लेखक' नाम एक ऐसा सॉफ्टवेयर तैयार किया जिसकी सहायता से बिना अंग्रेजी की मदद के भी हिंदी में सारा काम किया जा सकता है। इस में संवाद, संदेश और सारे आदेश हिंदी में हैं।ईमेल सर्वर 'अनुसारका' है जो कंन्नड़, तेलुगू, मराठी, बंग्ला और पंजाबी में भेजे संदेश को हिंदी में अनूदित कर देता है।इसी प्रकार 'देशिका' नामक सॉफ्टवेयर भी उपलब्ध है जो वेद, वेदांग, पुराण, धर्मशास्त्र न्याय, मीमांसा, व्याकरण ओर अमरकोष को उपलब्ध कराता है जिसे दस भारतीय लिपियों में पढ़ा जा सकता है। इसे सी-डेक ने बनाया है।

गीता रीडर सॉफ्टवेयर गीता पढ़ने में लोगों की मदद करता है। इसे भी सी-डेक ने बनाया है। यह विंडो 95 पर चलता है।

आज हिंदी टूलकिट भी उपलब्ध है। हिंदी आई एम ई एक्स पी और विंडोज 7, यूनीकोड-कृतिदेव कन्वर्टर, गूगल हिंदी आई एम ई भी उपलब्ध है। आज अनेक हिंदी के पोर्टल इंटरनेट पर उपलब्ध हैं।

हिंदी और कंप्यूटर के क्षेत्र में सी-डैक (सेंटर फॉर डवलपमेंट ऑफ एडवांस्ड कंप्यूटिंग), पुणे नामक संस्था अंत्यत महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। सी-डेक ने विभिन्न सॉफ्टवेयरों को प्रस्तुत करने से पहले एक सीडी तैयार की थी जिसे राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् की अध्यक्ष सोनिया गांधी ने पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी के सपनों को साकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम मानते हुए जारी किया था। इस सीडी में अनेक प्रकार के फांट और उपयोगी टूल्स उपलब्ध हैं। इसमें विभिन्न प्रकार

के फांट्स, मल्टी बोर्ड की बोर्ड कन्वर्टर, हिंदी का ब्राउजर फायरबॉक्स, हिंदी का मेसेंजर, हिंदी का ओसीआर, हिंदी-अंग्रेजी में टाइपिंग सिखाने की सुविधा, हिंदी-अंग्रेजी के शब्दकोश, वर्तनी जांचने की सुविधा, ट्रांसलिटर टूल आदि शामिल हैं। इस सबका परिणाम यह हुआ है कि हिंदी भाषी का कंप्यूटर पर हिंदी में काम करने का रूझान बढ़ा है।

## 17.9 इंटरनेट और हिंदी

कंप्यूटर के साथ-साथ इंटरनेट पर हिंदी का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आप फेसबुक, टिवट्र जैसी सोशल वेबसाइटस पर हिंदी का बढ़ता साम्राज्य देख सकते हैं और वहां से प्राप्त लिंक के माध्यम से इंटरनेट पर हिंदी में विचार रख सकते हैं, अपनी प्रतिक्रिया दे सकते हैं। कविता, कहानी आदि विभिन्न विधाएं हिंदी में इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। इनमें लगातार प्रगति हो रही है। यद्यपि अभी भी अधिकांश सामग्री इंटरनेट पर अंग्रेजी में उपलब्ध है लेकिन साथ ही अनुवाद की भी सुविधा है जिससे आप इस सामग्री का लाभ ले सकते हैं। अब आपको इंटरनेट पर चैटिंग करने के लिए किसी सॉफ्टवेयर की आवश्यकता नहीं है। आप सीधे वेबसाइट्स पर जाकर चैटिंग कर सकते हैं। अपने मित्रों को ईमेल कर सकते हैं। आज हिंदी में भी ईमेल की सुविधा उपलब्ध है। गूगल और रेडिफमेल डॉट कॉम पर आपको इस प्रकार की सुविधाएं मिल सकती हैं। इसी प्रकार राजभाषा डॉट कॉम, राजभाषा डॉट नेट आदि वेबसाइट्स भी उपलब्ध हैं। हिंदी की अनेक ऐसी वेबसाइट्स हैं जिन पर साहित्य, संस्कृति की प्रस्तुति होती है और विचारपरक लेख प्रसारित-प्रकाशित होते हैं। ये वेबसाइट्स भारत में भी हैं और विदेशी भी हैं जिन्हें आप इंटरनेट पर आराम से देख सकते हैं। इनमें से कुछ वेबसाइट्स इस प्रकार हैं-

www.kavitakosh.org

www.hindinest.com.

www.abhivyakti-hindi.org

www.bharatdarshan.co.nz

pryas.wordpress.com

www.udgam.com

www.sahityakunj.net

www.tadbhav.com

www.pitara.com

www.srijangatha.com

www.hindielm.co.uk

www.webdunia.com

www.avadh.com

www.kalayan.org

www.anyatha.com

www.geocities.com

www.iiit.net

taptilok.com

www.hindisewa.com

www.childplanet.com

www.kavita. Hindiyugm.com

**कविता कोश** डॉट ओआरजी हिंदी साहित्य के प्रकाशन की एक महत्वपूर्ण वेबसाइट है। इस पर नए और पुराने सभी कवियों की रचनाएं और पुस्तकें (संपूर्ण रूप में) उपलब्ध हैं। इससे प्रिंट भी लिए जा सकते हैं और रचनाओं को ऑनलाइन पढ़कर आनंद लिया जा सकता है।**अभिव्यक्ति-हिंदी डॉट ओआरजी** पर कविताओं, कहानियों और निबंधों का संग्रह पाठक को पढ़ने के लिए मिलता है। **अवध डॉट कॉम** पर हास्य कविताओं और कहानियों का प्रकाशन होता है। **हिंदी नेस्ट** साप्ताहिक जाल पत्रिका है। इसमें कविताओं, कहानियों के साथ-साथ सामाजिक लेख भी पढ़ने को मिल सकते हैं। **भारत दर्शन** न्यूजीलैंड से प्रकाशित होने वाली हिंदी साहित्यिक पत्रिका है। प्रयास कविताओं और कहानियों का संग्रह है। यहां प्राचीन कथा साहित्य और हास्य कविताएं उपलब्ध हैं। **तद्भव** और **उद्गम** मासिक साहित्य पत्रिकाएं हैं।

**पफोर टू पफोर्टी** और **पिटारा** में बाल साहित्य उपलब्ध है। **सृजनगाथा** हिंदी साहित्य, संस्कृति और भाषा के विकास के लिए एक प्रयास है।**साहित्य कुंज** पाक्षिक साहित्यिक पत्रिका है। इसमें कहानियों, कविताओं और आलेखों का संकलन रहता है। **कालायन** पत्रिका में कविताएं, लेख, नाटक, उपन्यास आदि के साथ-साथ हिंदी भाषा की जानकारी दी जाती है। अन्यथा भारत और अमरीकावासी मित्रों द्वारा आधुनिक हिंदी साहित्य को प्रेषित करने का प्रयास है। **तृप्तिलोक** हिंदी की

पाक्षिक पत्रिका है जो पहली और सोलहवीं तारीख को प्रकाशित होती है। यहां ई-पुस्तकें भी उपलब्ध होती हैं।**इट नेट** पर प्रमुख कवियों की रचनाओं को पढ़ा जा सकता है। जियोसिटीज पर पूरी भगवद्गीता हिंदी में पढ़ी जा सकती है। वेबदुनिया साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन का महाजाल स्थल है। अन्य वेबसाइटों पर भी इसी प्रकार की सामग्री पाठकों को मिल सकती है।इंटरनेट पर हिंदी साहित्य की प्रस्तुति ब्लॉगों के माध्यम से भी होती है। इन ब्लॉगों पर अनेक साहित्य प्रेमी अपनी और अन्य व्यक्तियों की रचनाओं को सामने रखते हैं और टीका-टिप्पणियों को आमंत्रित करते हैं। ये टीका-टिप्पणियां पाठकों की विचारधरा को तो सामने लाती हैं ही, किसी रचना की गुणवत्ता और उसकी महत्ता को भी रेखांकित करती हैं। इस प्रकार के ब्लॉग निम्नलिखित हैं-

blog.masijivi.com

hemadixit.blogspot.com

jankipul.com

nukkadh.com

drharisharora.blogspot.com

vibhav.blogspot.com

sahityalochan.blogspot.com

nayasamay.blogspot.com

rajbhashamanas.blogspot.com

manishkumar.blogspot.com

vartmaansrijan.blogspot.com

vishwagatha.blogspot.com

ravisrivastava.uvach.blogspot.com

rishabhuvaach.blogspot.com

anunaad.blogspot.com

rajy.blogspot.com

यही नहीं, ऑनलाइन हिंदी साहित्य की रचना की जाती है और हिंदी कविता लेखन प्रतियोगिताएं की जाती हैं। ये रचनाएं डाक से भी मंगाई जाती हैं और ईमेल के द्वारा भी मंगाई जाती हैं। सोशल साइटस, जैसे फेसबुक पर भी ऐसी प्रतियोगिताएं देखने को मिलती हैं जो एक प्रकार से हिंदी और हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना योगदान देती हैं।इंटरनेट पर अनेक वेबसाइट्स ऐसी हैं जो हिंदी शब्दकोश संबंधी सुविधाएं प्रदान करती हैं, जैसे शब्दकोश डॉट कॉम, ई-महाशब्दकोश, शब्दमाला आदि। ई-महाशब्दकोश सी-डैक, भारत सरकार की प्रस्तुति है। इसके अतिरिक्त कुछ ऑफलाइन साइट्स भी हैं, जैसे शब्द-ज्ञान। इसकी मदद से एक बार इंटरनेट से शब्दकोश डाउनलोड कर बिना इंटरनेट से जुड़े भी शब्दकोश की सहायता ली जा सकती है। इन सभी शब्दकोशों से न केवल इच्छित शब्दों का अर्थ ढूंढा जा सकता है बल्कि उन शब्दों के शुद्ध हिंदी उच्चारण और उदाहरण सहित उनके प्रयोगों की जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है। यद्यपि हिंदी कंप्यूटिंग में यूनीकोड के आने से हालांकि काफी दिक्कतें दूर हो गई हैं लेकिन अभी भी कई मामलों में मानकीकरण नहीं हो पाया है। एक सर्वस्वीकृत की-बोर्ड की समस्या अभी भी बनी हुई है। अनेक प्रकार के फांट हैं जो यूनीकोड में रूपांतरित नहीं हो पाते। प्रिंटर और स्कैनर की अनुकूलता की समस्या भी बनी हुई है। इनके लिए व्यापक और गंभीर प्रयासों की आवश्यकता है।

## 17.10 सारांश

कंप्यूटर पर हिंदी अनुवाद भी संभव है और हिंदी शिक्षण भी। इस दृष्टि से अनेक सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं। 'मंत्र राजभाषा' इसमें सबसे अधिक उल्लेखनीय है। हिंदी शिक्षण की दृष्टि से 'लीला राजभाषा' एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। 'श्रुतलेखन राजभाषा' और यूनिकोड भी एक विशिष्ट उपलब्धि है। इनके प्रयोग से हिंदी को कंप्यूटर पर प्रयोग करने में काफी लाभ मिला है। यूनिकोड ने सभी भाषाओं में लेखन, टंकण के लिए एक प्लेटफार्म प्रदान किया है जिससे फांट संबंधी अनेक समस्याएं दूर हो गई हैं।इंटरनेट ने भी हिंदी और हिंदी साहित्य के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया है। इंटरनेट पर अनेक वेबसाइट्स है जिनसे निरंतर हिंदी विकास को प्राप्त हो रही है और उसका विश्वव्यापी विस्तार हो रहा है। अनेक सोशल वेबसाइट्स जैसे फेसबुक, ट्विटर ने भी हिंदी के विकास-रथ को आगे बढ़ाया है। हिंदी में ईमेल और चैटिंग की सुविधा मिलने से हिंदी प्रेमियों को जहां एक ओर खुशी मिली है, वहीं दूसरी ओर भाषा-विस्तार में भी मदद मिली है।

## 17.11 शब्दावली

रोजमर्रा - हर दिन का

वैश्विक - विश्व स्तर का

द्विभाषिक - दो भाषाओं वाला

| | | |
|---|---|---|
| प्रयोक्ता | - | प्रयोग करने वाला |
| बहुअर्थी | - | अनेक अर्थ वाला |

## 17.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

राजभाषा भारती, अप्रैल-जून 2007

इस्पात भाषा भारती, जुलाई-सितंबर 2005, जनवरी-मार्च 2003

सं पूरनचंद टंडन, (2004) सूचना प्रौद्योगिकी, हिंदी और अनुवाद, भारतीय अनुवाद परिषद, दिल्ली

## 17.13 निबंधात्मक प्रश्न

1 . कम्प्यूटर क्या है ? विस्तार से समझायें . कम्प्यूटर और हिन्दी के संबंधों को स्पष्ट करते हुए उसकी उपयोगिता को समझाइये .

2 . कंप्यूटर पर हिंदी-प्रयोग के विकास में सहायक अन्य सॉफ्टवेयरों पर एक लेख लिखिए तथा इंटरनेट पर हिंदी की स्थिति की विवेचना कीजिए।

# इकाई 18 ई-पत्रकारिता

इकाई की रूपरेखा


18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 ई-पत्रकारिता की परिभाषा

18.4 ई-पत्रकारिता की विशेषताएं

18.5 ई पत्रकारिता में सहायक संचार-माध्यम

18.5.1 रेडियो

18.5.2 टेलीविजन

18.5.3 कंप्यूटर

18.5.4 इंटरनेट

18.5.5 बहुमाध्यम

18.6 ई-पत्रकारिता के विविध रूप

18.6.1 रेडियो और टी. वी. पत्रकारिता

18.6.2 वीडियो पत्रकारिता

18.6.3 अंतरिक्ष पत्रकारिता

18.6.4 वेब या अंतरजाल पत्रकारिता

18.7 सारांश

18.8 शब्दावली

18.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

18.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

18.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 18.1 प्रस्तावना

प्रयोजनमूलक हिंदी पाठ्यक्रम के चतुर्थ ब्लॉक की यह अठारहवीं इकाई है। इसमें आप 'ई-पत्रकारिता' के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई में आप ई-पत्रकारिता के अर्थ से परिचित होंगे। आप ई-पत्रकारिता की विशेषताओं को भी जान पाएंगे और उन माध्यमों से भी आप अवगत होंगे जो ई-पत्रकारिता के केन्द्र में हैं। ई-पत्रकारिता के विविध रूपों से भी आपको परिचित कराया जाएगा। आशा है कि इसे पढ़ने के बाद आप ई-पत्रकारिता को भली भांति समझ सकेंगे। ई-पत्रकारिता जीवन के विविध क्षेत्रों को प्रेरित-प्रभावित करती है। अत: प्रस्तुत इकाई में ई-पत्रकारिता के इस महत्त्व का भी विवेचन किया जायेगा

## 18.2 उद्देश्य

इस इकाई का पढ़ने के बाद आप यह जान पाएंगे कि-

- ई-पत्रकारिता क्या है ? और उसकी कौन-कौन सी विशेषताएं हैं ?
- उन संचार-माध्यमों से आप अवगत होंगे जो ई-पत्रकारिता में आते हैं ?
- ई-पत्रकारिता के विभिन्न रूपों की जानकारियां भी आपको मिलेंगी ?

## 18.3 ई-पत्रकारिता की परिभाषा

ई-पत्रकारिता से तात्पर्य है इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता। यह दृश्य-श्रव्य माध्यम पर आधारित पत्रकारिता है। ई-पत्रकारिता को गति देने वाले महत्वपूर्ण माध्यम हैं रेडियो, टेलीविजन, वीडियो, स्लाइडें, न्योन साइन, इंटरनेट, सोशल वेबसाइटस आदि। डॉ.अर्जुन तिवारी लिखते हैं कि 'ई-जर्नलिज्म' को वर्तमान स्नायु-तंत्र न कहकर इसे जनसंचार की आत्मा कहना उपयुक्त है। कंप्यूटर, उपग्रह, लेजर, इंटरनेट, साइबर, माइक्रोचिप्स, डिजीटल संसाधनों के चलते सूचना-क्रांति के आगमन के साथ 'ई-जर्नलिज्म' का महत्व बढ़ गया है।....'ई-जर्नलिज्म' के विस्तार की कथा अकथ्य है।'(पृ0-1) वास्तव में 'संचार क्रांति के इस दौर में युगबोध के प्रमुख तत्वों को समेटकर पत्रकारिता मानव के विकास और विचारोत्तेजन का राजमार्ग है।....ज्ञान शक्ति है, विज्ञान विशिष्ट शक्ति है तथा प्रौद्योगिकी परम शक्ति है। कंप्यूटर, इंटरनेट, उपग्रह, अंतरिक्ष संचार प्रणाली, माइक्रोचिप्स द्वारा प्रवाहित शिक्षाप्रद मनोरंजक सूचना ही इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता है।.....आज की पत्रकारिता न तो ज्वाला है, न क्रांति की अग्रदूतिका, न लेखनी विलास, यह तो अद्यतन संचार साधनों की व्यवसायगत श्रेष्ठता है। सतत प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त कौशल एवं मीडिया प्रबंधन के बल पर ही पत्रकारिता संभव है। इलेक्ट्रॉनिक रिपोर्टिंग, इलेक्ट्रॉनिक एडिटिंग, इलेक्ट्रॉनिक डिजायनिंग,

इलेक्ट्रॉनिक टाइपसेटिंग, इलेक्ट्रॉनिक प्रिंटिंग वाली पत्रकारिता का 'इलेक्ट्रॉनिक जर्नलिज्म' कहना समीचीन है।' (पृ0-13)

आज ई-पत्रकारिता जनसंचार का एक सशक्त और लोकप्रिय माध्यम है। इसके मूल में विकसित होती तकनीक है, नए-नए आविष्कार हैं और लोगों को लगातार आकर्षित करने की शक्ति है।

## 18.4 ई-पत्रकारिता की विशेषताएं

1. इसमें संचार की प्रक्रिया यांत्रिक होती है और कम समय में अधिक से अधिक लोगों तक और अधिक दूरी तक सूचनाएं संप्रेषित की जा सकती हैं।
2. इस पत्रकारिता की चालक शक्ति विद्युत है। इसमें सूचना संचार में विद्युत तरंगे, वॉल्व, टयूब आदि अपनी भूमिका निभाते हैं।
3. ई-पत्रकारिता में निरक्षर लोगों के लिए भी स्थान है क्योंकि यह दृश्य, श्रव्य और पाठ्य तीनों है। अपवाद के रूप में रेडियो को लिया जा सकता है जो केवल श्रव्य है।
4. इसमें तीव्र प्रवाह और तीव्र नियंत्रण की क्षमता होती है और इसका प्रसार भी तीव्रता से होता है और एक ही समय में एक बड़े समूह के साथ सूचना संप्रेषण संभव है।
5. इसमें सूचनाएं प्राप्ति की दर सस्ती होती है हालांकि उत्पादन व्यय अधिक होता है और लगातार नवीन सूचनाएं मिलती रहती है जो प्रिंट पत्रकारिता में संभव नहीं है। वहां कम-से-कम 6 घंटे और अधिक-से-अधिक 24 घंटे की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।
6. इसमें एक खूबी यह भी है कि इसमें अखबारों के अनेक संस्करण छापने की आवश्यकता नहीं है।

**(क) अभ्यास प्रश्न**

ई पत्रकारिता क्या है, उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

## 18.5 ई-पत्रकारिता के विकास में सहायक संचार माध्यम

अब आपके लिए यह जानना आवश्यक है कि वे कौन से संचार माध्यम हैं जिन्होंने ई पत्रकारिता के विकास में योगदान दिया है ? ये माध्यम निम्नलिखित हैं-

## 18.5.1 रेडियो

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के उपकरणों में मुद्रित माध्यम से अधिक तीव्रता से और दूरदराज तक संदेश पहुँचाने की शक्ति है। रेडियो इनमें सबसे सस्ता और 'पोर्टेबल' उपकरण है। उन्नीसवीं सदी के अंत में मारकोनी द्वारा आविष्कृत रेडियो ने संचार के क्षेत्र में क्रांति उत्पन्न कर दी। लेनिन का कथन है कि रेडियो बिना कागज और बिना दूरी का समाचारपत्र है। यह एक ऐसा माध्यम है जो अदृश्य विद्युत द्वारा चुंबकीय तरंगों के द्वारा संदेश एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रेषित करता है। समाचारों, गीत, संगीत, नाटक, रूपक आदि प्रस्तुत कर रेडियो ने हर उम्र के श्रोता को अपना बना लिया है तभी तो तकनीक का अपरिमित विकास होने के बावजूद रेडियो आज भी अपना महत्व बनाए हुए है। विभिन्न व्यावसायिक रेडियो चैनलों ने लोगों की रुचि और भावनाओं को समझकर इसे न केवल अंतःक्रियात्मक बनाया है बल्कि प्रस्तुति और प्रसारण के नए-नए रूप भी गढ़े हैं। यह निरक्षरों के लिए एक वरदान है जिसके द्वारा वे सुनकर सिर्फ सुनकर अधिक-से-अधिक सूचना, ज्ञान और मनोरंजन प्राप्त कर लेते हैं। रेडियो की सबसे बड़ी खूबी यही है कि अपना काम करते हुए भी श्रोता इसके द्वारा प्रेषित संदेश को ग्रहण कर सकते हैं। वहीं केवल एक समय में एक ही केंद्र से प्रसारण सुन सकना और प्रसारण बीच में रोककर दुबारा सुन पाने का प्रावधान न होना रेडियो की सीमा है। रेडियो का संचार इकहरा भी होता है।

रेडियो को इंटरनेट ने अपार गति दी है। आज रेडियो के समाचार, कार्यक्रम आदि विश्व के किसी भी कोने में सुने जा सकते हैं। इससे रेडियो पत्रकारिता को भी गति मिली है। अब भौगोलिक सीमाएं टूट चुकी हैं। इंटरनेट पर रेडियो के कार्यक्रमों, समाचारों आदि को सुनने के लिए व्यक्ति को एक पर्सनल कंप्यूटर, ब्राउजर सॉफ्टवेयर, टेलीफोन लाइन और इंटरनेट सेवा की आवश्यकता है। व्यक्ति रेडियो के कार्यक्रमों को सुनने के लिए उसकी वेबसाइट को भी सर्च कर सकता है। मोबाइल ने भी रेडियो के विस्तार में अत्यंत सहयोग दिया है, इसमें कोई संदेह नहीं।

## 18.5.2 टेलीविजन

सूचना क्रांति में जो महत्त्व गुटेनबर्ग द्वारा आविष्कृत मुद्रण का था उससे भी अधिक महत्त्व दृश्य-श्रव्य माध्यम दूरदर्शन का है। प्रकाश, रंग और ध्वनि से साक्षात्कार करता टेली-दर्शक सजीव विवरण को अधिक रुचिकर पाता है। इसीलिए दूरदर्शन, सूचना, शिक्षण और मनोरंजन का प्रमुख साधन बनता गया। आज टेलीविजन अधिकांश लोगों की पहुंच के अंदर है और दूसरे, उसकी स्क्रीन भी अब छोटे-बड़े दोनों रूपों मे उपलब्ध है। टेलीविजन की तकनीक में भी काफी विकास हुआ है। इसकी संरचना ग्रीक शब्द 'टेली' और लैटिन शब्द 'विजन' से मिलकर हुई है। 'टेली' का शाब्दिक अर्थ है दूरी और 'विजन' का अर्थ है देखना अर्थात् जो दूर की चीजों का दर्शन कराए वह टेलीविजन है। टेलीविजन शब्द अंग्रेज़ी भाषा का है जो अत्यधिक प्रचलित होने के कारण आज सर्वमान्य हो गया है और लोगों की ज़ुबान पर अक्सर रहता है। टेलीविजन के मूल में दूरवर्ती स्थानों पर घटनेवाली

घटनाओं का घर बैठे साक्षात्कार कर लेना है। ध्वनियाँ और ध्वनियों का एक साथ संप्रेषण ही टेलीविजन की वास्तविक प्रक्रिया है। चलचित्र की भाँति निरंतर प्रेषण ही चित्रों को गतिशील बनाता है। इस प्रक्रिया के लिए विद्युतीय ध्वनियों को विखंडित करके निरंतर प्रेषित किया जाता है। रिसीवर सिरा इस विखंडन को पुनः गृहीत करके ध्वनि निर्मित करता है। इस प्रक्रिया में 25 से 30 चित्र प्रति सेकेण्ड संप्रेषित किए जाते हैं और उनका पुनर्ग्रहण भी किया जाता है। बनती-मिटती ध्वनियों और छवियों की निरंतरता दर्शक के मन पर संश्लिष्ट प्रभाव छोड़ती है। रेडियो और टेलीविजन दोनों ही निरक्षर व्यक्तियों तक पहुँचने के लिए अति उत्तम साधन सिद्ध हुए हैं। रेडियो तो संचार का काफी सस्ता साधन भी सिद्ध हुआ है। उसकी अन्य विशेषता उसका विद्युत रहित क्षेत्रों में भी सुना जा सकना और समाचार-स्थल अथवा घटना-स्थल से ही बिना अधिक ताम-झाम के प्रसारण कर सकना भी था। टेलीविजन की अधिक महंगी उपकरण सामग्री विद्युत की अनिवार्यता के बाद भी दृश्य शक्ति के कारण लोकप्रियता का कारण रही है। चित्रात्मकता और संभाषणशीलता इसके कार्यक्रमों के विशिष्ट गुण हैं। टेलीविजन में काम करने हेतु वीडियो तकनीक और कैमरा का ज्ञान भी आवश्यक है।

### 18.5.3 कंप्यूटर

कंप्यूटर 'कम्यूट' शब्द से बना है जिसका अर्थ है गणना। लेकिन आज कंप्यूटर केवल गणना तक ही सीमित नहीं है बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में उसकी उपयोगिता बढ़ती जा रही है। बिल गेटस का कथन है कि 'समूची संचार क्रांति महज कंप्यूटर के विभिन्न उपयोग मात्र हैं।' कंप्यूटर में अपार गति होती है वह जटिल से जटिल गणनाओं को भी अत्यंत तीव्रता से हल कर देता हैं उसमे अपार संग्रह क्षमता होती है। कंप्यूटर के परिणाम शुद्ध और त्रुटिहीन होते हैं। वह स्वचालित होता है बस आपको उसे क्रमबद्ध रूप में निर्देश देना पड़ता है। इसे आम भाषा में प्रोग्राम कहा जाता है। जब कभी प्रयोग करने वाला व्यक्ति गलती करता है तो कंप्यूटर उसे रास्ता भी बताता है। एक बहुआयामी उपकरण होने के कारण इसका उपयोग शिक्षा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, वाणिज्य, लेखन, प्रकाशन, कानून आदि सभी क्षेत्रों में हो रहा है।

यह एक ऐसा यंत्र है जो मनुष्य के मस्तिष्क की भाँति काम करता है लेकिन मनुष्य के मस्तिष्क से कई गुना अधिक तेज। यह गणितीय गणनाओं और विभिन्न आँकड़ों का विश्लेषण करने के साथ-साथ उन्हें अपनी स्मृति में रख सकता है। यह वस्तुतः एक इकाई नहीं बल्कि विभिन्न इकाइयों का समूह है। कंप्यूटर का कार्य आदेश लेना, आदेशों को कार्यक्रम के रूप में संचित करना, उसका क्रियान्वयन करना, परिणाम संचित करना और आदेशानुसार परिणामों को सामने रखना है। बारम्बार निर्विघ्न आवृत्ति इसकी विशेषता है। कम्प्यूटर का आगमन पत्रकारिता के क्षेत्र में वरदान सिद्ध हुआ है। पत्रकारिता से जुड़ी विभिन्न प्रणालियों - सूचना-सज्जा, ग्राफिक संप्रेषण, मुद्रण आदि में कम्प्यूटर की विभिन्न पद्धतियों का उपयोग निःसंदेह सराहनीय है। पत्रकारिता जगत में सूचनाओं

का त्वरित गति से आदान-प्रदान अत्यंत उपयोगी है। इसके लिए पहले समाचारों को एकत्र करने के लिए डाक, टेलीफोन, टेलीप्रिन्टर आदि पर निर्भर रहना पड़ता था किंतु उपर्युक्त पद्धतियों के कम्प्यूटरीकृत हो जाने से समाचारों के आदान-प्रदान की गति में अद्भुत परिवर्तन आया है। उदाहरण के लिए डाक विभाग की हाइब्रिड मेल सेवा, टेलीफोन की सेल्युलर या कम्प्यूटरीकृत ऑनलाइन या मॉडम सेवा, फैक्स, ईमेल, टेलीटेक्स्ट, वीडियोटेक्स्ट आदि पद्धतियों को देखा जा सकता है। सूचना विस्फोट के लिए उत्तरदायी इंटरनेट पद्धति भी कम्प्यूटर पर आधारित है। समाचारों के आदान-प्रदान में ही नहीं अपितु समाचारपत्रों के मुद्रण और दूरदर्शन/आकाशवाणी के प्रसारणों में भी कम्प्यूटर का योगदान अप्रतिम है।

### 18.5.4 इंटरनेट

इंटरनेट आज एक सर्वव्यापी सत्ता बन गया है। वह एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा किसी सैन्य-सामग्री को प्रयोग किए बिना विश्व को जीता जा सकता है। इंटरनेट आज की 'नई सभ्यता के कृष्ण का विराट विश्व रूप' है । फलतः पूरा विश्व आज मनुष्य की हथेली पर रखी किसी वस्तु के समान हो गया है। इंटरेनट के द्वारा सूचना-तंत्र मानव की मुट्ठी में अलादीन के चिराग की तरह बंद होता जा रहा है। इलैक्ट्रॉनिक संचार युग का यह सर्वाधिक विस्मयकारी, सक्षम और तेज सूचना-संवाहक है। उल्लेखनीय है कि अल्डस हक्सले ने दूरदर्शन के बढ़ते आकर्षण पर टिप्पणी करते हुए इसे मानव-संस्कृति पर होने वाले भयानक आक्रमण की संज्ञा दी थी। उनकी दृष्टि में दूरदर्शन सांस्कृतिक गतिविधि में भागीदारी के हमारे अधिकार को मात्रा उपभोक्ता होने तक सीमित कर देता है। वह हमारी प्रतिक्रिया के प्रभाव को नहीं जान सकता। हमारी रचनात्मकता भी क्षीण होती है और हम वह सभी कुछ निगलने के लिए बाध्य होते हैं जो हमें परोसा जा रहा होता है। इसीलिए दूरदर्शन को बुद्धु बक्सा कहा गया है, एक नशा माना गया है, हालांकि अब यह बुद्धु बक्सा नहीं रहा है। अब कई कार्यक्रमों में प्रतिक्रियाएं भी प्रसारित होती हैं जैसे आई बी एन 7 के कार्यक्रम 'एजेंडा' में। इंटरनेट इससे भी अधिक नशीला, मादक और प्रभावशाली है। वह अमृत भी देता है और विष भी। ज्ञान का भंडार भी उपलब्ध कराता है और गोपनीय सूचनाएँ, अश्लील और अवांछित सामग्री भी, तथापि इंटरनेट की उपयोगिता असंदिग्ध है। इंटरनेट से जुड़ने का अर्थ है इंटरनेट की अनोखी दुनिया से जुड़ जाना। अब आप दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में मौजूद इंटरनेट से जुड़े लाखों कम्प्यूटरों के साथ आनन-फानन में संपर्क साध सकते हैं। इस तरह आप जानकारियों, सूचनाओं और आँकड़ों के एक महासागर में गोते खाने लगते हैं। इंटरनेट व्यक्ति को उसकी सीधी भागीदारी का सशक्त माध्यम उपलब्ध कराता है। वास्तव में इंटरनेट नेटवर्कों का नेटवर्क है। वह सूचना-तंत्र से परिपूर्ण जालों का जाल है जो समस्त जालों को परस्पर जोड़ने की क्षमता रखता है। इसके पूर्ववर्ती जनसंचार-माध्यम केवल विषयवस्तु या सूचना देते थे, निष्क्रिय और संवादहीन लेकिन इसने लोगों को वह सामर्थ्य दी है कि वे खुद इस दुनिया में अपने लिए बोलें। आज अरब के विभिन्न देशों में हुए तख्ता पलट में आप यह देख भी सकते हैं।

आप इंटरनेट पर लगभग वह सब कुछ कर सकते हैं जो आप भौतिक दुनिया में करते हैं। आप इंटरनेट पर किताबें, अखबार आदि पढ़ सकते हैं, पर्यटन का मजा ले सकते हैं, अश्लील साइट देख सकते हैं, सिनेमा देख सकते हैं, संदेश भेज और मँगा सकते हैं, हजारों किलोमीटर दूर बैठे लोगों से बातचीत कर सकते हैं, रेडियो सुन सकते हैं, टी०वी० देख सकते हैं, अपनी वेबसाइट खोलकर प्रोपेगंडा भी कर सकते हैं। आपके ऊपर जबावी हमले भी हो सकते हैं और इस तरह आप साइबर वार को भी महसूस कर सकते हैं। विभिन्न देशों की सरकारें भी 'साइबर वार' से डरती हैं क्योंकि इंटरनेट पर किया गया 'प्रोपेगंडा' विश्वव्यापी होने के कारण पूरी दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचता है। इंटरनेट पर सेक्स और अश्लील सामग्री का कारोबार भी खूब गर्म है। अनेक वेश्याएँ या कॉलगर्ल इंटरनेट पर अपनी दुकान खोलकर खासी कमाई कर रही हैं। कुछ वेश्याएँ इंटरनेट पर 'लाइव' अश्लील प्रदर्शन करती हैं। इंटरनेट से जुड़ी 'आभासी' (वर्चुअल) तकनीक के जरिए आप कम्प्यूटर पर ही यौन क्रियाओं को देख सकते हैं।

इंटरनेट ने दुनिया भर में चिकित्सा सुविधाओं का नक्शा बदल दिया है। अब आप घर बैठे देश-विदेश के प्रख्यात चिकित्सकों से सलाह-मशविरा और चर्चाएं कर सकते हैं और इन चर्चाओं के द्वारा जटिल रोगों का निदान भी संभव है। कुछ जगहों पर ऐसी सुविधाएँ भी हैं कि दिल्ली के अस्पताल में चल रहा ऑपरेशन न्यूयार्क में बैठा सर्जन देख सके और वहीं से ज़रूरी हिदायतें दे सके। इंटरनेट पर चिकित्सा को 'टेलीमेडिसन' कहा जाता है। खेल-कूद और पर्यटन इंटरनेट के अपेक्षाकृत नए आकर्षण हैं। आज लगभग हर खेल सिखाने से लेकर उससे संबंधित नवीनतम सूचनाएँ देने तक के लिए उपयोगी वेबसाइट उपलब्ध है।अब ऐसी सुविधा भी उपलब्ध हो गई है कि केवल बोलकर ही आप अपनी मनपसंद वेबसाइट खोज सकेंगे और इसे खोल-बंद कर सकेंगे। यदि इसके साथ आवाज़ को पाठ्य-सामग्री और पाठ्य-सामग्री को आवाज़ में बदलने वाला करामाती सॉफ्टवेयर भी लगा हो तो नेत्रहीन भी इंटरनेट की चमत्कारी दुनिया ले सकते हैं।इंटरनेट से वीडियो की क्वालिटी में भी बहुत सुधार आया है। इंटरनेट की तकनीक के द्वारा विशेषज्ञों को ऐसा लगेगा कि वे एक कमरे में बैठे हुए आपस में विचार-विमर्श कर रहे हैं जबकि उनके बीच हजारों किलोमीटर की दूरी हो सकती है। इस तकनीक में त्रि-आयामी ग्राफिक्स का इस्तेमाल करते हुए आभासी-कक्ष (वर्चअुल रूम) बना दिया जाता है। इसे 'टेलि-इमर्शन' तकनीक का नाम दिया गया है। इसी तरह इंटरनेट पर आभासी प्रयोगशाला में हजारों किलोमीटर की दूरी पर बैठे वैज्ञानिक आपस में किसी महंगे उपकरण की साझेदारी कर सकते हैं। एक समान आँकड़ों या जानकारियों को इंटरनेट सदस्यों के किसी बड़े समूह के हर सदस्य तक पहुँचाने की तकनीक भी विकसित की जा रही है। इसे 'मल्टीकास्ट' तकनीक कहा जाता है। अब मोबाइल पर भी ईमेल तथा इंटरनेट सेवा उपलब्ध होने लगी है। इंटरनेट पर आभासी पुस्तकालय उपलब्ध है जिसमें असंख्य पुस्तकें उपलब्ध हैं। परिणामस्वरूप कहीं भी दूरदराज के गाँव में बैठा छात्र भी अमेरिका के डिजिटल पुस्तकालय में आई नवीनतम पुस्तक बड़ी आसानी से अपने कम्प्यूटर पर 'डाउनलोड' करके पढ़ सकता है। इंटरनेट पर व्यवसायी अपने उत्पादों को विज्ञापित कर

सकते हैं। इंटरनेट के द्वारा विश्व के किसी भी कोने के ग्राहकों को माल बेच सकते हैं या माल खरीद सकते हैं। इंटरनेट पर उपलब्ध सामानों के कैटलॉग देखकर मनपसंद चीजें खरीदी जा सकती हैं।

इंटरनेट पर तरह-तरह के मनोरंजन के विभिन्न कार्यक्रमों को अपनी मर्जी के अनुसार घर बैठे देखा जा सकता है तथा इलैक्ट्रॉनिक प्रकाशनों को पढ़ा और पढ़ाया जा सकता है।इंटरनेट का एक महत्वपूर्ण लाभ ईमेल अर्थात् इलैक्ट्रॉनिक मेल सेवा है। ईमेल से हम अपना पत्र या कोई संदेश विद्युत गति से दुनिया के किसी भी कोने में स्थित कम्प्यूटर-मॉनीटर पर पहुँचा सकते हैं। वहाँ उसका प्रिंट निकाल लिया जाता है। यह फैक्स की अपेक्षा बहुत ही सस्ता और विश्वसनीय प्रेषण माध्यम है। सबसे बडी तो खूबी यह है कि साधारण डाक की तरह ईमेल भेजने के लिए अलग-अलग दरों के टिकट नहीं लगाने पड़ते हैं। ईमेल के माध्यम से आप केवल पत्र आदि ही नहीं भेज सकते हैं बल्कि चित्र, ग्राफिक्स आदि भी भेज सकते हैं। इसके लिए ईमेल के साथ अटैचमेंट भेजने की सुविधा भी होती है।

### 18.5.5 बहुमाध्यम

कंप्यूटर की तकनीक के सहारे अपनी कल्पना-छवियों और विचारों को साकार करने का सशक्त माध्यम है बहुमाध्यम। यह विषय (तथ्य), आरेखिकी (ग्राफिक कला), ध्वनियों, सजीव आरेखिकी चित्रण (एनीमेशन) और दृश्य तत्त्वों का समन्वित रूप है। इसमें आँकड़ों के विविध प्रारूपों का ग्रहण, संबंधानुसार एकीकरण तथा प्रकलन होता है। इन कार्यो के संपादन के लिए प्रणाली द्वारा बहुसंचार साधन के आँकड़ों का भंडारण, संचरण, संसाधन एवं निर्माण भी वांछित है। इसे 'इंटरएक्टिव बहुमाध्यम' या 'मल्टीमीडिया' की संज्ञा दी जाती है। 'बहुमाध्यम' के रूप में प्रोग्राम का सॉफ्टवेयर, कंप्यूटर या टेलीविजन स्कीन पर प्रदर्शित होने वाले तथ्य या विषय मिलकर दृश्य-श्रव्य छवियों का ऐसा समायोजन तैयार करते हैं जो संचार के सभी अंगों से युक्त होता है। कंप्यूटर की भाषा एच०टी०एम०एल० या डी०एच०टी०, एम० एल० में तैयार की गई वेबसाइट्स भी बहुमाध्यम का अंग है। इंटरएक्टिव होना बहुमाध्यम की अपरिहार्यता नहीं है। सिने दर्शक या टेलीविजन दर्शक की भाँति मान-मुद्रा में स्क्रीन निहारता दर्शक भी बहुमाध्यम का प्रापक है। संचार के इस निष्क्रिय प्राप्तकर्ता को यदि इस उपक्रम में स्वयं भाग लेने की सुविधा मिलती है तो वह सक्रिय प्राप्तकर्ता बनकर सूचना का प्रवेश द्वार बन जाता है। अपने प्राप्तकर्ता की सक्रिय प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए सूचना भेजने वाले को इस माध्यम में अति सजग होना ज़रूरी है। संदेश की पटकथा, कलात्मक सज्जा, रोचक तत्त्व ही संदेश को प्राप्तकर्ता के लिए ग्रहण करने योग्य बनाते हैं। बहुमाध्यम की बढ़ती लोकप्रियता ने उसे वाणिज्य, विज्ञापन, शिक्षा, राजनीति और मनोरंजन के क्षेत्रों में अति लोकप्रिय बना दिया है। इस माध्यम से पुस्तकें, फिल्में, खबरें, विश्वविद्यालयों के विद्वानों के व्याख्यान घर बैठे ही 'नेटीजन' व्यक्तियों को उपलब्ध हो सकेंगे। किसी शहर के लिए सैलानियों को आवास, भोजन, स्थान के नक्शे, भाषाओं की जानकारी ऑन लाइन टेबलॉग पर सुलभ होना बहुमाध्यम का ही

चमत्कार है। कम्पनियों को आँकड़े उपलब्ध कराने, शोध छात्रों को नवीनतम वैज्ञानिक शोधों की जानकारी देने वाले बहुमाध्यम उद्योग में संचार विशेषज्ञों को भी खासी संभावनाएँ दिखाई दे रही हैं।

वस्तुतः बहुमाध्यम की सबसे बड़ी विशेषता उसका 'इंटरएक्टिव' होना है और यहीं वह अन्य जनसंचार-माध्यमों से बाजी मार ले जाता है। अन्य माध्यमों में बहुमाध्यम की तरह त्वरित प्रतिपुष्टि संभव नहीं है। प्रजातंत्र में बहुमाध्यम जनता की भागीदारी सुनिश्चित करता है। निर्भय होकर दी गई जनप्रतिक्रियाओं से राजनीति का एक नया रूप ई0 पॉलिटिक्स तैयार हो रहा है। बहुमाध्यम ने आज विश्व का चित्र ही बदल दिया है।

**(ख) अभ्यास प्रश्न:**

ई-पत्रकारिता के विभिन्न माध्यमों की विवेचना कीजिए।

## 18.6 ई-पत्रकारिता के विविध रुप

ई-पत्रकारिता के विकास में सहायक संचार के विभिन्न माध्यमों की विवेचना के उपरांत अब आपको ई-पत्रकारिता के विविध रूपों से परिचय कराना श्रेयस्कर होगा। ये रूप निम्नलिखित हैं-

### 18.6.1 रेडियो और टी.वी. पत्रकारिता

रेडियो और टी.वी. पत्रकारिता आज भी अपना महत्व बनाए हुए हैं जबकि आज अंतरजाल पत्रकारिता काफी फैल चुकी है। रेडियो एक श्रव्य माध्यम है और टी.वी. एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है। अतः दोनों माध्यमों में अंतर रहेगा। रेडियो ओर टी.वी. पत्रकारिता में अनेक विशेषताएं तो वहीं रहती हैं जो मुद्रित माध्यम में होती हैं। मूल रूप से रेडियो पत्रकारिता के अंतर्गत रेडियो से प्रसारित समाचार बुलेटिन, सामयिक समीक्षा, सामयिकी, रेडियो न्यूजरील, परिचर्चा, भेंटवार्ता, वार्ता, उद्घोषणा आदि कार्यक्रम सम्मिलित हैं। रेडियो पत्रकारिता में शब्दों का महत्व है, वह भी बोले गए शब्दों का। शब्द भी ऐसे बोले गए हों जो श्रोता को वार्तालाप जैसे लगे और श्रोताओं को अपनी ओर आकृर्षित कर लें। यहां शब्द इस प्रकार प्रयोग किए जाते हैं कि दृश्य का निर्माण श्रोता के मन पर हो सके। संगीत (मंद, तीव्र, हर्षसूचक, विषादसूचक, आरंभिक, समाप्तिसूचक तथा दृश्यांतर बोधक) और ध्वनि-प्रभाव (जैसे, क्रिया ध्वनियां-दस्तक देने की आवाजें आदि, स्थल ध्वनियां-गाड़ियों की आने की उद्घोषणाएं आदि तथा प्रतीक ध्वनियां-ठहाकों, झरनों की आवाजें आदि) का प्रयोग यहां पत्रकारिता में सहायक होता है। यह वार्तालाप की शैली टी.वी. पत्रकारिता में भी अपेक्षित होती है। तात्कालिकता, निकटता और समय का महत्व दोनों में रहता है। वास्तव में टी.वी. पत्रकारिता एक ऐसी कला है जो अत्यंत प्रभावशाली और व्यापक है क्योंकि इसमें कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो अन्य माध्यमों की पत्रकारिता में नहीं मिलतीं। इसमें भी रेडियो पत्रकारिता के समान ही समाचार, वार्ता, परिचर्चा, भेंटवार्ता, रिपोर्टिंग, कॉमेंट्री, सामयिक कार्यक्रम, सर्वेक्षण आदि सम्मिलित हैं। यह

पत्रकारिता दृश्य और श्रव्य दोनों गुणों को समाहित किए हुए हैं। इसमें बोले गए शब्द का महत्व तो है, पर उतना नहीं है जितना रेडियो पत्रकारिता में होता है बल्कि दृश्य का अत्यधिक महत्व है। दृश्य भी ऐसा जो जीवंत हो, लोगों को सब कुछ समझा दें। इस माध्यम में आप समाचार देख भी सकते हैं, पढ़ भी सकते हैं और सुन भी सकते हैं। रेडियो में आपके पास केवल सुनने को छोड़कर अन्य कोई सुविधा नहीं है। टेलीविजन पत्रकारिता में आपको घटनास्थल पर लेकर संवाददाता जाता है जिससे किसी घटना की गंभीरता और व्यापकता से व्यक्ति परिचित होता है यह सुविधा प्रिंट पत्रकारिता और रेडियो पत्रकारिता में उपलब्ध नहीं है। हरीश करमचंदाणी लिखते हैं कि 'समाचारपत्र विवरण सहित सचित्र समाचार प्रकाशित करते हैं, किंतु एक तो वहां समय कारक कार्य करता है, तुरंत आप तक नहीं पहुंच पाता, उसकी आवृत्ति निर्धारित होती है। फिर उसमें मानवोचित गुण-दोष भी संभव हैं। यह विवरण भेजने वाले व्यक्ति की दक्षता पर निर्भर है कि समाचार किस अंदाज व संप्रेषणीयता तक पाठक तक पहुंचता है। एक ही घटना या समाचार अक्सर अलग-अलग रूप, रंग और कथ्य के साथ छप सकता है, जबकि टीवी पर दर्शक सीधा घटना को देखता है, वहां विवरण देने की एक सीमा होती है, वर्णन कम होता है, दृश्य ज्यादा होते है, जो अपनी बात खुद बोलते हैं।' (पृ.184) रेडियो पर भी घटना और समाचार तुरंत प्रसारित हो जाते हैं और श्रोता को संवाददाता सीधे घटना स्थल पर भी ले जाता है लेकिन श्रव्य मात्र होने के कारण यह उस आनंद या प्रभाव को प्रदान नहीं कर पाता जो टी. वी. पत्रकारिता में संभव है। अनेक चीज़ें देखने से ही स्पष्ट होती हैं, केवल सुनने से ही नहीं। रेडियो का महत्व इस बात में तो है कि वह त्वरित सूचना प्रदान कर सकता है और उसकी पहुंच भी दूरदराज तक होती है तथा वह बिना बिजली के भी बैटरी व सेल से कार्य कर सकता है लेकिन दृश्य से जो विश्वसनीयता टी. वी. पत्रकारिता में पैदा होती है वह रेडियो पत्रकारिता में नहीं हो पाती।

रेडियो और टी.वी. पत्रकारिता हेतु कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है जो इस प्रकार हैं-

1. किसी जाति, धर्म, नस्ल, संप्रदाय, रंग का आक्षेप नहीं होना चाहिए।
2. किसी की मानहानि व निंदा नहीं होनी चाहिए।
3. न्यायालय की अवमानना नहीं होनी चाहिए।
4. संविधान का अनादर या उसमें परिवर्तन के लिए हिंसा का समर्थन नहीं करना चाहिए।
5. संवैधानिक पदों की मर्यादा पर निंदापूर्ण टिप्पणियां नहीं होनी चाहिए।
6. मित्र राष्ट्रों की आलोचना से भी बचना चाहिए।
7. केन्द्र या राज्य सरकार की आलोचना नहीं होनी चाहिए।

रेडियो और टी.वी. समाचारों के लिए एक उत्तम वाचन की आवश्यकता होती है। वाचक की आवाज प्रभावशाली और शुद्ध हो, जो प्रस्तुतीकरण के साथ सामंजस्य बिठा सके। ऐसी अपेक्षा खासतौर पर टी.वी. में होती है। वाचन में आत्मविश्वास, भावानुरूप स्वर का आरोह-अवरोह, कथ्य-सामग्री के अनुसार गति तथा प्रसंगानुसार ओज और माधुर्य होना चाहिए। इसी प्रकार इन दोनों प्रकार की पत्रकारिता मे काम करने वाले पत्रकार को समाचारों की पृष्ठभूमि और विविध विषयों की जानकारी होनी चाहिए। समाचारों का संपादन भी कुशलता से करना चाहिए और दक्ष संपादकों को यह काम करना चाहिए। भाषा भी सरल और संप्रेषणीय होनी चाहिए। प्रभावी और त्रुटिहीन भाषा का प्रयोग करना चाहिए, पुनरावृत्ति से बचना चाहिए। वाक्य संक्षिप्त हों क्योंकि छोटे-छोटे वाक्य सरलता से बोले जा सकते हैं और शीघ्रता से समझे जा सकते हैं। एक वाक्य में एक ही प्रकार की सूचना होनी चाहिए। बार-बार नाम के साथ-साथ पद के उल्लेख से बचना चाहिए। यही नहीं ध्वनि-साम्य शब्दों का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। रेडियो समाचारों और कायक्रमों के संबंध में यह आवश्यक है कि क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग न हो क्योंकि श्रोता के पास शब्दकोश देखने का समय नहीं होता और दूसरे वहां चित्र सामने नहीं होता जो सब कुछ बता दे। उपर्युक्त, उक्त, निम्नलिखित, निम्नांकित, किंतु, परंतु, तथापि आदि शब्दों का लिखित महत्व हो सकता है लेकिन रेडियो पत्रकारिता में बोलने की दृष्टि से इनका महत्व नगण्य है। इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। टी. वी. पत्रकारिता में आंकड़ों का प्रयोग चल सकता है क्योंकि वहां श्रव्य और दृश्य दोनों होता है लेकिन रेडियो पत्रकारिता में आंकडों का प्रयोग अत्यल्प करना चाहिए अन्यथा रोचकता के समाप्त होने का डर रहता है। टी. वी. पत्रकारिता के लिए पत्रकार को लेखन, शब्द, ध्वनि, टी.वी. तकनीक, टी.वी. कैमरा आदि का ज्ञान होना चाहिए।

आज रेडियो पत्रकारिता में शालीनता और नैतिकता पर अपेक्षित बल है लेकिन टी.वी. पत्रकारिता में शालीनता और नैतिकता की सीमाएं टूट रहीं हैं। दर्शकों को बांधे रखने के लिए नए-नए तरीके अपनाए जा रहे हैं। कई देशों (कनाडा, रूस) मे नेकेड समाचार प्रसारण होता है और ऐसी पत्रकारिता ही आज श्रेष्ठ मानी जाने लगी है और अच्छी पत्रकारिता आज घाटे का व्यापार हो गया है। सनसनी और मसालेदार खबरें टी.वी. पर विभिन्न चैनलों पर बार-बार दिखाई जाती हैं। अपराध के समाचार देखना, उन पर आधारित विशेष रिपोर्ट देखना आज लोगों की रुचि में सबसे ऊपर है। टी. वी. पत्रकारिता इसे लगातार परोस रही है। प्रतिस्पर्धा और टी. आर. पी. (टेली रेटिंग प्वाइंट) के इस दौर में सब जायज हो गया है और यह सब कार्यक्रम बच्चे भी देखते हैं, बड़े भी और बूढ़े भी। इसी पर प्रकाश डालते हुए दीनानाथ मिश्र लिखते है कि ‘असल में पश्चिमी पत्रकारिता नशेड़ी हो गई है। जब तक ऐसी रोमांस भंडाफोड़ कथाएं उसे न मिले तब तक यह पत्रकारिता छटपटाती रहती है।......अब अखबारों को तो लत हो गई है। ऐसे समाचारों की पाठकों को भी लत हो गई है। सो कोई न कोई स्कैंडल इस व्यवस्था के चालू रहने के लिए जरूरी है। कोई तबाह हो जाए, उनकी बला से। कोई मर जाए, मरा करे। इन्हें तो चटपटे सैक्स मसाले की चाट का धंधा करना है। इससे दुनिया भर के

लोगों की मानसिकता पर असर पड़ता है। पड़ा करे, इनके ठेंगे से। यह अपनी तरह की पत्रकारिता करते जाएंगे क्योंकि इनके ख्याल से बाजार की यह मांग है। हालांकि यह मांग इन्होंने ही बनाई है।' (पृ.147) आज टी.वी. पत्रकारिता में ऐसी ही पत्रकारिता ही अधिक मुखर है। अब रेडियो और टी.वी. पत्रकारिता पर बड़े-बड़े मीडिया संस्थानों का कब्जा है हालांकि दूरदर्शन और आकाशवाणी अभी भी इन सबसे काफी बचे हुए हैं।

### 18.6.2 वीडियो पत्रकारिता

इस पत्रकारिता की शुरूआत 19 वीं सदी के नवें दशक में हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि यह पत्रकारिता लोगों के मन को आकर्षित करने लगी। भारत में इसका उदय वीडियो पत्रकारिता के रूप में हुआ। अंग्रेजी में 'इनसाइट' और 'न्यूज ट्रैक' और हिंदी में 'कालचक्र' जैसी वीडियो समाचार पत्रिकाएं बाजार में आईं। 'लहरें' शीर्षक से फिल्मी मनोरंजन और समाचारों से भरी वीडियो भी काफी सराही गईं। इनकी सफलता से प्रेरित-प्रभावित होकर चेन्नई की 'गणभूमि विजन' ने 'गणभूमि' वीडियो पत्रिका प्रारंभ की। यह रामायण, महाभारत, वेद, पुराण आदि से संबंधित थी और लोगों की आध्यात्मिक चेतना को विकसित कर रही थी। अनंत पै ने 'अमर चित्रकथा' 'ट्विंकल' जैसी बाल वीडियो पत्रिकाएं निकालीं जो बच्चों के स्वस्थ मनोरंजन को केन्द्र में रखे हुए थीं। 'ट्विंकल टाइम विद अंकल पै' नामक शृंखला इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम थी। अयोध्या कांड, महम कांड, मंडल आयोग और खाड़ी युद्ध के परिणामस्वरूप इस पत्रकारिता ने काफी लोकप्रियता हासिल की। लोगों ने रुचि के साथ इन पर आधारित पत्रिकाओं को देखा जिसका व्यापक प्रभाव लोगों पर पड़ा। वीडियो पत्रकारिता का सबसे बड़ा लाभ यह था कि इसमें समाचार वाचक समाचार तो पढ़ता ही था, बल्कि अपनी टिप्पणी स्वतंत्र रूप से भी दे सकता था। उसका चेहरा भारतीय दूरदर्शन के समाचार वाचक के समान भावहीन तथा तटस्थ नहीं था। इसमें श्रोताओं से संवाद स्थापन की गुंजायश थी और चेहरे की भाव-भंगिमा, आवाज के उतार-चढ़ाव से अतिरिक्त संप्रेषण की अपेक्षा भी थी।

### 18.6.3 अंतरिक्ष पत्रकारिता

इसे 'स्पेस जर्नलिज्म' या 'उपग्रह पत्रकारिता' भी कहा जाता है। इसमें उपग्रह के द्वारा प्रेषित संवाद दिन-रात रेडियो और दूरदर्शन से सुना और देखा जा सकता है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि लंबे लेख, समाचार आदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना न केवल सुगम और तीव्र हो गया बल्कि मुद्रण हेतु सांचों की प्रतिच्छाया भी एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर भेजना सुगम हो गया। इस प्रकार एक ही समाचारपत्र के कई संस्करण एक ही साथ अनेक स्थानों पर प्रकाशित होना संभव हो गया। दृश्य, संपादन, पृष्ठ सज्जा, लेखन सभी एक ही स्थान पर बैठे व्यक्तियों के द्वारा इलेक्ट्रॉनिक विधियों द्वारा होने लगा और दूसरे देशों, स्थानों के लोगों को उसका लाभ मिलने लगा। फोटो ट्रांसमीटर से यह लाभ मिला कि एक देश में खेले जा रहे मैच के चित्र कुछ ही घंटों में दूसरे देशों के

समाचारपत्रों में प्रकाशित होने लगे और टी. वी. पर प्रसारित होने लगे। रंगों, गलेज्ड पेपर और ग्राफिक्स का विभिन्न संचार माध्यमों में प्रयोग होने लगा। नवीनता का समावेश समाचारपत्रों में विभिन्न रूपों में होने लगा।

### 18.6.4 वेब या अंतरजाल पत्रकारिता

यह पत्रकारिता 21 वीं सदी की विशिष्ट देन है। इसे ऑनलाइन पत्रकारिता या इंटरनेट पत्रकारिता भी कहा जाता है। इसमें काम करने के लिए पत्रकार को न केवल वेब लेखन में पारंगत होना चाहिए बल्कि वेब प्रकाशन में भी दक्ष होना चाहिए। अंतरजाल पत्रकारिता के लिए पामटॉप, लैपटॉप, डिजीटल कैमरा, बेतार उपकरणों, मल्टी मीडिया, सर्चटूल्स आदि की प्रयोगात्मक जानकारी होनी चाहिए। आज अधिकांश समाचारपत्र ऑनलाइन समाचारपत्र प्रकाशित-प्रसारित करते हैं। अंतरजाल पत्रकारिता इंटरनेट पर आधारित है जिसमें तकनीक की प्रधानता है। इसी तकनीक का उपयोग कर पत्रकार समाचार लेखन कर सकता है और पाठक आसानी से कोई भी समाचार पढ़ सकता है और तत्काल प्रतिक्रिया दे सकता है। आज विभिन्न समाचारपत्र और टी. वी. न्यूज चैनल निःशुल्क सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। इस प्रकार के समाचारपत्र को इलेक्ट्रॉनिक समाचारपत्र कहा जाता है। डॉ. अर्जुन तिवारी लिखते हैं कि 'ज्ञान के साथ-साथ प्रतिदिन की घटनाओं को पाठकों तक पहुंचाने की महत्वाकांक्षी योजना का नाम ही 'इलेक्ट्रॉनिक अखबार' है।' (पृ0-16)

अंतरजाल पत्रकारिता में विज्ञापन अनिवार्य रूप से सामने आता है। लेकिन आप उसे हटा सकते हैं और अपना पूरा ध्यान समाचार, फीचर, लेखों आदि पर लगा सकते हैं। अंतरजाल पत्रकारिता में पहले यह दिक्कत थी कि पेज का नवीकरण मंद गति से होता था लेकिन आज ऐसी स्थिति नहीं है। बाजार का दबाव, विज्ञापनों की अधिकता, सनसनी और मसालेदार सामग्री ऑनलाइन समाचारपत्रों में अक्सर देखने को मिलती है। अंतरजाल पत्रकारिता के उदय होने से समाचारपत्रों के प्रसार-प्रचार पर प्रभाव तो अवश्य पड़ा है तथापि उनका महत्त्व कम नहीं हुआ है। वर्तमान में दोनों परस्पर पूरक बन गए हैं। इस देश में अभी भी अधिकांश जनता अखबार इंटरनेट पर देखने की अपेक्षा खरीदकर पढ़ती है। डॉ. वीणा गौतम लिखती हैं कि 'अखबार आज भी सस्ते हैं, भविष्य में भी सस्ते रहेंगे। आज भी इनकी पहुंच सर्वहारा वर्ग के उस आखिरी आदमी तक है, जो सूचना पाने की पिपासा में पंक्ति के आखिरी छोर पर खड़ा है और भविष्य में भी उसी आखिरी बिंदु के अंत्यज तक अगर सूचना पहुचाने का कार्य कोई बखूबी कर सकेगा, तो वे अखबार ही होंगे, प्रिंट मीडिया ही होगा।' (सूचना प्रौद्योगिकी, हिंदी और अनुवाद, पृ.117)

वास्तव में फैक्स और टेलीफोन की अपेक्षा इंटरनेट ने पत्रकारिता को तीव्रता दी है, गति दी है। 'इंटरनेट' आज पत्रकारों को वह सामग्री भी उपलब्ध करवा रहा है जिसकी कल्पना तक पत्रकारों को नहीं थी। समय की बचत और अनुवाद करने में सुविधा आज इंटरनेट की महत्त्वपूर्ण देन है। ई-पत्रकारिता में अब पत्रकार विभिन्न संचार संसाधनों से युक्त है। अब उसके पास मोबाइल फोन,

फैक्स, लेपटॉप, पेजर, इंटरनेट, ईमेल की सुविधा है। डॉ.अर्जुन तिवारी के अनुसार 'कुछ दिन पहले तक साइकिल पर दौड़ते संवाददाता दृष्टिगत होते थे। गांव-गांव, तहसील, कस्बे से लिफाफे आते थे, संपादकीय विभाग पोस्ट ऑफिस बना रहता था जहां पत्रों की छंटनी होती थी। कुछ वरिष्ठ पत्रकार चिल्ला-चिल्लाकर, ट्रंककाल पर समाचार भेजते तो कुछ टेलीग्राफ करते थे। असुविधाओं वाला संपादकीय कार्यालय होता था, कंपोजिंग कक्ष तो काजल की कोठरी होती जो वहां से निकलता कालिख लगाए रहता था। खुरदुरे-मटमैले कागज पर उपसंपादकों की टोली साधनारत रहती थीं।' (पृ.11) इन सारी स्थितियों को चमत्कारी ढंग से ई-पत्रकारिता ने बदलकर रख दिया है। अब कलम और स्याही का स्थान कंप्यूटर ने ले लिया है, उसी पर प्रूफ रीडिंग हो जाती है और उसी पर पेज मेंकिग और उसी से समाचार, फीचर आदि प्रकाशित होने के लिए मुद्रण वाले स्थान पर भेज दिए जाते हैं। अन्यत्र वे लिखते हैं कि अब 'मानव अपने विचारों को ईमेल से प्रेषित कर सकेगा। डिजीटल नई तकनीक है जिससे मशीन और मनुष्य के बीच संवाद स्थापित हो सकता है। 'बाइट' अब सूचना प्रेषण की महत्वपूर्ण इकाई है। 'बाइटस' द्वारा मानव से मानव, मशीन से मानव, मशीन से मशीन के मध्य संवाद हो सकेगा। कंप्यूटर अब भारी-भरकम नहीं होगा। इसे रूमाल की तरह जेब में रखा ओर 'वाल पेपर' की तरह लटकाया जा सकेगा। पत्रकार अब तकनीकी दृष्टि से सक्षम, साधन संपन्न हो चला है।' (पृ.11) आज सूचनाओं का मंथन कर उपभोक्ता के लिए उपयुक्त सूचना निकालना अब सरल नहीं है। तकनीक के प्रयोग ने इसे जटिल बना दिया है। सूचना पाने, संभालने और उसे समाचार के रूप में ढालना अब एक व्यक्ति के हाथ में नहीं है, बल्कि यह काम संस्थानों ने संभाल लिया है। अब अलग-अलग विशेषज्ञ चाहिए, अलग-अलग विश्लेषक चाहिए और अलग-अलग संपादक चाहिए, जो खेल, अर्थ, राजनीति आदि पर अपनी सशक्त और बेबाक टिप्पणी दे सकें। अब समाचार को जल्दी से जल्दी वस्तुनिष्ठ रूप में पाठक तक, संग्राहक तक पहुंचाने की जिम्मेदारी संवाददाताओं, संपादकों और प्रबंध संपादकों की है। अब शीघ्रता, नवीनता और त्वरा का महत्व है, समय का सर्वाधिक महत्व है। ई-पत्रकारिता के मूल में कंप्यूटर है जिससे सूचना, आंकडें, चित्र, गीत-संगीत सभी में अद्भुत बदलाव आया है। प्रकाशन, चित्रण और विश्लेषण-संपादन में कंप्यूटर का योगदान नकारा नहीं जा सकता। अब इंटरनेट पर समाचारपत्र पढ़ने और उसे डाउनलोड करने की सुविधा है जिसने पत्रकारिता को गतिशील बना दिया है।

इंटरनेट के आगमन से अब संवाददाताओं पर निर्भरता कम होने लगी है। साथ ही भ्रामक समाचारों से बचना संभव हो पाया है। इसी प्रकार समाचारों के संकलन एवं विश्लेषण में पाठक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं होती थी जबकि आज व्यक्ति इंटरनेट करोड़ों लोगों के साथ मिलकर सूचना-समुद्र में गोता लगाकर अपनी मनचाही सूचनाएँ प्राप्त कर सकता है। अब संवाददाता को अधिक सचेत रहना पड़ता है। कारण, आज का पाठक इंटरनेट पर सूचनाओं से निरंतर संपर्क में रहता है। इंटरनेट के माध्यम से किसी भी पाठक को विश्व की अनेकानेक घटनाएँ विभिन्न स्रोतों से निरंतर प्राप्त होती रहती हैं जबकि संवाददाता निश्चित समय-सीमा में बँधकर कार्य करने के लिए बाध्य है।

उसे निर्धारित स्थान के अनुरूप ही अपना समाचार लिखना होता है। उसे अपने पूरे पाठकवर्ग की रुचि को भी ध्यान में रखना पड़ता है। समाचारपत्रों का प्रकाशन भी एक नियत समय पर नियमित रूप से करना आवश्यक है। दूसरी ओर इंटरनेट के लिए कोई समय-सीमा नहीं है। यही कारण है कि अब प्रातःकाल समाचारपत्र आने से पूर्व ही अधिकांश पाठकों को उन समाचारों की जानकारी इंटरनेट अथवा दूरदर्शन के माध्यम से मिल चुकी होती है। इंटरनेट के बढ़ते प्रभाव के कारण संपादकीय विभाग पर भी पाठकों की रुचि को बनाए रखने के लिए निरंतर दबाव बढ़ रहा है। इसी कारण आजकल समाचारपत्रों के कलेवर, साज-सज्जा, स्तंभ आदि में व्यापक परिवर्तन दिखाई देने लगा है। कम्प्यूटर और इंटरनेट के आविष्कार से पूर्व अधिकतर पत्रकारों को अपने दिन-प्रतिदिन के समाचारों की पृष्ठभूमि लिखने के लिए मुख्यतः अपनी स्मरण-शक्ति पर निर्भर रहना पड़ता था। कई बार वे अनुमान का सहारा लेते थे लेकिन आज इंटरनेट के कारण सब कुछ सहज और सरल हो गया है। किसी भी घटना से संबंधित तथ्य और आँकड़े डाटा बैंक से सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। इस समय इंटरनेट विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति का सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम है और धीरे-धीरे इसने घर-घर में स्थान बनाना प्रारंभ कर दिया है। अब इंटरनेट पर समाचारपत्रों में मुद्रित समाचार पढ़े जा सकते हैं। अनेक संवाद समितियाँ अब अपने स्तंभ लेखकों एवं संवाददाताओं पर निर्भर रहने की अपेक्षा इंटरनेट के माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान कर रही हैं। विभिन्न केंद्रों को परस्पर जोड़कर समाचार समितियाँ सहज ही अपने ग्राहकों को त्वरित सेवा उपलब्ध करवा सकती हैं। इंटरनेट का एक लाभ यह भी हुआ है कि अब विभिन्न सोशल साइट्स, जैसे फेसबुक, ट्विटर आदि पर लोग अपनी बात कहने लगे हैं। समाचारों को देने लगे हैं। अब लोगों के पास अपनी न्यूज वेबसाइट बनाने का विकल्प भी उपलब्ध है। इस प्रकार इंटरनेट ने एक वैकल्पिक पत्रकारिता को जन्म देकर लोगों को अभिव्यक्ति का एक विशाल आकाश प्रदान किया है। जो समाचार रेडियो, टी.वी., समाचारपत्रों द्वारा छिपा लिए जाते हैं वे सोशल साइट्स पर उजागर हो जाते हैं। अभिषेक मनु सिंघवी की सीडी से जुड़ा मामला इस संदर्भ में जीवंत उदाहरण है। विकिलीक्स की साइट ने अंतरजाल पत्रकारिता को एकदम से सारे संसार के केन्द्र में ला खड़ा कर दिया। विकिलीक्स ने न केवल आश्चर्यजनक सूचनाएं विश्व-समाज को प्रदान कीं बल्कि परंपरागत पत्रकारिता और रेडियो व टी.वी. पत्रकारिता को भी पीछे छोड़ दिया। विश्व की संचार व्यवस्था में पहली बार ऐसा हुआ कि परंपरागत पत्रकारिता और रेडियो और टी.वी. पत्रकारिता अंतरजाल पत्रकारिता का अनुवर्ती बनी। अंतरजाल पत्रकारिता ने विभिन्न जनांदोलनों को गति दी है और समाज को विभिन्न मुद्दों पर एक किया है। मिस्र का तख्तापलट, लीबिया की रक्त क्रांति, अन्ना का आंदोलन, टयूनीशिया का शांतिपूर्वक तख्तापलट सभी में यह समाज का सहयोगी और घटनाओं का तत्काल साक्षी बना है। अंतरजाल पत्रकारिता में सबसे बड़ी परेशानी यह है कि 'वेबसाइट और इंटरनेट पर किसी भी सूचना को पाने, पकड़ने, प्रसारित करने के लिए लंबे समय तक अवांछित एवं अनावश्यक सूचनाओं के रोल को घुमाना पड़ता है। स्क्रीन पर सूचनाएं आंधी की तरह, टिड्डी दल की तरह उमड़ने लगती हैं, उनमें से अपने मतलब की सूचना को पाने-पकड़ने में जरा-ज्यादा आंख-मिचौली, माथापच्ची करनी

पड़ती है, उंगलियों को माउस पर तथा टंकण बटनों पर जरा-ज्यादा ही घुमाना पड़ता है।' (डॉ.वीणा गौतम, पृ0-117) स्पष्ट है कि अंतरजाल पत्रकारिता में अपार सूचनाएं उपलब्ध होती हैं और तेज गति से उपलब्ध होती है कि पाठक उनका पूरी तरह आनंद नहीं ले पाता लेकिन एक सूचना को बार-बार देख कर पढ़ने का आनंद अवश्य अंतरजाल पत्रकारिता में होता है। संवेदनात्मक संबंध इस प्रकार की सूचनाओं में नहीं बन पाता, कभी सूचनाएं कृत्रिम, अधूरी और आधारहीन भी होती हैं जो पाठकों को भ्रमित कर देती हैं। यही कारण है कि आज इंटरनेट पर सेंसर की बात की जाने लगी है।

**अभ्यास प्रश्न:**

(ग) रेडियो और टीवी पत्रकारिता पर प्रकाश डालिए।

(घ) अंतरजाल पत्रकारिता क्या है तथा इसने पत्रकारिता को कितना प्रभावित किया है।

## 18.7 सारांश

ई-पत्रकारिता मूल रूप से इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता है जिसमें रेडियो पत्रकारिता, टी.वी. पत्रकारिता, वीडियो पत्रकारिता, अंतरिक्ष पत्रकारिता, अंतरजाल पत्रकारिता शामिल है। यांत्रिकता, तात्कालिकता और नवीनता की इसमें प्रधानता है। यह श्रव्य भी है, दृश्य भी है, श्रव्य-दृश्य और पाठ्य तीनों भी है। टी.वी. और इंटरनेट पत्रकारिता में आप ये तीनों रूप देख सकते हैं। ई-पत्रकारिता को गति देने में विभिन्न संचार माध्यमों का योगदान रहा है। इसमें रेडियो, टी.वी., इंटरनेट, बहुमाध्यम को लिया जा सकता है जिनके कारण ई-पत्रकारिता निरंतर गतिशील है और लोकप्रिय भी हो रही है। रेडियो एक श्रव्य माध्यम है लेकिन सस्ता और दूरदराज तक आसानी से अपनी पहुंच बनाने वाला माध्यम है। टेलीविजन और इंटरनेट दृश्य-श्रव्य और पाठ्य तीनों हैं लेकिन टी.वी. का दृश्य अधिक आकर्षित करता है। इंटरनेट और बहुमाध्यम में पढ़े-लिखे लोगों का महत्व अधिक है। ये दोनों माध्यम अंतःक्रियात्मक हैं इसलिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। रेडियो और टी.वी. दोनों को अपार लाभ इंटरनेट ने दिया है।

रेडियो पत्रकारिता में शब्द की सत्ता है, वह भी उच्चरित शब्द की। प्रिंट मीडिया की लेखन संबंधी अधिकांश विशेषताएं होने के बावजूद रेडियो और टी.वी. श्रव्यता और दृश्यता से बंधे हैं। अतः इनके लिए लेखन करने वाले पत्रकार और इनमें काम करने वाले पत्रकार को रेडियो और टी.वी. पत्रकारिता की अतिरिक्त खूबियों को जानना होगा तभी उसमें पत्रकार को अधिक सफलता मिल पाएगी। वीडियो पत्रकारिता थोड़े समय के लिए सामने आई और उपग्रह पत्रकारिता के विकास होने से तथा अंतरजाल पत्रकारिता के विकास होने से इसका महत्व आज उतना नहीं है जितना सन् 1990 के दशक में रहा था। अंतरजाल पत्रकारिता ने पत्रकारिता का स्वरूप ही बदल दिया है लेकिन

फिर भी अखबार का महत्व अंतरजाल पत्रकारिता कम नहीं कर पाई है। सूचनाओं की अधिकता और संवेदना का अभाव इस पत्रकारिता में विशेष दोष हैं। फिर भी यह लोकप्रिय है।

## 18.8 शब्दावली

सशक्त - मजबूत

यांत्रिक - यंत्र संबंधी

संप्रेषित - विचारों को दूसरों तक पहचाना

निरक्षर - जो पढ़ा लिखा ना हो

स्वचालित - स्वयं चलने वाला

## 18.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) देखिए मुख्य शीर्षक 1.3 और उपभाग 1.4

(ख) देखिए मुख्य शीर्षक 1.6

(ग) देखिए मुख्य शीर्षक 1.6 का उपभाग 16.1

(घ) देखिए मुख्य शीर्षक 1.6 का उपभाग 1.6.4

## 18.10 संदर्भ ग्रंथ

संपा. प्रो. रमेश जैन, (2007), जनसंचार विश्वकोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर

डॉ.अर्जुन तिवारी, (2002), ई जर्नलिज्म, संजय बुक सेंटर , वाराणसी

डॉ.चन्द्रप्रकाश मिश्र,(2003), मीडिया लेखन: सिद्धांत और व्यवहार, संजय प्रकाशन, दिल्ली

डॉ.चन्द्रप्रकाश मिश्र, (2006) संचार और संचार माध्यम, संजय प्रकाशन, दिल्ली

वेद प्रकाश मिश्र, (2007), हिंदी पत्रकारिता: आधुनिक संदर्भ, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली

संपा. डॉ. संजीव भानावत,(2005) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, जनसंचार केन्द्र , जयपुर

संपा. डॉ. पूरनचंद टंडन, (2004) सूचना प्रौद्योगिकी, हिंदी और अनुवाद, भारतीय अनुवाद परिषद, दिल्ली

## 18.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

डा. राजेंद्र मिश्र, रेडियो लेखन

डा. स्मिता मिश्र, अमरनाथ अमर, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया: बदलते आयाम

डा. देवव्रत सिंह, भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

डा. नीरजा माधव, रेडियो का कलापक्ष

सुरेश कुमार, इंटरनेट पत्रकारिता

## 18.12 निबंधात्मक प्रश्न

क. ई-पत्रकारिता से आप क्या समझते हैं विस्तार से समझाइये तथा पत्रकारिता एवं इंटरनेट पत्रकारिता के अन्तर्सम्बन्धों की विवेचना कीजिए .

ख . ई-पत्रकारिता के विविध रूपों की व्याख्या करते हुए वर्तमान जीवन के संबंध में इसकी उपयोगिता एवं प्रासंगिकता प्रतिपादित कीजिए

# इकाई 19 हिंदी पत्रकारिता का इतिहास

इकाई की रूपरेखा


19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 पत्रकारिता का अर्थ एवं वर्गीकरण
19.4 हिंदी पत्रकारिता का इतिहास
19.4.1 कालविभाजन एवं नामकरण
19.4.2 इतिहास
19.5 मूल्यांकन
19.6 सारांश
19.7 शब्दावली
19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
19.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
19.11 निबंधात्मक प्रश्न


## 19.1 प्रस्तावना

आज का युग मीडिया का है। मीडिया यानी माध्यम । माध्यम यानी संचार। संचार यानी पत्रकारिता। पत्रकारिता का सामान्य अर्थ सूचना देना होता है। जब किसी घटना के तथ्य को उसकी सम्पूर्णता में दूसरों तक पहुंचाया जाता है तो उसे पत्रकारिता कहा जाता है। संचार शब्द की अर्थव्यवस्था भी लगभग वैसी ही है जैसी पत्रकारिता की। संचार का अर्थ है - घटना को जन-सामान्य तक संचरित करना या संप्रेक्षित करना। मीडिया को आजकल प्रायः इन सभी शब्दों से ज्यादा स्वीकृति मिल गई है। यह माध्यम जिससे किसी घटना, परिस्थिति या भावना/संस्कृति को समान रूप से सबके बीच पहुंचाया जाये उसे हम मीडिया कहते हैं। अपने शुरूआती दौर में मीडिया का अर्थ सूचना देना होता था किन्तु धीरे-धीरे इसका क्षेत्र विस्तृत होता गया। पिछली इकाइयों में आपने आज की पत्रकारिता से परिचय प्राप्त कर लिया है। इस इकाई में आप हिंदी पत्रकारिता, खासतौर से प्रिन्ट मीडिया के इतिहास से परिचय प्राप्त करेंगे।

## 19.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- पत्रकारिता के अर्थ को समझ सकेंगे।
- पत्रकारिता के वर्गीकरण से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी प्रिन्ट मीडिया का इतिहास जान सकेंगे।
- हिंदी पत्रकारिता के उद्देश्य एवं महत्व से परिचित हो सकेंगे।
- पत्रकारिता के पारिभाषिक शब्दों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी के प्रमुख समाचार पत्रों एवं पत्रकारों के योगदान से अवगत हो सकेंगे।

## 19.3 पत्रकारिता का अर्थ एवं वर्गीकरण

पूर्व में आप पढ़ चुके हैं कि पत्रकारिता का अर्थ मुख्यतः सूचना के आदान-प्रदान से जुड़ा हुआ है। किसी घटना के तथ्य, कारण एवं उपयोगिता की जांच करना पत्रकारिता का मूल कर्त्तव्य है। घटना की सूचना देना पत्रकारिता के छः ककार, महत्वपूर्ण हैं। ये छः ककार हैं - क्या, कब, कहाँ , किससे, किसने, क्यों। अर्थात् कोई घटना घटी तो क्या घटना ? घटना कब घटी ? घटना कहाँ घटी ? घटना का जिम्मेदार कौन है ? घटना का असर किस पर हुआ है ? और घटना के पीछे वास्तविक कारण क्या हैं ? इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी घटना के पीछे छिपे मूल तथ्यों पर प्रकाश डालना ही पत्रकारिता का मूल उद्देश्य है न कि केवल सूचना देना। इस दृष्टि से पत्रकारिता के उद्देश्य स्थिर करते हुए कहा गया है कि पत्रकारिता का कार्य है - सूचना देना, घटना के पीछे छिपे कारणों की तालाश करना, घटना के प्रति लोगों को जागृत करना, घटना के पक्ष या विपक्ष में लोगों को जागरूक करना, जनता की रूचि निर्माण करना और उन्हें दिशा देना। अतः जब भी पत्रकारिता के अर्थ की बात होगी, हमारे सामने उसके उद्देश्य होंगे। पत्रकारिता अपने श्रेष्ठ रूप में जन-सामान्य को वाद-विवाद का मंच देकर उन्हें किसी घटना के प्रति जागरूक करने का कार्य करता है। इसके पश्चात् प्रतिबद्ध पत्रकारिता जनता को सत्य तक पहुँचने के लिए दिशा-निर्देशिका का कार्य भी करती है। इस दृष्टि से पत्रकारिता अपने इस महान उद्देश्य से भटक कर ज्यादा मुनाफा कमाने में लगी हुई है। मूल्य निर्माण से दूर आज की पत्रकारिता सेक्स, हिंसा एवं अर्थ के बाजारीकरण के इर्द-गिर्द घूम रही है जो चिन्ताजनक है।

**पत्रकारिता का वर्गीकरण** 1.प्रिन्ट मीडिया 2.इलेक्ट्रॉनिक मीडिया 3.ई-पत्रकारिता

पत्रकारिता का यह विभाजन स्थूलतः किया गया है। समाचार पत्र,पत्रिकाएं , पम्पलेट इत्यादि प्रिन्ट मीडिया के अन्तर्गत आते हैं। टी.वी., फिल्म इत्यादि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अन्तर्गत तथा कम्प्यूटर,

इन्टरनेट, ब्लॉग, ट्वीटर इत्यादि ई-मीडिया के अन्तर्गत। इसके भी अवान्तर का विषय पत्रकारिता के इतिहास का विवेचन करना है।

## 19.4 हिंदी पत्रकारिता का इतिहास

पत्रकारिता के इतिहास को मनुष्य के सामाजिक विकास से जोड़ कर देखा गया है। पत्रकारिता के इतिहास की खोज करते हुए कभी इसे पुराण (नारद में) तो कभी महाकाव्य (महाभारत के संजय की दिव्य-दृष्टि) में खोजा गया है, किन्तु आधुनिक पत्रकारिता की कसौटी पर ये तर्क ध्वस्त हो जाते हैं। अशोक के शिलालेख, बौद्ध धर्म के उपदेश या मुगलकाल के 'अखबारनवीस' प्राचीनकालीन पत्रकारिता के ही रूप हैं। आधुनिक पत्रकारिता का संबंध मुद्रण कला से है। इस दृष्टि से चीन में प्रकाशित 'पेकिंग गजट' समाचार पत्र विश्व का पहला मुद्रित समाचार पत्र माना जाता है। इसके पश्चात् इंग्लैण्ड एवं अमरीका में कई समाचार पत्र प्रकाशित हुए। जहाँ तक भारतीय आधुनिक पत्रकारिता की बात है इसका विकास भारतीय राजदरबारों के माध्यम से न होकर अंग्रेजों के ईसाई मिशनरियों द्वारा हुआ है। इनका उद्देश्य चाहे धार्मिक रहा हो या साम्राज्यवादी या दोनों, लेकिन इनके साइक्लोस्टाइल (पर्चे) द्वारा भारतीय पत्रकारिता का विकास हुआ, इसमें से पूर्व उसके कालविभाजन एवं नामकरण की समस्या पर विचार करें।

### 19.4.1 कालविभाजन एवं नामकरण

पत्रकारिता के इतिहास में काल विभाजन एवं नामकरण का महत्व असाधारण है। काल विभाजन एवं नामकरण के द्वारा हम पत्रकारिता के इतिहास के विभिन्न मोड़ों, गति विकास एवं ह्रास का विश्लेषण कर सकते हैं क्योंकि पत्रकारिता समाज को समझने-बदलने का बौद्धिक उपक्रम है। 'समाचार पत्रों का इतिहास पुस्तक में पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने काल-विभाजन करते हुए इसे 'प्रारम्भ काल के हिंदी पत्र, दूसरे दौर के पत्र नये युग की झलक, दैनिक-पत्रों का युग, आदि शीर्षक दिया है। 'हिंदी साहित्य का वृहत्त इतिहास' (नागरी प्रचारिणी सभा) द्वारा प्रकाशित इतिहास में हिंदी पत्रकारिता का काल-विभाजन इस प्रकार किया गया है -

**प्रथम उत्थान** (1826-1867), द्वितीय उत्थान (1867-1920) और आधुनिक काल (1920 के बाद)। बालकुकुन्द गुप्त हिंदी पत्रकारिता का काल-विभाजन इस प्रका किया है - प्रथम चरण (1845-1877 तक), द्वितीय चरण (1877-1890) तथा तृतीय चरण सन् 1890 के बाद। डॉ.रामरतन भटनागर ने पत्रकारिता के चरणों को छः काल खण्डों में विभक्त किया है -

आरम्भिक युग - 1826-1867

उत्थान एवं अभिवृद्धि युग - प्रथम चरण (1867-1883)

द्वितीय चरण - (1833-1900)

विकास युग - प्रथम चरण (1900-1921)

द्वितीय चरण - (1921-1935)

तथा आधुनिक युग - अब तक

डॉ.कृष्णबिहारी मिश्र ने हिंदी पत्रकारिता का काल-विभाजन इस प्रकार किया है -

1 . भारतीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता का उदय (1826-1867)

2 . राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति और दूसरे दौर की हिंदी पत्रकारिता (1867-1900)

3 . तथा बीसवीं शताब्दी का आरम्भ और हिंदी पत्रकारिता का तीसरा दौर।

'स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता में' में डॉ.अर्जुन तिवारी ने इस प्रकार काल-विभाजन किया है -

1 . बीज वपन काल (1826-1867)

2 . अंकुरण काल (1867-1905)

3 . पल्लवन काल (1905-1926) तथा

4 . फलन काल (1930-1947)।

डॉ. रमेश जैन ने हिंदी पत्रकारिता का काल-विभाजन निम्न चरणों में किया है -

1 . प्रारम्भिक युग (1826-1867)

2 . भारतेन्दु युग (1867-1900)

3 . द्विवेदी युग (1900-1920)

4 . गांधी युग (1920-1947) और

5 . स्वातंत्रयोत्तर युग (1947 से अब तक)

हिंदी पत्रकारिता का काल-विभाजन अनेक आचार्यों ने किया है। मोटे तौर पर इसे चरणों में विभाजित किया जा सकता है -

प्रथम चरण - पृष्ठभूमि काल (1780 से 1825 ई. तक)

द्वितीय चरण - उद्भव काल (1826 से 1867 तक)

तृतीय चरण - भारतेन्दुकाल (1867 से 1899 ई. तक)

चतुर्थ चरण - द्विवेदी काल (1900 से 1920 ई. तक)

पंचम चरण - गांधी युग (1921 से 1946 ई. तक)

षष्ठ चरण - स्वातन्त्र्योत्तर काल (1947 से 1989 ई. तक)

सप्तम् चरण - ई-पत्रकारिता/समकालीन पत्रकारिता (1990 से अब तक)

### 19.4.2 इतिहास

हिंदी पत्रकारिता के काल विभाजन एवं नामकरण का आपने अध्ययन कर लिया है। अब हम प्रत्येक काल के अनुसार हिंदी पत्रकारिता की क्रमिक विकास-यात्रा का अध्ययन करेंगे।

**प्रथम चरण** (पृष्ठभूमि काल 1780-1825 ई.) इस काल के अंतर्गत सन् 1780 से लेकर 1825 तक के काल का हम अध्यठयन करेंगे। भारत में समाचार.पत्रों की प्रारंभिक भूमि होने का श्रेय कलकत्ता को है। कलकत्ते से अंग्रेज जनरल जेम्स ऑगस्टक हिकी ने 29 जनवरी 1780 को भारत का पहला समाचार पत्र हिकी गजट निकाला। बंगाल से निकलने के कारण इसे बंगाल गैजेट भी कहा जाता है। सरकारी नीतियों के विरोध के चलते हिकी गजट बन्द हो गया लेकिन भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में हिकी अमर हो गया। इस चरण में अन्य निकलने वाले कुछ पत्र थे -

इण्डिया मैजेट 1780 प्रकाशक बी. मेसिंक और पीटर रीड<br>
बंगाल जनरल 1785 टॉमस जोन्स<br>
मैड्रास कूरियर 1785 रिचार्ड जॉन्सटन<br>
बॉम्बे हेरल्ड 1789<br>
बॉम्बे कूरियर 1790<br>
मैड्रास गैजेट 1795 हम्फ्रीज

1780 से 1818 ई. तक केवल अंग्रेजी भाषा में समाचार पत्र निकले। इन सबके प्रकाशक अंग्रेज थे और एक तरह से इन्हें सरकारी पत्र ही कहा जा सकता है। देशी भाषा का प्रथम समाचार पत्र होने का गौरव दिग्दर्शन नामक पत्र को है। इसका प्रकाशन 1818 ई. में हुआ था। इसे जोशुआ मार्शमैन ने प्रकाशित किया था। दिग्दर्शन के प्रकाशन के कुछ दिनों बाद दो साप्ताहिक पत्र भी बंगला में निकले। ये पत्र थे बंगाल गैजेट और समाचार दर्पण। बंगाल गैजेट इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि यह पहला बंगाल पत्र था । सन् 1818 ई. में ही कैलकटा जनरल जेम्स सिल्क बकिंघम के द्वारा प्रकाशित हुआ।

इस पत्र को राजा राम मोहन राय द्वारा सहायता प्राप्त थी। 1919 ई. के आसपास राजा राम मोहन राय ने चार समाचारपत्रों का प्रकाशन शुरू किया जिसमें से तीन भारतीय भाषाओं के थे तथा एक अंग्रेजी का। सन् 1922 ई. में फारसी का पहला पत्र मिराउतल अखबार भी राजा राममोहन ने ही निकाला था। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस काल में समाचार पत्र निकलने लगे थे हांलाकि संपादन के मानकों को न पूरा कर पाने के बावजूद हिंदी पत्रकारिता में इनका अपना महत्व है।

**द्वितीय चरण** (उद्भव काल- 1826-1867 ई.) हिंदी पत्रकारिता की वास्तविक शुरूआत इसी काल से होती है इसीलिए इसे उद्भव काल कहा गया है। हिंदी के प्रथम पत्र की दृष्टि से उदंड मार्तण्ड की गणना की जाती है। उदण्ड मार्तण्ड का पहला अंक 30 मई 1826 ई. को कलकत्ते से पं0 युगलकिशोर शुक्ल के सम्पादकत्व में निकला था। यह साप्ताहिक पत्र था। 11 दिसम्बर 1827 ई. को सरकारी कोप एवं आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस पत्र को बंद करना पड़ा। उदंत मार्तण्ड के बाद महत्वपूर्ण समाचार पत्र बंगदूत का प्रकाशन भी कलकत्ते से ही 10 मई 1829 ई. को हुआ। यह पत्र चार भाषाओं में निकलता था। इस पत्र के मूल प्रेरक राजा राम मोहन राय थे तथा सम्पादक नीलरतन हालदार थे। हिंदी क्षेत्र में निकलने वाले पत्र की दृष्टि से बनारस अखबार (1845 ई.काशी) की गणना की जाती है। इस पत्र के प्रेरक राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद थे। यह पत्र श्री गोबिन्द रघुनाथ थत्ते के संपादन में प्रकाशित होता था। इसके पश्चात तारामोहन मित्र के संपादकत्व में 1850 ई. सदासुखलाल के संपादकत्व में बुद्धिप्रकाश का प्रकाशन महत्वपूर्ण है। समाचार सुधावर्षण हिंदी का पहला दैनिक पत्र है जो बाबू श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व में कलकत्ते से निकला था। इस युग के अन्य महत्वपूर्ण पत्रों में सर्वहितकारक पत्र तथा क्रान्तिकारी अजीमुल्ला खाँ के संपादन में पयामे आजादी महत्त्वपूर्ण है।

**तृतीय चरण भारतेन्दुकाल** (1867-1899 ई.) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आगमन से पूर्व हिंदी पत्रकारिता का केंद्र कलकत्ता था उसे उन्होंने हिंदी प्रदेश से जोड़ दिया। 1867 ई. में भारतेन्दु हरिश्चंद ने काशी से कविवचन सुधा का प्रकाशन शुरू किया। आधुनिक विषयों से युक्त यह हिंदी की पहली पत्रिका थी। भारतेन्दु हरिश्चवन्द्र चूँकि खुद साहित्यिकार थे इस दृष्टि से साहित्यिक पत्रकारिता के भी आप जनक कहे जा सकते हैं। कविवचन सुधा के अतिरिक्त हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित अन्य पत्र थे - हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका एवं बालाबोधिनी। भारतेन्दु काल के पत्रों में बालकृष्ण भट्ट के संपादकत्व में प्रकाशित हिन्दी प्रदीप (1877 ई.) का महत्वपूर्ण योगदान है। 17 मई 1878 ई. को कलकत्ता से भारत मित्र पाक्षिक का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके सम्पादक छोटू लाल मिश्र थे। पं0 अम्बिका प्रसाद वाजपेयी के सम्पादन में यह पत्र हिंदी का शीर्ष पत्र बन गया। 1883 ई. में प्रकाशित ब्राह्मण पत्र का संपादन प्रताप नारायण मिश्र ने किया था। यह पत्र हिन्दोस्तान(1885) का प्रकाशन उत्तर प्रदेश के कालाकांकर से राजा रामपाल सिंह ने प्रकाशित किया था। मालवीय जी के संपादन में इस पत्र ने ख्याति अर्जित की। इस दौर के पत्रों में हिन्दी बंगवासी का भी महत्वपूर्ण स्थान है। 1890 में प्रकाशित वेंकटेश्वर समाचार (बम्बई) भी महत्वपूर्ण था। काशी से प्रकाशित नागरी प्रचारिणी

पत्रिका (1896 ई.)हिंदी पत्रकारिता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के विकास में इस पत्रिका का सर्वाधिक योगदान है। इसके संपादक मंडल में श्यामसुन्दर दास, सुधाकर द्विवेदी किशोरीलाल गोस्वामी राधाकृष्ण दास इत्यादि थे। इस काल में निकले अन्य महत्वपूर्ण पत्र हैं -

अल्मोड़ा अखबार (1871ई.) बिहारबंधु संपादक केशवराम भट्ट, भारतबंधु -तोताराम(1871 ई.) आनंदकादम्बिनी 1883 ई. बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन इत्यादि।

**चतुर्थ चरण द्विवेदी काल** (1900-1920 ई.) हिंदी पत्रकारिता के इस युग को महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर द्विवेदी युग कहा गया है। द्विवेदी जी द्वारा प्रकाशित सरस्वती पत्र इस युग में भाषा एवं साहित्य में केंद्रीय भूमिका निभाती है। सन् 1900 में इलाहाबाद से इस पत्रिका का प्रकाशन शुरू होता है। इस पत्र के संपादक मण्डल में-बाबू श्यामसुन्दर दास, श्री कार्तिक प्रसाद खत्री, पंडित किशोरी लाल गोस्वामी, बाबू जगन्नाथ दास एवं बाबू राधाकृष्णदास थे। सन् 1903 से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस पत्र का संपादन किया। सुदर्शन नामक पत्र का प्रकाशन काशी से 1900 में माधवप्रसाद मिश्र ने किया था। सन् 1907 ई. में साप्ताहिक अभ्युदय पत्र का प्रकाशन प्रयाग से मालवीय जी ने किया था। मर्यादा नामक मासिक पत्र का संपादन 1910 ई. में प्रयाग से पं0 कृष्णकान्त मालवीय ने किया था। बाद में इस पत्र का संपादन संपूर्णानंद, प्रेमचन्द तथा बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे साहित्यकारों ने किया। सम्मेलन पत्रिका 1913 ई. में प्रयाग से गिरिजा कुमार घोष के सम्पादकत्व में निकली थी। श्री शिवमुनि के संपादकत्व में सन् 1915 में प्रकाशित ज्ञानशक्ति इस युग का महत्वपूर्ण पत्र था। सन् 1919 में गणेशशंकर विद्यार्थी की प्रेरणा से गोरखपुर से स्वदेश हिंदी साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ था। इसके अतिरिक्त इस युग के अन्य महत्वपूर्ण पत्र हैं -1.प्रभा - खंडवा (1913),2. प्रताप , कानपुर -(1913) सं0 गणेश शंकर विद्यार्थी, 3. (समालोचक) 1902 जयपुर चन्द्रधर शर्मा गुलेरी 4. इन्दु 1909, काशी- अम्बिका प्रसाद गुप्त

**पंचम चरण गांधी युग** (1920-1947 ई.) इस युग की पत्रकारिता पर महात्मा गाँधी और राष्ट्रीय आन्दोलन का बहुत प्रभाव रहा है। यह प्रभाव इस युग की पत्रकारिता के विषय चयन से लेकर प्रस्तुति तक व्याप्त है। द्विवेदी युग की पत्रकारिता का मूल स्वर साहित्यिक एवं सुधार से ज्यादा संचालित रहा है। **आज** दैनिक पत्र का प्रकाशन इस काल की पत्रकारिता में स्थायी महत्व रखता है। इसका प्रकाशन 5 अप्रैल 1920 को शिवप्रसाद गुप्त ने काशी से किया था। इस पत्र के संपादक बाबूराव विष्णु पराड़कर थे। स्वतंत्र पत्र का प्रकाशन 4 अगस्त 1920 को कलकत्ता से पं0 अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने प्रारम्भ किया था। कर्मवीर पत्र का प्रकाशन जबलपुर से 17 जनवरी 1920 ई. को माखनलाल चतुर्वेदी के संपादकत्व में हुआ था। समन्वयक पत्र का प्रकाशन 1922 ई. में हुआ था। यह पत्र रामकृष्ण मिशन का पत्र था। इसके संपादक माधवानन्द जी थे। निराला जी की प्रतिभा को निखारने में इस पत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान है। 23 अगस्त 1923 ई. को मतवाला का प्रकाशन हिंदी

पत्रकारिता में एक नये मोड़ का सूचक है। इस पत्र के निर्माताओं में मुंशी नवजादिक लाल, निराला, बाबू शिवपूजन सहाय और महादेव प्रसाद सेठ थे। धार्मिक-आध्यात्मिक पत्रिकाओं में कल्याण का विशिष्ट स्थान है। यह पत्र गोरखपुर से 1826 ई. में निकला था। सन् 1928 में प्रकाशित विशाल भारत रामानन्द चट्टोपाध्याय ने प्रकाशित किया था। विशाल भारत के संपादक पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी जी थे। इस समय के साहित्यिक पत्रों में माधुरी(1921), चाँद(1922), सुधा(1927) तथा हंस(1930) का विशिष्ट स्थान है। माधुरी रूपनारायण पाण्डेय, चाँद- महोदेवी वर्मा, प्रभा- दुलारेलाल भार्गव तथा हंस प्रेमचन्द के संपादकत्व में निकली थी। जागरण का प्रकाशन 11 फरवरी 1931 में हुआ था। इसके संपादक शिवपूजन सहाय थे। इस युग के अन्य महत्वपूर्ण समाचार पत्रों में इंदौर समाचार,सन्मार्ग, सैनिक, विश्वमित्र इत्यादि रहा है।

**षष्ठ चरण स्वातंत्र्योत्तर युग**(1948-1989 ई.) गांधी युग से स्वातंत्र्योत्तरकालीन पत्रकारिता इस दृष्टि से भिन्न रही है कि जहाँ पहले का उद्देश्य स्वतंत्रता प्राप्ति था वहीं दूसरे का जन-प्रतिबद्धता । आइए हम इस युग में निकलने वाले पत्रों की संक्षिप्त रूपरेखा का अध्ययन करें। दिल्ली से दैनिक नवभारत का प्रकाशन 4 अप्रैल 1947 को प्रारम्भ हुआ। 29 जून 1950 को दूसरा नाम नवभारत टाइम्स कर दिया गया। इसके प्रारंभिक संपादक सत्यदेव विद्यालंकार थे। हिन्दुस्तान पत्र का प्रकाशन 2 अक्टूबर 1950 से प्रारम्भ हुआ। पहले यह पत्र साप्ताहिक था बाद में दैनिक हो गया। स्वातंत्र्योत्तर काल के पत्रों में खोजपूर्ण पत्रकारिता की दृष्टि से जनसत्ता का महत्वपूर्ण नाम है। अपनी संपादकीय लेखों तथा जन प्रतिबद्धताओं के कारण यह पत्र चर्चित रहा है। 5 जून 1947 ई. से इंदौर से कृष्णचन्द्र मुदगल तथा कृष्णकांत व्यास के प्रयत्नों से नई दुनिया का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इन्दौर समाचार का प्रकाशन 22 मार्च 1946 ई. को इन्दौर से पुरूषोत्तम विजय के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ पूर्णचन्द गुप्त ने 1947 से कानपुर से जागरण का प्रकाशन आरम्भ किया। सन् 1948 में डोरीलाल अग्रवाल तथा मुरारीलाल माहेश्वरी ने आगरा से अमर उजाला का प्रकाशन शुरू किया। पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड का यह प्रमुख पत्र है। युगधर्म का प्रकाशन नागपुर से 1951 ई. में प्रारम्भ हुआ। हिंदू संस्कृति के प्रचार-प्रसार में यह पत्र अधिक सक्रिय रहा है। पंजाब केसरी का प्रकाशन 1964 में जालन्धर से हुआ। लाला जगतनारायण इस पत्र के आदि सम्पादक थे। धर्मयुग का प्रकाशन बम्बई से टाइम्स आफ इण्डिया समूह ने 1950 में प्रारम्भ किया। इस पत्र के प्रथम संपादक इलाचन्द्र जोशी थे। बाद में इसके संपादक हेमचन्द्र जोशी तथा सत्यकाम विद्यालंकार हुए। धर्मवीर भारती के संपादन में धर्मयुग देश का सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र बन गया। राजस्थान पत्रिका का प्रकाशन जयपुर से 7 मार्च 1956 को हुआ। यह राजस्थान का प्रमुख पत्र है। राष्ट्रदूत का प्रकाशन 1 अगस्त 1951 को जयपुर से हजारीलाल शर्मा द्वारा किया गया। 18 अप्रैल 1948 ई. को वाराणसी के प्रसिद्ध संत स्वामी करपात्री जी के आशीर्वाद से सन्मार्ग का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। सनातन धर्म के हितों से जुड़ा यह प्रमुख पत्र था। स्वदेश सन् 1966 को इन्दौर से प्रकाशित हुआ था। दैनिक भास्कर का प्रकाशन 1958 में भोपाल से हुआ। इसके आदि संपादक काशीनाथ चतुर्वेदी थे। पंजाब के महत्वपूर्ण पत्रों में

वीर प्रताप (1958) की गणना की जाती है। रांची एक्सप्रेस का प्रकाशन राँची से हो रहा है। दिनमान टाइम्स आफ इण्डिया समूह का समाचार पत्र है। इसका प्रकाशन दिल्ली से 21 फरवरी 1985 को प्रारम्भ हुआ। अज्ञेय के सम्पादन में दिनमान ने हिंदी पत्रकारिता को नई ऊँचाई दी। पाँचजन्य का प्रकाशन लखनऊ से 1947 में प्रारम्भ हुआ उसके पश्चात् 1967 से दिल्ली से यह प्रकाशित हो रहा है। पाँचजन्य राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की नीति को पोषक पत्र है। माधुरी पत्रिका का प्रकाशन बम्बई से 20 जनवरी 1964 को आरम्भ हुआ। यह फिल्म जगत से संबंधित पत्रिका है1 पराग पत्रिका का प्रकाशन टाइम्स आफ इण्डिया समूह ने मार्च 1958 में प्रारम्भ किया। यह बच्चों की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है। कादम्बिनी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की पत्रिका का प्रकाशन नवम्बर 1964 में हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन नई दिल्ली से हो रहा है। यह बाल पत्रिका है। सारिका पत्र का प्रकाशन 1970 में आरम्भ हुआ। कमलेश्वर के संपादन में इस पत्रिका ने विशेष ख्याति अर्जित की। चंदामामा बाल साहित्य की प्रमुख पत्रिका है। यह हिंदी भाषा के अतिरिक्त अन्य कई भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होती है। हरिप्रसाद नेवटिया ने बम्बद से 1952 में नवनीत मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके आदि संपादक सत्यकाम विद्यालंकार थे। सरिता का प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ। सामाजिक व पारिवारिक पुनर्निर्माण की दृष्टि से इस पत्र का विशेष योगदान रहा है। मुक्ता का प्रकाशन 1960 में नई दिल्ली से हुआ। महिला समस्या पर इस पत्रिका ने महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की है। मनोहर कहानियाँ का प्रकाशन इलाहाबाद से प्रारम्भ हुआ। सनसनीखेज तथा अन्तर्द्वन्द प्रधान कहानियों के लिए यह पत्रिका विशेष चर्चित रही है। मनोरमा पत्रिका का प्रकाशन इलाहाबाद से प्रारम्भ हुआ। महिलाओं के लिए इस पत्रिका ने उपयोगी सामग्री का प्रकाशन किया है। गृहशोभा पत्रिका का प्रकाशन दिल्ली से प्रारम्भ हुआ। गृहशोभा भी महिलाओं की पत्रिका है। सरस-सलिल लघु पत्रिकाओं में सर्वाधित बिकने वाला पत्र है। इसके अतिरिक्त आजकल इंडिया टुडे, भारतीय पक्ष, प्रथम प्रवक्ता जैसे पत्रों ने भी सामाजिक एवं राजनीतिक प्रश्नों को गंभीरता से उठाया है।

**सप्तम चरण ई-पत्रकारिता समकालीन पत्रकारिता**(1991 से वर्तमान तक) सन् 1990 के बाद का समय भूमंडलीकरण एवं वैश्वीकरण से प्रभावित रहा है। भूमंडलीकरण यंत्र प्रधान दर्शन रहा है। इस दर्शन का प्रभाव इस युग की पत्रकारिता पर भी पड़ा है। फलत: पत्रकारिता अधिक लोकतांत्रिक हुई है। इस युग की पत्रकारिता ब्लाग, ट्वीटर के माध्यम से चलती है। इसमें केन्द्र नहीं हैं। यह ज्यादा लोकतांत्रिक प्रक्रिया है। इसमें सबके लिए जगह है। इसे ई-पत्रकारिता कहा गया है।

## 19.5 मूल्यांकन

हिंदी पत्रकारिता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण रही है कि इसने जन सरोकारों व प्रतिबद्धताओं को पूरी ईमानदारी से अपने लेखन का विषय बनाया है। पश्चिमी पत्रकारिता की अपेक्षा भारतीय या हिंदी पत्रकारिता का इतिहास नया है। उसमें भी 1780 से लेकर सन् 1947 तक हिंदी पत्रकारिता के केन्द्र

में राष्ट्रीय नवजागरण या स्वतंत्रता ही रहे हैं। सन् 1947 तक हिंदी पत्रकारिता का मूल ध्येय राष्ट्रीय मुक्ति ही रहा है। कथ्य पर बल देने से शिल्प या प्रयोगधर्मिता पर बल कम हो जाता है।

**अभ्यान प्रश्न 1**

**क रिक्त् स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

1 . पृष्ठभूमि काल के अंतर्गत...................................... समय तक की पत्रकारिता आती है।

2 . उदन्त मार्तण्डं के संपादक.................................................... हैं।

3 . सरस्वती पत्रिका का संपादन................................................ ने किया था।

4 . टी.वी. ......................................................मीडिया के अंतर्गत आता है।

5 . समाचार पत्र......................................मीडिया के अंतर्गत आता है।

**ख सत्य\असत्य का चुनाव कीजिए।**

1 . हंस पत्रिका के संपादक प्रेमचन्द थे।

2 . बनारस अखबार के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे।

3 . बालाबोधिनी पत्रिका के संपादक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। थे।

4 . हिन्दी प्रदीप के संपादक बालकृष्ण भट्ट हैं।

5 . हिकी गजट का प्रकाशन वर्ष 1780 है।

**अभ्यान प्रश्न 2**

**सुमेलित कीजिए।**

| **काल** | **पत्रिका** |
|---|---|
| द्विवेदी काल | मनोरमा |
| स्वातंत्र्योतर काल | बालाबोधिनी |
| भारतेन्दु काल | आज |

| | |
|---|---|
| गाँधी युग | बनारस अखबार |
| उद्भव काल | इन्दु |

## 19.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि -

- हिंदी पत्रकारिता का आधुनिक इतिहास 1780 से हिकी गजट के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है।
- हिंदी पत्रकारिता अब तक विभिन्न मोड़ों से गुजर चुकी है।
- सन् 1947 के पूर्व की पत्रकारिता का मुख्य स्वरुप राष्ट्रीय एवं साहित्यिक था जबकि उसके पश्चात् की पत्रकारिता का स्वरूप लोकतांत्रिक।
- समकालीन पत्रकारिता ई-पत्रकारिता के रूप में हमारे सामने है। इलेक्ट्रानिक मीडिया और ई-पत्रकारिता ने ज्यादा लोकतांत्रिक रूप प्रदान किया है।

## 19.7 शब्दावली

| | |
|---|---|
| मीडिया | सूचना को जन तक पहुँचाने वाला माध्यम |
| संचार | पत्रकारिता का नया नामए सूचना को संचरित करने वाला माध्याम |
| छ:ककार | क्या ,कब, कैसे, कहाँ, किसने, क्यों, ये प्रश्न ही पत्रकारिता में छ: ककार कहे जाते हैं। |
| प्रतिबद्ध पत्रकारिता | जन समस्याओं एवं भावनाओं से युक्त पत्रकारिता। |
| साम्राजयवाद | एक देश का दूसरे देश पर आधिपत्य करने वाली भावना। |
| अभिवृद्धि | बढ़त वृद्धि |

## 19.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**अभ्यास प्रश्न 1**

क . 1. 1780-1825 ई.

2 . युगल किशोर शुक्ल

3 . महावीर प्रसाद द्विवेदी

4 . इलेक्ट्रानिक मीडिया

5 . प्रिन्ट मीडिया

**ख** 1. सत्य

2 . असत्य

3 . सत्य

4 . सत्य

5 . सत्य

**अभ्यास प्रश्न 2 सुमेलित कीजिए**

1 . इन्दु

2 . मनोरमा

3 . बालाबोधिनी

4 . आज

5 . बनारस अखबार

## 19.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 . मिश्र ,कृष्ण बिहारी , पत्रकारिता : इतिहास और प्रश्न, वाणी प्रकाशन

2 . वैदिक ,वेद प्रताप, हिंदी पत्रकारिता के विविध आयाम, हिंदी बुक सेन्टर ,नई दिल्ली

3 . शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा

4 . नगेन्द्र डा., हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पब्लिकेशन , नई दिल्ली

## 19.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 . ओझा, बेंकट लाल, हिंदी समाचार पत्रों की सूची, हिंदी समाचार पत्र संग्रहालय, हैदराबाद

2 . तिवारी, अर्जुन, स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता, विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

## 19.11 निबंधात्मक प्रश्न

1 . हिंदी पत्रकारिता के काल विभाजन एवं नामकरण की समस्या पर विचार कीजिए।

2 . हिंदी पत्रकारिता के इतिहास के आधार पर उसके योगदान को रेखांकित करें।

# इकाई 20 संपादन कला : संपादकीय , प्रिन्ट , रेडियो , टीवी के लिए लेखन

इकाई की रूपरेखा


20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 संपादन कला

20.3.1 अर्थ

20.3.2 आवश्यकता

20.4 संपादकीय लेखन

20.4.1 संपादकीय:विशेषता

20.4.2 संपादकीय लेखन

20.5 प्रिंट लेखन

20.6 रेडियो के लिए लेखन

20.7 टेलीविजन के लिए लेखन

20.8 सारांश

20.9 शब्दावली

20.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

20.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

20.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

20.13 निबंधात्मक प्रश्न


## 20.1 प्रस्तावना

पत्रकारिता में वैसे तो प्रत्यके प्रक्रिया महत्वपूर्ण हुआ करती है किन्तु इनमें सबसे महत्वपूर्ण होता है – संपादन कार्य। बिना संपादन कार्य के पत्रकारिता अनियंत्रित सूचनाओं का प्रवाह बनकर रह जाता है। चाहे वह प्रिन्ट मीडिया हो इलैक्ट्रानिक मीडिया बिना संपादन कार्य के ये अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकते। अच्छी पत्रकारिता किसी सूचना को सम्प्रेषणीय बनाकर जनता तक पहुँचाती

है लेकिन यदि उनमें यह गुण हो ही न तो फिर सूचना का क्या औचित्य ? इसीलिए छोटे-से बड़े सभी वस्तुओं में संपादन कला की आवश्यकता पड़ती ही है। किसी भी मीडिया संस्था में बिना संपादक के कोई भी तथ्य प्रकाशित/प्रसारित नहीं किया जाता है। संपादन कला से युक्त पत्रकारिता ही पाठक/दर्शक को जागरूक करने की क्षमता रखती है।

समाचार पत्र में संपादकीय का विशिष्ट स्थान है। संपादकीय किसी भी पत्र की आत्मा होती है। समाचार संकलन का चुनाव तो कई न्यूज एजेन्सियों से भी किया जा सकता है, लेकिन संपादकीय तो उस पत्र का संपादक ही लिखता है। इस दृष्टि से वह पत्र की नीति-अभिरूचि से जुड़ा हुआ होता है। इसी कारण संपादकीय लेखन के अपने नियम हैं और अपनी शर्तें हैं। मीडिया जगत में न केवल अच्छे लेखक की आवश्यकता होती है बल्कि कुशल लेखक की भी जरूरत होती है। प्रिन्ट में लेखन हो या रेडियो  में या टेलीविजन में, सर्वत्र एक रूपरेखा के भीतर, उसके अनुरूप रहकर लेखन कार्य करना होता है। मीडिया लेखन में कौशल एवं मौलिकता के संयोग से युक्त लेखक ही सफल हो सकता है । अत: विद्यार्थी को इस सम्बन्ध में जानकारी का होना बहुत आवश्यक है।

## 20.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- संपादन कला की उपयोगिता को समझ सकेंगे।
- संपादन कला के मूलभूत सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रिन्ट मीडिया की लेखन विशेषता से परिचित हो सकेंगे।
- संपादकीय लेखन के सिद्धान्तों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रेडियो  लेखन की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- टीवी लेखन के आदर्श स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।

## 20.3 संपादन कला

संपादन किसी भी मीडिया का केंद्र बिन्दु है। प्रश्न यह है कि संपादन क्या है और इसकी आवश्यकता क्यों पड़ती है। यह भी प्रश्न उठता है कि अच्छे संपादन की विशेषता क्या है तथा संपादन करते  समय संपादक को किन-किन तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है।

### 20.3.1 अर्थ

संपादन का सामान्य अर्थ है – किसी कार्य को उसके उद्देश्य पूर्ण होने तक की स्थिति में पहुँचाना या करना। कार्य के साथ उद्देश्य जुड़ा हुआ है। कोई कार्य तभी पूरा समझा जा सकता है जब वह अपने उद्देश्य में सफल हो। लेकिन पत्रकारिता के संदर्भ में संपादन का अर्थ विशिष्ट हो जाता है। समाचार पत्र या इलेक्ट्रानिक मीडिया के प्रारम्भिक स्तर से यानी सूचनाओं से आगमन से लेकर उसके प्रस्तुतीकरण तक सभी कुछ संपादन के अंतर्गत आता है। इस दृष्टि से संपादन का अर्थ होगा – मीडिया को अधिक सम्प्रेषणीय बनाने के लिए उसके प्रत्येक अंग/उपांग को सटीक, सारगर्भित, सुन्दर, आकर्षक एवं अर्थगर्भी बनाने की कला।

### 20.3.2 आवश्यकता

संपादन के संदर्भ में यह बात हमेशा स्मरण रखनी चाहिए कि हर विधा के लिए संपादन के सिद्धान्त, प्रकियाएँ अलग-अलग होंगी। अत: सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर सभी मीडिया-माध्यम का संपादन करना संभव नहीं है। यहाँ हम जिन बिन्दुओं पर चर्चा कर रहे है, वे मीडिया संपादन के सिद्धान्त कम, संपादन के लिए बरती जाने वाली सावधानियाँ ज्यादा हैं। संपादन सामूहिक कार्य है। एक बड़े अखबार या टीवी चैनल में संपादन कार्य हेतु संपादक, सहायक संपादक, समाचार संपादक, मुख्य उपसंपादक और उपसंपादक तो होते ही हैं इसके अतिरिक्त खेल संपादक, फीचर संपादक इत्यादि विषयगत अवान्तर भेद भी होते ही हैं। संपादक- मंडल संवाददाताओं, एजेन्सियों और अन्य स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं का चयन करके, उन्हें क्रमानुसार विभाजित करते हैं तथा उन्हें व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को लोगों तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व संपादकीय मंडल करता है। कह सकते हैं कि संपादन का वास्तविक अर्थ है – किसी सामग्री से उसकी अशुद्धियों को दूर करके उसे पठनीय बनाना। किसी आगत सामग्री को संपादक मण्डल सर्वप्रथम ध्यान से पढ़ता है, उसकी भाषा, व्याकरण, वर्तनी, तथ्य तथा शैली संबंधी अशुद्धियों को दूर करता है तथा खबर के महत्व के अनुसार उसे संपादित कर यह तय करता है कि उस ख़बर को कहाँ जगह दी जाये। ज़ाहिर है यह एक जटिल, लम्बी और उत्तरदायित्व पूर्ण प्रक्रिया है। संपादन-कला उत्तरदायित्व पूर्ण क्रिया है। यह निर्बाध रूप से संपादित हो, इसके लिए प्राय: कुछ सिद्धान्तों का पालन किया जाता है –

- तथ्यों की शुद्धता
- वस्तुपरकता
- निष्पक्षता
- संतुलन

- स्रोत

आइए, अब हम इन सिद्धान्तों की संक्षेप में चर्चा करें और यह जानें कि इन सिद्धान्तों का संपादन में क्या महत्व है ?

- **तथ्य की शुद्धता और सत्यता का प्रश्न**

मीडिया और पत्रकारिता के लिए यह आवश्यक है कि वह यर्थाथ को प्रस्तुत करे। यर्थाथ को उसकी संपूर्णता में प्रतिबिंबित करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि तथ्यों का चुनाव बहुत सोच-विचार कर किया गया हो । तथ्य चुनाव में शुद्धता जहाँ आवश्यक है वहीं यह देखना भी आवश्यक है वह सत्य को उद्घाटित कर पाने में सक्षम है या नहीं। यर्थाथ की पुस्तुति आसान काम नहीं है। यर्थाथ की एक बँधी-बँधाई परिपाटी भी नहीं है। लेकिन हम यर्थाथ को उसकी बहुरंगी छवियों के रूप में तभी ग्रहण कर सकते हैं जब तथ्य सही हो और सत्य हो। एक तरह से यह प्राथमिक शर्त है- संपादन कला की।

- **वास्तुपरकता**

मीडिया में वस्तुपरक दृष्टि का बहुत महत्व है। तथ्यपरकता का संबंध जहाँ घटनाओं से है वहीं वस्तुपरकता का संबंध उस घटना पर अपनाये जानेवाले दृष्टिकोण से है। इसे थोड़ा और स्पष्ट ढंग से हम इस प्रकार समझ सकते हैं –

मानवीय मस्तिष्क जटिल घात-प्रतिघात के बीच विकसित और निर्मित होता है, इसलिए उनमें प्रत्येक मानवीय क्रियाओं के प्रति प्रतिक्रिया का भाव हमेशा वर्तमान रहता है। देश-काल के नैरर्न्तय में उसका मस्तिष्क नई-नई सूचनाओं, तथ्यों सब पर एक अपनी राय स्थिर कर लेता है तो कभी यह भी होता है कि वह घटना को मात्र घटना के रूप में ही देखे। यानी वह केवल इसे छवि/चिह्न के रूप में देखता है सत्य के रूप में नहीं। ऐसी स्थिति में पत्रकार/संवाददाता का यह कर्तव्य है कि वस्तुपरक ढंग से समाचारों और संपादक मण्डल उसे संपादित कर प्रकाशित/प्रस्तुत करे। वस्तुत: वस्तुपरकता का गुण किसी भी तथ्य/घटना को सभी के हित व सबकी मनोभावना के आदर के साथ जुड़ा हुआ है।

- **निष्पक्षता**

हांलाकि पक्षधरता मनुष्य का स्वभाव है। अर्थात् मनुष्य अपने विचार, रूचि, आदत, संस्कार में एक विशेष व्यवहार को प्रदर्शित करता है। लेकिन वही मनुष्य जब सामूहिक रूप से कार्य करता है या मीडिया जैसे उत्तरदायित्व की भावना से जुड़ता है तो उसके लिए निष्पक्षता अनिवार्य शर्त बन जाती है। निष्पक्षता एक नहीं हैं। तटस्थता क्रियाहीन स्थिति है जबकि निष्पक्षता सत्य/असत्य के उचित चुनाव का प्रश्न। निष्पक्षता का अर्थ है अन्याय के प्रति सत्य का मार्ग धारण करना। मीडिया के लिए निष्पक्षता की शर्त

अनिवार्य है नहीं तो वह किसी एक पार्टी, मत, विचारधारा, धर्म या संप्रदाय का होकर रह जायेगा।

- **संतुलन**

मीडिया के सामने, खासतौर से संपादन के सामने यह समस्या अक्सर उत्पन्न होती कि वह तटस्थ, निष्पक्ष, वस्तुपरक रहकर संतुलन कैसे स्थापित करे। मीडिया जन मंच है, ऐसी स्थिति में विपरीत व्यक्ति, विचार, मत के व्यक्तियों को उसे एक साथ प्रस्तुत करना होता है। अक्सर मीडिया पर यह आरोप लगता भी रहा है कि वह खास मत या विचारधारा को प्रश्रय दे रहा है, यह स्थिति आदर्श स्थिति नहीं है।

- **स्रोत**

मीडिया का क्षेत्र संपूर्ण विश्व या कहें कि ब्रह्माण्ड है। ऐसी स्थिति में उसे सूचना/संदर्भ के लिए विभिन्न स्रोतों पर निर्भर होना पड़ता है। इस संदर्भ में यह सिद्धान्त है कि मीडिया विभिन्न स्रोत से प्राप्त सूचनाओं के स्रोतों का उल्लेख कर दे। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई सामाचार एजेंसियाँ कार्य करती हैं (पीटीआई, यूएनआई आदि)। इसके अतिरिक्त संवाददाता, रिर्पोर्टर, व्यक्तिगत स्रोत, संस्था, सरकारी तंत्र, इण्टरनेट इत्यादि कई स्रोत हैं जिनसे मीडिया समाचारों का चयन करता है । स्रोत का उल्लेख जहाँ घटनाओं की प्रमाणिकता बढ़ाता है वहीं सत्य तक पहुँचने का मार्ग भी दिखाता है।

**मीडिया के लिए लेखन**

मीडिया लेखन पर टिप्पणी करते हुए रघुवीर सहाय ने लिखा है; "खबर लिखना बहुत ही रचनात्मक काम हो सकता है। उतना ही रचनात्मक, जितना कविता लिखना; दोनों का उद्देश्य मनुष्य को और समाज को ताकत पहुँचाना है। खबर में लेखक तथ्यों को बदल नहीं सकता पर दो या दो से अधिक तथ्यों के मेल से असलियत खोल सकता है। स्पष्ट है कि न तो मीडिया लेखन हल्का काम है और न आसान। कोई भी विजनयुक्त कार्य न तो आसान होता है और न हल्का। मीडिया लेखन में भी विभिन्न माध्यमों के लिए अलग-अलग लेखन के तरीके हैं, पद्धतियाँ हैं। अखबार, पत्रिका या प्रिन्ट मीडिया में लिखने की अलग शैली है तो रेडियो, टेलीविजन के अलग शैली। इन माध्यमों की अंतर्निहित विशेषताओं को समझे बगैर हम मीडिया लेखन में सफल नहीं हो सकते। मीडिया के विभिन्न माध्यमों की लेखन-शैली, भाषा और प्रस्तुति में ढेरों अंतर है जो सहज ही हमें परिलक्षित होता है। अखबार, पत्रिका यानी प्रिन्ट मीडिया का संबंध जहाँ हमारे दृश्य (आँखों) विधान से है वहीं रेडियो का संबंध हमारे श्रव्य (कान) विधान से है। इन

दोनों से अलग टेलीविजन और इंटरनेट का संबंध दृश्य-श्रव्य दोनों उपकरणों से है। इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं –

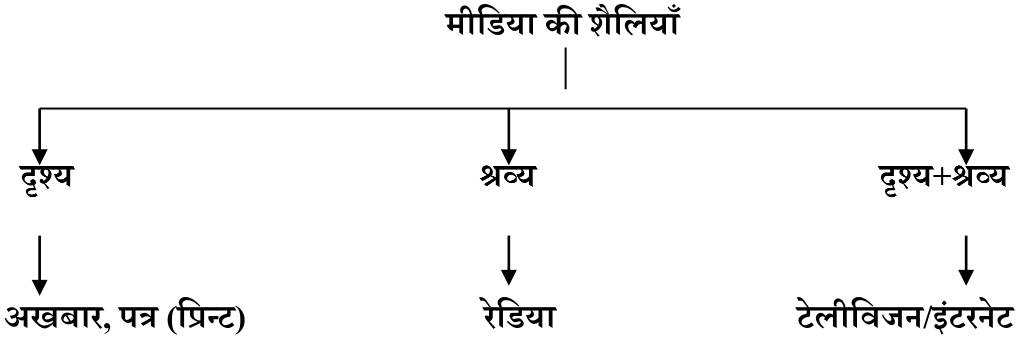


मीडिया के उपर्युक्त माध्यम अलग-अलग ढंग से हमारी शारीरिक-मानसिक-बौद्धिक जरूरतों की पूर्ति से जुड़े हुए हैं। इन सबकी अलग-अलग उपयोगिता है, इस दृष्टि से ये एक-दूसरे के पूरक बनकर सामने आते हैं।

## 20.4 संपादकीय लेखन

### 20.4.1 संपादकीय:विशेषता

संपादकीय किसी भी पत्र की रीति-नीति, विचार, संस्कार, प्रतिबद्धता का दर्पण होता है। यह एक खिड़की है जिसके पार से समाचार-पत्र की आवाज ही मुखर नहीं होती, अपितु युग चेतना की अनुगुंज भी सुनाई देती है। इस एक कॉलम के माध्यम से समाचार-पत्र और उसके संपादक का व्यक्तित्व मुखरित होता है। समाचार पत्र में संपादक का व्यक्तित्व मुखरित होता है। समाचार पत्र में संपादकीय का स्थान उसी प्रकार का होता है, जिस प्रकार मनुष्य की शरीर में आत्मा होता है। इसे समाचार पत्र का हृदय कहा जा सकता है। संपादकीय लेख का सीधा उत्तरदायित्व संपादक से होता है। स्थापित एंव प्रतिष्ठित समाचार पत्र में दो या तीन संपादकीय दिये जाते हैं। संपादकीय को परिभाषित करते हुए कहा गया है – संपादकीय, वह संक्षिप्त और सामयिक लेख होता है जिसके माध्यम से संपादक या समाचार पत्र संबंधित विषय पर जनमत के निर्माताओं व नीति-विशेषज्ञों के द्वारा अपनी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में आम जन का पक्षीय विचार उत्पन्न कर सके। कह सकते हैं कि संपादक द्वारा लिखित समसामयिक अग्रलेख ही संपादकीय है। प्रभावोत्पादक होने के लिए संपादकीय को संक्षिप्त और सामयिक होना चाहिए। संपादकीय टिप्पणी प्रचलित समाचार का

निचोड़ भी होता है। इसके लिए वह प्रभावोत्पादक होने के साथ ही सामयिक, संक्षिप्त और मनोरंजक भी होना चाहिए। प्रत्येक समाचार पत्र की संपादकीय नीति उसके पाठक वर्ग की रूचि व संस्कार से प्रभावित होती है। संपादकीय टिप्पणियों की एक मुख्य विशेषता यह होनी चाहिए कि वे शिष्ट भाषा में लिखे गये हों और उनका स्वर संयत हो तथा उनमें व्यक्तिगत आलोचना न हो। संपादकीय टिप्पणी के गुणों पर विचार करते हुए डा. अर्जुन तिवारी ने इसमें प्रभावोत्पादकता, समसामयिकता, निष्पक्षता, विश्वसनीयता और संक्षिप्तता आदि विशेषताओं का होना स्वीकार किया है। संपादकीय में कठोर-से-कठोर विषय को भी संयत भाषा में व्यक्त किया जाता है।

### 20.4.2 संपादकीय लेखन

आपने जाना कि संपादकीय या अग्रलेख संपादकीय स्तम्भ में नियमित रूप से लिखा जाने वाला लेख है। आवश्यकतानुसार इसकी संख्या दो या तीन तक होती है, अर्थात ऐसी परिस्थिति में जब संपादक को लगे कि अमुक-अमुक घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं और उन पर टिप्पणी देना आवश्यक है। संपादकीय लेखन में शब्द सीमा का निर्धारण करते हुए इसे 500 से 1000 शब्दों तक माना गया है। संपादकीय टिपपणी प्राय: संपादक द्वारा लिखी जाती है, किन्तु विशेष परिस्थितियों में इसे अनुभवी उप-संपादक या संपादक मंडल का योग्य व्यक्ति भी लिख सकता है।

संपादकीय टिप्पणी सामयिक घटनाओं या विशेष समाचार पर पत्र के संपादक की टिप्पणी होती है, जो उस पत्र की नीति और रूख को व्यक्त करती है। संपादकीय टिप्पणी में जिस विषय पर टिप्पणी हुआ करती है, उससे संबंधित तथ्य, कारण की व्याख्या, आलोचना, सुझाव, चेतावनी और मार्ग दर्शन पर बल दिया जाता है। संपादकीय लेखन बहुत उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य होता है। इस संबंध में प्रमुख बिन्दुओं का पालन करना अनिवार्य होता है –

- संपादकीय लेखन में सर्वप्रथम इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह पत्र-नीति के अनुकूल लिखा जा रहा है या नहीं। कहीं ऐसा न हो कि पत्र की पत्र-नीति किसी दूसरे विचारधारा की पक्षधर हो और संपादकीय दूसरे विचारधारा को प्रस्तुत करे।
- संपादकीय लेखन के लिए दूसरी शर्त यह है कि संपादकीय में निष्पक्षता होनी चाहिए। संपादकीय में किसी तथ्य, विचार या घटना के मूल्यांकन में पूर्वाग्रह न हो।
- संपादकीय लेखन में संक्षिप्तता का गुण आवश्यक है। हरि मोहन जी ने आदर्श संपादकीय की शब्द-सीमा निर्धारण करते हुए उसे 500 से 1000 शब्दों तक का माना है। विजय कुलश्रेष्ठ जी ने भी उसे 500 से 750 शब्दों या अधिक से अधिक 1000 शब्दों तक होने को आदर्श माना है।

- संपादकीय लेखन में भाषा सुस्पष्ट और शैली सरल होनी चाहिए। शैली क्रम-विन्यास का ध्यान रखना आवश्यक है।
- संपादकीय लेखन में तथ्य प्रस्तुतीकरण, व्यख्या–विश्लेषण एवं मूल्यांकन का क्रम होना चाहिए।

## 20.5 प्रिंट लेखन

मीडिया के आधुनिक संसाधनों में प्रिन्ट माध्यम सबसे पुराना है। प्रिन्ट मीडिया या माध्यम के अतर्गत समस्त छपा हुआ साहित्य आता है, जैसे – समाचार पत्र,पत्रिकाएँ, पुस्तकें इत्यादि। मुद्रित माध्यम हमारे श्रव्य विधान (आँखों) से जुड़े हुए है। आँखों का संबंध हमारे मस्तिष्क से जुड़ा हुआ होता है। हम जो देखते हैं, पढ़ते हैं वो सीधे हमारे मस्तिष्क में संचित होता जाता है। इस तरह से प्रिन्ट माध्यम हमें लगातार आकर्षित करते रहते है। प्रिन्ट माध्यम की अपनी निजी विशेषता होती है, जिसके कारण वह अपना आकर्षण बरकरार रखे हुए है। संक्षेप में आप यहाँ प्रिन्ट माध्यम की प्रमुख विशेषता को समझें –

- प्रिन्ट माध्यम पढ़ने में सुविधाजनक है। आप इसे धीरे-धीरे, आराम से और अपनी आवश्यकतानुसार पढ़ सकते हैं।
- प्रिन्ट माध्यम की भाषा साहित्य और जन भाषा से अलग लोकप्रचलित भाषा होती है, जो सहज ही संप्रेषणीय होती है।
- प्रिन्ट माध्यम वैचारिक गंभीरता को भी धारण किए हुए है। अत: यह प्रबुद्ध वर्ग के बीच सर्वाधिक लोकप्रिय है।
- प्रिन्ट माध्यम लोकतांत्रिक बहसों से लेकर दार्शनिक प्रश्नों के समाधान को भी अपने में समेटे हुए है। अत: इसका विषयगत वैविध्य बहुत ज्यादा है1
- प्रिन्ट माध्यम बालक से लेकर वृद्ध सभी के लिए अपने-अपने ढंग से उपयोगी है।

वस्तुत: प्रिन्टमीडिया के उपयुक्त गुण ही उसे इलेक्ट्रानिक मीडिया से विशिष्ट बनाते हैं। लेकिन इस माध्यम की कुछ सीमाएँ भी हैं जिसके कारण काफी सावधानियाँ रखनी पड़ती हैं जैसे – निरक्षरों के लिए मुद्रित माध्यम अनुपयोगी है, मुद्रितमाध्यम का स्तर उसके पाठक के अनुरूप होना चाहिए, मुद्रित माध्यम खासतौर से अखबार में छपी घटनाओं की सार्थकता अगले दिन निरर्थक हो जाती है, प्रिंट में शब्द सीमा का अनुशासन आवश्यक है तथा प्रिंट में व्याकरणगत अशुद्धि अक्षम्य है। इसलिए प्रिन्ट मीडिया ने लेखन के लिए कुछ नियम बनाये हैं –

1. प्रिन्ट माध्यम के लेखन में भाषा, व्याकरण, वर्तनी, शैली, संरचना, संप्रेषणीयता का ध्यान रखना अनिवार्य है। इस माध्यम में भाषा प्रचलित भी हो सकती है और गंभीर भी।
2. प्रिन्ट लेखन में समय-सीमा और निर्धारित स्थान का पालन करना हर स्थिति में अनिवार्य है। फीचर, संपादकीय, लेख इत्यादि के लिए नियत समय और स्थान होते हैं। कुशल संपादक इनका उचित विभाजन और संपादन करता है।
3. प्रिन्ट लेखन की सामग्री कई स्रोत से प्राप्त होती है। कई बार संवाददाता उसे इंटरनेट से, कई बार एजेंसियों से तथा कई बार विभिन्न स्रोतों से समाचारों का चयन करता है। समाचार चयन के बाद उसे प्रस्तुतीकरण के योग्य बनाने के लिए समयाभाव का अभाव रहता है, ऐसी स्थिति में मुद्रण संबंधी कई गलतियों का रह जाना स्वाभाविक है। व्याकरण संबंधी गलतियों के लिए मुद्रक भले ही जिम्मेदार हो किन्तु उसका उत्तरदायित्व संपादक पर होता है। इसलिए अंतिम प्रकाशन से पूर्व लेखक एवं संपादक सारी सामग्री को पुन: जाँचते हैं जिससे कि पत्र त्रुटि रहित ढंग से प्रकाशित हो सके।
4. प्रिन्ट लेखन के लिए केवल व्याकरणगत शुद्धता ही अनिवार्य नहीं है वरन् उसे प्रवाहपूर्ण एवं संप्रेषणीय भी होना चाहिए। प्रिन्ट लेखन की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे कम पढ़े-लिखे व्यक्ति से लेकर प्रबुद्ध सभी समझ सकें। कठिन शब्दों से यथासंभव बचकर लोकप्रचलित शब्दों का चुनाव करना इ स दृष्टि से उचित है।

## 20.6 रेडियो के लिए लेखन

रेडियो श्रव्य माध्यम है। कारण यह कि श्रवणेन्द्रियों के माध्यम से इसका आस्वादन किया जाता है। इस माध्यम में ध्वनि का बहुत महत्व है। ध्वनि, स्वर, शब्द के माध्यम से यह विधा श्रोताओं को उनके अनुकूल सामग्री को प्रस्तुत करती है। इस विधा में प्रिन्ट मीडिया की तरह सुविधाजनक स्थिति नहीं है कि कोई समाचार किसी खास वर्ग को ध्यान में रखकर लिखी जाती है तो कोई अन्य किसी वर्ग को ध्यान में रखकर। उसे किसी बुलेटिन को सुनकर तुरन्त उसका आस्वादन करना होता है। समाचार पत्र की तरह न तो उसके पास समय होता है और न इलेक्ट्रानिक मीडिया के सामने उसके पास शब्द और चित्र से तालमेल बैठाने की सुविधा। प्रिंट मीडिया और टेलीविजन माध्यम की तुलना में रेडियो माध्यम ज्यादा चुनौतीपूर्ण माध्यम है। इसलिए इसमें विषय चयन से ज्यादा प्रस्तुति महत्वपूर्ण हो जाती है, कारण यह कि इसमें ध्वनियों के माध्यम से चित्र खड़ा करने की चुनौती भी होती है। समाचार पत्र या पुस्तकें यानी प्रिन्ट मीडिया के बाद रेडियो सर्वाधिक पुराना उपकरण है। इसे सबसे ज्यादा चुनौती इलेक्ट्रानिक मीडिया से मिली, बावजूद अपनी अंतर्निहित विशेषताओं के कारण यह माध्यम आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाये हुए है।

रेडियो पर समाचारों के प्रस्तुतीकरण का तरीका भी टेलीविजन इत्यादि माध्यमों से भिन्न पद्धति से विकसित होता है। रेडियो समाचार की संरचना को उलटा पिरामिड शैली कहा गया है। इस शैली में तथ्य सबसे महत्वपूर्ण होता है उसके बाद घटते हुए महत्वक्रम से अन्य तथ्य को रखा जाता है। कह सकते हैं कि सामान्य रूप से किसी कहानी में जैसे चरम बिन्दु अन्त में होता है वैसे ही इस विधा में प्रारम्भ में। इस शैली में किसी भी समाचार को तीन भागों में विभाजित कर देते हैं – इंट्रो, बाँडी और समापन। रेडियो में किसी ख़बर या समाचार को 2-3 पंक्तियों में ही बता दिया जाता है। इसके बाद बाँडी में उसे विस्तार से, ब्यौरे के साथ लिखा जाता है। इसके पश्चात् ख़बर समाप्त हो जाती है। रेडियो समाचार के प्रसारित इस इंट्रो को देखिए- "हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला जिले में एक बस दुर्घटना में आज 40 लोगों की मौत हो गई। मृतकों में पाँच महिलाएँ और चार बच्चे शामिल हैं।"

स्पष्टतया हम समझ सकते हैं कि रेडियो प्रसारण एवं लेखन में अन्य माध्यमों से भिन्न पद्धति अपनायी जाती है। अब हम रेडियो लेखन के संदर्भ में महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

**रेडियो लेखन के आवश्यक बिन्दु**

रेडियो लेखन अन्य माध्यमों से ज्यादा चुनौती भरा कार्य है। कारण यह है कि अखबार या टीवी चैनल के दर्शक वर्ग के अनुसार उसमें परिवर्तन किया जा सकता है या उसका स्वरूप निर्मित किया जा सकता है, लेकिन रेडियो के श्रोता वर्ग में सभी वर्ग के लोग शामिल हैं और उनकी पहचान भी मुश्किल होती है। इस संदर्भ में कुछ आवश्यक बिन्दुओं का ध्यान रखना आवश्यक होता है –

- **साफ/टाइप्ड काँपी**

  रेडियो समाचारों का संबंध हमारी श्रवणेन्द्रियों पर आधारित है। इस बात का इसके लेखन में भी ध्यान रखा जाता है। रेडियो पर कोई भी कार्यक्रम प्रसारित होने से पूर्व समाचार वाचक उसे पूर्व में कई बार पढ़ने का अभ्यास करता है। इसलिए समाचार वाचक के लिए टाइप्ड और साफ-सुथरी काँपी तैयार की जाती है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि वाचक किसी शब्द का गलत वाचन न करे। टेलीविजन में चूँकि शब्द के साथ चित्र साथ-साथ चलता रहता है, इसलिए वहाँ तो गलत वाचन उतना बड़ा अपराध नहीं है, जितना रेडियो में। समाचार वाचन के लिए तैयार काँपी के संदर्भ में नियम यह है कि उसे कम्प्यूटर पर ट्रिपल स्पेस में टाइप किया जाना चाहिए। काँपी के दोनों ओर पर्याप्त हाशिया (जगह) छोड़ना चाहिए तथा एक लाइन में अधिकतम 12-13 शब्द रखने चाहिए। शब्द संख्या के अनुमान के आधार पर संपादक को ख़बर या कार्यक्रम के विस्तार का बोध होता है और वह उसी अनुसार उसे संपादित करता है। समाचार कॉपी लेखन के संदर्भ में यह स्पष्ट रूप से जाँच लेना चाहिए कि जटिल, उच्चारण में कठिन शब्द, संक्षिप्ताक्षर, अंक नहीं लिखने

चाहिए जिससे वाचक को वाचन में असुविधा हो। अंक लेखन के संदर्भ में यह स्पष्ट रूप से ध्यान रखना चाहिए कि 1 से दस तक के अंकों को शब्दों में तथा 11 से 999 तक अंकों में लिखना चाहिए। अखबारों में जहाँ % और $ जैसे संकेत चिह्नों से काम चल जाता है। वही रेडियो में प्रतिशत और डालर लिखना अनिवार्य है। आंकड़ों के लेखन में भी विशेष सावधानी रखनी चाहिए। आंकड़े तुलनात्मक रूप में (पिछले वर्ष के मुकाबले इस साल......) तथा उसी रूप में लिखने चाहिए जिस रूप में वे बोलचाल में प्रयुक्त होते हैं।

- **डेडलाइन, संदर्भ और संक्षिप्ताक्षर का नियम**

रेडियो और प्रिन्ट मीडिया के डेडलाइन और समय संदर्भ में अन्तर है। प्रिन्ट मीडिया के डेडलाइन जैसे स्पष्ट होती है वैसे रेडियो माध्यम में नहीं। रेडियो में समय का अनुशान भी नहीं है। यहाँ ख़बरे लगातार प्रसारित की जाती हैं। रेडियो में समय के संदर्भ में विशेष ध्यान रखने की जरूरत होती है। रेडियो समाचार लेखन में आज, आज सुबह, आज दोपहर, आज शाम आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसी तरह इसी सप्ताह, अगले सप्ताह, पिछले सप्ताह, इस महीने, अगले महीने, इस साल, पिछले साल, पिछले रविवार इत्यादि शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

इसी प्रकार संक्षिप्ताक्षरों के प्रयोग में भी सावधानी बरती जाती है। इस संदर्भ में पहले तो इनके प्रयोग से बचना चाहिए या पहले इनका पूरा नाम लिख देना चाहिए। लोकप्रिय संक्षिप्ताक्षरों का प्रयोग तो किया जा सकता जैसे – इब्ल्यूटीओ, यूनिसेफ, सार्क, एसबीआई, आईबी इत्यादि।

## 20.7 टीवी के लिए लेखन

प्रिन्ट माध्यम ओर रेडियो की अपेखा टेलीविजन की अपेक्षा टेलीविजन आज का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है। टेलीविजन को दृश्य-श्रव्य माध्यम कहा गया है, इस माध्यम से हमारी दोनों इन्द्रियाँ (कान/आँख) सक्रिय रहती हैं। इस दृष्टि से इसमें दृश्यों को ज्यादा प्रमुखता मिलती है। टेलीविजन स्क्रिप्ट में भी इस बात का खास ध्यान रखा जाता है। टेलीविजन में भी इस बात पर ज्यादा बल दिया जाता है कि आपके लेखन में इस बात पर ज्यादा बल दिया जाता है कि आपके द्वारा लिखे/बोले गये शब्द दिख रहे दृश्य के अनुकूल हों। चूँकि इस माध्यम में श्रव्य-दृश्य दोनों का उपयोग किया जाता है, इसलिए इसमें कम शब्दों में ज्यादा बताने की कुशलता पर बल दिया जाता है। कह सकते हैं कि टेलीविजन लेखन में शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि वह दृश्य के अनुकूल हो। श्रव्य–दृश्य में प्रतिकूलता टेलीविजन लेखन का बहुत बड़ा दोष माना जाता है।

टेलीविजन लेखन और प्रिन्ट लेखन के स्वरूप में मूलभूत अंतर है। प्रिन्ट लेखन में पहले संपूर्ण घटना की सूचना दी जाती है और फिर उसका विस्तार किया जाता है। अखबार की एक ख़बर का इंटो देखें – दिल्ली की चाँदनी चौक की एक इमारत में आज सुबह आग लगने से 50 लोग

घायल हो गए। ये आग शॉर्ट सर्किट की वजह से लगी। इसी ख़बर को टेलीविजन पर दूसरे प्रकार से प्रस्तुत किया जायेगा। टेलीविजन पर प्रस्तुत इस ख़बर में दो भाग कर दिये जायेंगे। ख़बर के प्रारम्भिक चरण में मुख्य ख़बर होगी, जिसे न्यूज रीडर बगैर दृश्य के पढ़ेगा। ख़बर के द्वितीय चरण में परदे पर न्यूज रीडर की जगह ख़बर से संबंधित दृश्य दिखाए जाते हैं। टेलीविजन के प्रस्तुति और तकनीक में लगातार परिवर्तन हो रहा है, इसलिए उसके लेखन के प्रमुख सिद्धान्त पर चर्चा करने से पूर्व आइए हम यह देखें कि टेलीविजन पर प्रस्तुत ख़बरों के प्रचलित रूप कौन-कौन हैं –

**टेलीविजन पर ख़बरों के प्रस्तुतीकरण के विभिन्न रूप**

मीडिया का मुख्य कार्य सूचना देना है। इस दृष्टि से प्रिन्ट माध्यम, रेडियो और टेलीविजन सभी समान हैं। लेकिन चूँकि टेलीविजन की प्रस्तुति का तरीका अन्य माध्यमों से भिन्न और बहुआयामी है, इसलिए इसकी सूचना देने की पद्धति भी कई चरणों में बँटी होती हैं। टेलीविजन पर प्रस्तुत सूचना या समाचार कई चरणों में विभक्त होकर दर्शक तक पहुँचती हैं। टेलीविजन लेखन की विशेषताओं के जानने से पूर्व टेलीविजन ख़बरों के विभिन्न चरणों को जानना जरूरी है।

- ब्रेकिंग न्यूज या फ्लैश
- ड्राई एंकर
- फोन-इन
- एंकर-विजुअल
- एंकर-बाइट
- लाइव
- एंकर-पैकेज

- **फ्लेश या ब्रेकिंग न्यूज**

यह ख़बर प्रस्तुति का प्रारंभिक रूप है। इसमें कोई महत्वपूर्ण या बड़ी ख़बर तत्काल दर्शकों तक पहुँचाई जाती है। इस न्यूज में ख़बरों का विस्तार नहीं होता है। इसमें कम-से-कम शब्दों में महज सूचना दी जाती है।

- **ड्राई एंकर**

इस ख़बर में एंकर ख़बर के बारे में दर्शकों को बताता है कि कहाँ, क्या, कब और कैसे कोई घटना घटी। जब तक ख़बर के दृश्य नहीं आते एंकर दर्शकों को रिपोर्टर से प्राप्त सूचना या अन्य स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को दर्शकों के सामने प्रस्तुत करता है।

- **फोन-इन**

फोन-इन में ख़बर का विस्तार किया जाता है। इसमें एंकर रिपोर्टर से फोन से बात करके सूचनाएँ दर्शकों तक पहुँचाता है। फोन-इन में रिपोर्टर घटना-स्थल पर मौजूद रहता है ओर वहाँ से वह ज्यादा-से-ज्यादा जानकारी प्रामाणिक ढंग से दर्शक को बताता है।

- **एंकर-विजुअल**

एंकर-विजुअल का तात्पर्य है दृश्यों के आधार पर ख़बर तैयार करना। जब घटना के दृश्य (विजुअल) एंकर को मिल जाते हैं तो उन दृश्यों के आधार पर ख़बर लिखी जाती है। बाद में उस ख़बर को एंकर पढ़ता है। इस ख़बर की शुरूआत भी प्रारंभिक दृश्यों से होती हुई और कुछ वाक्यों पर उपलब्ध दृश्य दिखाये जाते है।

- **एंकर-बाइट**

बाइट का शाब्दिक अर्थ है – कथन । टेलीविजन पत्रकारिता में बाइट को इधर बीच काफी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। टेलीविजन में किसी भी खबर को पुष्ट करने के लिए उससे संबंधित बाइट दिखाई जाती है। किसी महत्वपूर्ण घटना की सूचना देने, उसके दृश्य दिखाने के पश्चात् उस घटना से संबंधित विशेषज्ञ या प्रत्यक्षदर्शियों का साक्षात्कार या कथन दिखाया जाता है, इसे बाइट कहते है। बाइट घटना की प्रामाणिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

- **लाइव**

लाइव का तात्पर्य है किसी घटना या, ख़बर का घटनास्थल से सीधे प्रसारण करना। बाइट में जहाँ घटनास्थल का संक्षिप्त कवरेज होता है वहीं लाइव में संपूर्ण घटनाक्रम को कवरेज करने की कोशिश की जाती है। किसी महत्वपूर्ण घटना के दृश्य तत्काल दर्शकों तक पहुँच जायें, इसके लिए घटनास्थल पर मौजूद रिपोर्टर और कैमरामैन ओ0बी0वैन के जरिए घटना को सीधे दर्शकों को दिखाते हैं।

- **एंकर-पैकेज**

एंकर-पैकेज किसी भी ख़बर को संपूर्णता के साथ पेश करने का एक माध्यम है। इसमें संबंधित घटना के दृश्य, इससे जुड़े लोगों की बाइट, ग्राफिक के जरिए जरूरी सूचनाएँ आदि होती है।

ज़ाहिर है टेलीविजन लेखन ख़बर के उपर्युक्त तरीकों से प्रभावित होता है। जरूरत और आवश्यकता के अनुसार शब्द और दृश्य का उपयोग ख़बर लिखने के लिए किया जाता है। वाक्य गठन में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि शब्द से दृश्य का तादात्म्य/संतुलन निभ सके। शब्द

दृश्य को आगे ले जा सकें तथा दृश्य दूसरे दृश्य से जुड़ सके। टेलीविजन लेखन में इस बात का खास ध्यान रखा जाता है कि जिन दृश्यों को दिखाया जा रहा है उन्हें दुहराया न जाये। यहाँ रिपोर्टर/एंकर की कल्पनाशक्ति की भूमिका मुख्य हो जाती है।

टेलीविजन लेखन में शब्द और दृश्य के साथ ही दो आवाजें और होती हैं । एक वे कथन होते हैं जो ख़बर बनाने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं और दूसरी वे प्राकृतिक आवाजें जो दृश्य के साथ-साथ चलती हैं। इसलिए टीवी लेखन में किसी ख़बर या वाँयस ओवर लिखते समय उसमें ध्वनियों के लिए स्पेस छोड़ देना चाहिए। टेलीविजन पत्रकारिता में ऐसी ध्वनियों को नेट/नेट साउंड (प्रकृतिक आवाजें) कहते हैं। टेलीविजन लेखन के सिद्धान्त समयानुसार बदलते रहते हैं। यहाँ हम टेलीविजन लेखन से संबंधित कुछ प्रमुख बातों को रेखांकित करेंगे –

- टेलीविजन आज का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है। इसकी पहुँच सभी वर्ग के भीतर तक है, इसलिए ख़बर लेखन में ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जो सभी को आसानी से समझ में आ जाये।
- टेलीविजन लेखन की भाषा सरल हो किन्तु गरिमामय हो। सरलता सपाटता नहीं है, वरन् कल्पनाशील शब्दों को सहज रूप में प्रस्तुत करने की शैली है। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वाक्य छोटे और स्पष्ट हों।
- टेलीविजन लेखन की शैली सीधी, स्पष्ट होनी चाहिए। कम शब्दों में ज्यादा-से-ज्यादा सूचना को अपने भीतर उसे समाविष्ट करने की क्षमता से युक्त होना चाहिए।

**अभ्यास प्रश्न**

**(1) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।**

1. संपादकीय की आदर्या शब्द संख्या 2,000 से 5,000 शब्द है। (    )
2. संपादकीय संपादक द्वारा समसामयिक विषय पर लिखी गई टिप्पणी है । ( )
3. रेडियो श्रव्य माध्यम है। (    )
4. टेलीविजन प्रिन्ट माध्यम है। (    )
5. प्रिन्ट माध्यम दृश्य माध्यम है। (  )

**(2) टिप्पणी कीजिए**

1. संपादकीय

..................................................................................................................
..................................................................................................................
.................................................................................................
..................................................................................................................
................................................................................................

2. टेलीविजन ख़बर प्रस्तुतिकरण के विभिन्न रूप

............................................................................................................
............................................................................................................
............................................................................................................
............................................................................................................
............................................................................................................

3. रेडियो लेखन के आवश्यक बिन्दु

............................................................................................................
............................................................................................................
............................................................................................................
............................................................................................................
............................................................................................................

**(3) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –**

1. संपादकीय किसी भी पत्र की....................... होती है।
2. ध्वनि प्रयोग की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण माध्यम............है।
3. रेडियो समाचार को इंट्रो, बाँडी और............. में विभक्त किया गया है।
4. रेडियो ख़बर लेखन में एक लाइन में अधिकतम................शब्द रखने चाहिए।
5. ब्रेकिंग न्यूज में महज...............दी जाती है।
6. एंकर रिपोर्टर से फोन पर बात करके सूचनाएँ दर्शकों तक पहुँचाता है, टेलीविजन की तकनीकी शब्दावली में उसे.................कहा जाता है।
7. बाइट का अर्थ है ...................।
8. लाइव किसी ख़बर को......................से सीधे प्रसारित किया जाता है।

## 20.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि –

- संपादन का वास्तविक अर्थ है – किसी सामग्री से उसकी अशुद्धियों को दूर करके उसे पठनीय बनाना।
- संपादन में संपादक के लिए कुछ सिद्धान्तों का पालन करना अनिवार्य होता है जैसे – तथ्यों की शुद्धता, वस्तुपरकता, निष्पक्षता, संतुलन एवं स्रोत।
- संपादकीय किसी भी पत्र की रीति-नीति विचार-संस्कार, प्रतिबद्धता का दर्पण होता है। समाचार पत्र में सूचनाओं का आधार प्राय: न्यूज एजेंसियाँ हुआ करती हैं किन्तु संपादकीय किसी भी पत्र की नीति के अनुरूप समसामयिक विषय पर लिखी गई टिप्पणियाँ होती है।
- प्रिन्ट लेखन दृश्य माध्यम है। प्रिन्ट लेखन में समस्त छपा हुआ साहित्य आता है, जैसे – समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें इत्यादि।
- प्रिन्ट लेखन में भाषा, व्याकरण, वर्तनी, शैली, संरचना, संप्रेषणीयता का ध्यान रखना अनिवार्य है।
- रेडियो श्रव्य माध्यम है। रेडियो में ध्वनि का बहुत महत्व होता है। इस माध्यम में प्रस्तुति पर बहुत बल दिया जाता है क्योंकि इसमें ध्वनियों के माध्यम से चित्र खड़ा करने की चुनौती होती है।
- रेडियो लेखन में किसी ख़बर को तीन भागों में विभाजित कर दिया जाता है। इंट्रो, बॉडी और समापन। रेडियो में किसी खबर या समाचार को 2-3 पंक्तियों में बता दिया जाता है, तथा उसके पश्चात् ख़बर समाप्त होती है।
- टेलीविजन आज का सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली माध्यम है । टेलीविजन दृश्य-श्रव्य माध्यम कहा गया है। यह दृश्य की प्रमुखता का माध्यम है।
- टेलीविजन पर ख़बर प्रस्तुतिकरण के विभिन्न चरण हैं –
  ब्रेकिंग न्यूज, ड्राई एंकर, फोन-इन, एंकर-विजुअल, एंकर-बाइट, लाइव, एंकर-पैकेज
- टेलीविजन लेखन के संदर्भ में इस बात का खास ध्यान रखा जाता है कि इसमें इस प्रकार से शब्द रखे जायें जो दृश्य के अनुकूल हों, पूरक हों।

## 20.9 शब्दावली

1. संपादन -
2. संपादकीय -
3. प्रिन्ट -
4. ब्रकिंग न्यूज -
5. बाइट -
6. लाइव -

## 20.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य

(3) 1. आत्मा
2. रेडियो
3. समापन
4. 12-13 शब्द
5. सूचना
6. एंकर-फोन
7. कथन
8. घटनास्थल

## 20.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अभिव्यक्ति और माध्यम (जनसंचार माध्यम और लेखन, सृजनात्मक लेखन, व्यावहारिक लेखन), एन0सी0ई0आर0टी0 प्रकाशन, 2006
2. शुक्ल, शशांक – शोध प्रबन्ध (हिंदी के प्रमुख समाचार पत्रों की संपादकीय टिप्पणियों का तुलनात्मक अध्ययन), बी0एच0यू0, 2006

## 20.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वैदिक, वेद प्रताप – हिंदी पत्रकारिता का विविध स्वरूप

## 20.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. संपादन कला के सिद्धान्त पर टिप्पणी लिखिए।
2. किसी भी पत्र में संपादकीय टिप्पणियों की क्या भूमिका होती है, तर्क सहित उत्तर दीजिए।

# इकाई 21 मीडिया /समाचार लेखन

इकाई की रूपरेखा


21.1 प्रस्तावना

21.2 उद्देश्य

21.3 समाचार संकलन और लेखन

21.3.1 समाचार का अर्थ

21.3.2 समाचार संकलन

21.3.3 श्रेष्ठ समाचार लेखन की विशेषताएँ

21.3.4 समाचार लेखन के सूत्र-छः ककार

21.4 विलोम स्तूप

21.5 इन्ट्रो तथा लीड

21.5.1 इन्ट्रो

21.5.2 लीड

21.6 इलेक्ट्रानिक मीडिया और समाचार लेखन

21.6.1 इलेक्ट्रानिक माध्यम

21.6.2 रेडियो

21.6.3 दूरदर्शन

21.7 मीडिया लेखन की अन्य विधाएँ

21.7.1 फीचर तथा मैगजीन के लिए लेखन

21.7.2 फीचर फिल्म

21.7.3 विज्ञापन लेखन

21.8 सारांश

21.9 शब्दावली

21.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

21.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

21.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

21.13 निबंधात्मक प्रश्न

## 21.1 प्रस्तावना

आप जानते ही हैं कि हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भिक दौर से ही साहित्य का पत्रकारिता से गहरा रिश्ता रहा है। शुरूआती पत्रकार अच्छे साहित्यकार भी थे। हिन्दी पत्रकारिता में तो द्विवेदी युग और भारतेन्दु युग इस तरह के युग हैं जिनके नाम ही साहित्यकारों के नाम पर पड़े हैं। इसलिए पत्रकारिता साहित्य का ही एक महत्वपूर्ण उपांग है। आज व्यावसायिकता का रूप ले लेने के कारण पत्रकारिता की भाषा शैली में परिवर्तन आया है।

प्रस्तुत इकाई में समाचार के संकलन से लेकर समाचार के सम्पादन और समाचार के पाठक, श्रोता, दर्शक तक पहुँचने तक की प्रक्रिया में किस तकनीक का प्रयोग होना चाहिए, समाचार का कौन सा अंश अधिक महत्वपूर्ण है और कौन सा कम, समाचार किस रूप में पाठक अथवा श्रोता तक पहुँचना चाहिए आदि बताया जायेगा।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप विभिन्न जनसंचार माध्यमों के लिए लेखन कर सकेंगे तथा समाचार लेखन की बारीकियाँ समझा सकेंगे।

## 21.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- समाचार का अर्थ बता सकेंगे।
- समाचार के स्रोत और समाचार संकलन के तरीकों को समझ जायेंगे।
- अच्छे समाचार लेखन की विशेषताएं बता सकेंगे।
- समाचार के विभिन्न हिस्सों को लिखने का तरीका समझा सकेगे।
- मीडिया के अनुरूप समाचार लेखन कर सकेंगे।

## 21.3 समाचार संकलन और लेखन

सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्य अपनी भावानुभूतियों को सम्प्रेषित करने और दूसरों की भावानुभूतियों को ग्रहण करने के अनेक संसाधनों की खोज करता रहा है। विभिन्न तरीकों से उसने अपने को व्यक्त किया है। पहले संकेतों से, फिर संकेत चिह्नों से, फिर भाषा से और लिपि से वह सूचनाएँ लेने-देने के लिए प्रयास करता रहा है। मनुष्य न सिर्फ अपने आस-पास के परिवेश से परिचित होना चाहता है वरन् दुनिया के दूसरे क्षेत्रों में क्या घटित हो रहा है- यह भी जानना चाहता है।

जिज्ञासा की यह प्रवृत्ति मानव का मूलभूत गुण है। समस्त संसार के दैनन्दिन घटनाक्रम से मनुष्य को यथाशीघ्र परिचित कराने के प्रयासों में पत्रकारिता अपने विविध रूपों में विकसित हो रही है। आज पत्रकारिता में दैनिक पत्रों से लेकर साप्ताहिक, पाक्षिक, त्रैमासिक], अर्द्धवार्षिक, वार्षिक आदि सभी पत्रिकाएं तथा रेडियो, दूरदर्शन, जनसम्पर्क व जन संचार से सम्बन्धित विभिन्न विधाएं आ जाती हैं। आज का तो समय ही सूचना क्रान्ति का है। तकनीकी उपलब्धियों ने सूचनाओं को सम्प्रेषित करना अत्यन्त सहज बना दिया है। यहाँ हमें यह विचार करना है कि समाचार लेखन की वे कौन सी विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर हम सूचनाओं को सम्यक् रूप से श्रोताओं, दर्शकों तथा पाठकों तक प्रेषित कर सकते हैं। जिस तरह हम भाषा का प्रयोग करते समय यह विचार करते हैं कि हम किससे, किस स्थान पर और क्या कह रहे हैं और इसके अनुसार हम विविध भाषिक प्रयोग करते हैं। परस्पर बातचीत करते हुए, अध्यापन करते हुए,जिरह करते हुए, मरीज को देखते हुए, व्याख्यान देते हुए, यानी परिस्थिति, परिवेश आदि के आधार पर अलग अलग तरह की भाषा का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार समाचार प्रेषित करते समय भी हमें यह ध्यान रखना होता है कि समाचार बिल्कुल ठीक ठीक तरीके से लोगों तक पहुँच जाए।

पत्रकारिता का लक्ष्य है विश्व में घटने वाली घटनाओं की, सरकारी नीतियों, गतिविधियों आदि की जानकारी जन सामान्य तक पहुँचाना, जनसामान्य को शिक्षित करना और जनसामान्य का मनोरंजन करना। इसके लिए पत्रकार को एक अच्छा लेखक भी होना चाहिए। प्रसिद्ध पत्रकार एम.वी. कामथ का कहना है – ‘‘A good write-up is a study in effeortlessness. It must flow freely. It must be knowledgeable without being pretentious, entertaining without being vulgar and informative without being news.” अच्छा लेखन सहज प्रवाहयुक्त, जानकारी देने वाला और सूचना देने वाला होना चाहिए। यह लेखन चाहे किसी भी रूप में हो- लेख, निबन्ध, रिपोर्ताज, संस्मरण- आदि किसी भी रूप में-यदि ग्राहकों को प्रभावित नहीं कर सके,जानकारियाँ नहीं दे सके या मनोरंजन नहीं कर सके तो श्रेष्ठ लेखन नहीं कहा जा सकता। हमने यह देखा है कि हम क्या कह रहे हैं यह महत्वपूर्ण नहीं होता, बल्कि हम कैसे कह रहे हैं, यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। कोई अच्छा वक्ता किसी भी विषय में जब बोलता है, तो उसके पास वे तथ्य होते हैं जो प्रायः सभी को मालूम होते हैं, लेकिन वह उन्हें इस तरह प्रस्तुत करता है कि सुनने वाले उससे अत्यन्त प्रभावित हो जाते हैं। लेखन के सम्बन्ध में एक अवधारणा यह मानी जाती है कि लेखन का गुण सहजात एवं प्रकृति प्रदत्त होता है। निश्चित रुप से व्यक्ति की रुचि महत्वपूर्ण होती है, लेकिन इसका परिष्कार अभ्यास से ही सम्भव है। सरल, सुगठित, सुस्पष्ट, विषयानुकूल और शालीन भाषा पाठक और श्रोता को आकर्षित भी करती है और विषय को भी स्पष्ट करती है। आइए, निम्न अभ्यास के द्वारा हम अपनी लेखन क्षमता और लेखन रुचि के विषय में जानें-

अच्छा लेखक केसे बनें यह जानने के लिए आप निम्न अभ्याहस की सहायता ले सकते है।

**अभ्यास**

प्रतिदिन आप क्या पढ़ते हैं ? समाचारपत्र/ पत्रिकायें/उपन्यास/अन्य

नियमित रुप से................... ( इनमें से क्या पढ़ते हैं ?)

प्रायः.......................................... ( इनमें से क्या पढ़ते हैं ?)

आप इनमें से किसे कितना समय किसे देते हैं ?

आप क्या लिखते हैं ?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

आपके लिखने की आवृत्ति क्या है ?

प्रतिदिन..........................................................................................

नियमित..........................................................................................

समयानुकूल/विशेष अवसर/विशेष घटना पर..........................................

आप सामान्यतः एक बैठक में कितना लिख लेते हैं ?

- 250 शब्द
- 500 शब्द
- 1,000 शब्द
- 1,000 शब्द से अधिक

आप अपने ड्राफ्ट को दुबारा तैयार करते हैं? हाँ /नहीं

यदि हाँ तो कितनी बार लिखकर अन्तिम ड्राफ्ट तैयार करते हैं?

यदि नहीं तो क्यों?

अपने लेखन को अच्छा /बेहतर बनाने के लिये आप क्या प्रयास करेंगे?

..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
..............................................................................................................
.....................................................................

### 21.3.1 समाचार का अर्थ

समाचार लेखन के विषय में जानने से पूर्व हमें यह जानना जरूरी है कि समाचार क्या है। समाचार अंग्रेजी के न्यूज शब्द का पर्याय है। न्यूज- यानी नया। यदि समाचारपत्र की आत्मा समाचार है तो समाचार की आत्मा नवीनता है। विद्वानों ने न्यूज के रोमन अक्षरों के आधार पर भी समाचार की व्याख्या की है।

इस दृष्टि से एन है नार्थ (उत्तर), ई है ईस्ट (पूर्व), डब्ल्यू है वेस्ट ((पश्चिम)और एस है साउथ (दक्षिण)। इसका आशय यह हुआ कि चारों दिशाओं से आने वाली सूचनाएँ समाचार हैं। (ब्रिटिश समाचारपत्र "मानचेस्टर गार्डियन" द्वारा समाचार की परिभाषा जानने के लिए कराई गई प्रतियोगिता में सर्वश्रेष्ठ घोषित परिभाषा के अनुसार)। समाचार की सही परिभाषा है-'समाचार किसी अनोखी या असाधारण घटना की अविलम्ब सूचना को कहते हैं जिसके बारे में लोग प्रायः पहले कुछ न जानते हों लेकिन जिसे तुरन्त ही जानने की अधिक से अधिक लोगों में रुचि हो'।

समाचार के लिये सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह सत्य होना चाहिए। समाचार को न केवल सत्य बल्कि पूर्ण सत्य होना चाहिये। आधा सच झूठ से भी अधिक घातक व दुष्प्रभाव वाला होता है। समाचार से जुड़ा एक अन्य तथ्य यह है कि आमतौर पर यह किसी वास्तविक घटना का निष्पक्ष तथा वास्तविक विवरण होता है लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि केवल घटना, चाहे वह कितनी भी बड़ी क्यों न हो, समाचार नहीं होती बल्कि घटना का विवरण या इसकी सूचना ही समाचार होता है। तात्पर्य यह है कि जब तक घटना की जानकारी या सूचना हम तक किसी न किसी माध्यम से पहुंचती नहीं, वह हमारे लिए कोई समाचार नहीं होता। इसी प्रकार हर नई जानकारी भी समाचार नहीं हो सकती। इतिहास पढ़ने के दौरान हमें ऐसी अनेक जानकारियां मिलती हैं जो हमारे लिये नई होती हैं व जिन्हें हम कल तक नहीं जानते थे लेकिन सोचिए क्या इतने से उन्हें समाचार कहा जा सकता है ? जाहिर है कि प्रश्न का जवाब ना ही है। अर्थात समाचार के लिये सम्बन्धित जानकारी का नया व ताजा होना भी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में उचित ही कहा गया है कि

**समाचारों का वर्गीकरण** हम तीन तरह से कर सकते हैं-स्वरूप के आधार पर, विषय के आधार पर तथा प्रकृति के आधार पर। हम निम्न तालिका से इस वर्गीकरण के विषय में जान सकते हैं-

समाचार

| **गुण एवं स्वरूप के आधार पर** | **विषय के आधार पर** | **प्रकृति के आधार पर** |
|---|---|---|
| • सामान्य समाचार<br>• विशेष समाचार | • अपराध सम्बंधी<br>• राजनीतिक<br>• खेल सम्बंधी<br>• आर्थिक<br>• सांस्कृतिक<br>• स्थानीय<br>• राष्ट्रीय<br>• वैश्विक<br>• घटनात्मक<br>• अदालती<br>• शैक्षिक<br>• प्रशासनिक<br>• विज्ञान | • विवरणात्मक<br>• विश्लेषणात्मक |

**अभ्यास प्रश्न**

**1. समाचार के अंग्रेजी शब्द NEWS में N का आशय है -**

New (नया) Now (अभी)

North (उत्तर) None (कुछ नहीं)

**2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये :-**

क) समाचार लेखक को............ होना चाहिये। ( स्वाध्यायी / स्वयंसेवी)

### 21.3.2 समाचार संकलन

एक समाचार लेखक के लिए यह जानना अत्यावश्यक है कि वह जिन समाचारों का संकलन कर रहा है वे प्रामाणिक हों उनमें सम्प्रेषणीयता हो, प्रभावोत्पादकता हो और उसके द्वारा भेजी जाने वाली सूचनाएँ अधूरी न हों। उसे किस तरह के समाचार संकलित करने हैं। उन समाचारों का तात्कालिक महत्त्व है या स्थायी, समाचार किस समय प्रकाशित होने हैं, तत्काल या कुछ समय के उपरान्त ? इन सभी प्रश्नों के समाधान के लिए हमें सर्वप्रथम यह जानना जरूरी है कि समाचारों के स्रोत क्या हैं ? सामान्यतः समाचार स्रोतों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं- प्रत्यक्ष स्रोत और अप्रत्यक्ष स्रोत। प्रत्यक्ष स्रोत से आशय है समाचार लेखक द्वारा स्वयं घटना आदि का प्रत्यक्षदर्शी होकर समाचार एकत्र करना। किसी सार्वजनिक सभा, समारोह, धरना, प्रदर्शन, भेंटवार्ता, पत्रकार वार्ता आदि में या किसी घटनास्थल पर उपस्थित समाचार लेखक स्वयं महत्वपूर्ण तथ्य संकलित करता है। अप्रत्यक्ष स्रोत से आशय है, जब संवाददाता घटनास्थल पर स्वयं उपस्थित नहीं होता बल्कि दूसरे स्रोतों से समाचार संकलित करता । सूचना प्राप्त करने के कुछ महत्वपूर्ण स्रोत निम्नांकित

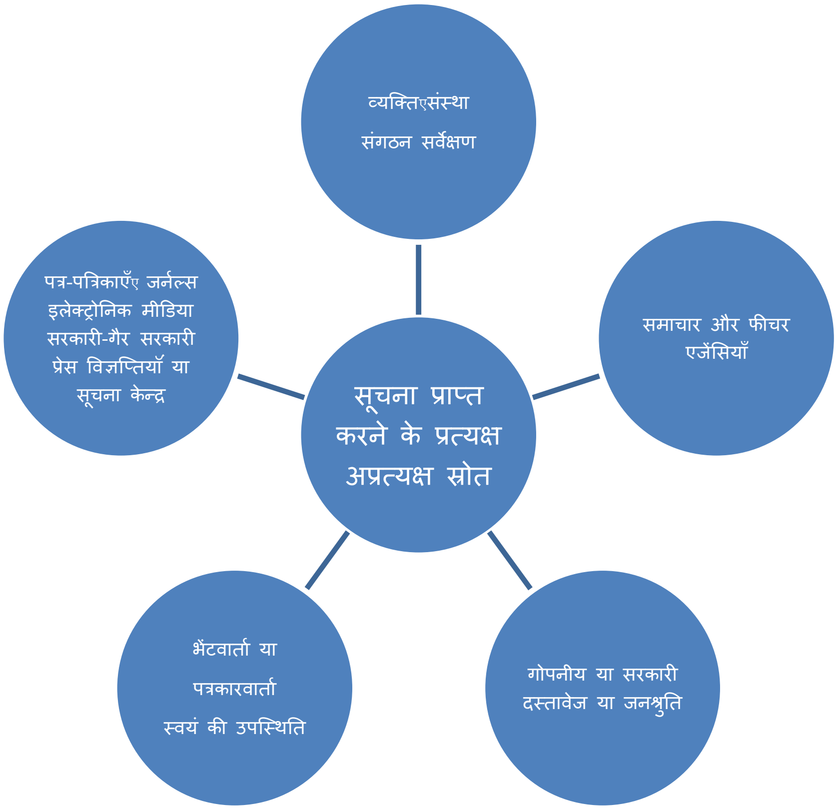


हैं-

इन स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को संकलित करने के उपरान्त समाचार लेखक का मुख्य और सबसे महत्वपूर्ण कार्य है समाचारों की विश्वसनीयता का पता लगाकर उनका सम्पादन करना। प्रायः समाचारस्रोतों से मिलने वाली सूचनाओं पर आँख मूँदकर भरोसा नहीं किया जा सकता है क्योंकि स्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ एक पक्षीय, स्वार्थ से प्रेरित, पूर्वाग्रह से युक्त सुनीसुनाई या अफवाहों पर आधारित हो सकती हैं। सूत्रों का सही इस्तेमाल तभी हो सकता है जब समाचार लेखक सभी स्रोतों से प्राप्त जानकारी का विश्लेषण करे, उनकी विश्वसनीयता के प्रति आश्वस्त हो, प्रमाणों द्वारा समाचार की पुष्टि करे। इसके लिए समाचार लेखक में कुछ विशेषताएँ होनी चाहिए।

- समाचार लेखक को निष्पक्ष होना चाहिए,
- उसे विषय की पूरी जानकारी होनी चाहिए,
- उसमें सूझबूझ, प्रत्युत्पन्नमतित्व होना चाहिए,
- अन्धविश्वास से उसे दूर रहना चाहिए,
- विवादास्पद, सनसनी फैलाने वाले, पाठकों को गलत संदेश देने वाले और देश और समाज को क्षति पहुँचाने वाले समाचारों को समझने और उन्हें सावधानी से सम्प्रेषित करने की क्षमता होनी चाहिए।
- उसे लेखन कला की समझ होनी चाहिए। उसका भाषिक ज्ञान उसके लेखन को सही ढंग से सम्प्रेषित करने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उसकी भाषा सरल, प्रवाहयुक्त, स्पष्ट और विषयानुरूप होनी चाहिए।
- एक अच्छे लेखक को एक अच्छा पाठक और श्रोता भी होना चाहिए।

**यह प्रश्न उठता है कि उसे क्या पढ़ना चाहिए ?**

इसका उत्तर है कि उसे विभिन्न अखबार, पत्रिकाएँ, पुस्तकें पढ़नी चाहिए इससे उसे स्वयं यह ज्ञात हो जाएगा कि उसे क्या पढ़ना चाहिए। इसके लिए ? पुस्तकालय जाना चाहिए। विषयसूची से चुनकर अपनी रुचि या जरूरत के अनुसार पुस्तक लेनी चाहिए । किसी भी विषय की जानकारी एक अच्छे लेखन को और भी गुणवत्ता से सम्पन्न करती है। यहाँ हम यह भी कह सकते हैं कि किसी विषय की जानकारी सूचना स्रोतों के सही इस्तेमाल के लिए जरूरी है। उदाहरणतः यदि आप किसी साहित्यकार, वैज्ञानिक, नेता, किसी नामचीन व्यक्ति या विशेषज्ञ आदि से साक्षात्कार ले रहे हैं और आपको उसके और उसके विषय के सन्दर्भ में ठीक ठीक जानकारियाँ नहीं हैं, तो आपका साक्षात्कार सफल नहीं हो सकता। किसी राजनीतिज्ञ से साक्षात्कार करते समय आपको सामयिक राजनीतिक स्थितियों और समीकरणों का ज्ञान होने पर ही साक्षात्कार को सफल बनाया जा सकता है। स्पष्ट है

कि किसी भी समाचार लेखक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी प्रतिभा, सूझबूझ, अध्ययन, परिश्रम तथा सावधानी के बल पर समाचारलेखन में कौशल प्राप्त करे और किसी भी समाचार के संकलन के समय भावुकता, बात को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने तथा उत्तेजना आदि से प्रभावित हुए बिना समाचार संकलित करे।

समाचार लेखक के गुणों के विषय में यह माना गया है कि उसे समाचार की समझ होनीचाहिए, उसे समाचार संकलन के सन्दर्भ में सावधान रहना चाहिए। सतर्कता या स्फूर्ति, क्षिप्रता, जिज्ञासा जैसे गुण उसमें होने चाहिए। उसे प्रत्येक बात को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करना चाहिए, तथ्यों के अन्वेषण द्वारा अपने मतामत का निर्णय करना चाहिए। उसमें दूरदृष्टि, आत्मानुशासन, सत्यनिष्ठा, निर्भयता और गतिशीलता होनी चाहिए।

***'यदि मैं अपनी आस्था के प्रति कर्तव्यनिष्ठ रहूँ तो क्रोध में आकर या द्वेष में कुछ भी नहीं लिखूँगा। मैं बिना किसी प्रयोजन के भी नहीं लिखूँगा। मैं यह नहीं चाहूँगा कि लिखते समय मैं केवल भावनाओं में बह जाऊँ। पाठकों को क्या मालूम कि हर सप्ताह अपना विषय चुनने और शब्दों के इस्तेमाल में मुझे अपने पर कितना नियन्त्रण रखना पड़ता है। ऐसा करते समय मुझे अपने आप में झाँकने का और अपनी कमजोरियों को दूर करने का अवसर मिल जाता है। अक्सर मेरा खालीपन या क्रोध मुझे कुछ बड़ी या कड़वी बातें लिखने पर मजबूर कर देता है। यह एक कड़ी परीक्षा का समय होता है, लेकिन बाद में उन शब्दों को काटना या बदलना एक अच्छा अभ्यास हो जाता है।'*** - **महात्मा गांधी** के ये विचार एक अच्छे लेखक के विषय में स्पष्टतः इंगित करते हैं।

विद्वानों का यह मानना है कि अच्छा लेखक वह है जो लिखे, बार बार लिखे, अभ्यास करे, लिखकर दोहराए, सुधार करे, जानकारों को दिखाए और ऐसा बार बार करे। आपसे बार-बार कहा जाता रहा होगा कि अपने पाठ को दोहराइये या अपने लिखे को दुबारा पढ़कर सुधार करें। अपने लिखे को बार बार पढ़ने से अपनी ही कमियाँ खुद नज़र आ जाती हैं। इसलिए समाचार लेखक के लिए भी यह जरूरी है कि वह अपनी कल्पनाशीलता और रचनात्मकता से तैयार किए गए अपने लेखन को बार बार पढ़े, फिर अपनी स्पष्टता से उन्हें प्रस्तुत करे।

**अभ्यास प्रश्न**

**3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये-**

समाचार प्राप्ति के स्रोतों को हम .........भागों में बाँट सकते हैं। (पाँच / दो)

4. समाचार लेखक को अच्छा पाठक और अच्छा श्रोता भी होना चाहिये। ( सही / गलत)

## 21.3.4 श्रेष्ठ समाचार लेखन की विशेषताएँ

समाचार संकलन और समाचार चयन के बाद अगला महत्वपूर्ण चरण होता है समाचार लेखन। पत्रकारिता के क्षेत्र में श्रेष्ठ लेखन वह है जो स्पष्ट हो, संक्षिप्त हो, विषयानुरूप हो। जो सूचनाएँ ठीक ठीक रूप में सम्प्रेषित करने में समर्थ हो, विचारों और भावनाओं को बिना बढ़ाए-चढ़ाए पाठक तक पहुँचाए। एक अच्छे लेखन की शैली कसी हुई, प्रवाहमयी सहज और नपे तुले सार युक्त शब्दों में प्रस्तुत की जानी चाहिए। समाचार की भाषा सहज और सरल होनी चाहिए। समाचारों को देखते, सुनते या पढ़ते हुए व्यक्ति सदा बहुत ही सहज हो यह आवश्यक नहीं है। इसलिए अच्छा हो कि समाचार लिखते समय छोटे-छोटे और सरल वाक्य बनाएँ। छोटे-छोटे अनुच्छेद बनाऍं। अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से बचें। बोलचाल की भाषा का प्रयोग करें। क्लिष्ट और व्याख्या-सापेक्ष शब्दों के प्रयोग से बचें। लम्बे-लम्बे समासों के प्रयोग से बचें। जरूरी होने पर इस तरह की भाषा का प्रयोग करना पड़ सकता है। भाषा में अश्लीलता और भद्दापन नहीं होना चाहिए। यदि किसी दूसरी भाषा से अनुवाद भी कर रहे हों तो उसे अपनी भाषा और समाज के अनुरूप बनाने का प्रयास करें कोई भी समाचार तभी सफल होता है, जब वह अपने पाठकों, दर्शकों और श्रोताओं में जिज्ञासा बनाए रखे। एक अच्छे लेखन के लिए लेखक को दो बातों का ध्यान विशेषतः रखना चाहिए। पहला- सूचनाओं को इकट्ठा करने और दूसरा एकत्रित सूचनाओं को कौशल से प्रस्तुत करना। सूचनाएँ प्राप्त करने के प्रत्येक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष स्रोतों को अपनी प्रतिभा और सूझबूझ के बल पर पहचान कर उन्हें समाचार का रूप देने में एक कुशल लेखक ही समर्थ हो सकता है।

## 21.3.5 समाचार लेखन के सूत्र-छःककार

समाचार लेखन के लिए जो तथ्य जुटाने होते हैं, उनमें छः ककारों का विशेष महत्व है। ये छः ककार - प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रकार एडविन एल. शूमैन ने सन् 1894 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'प्रैक्टिकल जर्नलिज़्म' में इन सूत्रों के विषय में चर्चा की है। वहाँ इन सूत्रों को फाइव(5)-डब्ल्यू तथा वन(1)एच Who?What? When? Where? Why? और How? के आधार पर फाइव डब्ल्यू थियरी भी कहा जाता है। चूँकि हिन्दी इन सूत्रों का पहला अक्षर 'क' से आरम्भ होता है अतः इन्हें छः ककार सिद्धान्त कहा जाने लगा। इन छः ककारों में किसी भी समाचार से सन्दर्भित सभी उत्तर समाहित हैं। 'घटना क्या है'? 'कहाँ घटी है'? ' कब घटी है'? 'कौन इसके लिए उत्तरदायी है? 'घटना का कारण 'क्या है'?और घटना कैसे घटी? इन सवालों के जबाव न केवल एक समाचार लेखन की उपयोगिता को सिद्ध करते हैं अपितु इन सूत्रों के आधार पर लेखक जो तथ्य जुटाता है, वे समाचार पाठकों के मन में भी समाचार के विषय में जानने की जिज्ञासा को बल देते हैं।

समाचार लेखन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं छः ककार ( फाइव(5)-डब्ल्यू तथा वन(1)एच )

कौन घटना को अंजाम देने वाला कौन था ?

क्या क्या घटना हुई ?

कब घटना कब हुई ?

कहाँ घटना कहाँ हुई ?

क्यों घटना क्यों हुई ?

कैसे घटना कैसे हुई ?

नीचे लिखे दो उदाहरणों से छः ककार के विषय में स्पष्टतः जानकारी हो जाएगी-

1. दो अक्टूबर को विद्यालय में आयोजित भाषण प्रतियोगिता में नेहा प्रथम आई।
2. कल रात बाजार में मामूली कहा -सुनी में श्याम ने रमेश को छुरा मार कर घायल कर दिया।

| | कौन | क्या | कब | कहाँ | क्यों | कैसे |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | नेहा | प्रथम आई | 2 अक्टूबर | विद्यालय | भाषण | प्रतियोगिता में |
| | कौन | क्या | कब | कहाँ | क्यों | कैसे |
| 2 | नेहा | प्रथम आई | दो अक्टूबर को | विद्यालय में | भाषण | प्रतियोगिता में |
| | कौन | क्या | कब | कहाँ | क्यों | कैसे |
| | श्याम ने रमेश को | घायल किया | कल रात | बाजार में | कहा -सुनी में | छुरा मारकर |

**अभ्यास**

अमर उजाला में प्रकाशित एक समाचार है-

जंगली हाथियों को देखकर मनकंठपुर में मची भगदड़

Story Update : Thursday, January 05, 2012 1:06 AM

रामनगर। जंगली हाथियों ने पवलगढ़, मनकंठपुर गांव में फसलें रौंद डाली। आबादी में हाथी घुसने से गांव में भगदड़ मच गई। इससे पहले चुकम, सुंदरखाल, छोई, नाथूपुर, आमपोखरा, ढेला, सांवल्दे क्षेत्र में भी वन्यजीवों ने फसलों को नुकसान पहुंचाया है। मनकंठपुर निवासी कृष्णानंद जोशी ने बताया कि हाथियों ने गेहूं, चना, टमाटर की फसल बर्बाद कर दी है। मंगलवार रात जंगली हाथियों का झुंड गांव की मजदूर कालोनी में घुस आया। इससे ग्रामीणों में हड़कंप मच गया। झोपड़ी में रहने

वाले मजदूरों ने पक्के मकानों में छिपकर अपनी जान बचाई। जिस कारण गांव में भगदड़ मच गई। रूप सिंह रावत ने बताया कि दाबका नदी किनारे करीब दो किमी दूरी तक करीब 100 एकड़ जमीन में उगी फसल बर्बाद हो गई। घटना से आक्रोशित ग्रामीणों ने वनाधिकारियों से गांव किनारे सुरक्षा दीवार बनवाने, ग्रामीणों को मुआवजा दिलाने की मांग को लेकर आंदोलन की चेतावनी दी है।

-इस समाचार को पढ़कर बताइए कि क्या आपकी उक्त समाचार विषयक जिज्ञासाओं -कौन, क्या, कब, कहाँ, कैसे, किसने, क्यों का समाधान हुआ?

**अभ्यास प्रश्न**

6.समाचार भाषा की कुछ विशेषतायें नीचे दी गईं हैं। इनमें से सही और गलत को पहचानिये।

अ) पूरा समाचार एक अनुच्छेद में लिखा जापा चाहिये। (सही / गलत)

ब) छोटे-छोटे और सरल वाक्य होने चाहिये। (सही / गलत)

स) क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करना चाहिये। (सही / गलत)

द) लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। (सही / गलत)

## 21.4 विलोम स्तूप

समाचार लेखन के लिए तथ्य जुटाने के बाद समाचार लेखक को समाचार की संरचना करनी होती है। सामान्य तौर पर लेखन की एक पद्धति है कि लेखक पहले अपने विषय को रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है क्योंकि उसे अपने विचारों की प्रस्तुति के लिए एक माहौल बनाना होता है अतः वह आरम्भ में कम महत्वपूर्ण सूचनाएँ देता है, फिर विषयवस्तु का विस्तार करता है और इसके उपरान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण सूचना देकर अपनी बात समाप्त करता है।

जैसे आपने अपनी छोटी कक्षाओं में निबन्ध लेखन के विषय में यह जाना होगा कि निबन्ध लिखते समय हम सबसे पहले विषय का परिचय देते हैं, जिसे हम प्रस्तावना कहते हैं, फिर विषय का विस्तार करते हैं और अन्त में निष्कर्षात्मक उपसंहार प्रस्तुत कर देते हैं। किसी भी प्रकार के लेखन में यही तरीका अपनाया जाता है। इसे लेखन की स्तूप अथवा सोपान (सीढ़ी)पद्धति कह सकते हैं।

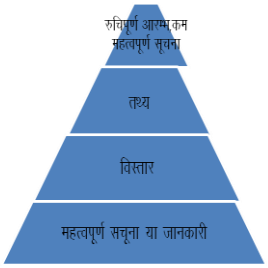


किन्तु यह पद्धति समाचार लेखन के लिए बहुत कारगर नहीं है। समाचार लेखन में यदि हम इस पद्धति का उपयोग करेंगे तो समापन तक आते आते पाठक की जिज्ञासा बिल्कुल समाप्त हो जाएगी। वैसे भी आज के व्यस्तताओं से भरे समय में किसी व्यक्ति के पास इतना समय नहीं होता कि वह किसी समाचार को विस्तार से पढ़े, इसलिए समाचार लेखक का प्रयास होता है कि वह समाचार इस तरह से प्रस्तुत करे कि समाचार के विषय में काफी जानकारी शीर्षक से और अधिकांश जानकारी इन्ट्रो से हो जाय और बाकी सूचनाएँ अन्त में आ जाएँ ताकि यदि पाठक उस हिस्से को छोड़ दे तो भी उस तक पूरा समाचार पहुँच जाय, या सम्पादक को स्थानाभाव आदि के कारण समाचार को छोटा करना पड़े तो वह उस कम महत्व के हिस्से को काट सके। तकनीकी शब्दावली में इस पद्धति को विलोम स्तूप नाम दिया गया है। विलोम स्तूप के आधार पर दिये जाने वाले समाचारों को हम इस रूप में रख सकते हैं-

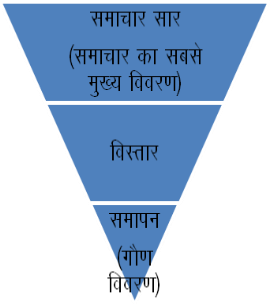


उपर्युक्त दोनों पद्धतियों के विषय में जानने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य तौर पर समाचार लेखन से इतर जैसे फीचर लेखन, निबन्ध लेखन, स्टोरी लेखन या मानवीय अभिरुचि के समाचारों के लिए सीधे पिरामिड की शैली का प्रयोग किया जाता है और विलोम पिरामिड शैली में प्रायः समाचार लेखन किया जाता है। किसी उपन्यास या कहानी में सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा उसका आखिरी हिस्सा होता है, जबकि समाचार लेखन में सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा आरम्भिक हिस्सा होता है। विलोम स्तूप शैली में लेखक का प्रयास यह होता है कि समाचार का सारतत्व सबसे पहले, फिर आमुख का विस्तार और अन्त में कम महत्व का विवरण आए। उसकी कोशिश होती है कि कम से कम समय और शब्दों में अधिक से अधिक जानकारी पाठक तक पहुँचा दे।

जब आप समाचार लेखन आरम्भ करें, आपको यह स्मरण रखना होगा कि एक अच्छे लेखन के लिए आपको सरल और स्पष्ट शब्दों में छोटे-छोटे वाक्य, छोटे-छोटे पैराग्राफ में अपनी बात रखनी चाहिए। समाज में अधिकाधिक व्यवहृत शब्दों का प्रयोग आपके महत्वपूर्ण बिन्दुओं को प्रभावशाली रूप से पाठक तक प्रेषित करता है। आपको संयुक्त और मिश्र वाक्यों की अपेक्षा सरल वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए। समाचार स्रोतों का ठीक-ठीक प्रयोग करना चाहिए। समाचार इस तरह लिखना चाहिए कि कौन, क्या, कब, कहाँ, कैसे, किसने, क्यों- इन प्रश्नों के उत्तर पाठकों को यथाशीघ्र मिल जाए। समाचार लेखन के लिए विलोम स्तूप शैली का प्रयोग उपयुक्त है।

## 21.5 इन्ट्रो तथा लीड

### 21.5.1 इन्ट्रो

हम समाचार के स्रोत, सूत्र और संकलन तथा समाचार लेखन शैली के विषय में चर्चा कर चुके हैं। समाचार संकलन के बाद समाचार लिखने की बारी आती है। समाचार लेखन का आरम्भ इन्ट्रो (पूरा शब्द इन्ट्रोडक्शन-यानी विषय परिचय या मुखड़ा या आमुख) से किया जाता है। इन्ट्रो से हम पूरे समाचार का परिचय करा देते हैं। इन्ट्रो संक्षिप्त, महत्वपूर्ण बातों से युक्त और समाचार लेखन के लिए सबसे खास होता है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण सूचना दो-तीन पंक्तियों में दे दी जाती है। यह भावात्मक, विवरणात्मक, कथात्मक हो सकता है। प्रकृति, शिल्प, शैली आदि के आधार पर आमुख के अनेक भेद होते हैं। प्रवीण दीक्षित ने अपनी पुस्तक जनमाध्यम और पत्रकारिता में 21 प्रकार के इन आमुखों की चर्चा की है-

सारांश, आमुख, विस्तृत, दुर्घटना, पंच, धर्मयुद्ध, आश्चर्यजनक, बुलेट, आप और मैं, निलम्बित अभिरुचि, व्याख्यात्मक, सामान्य रूप, प्रश्न, उद्धरण, आश्रितवाक्यांश, संज्ञा वाक्यांश, तब और अब, यत्र-तत्र, उपाख्यान, आलंकारिक, सूक्ति आज आमुख । समाचार का आमुख सरल, संक्षिप्त, सघन, प्रभावशाली और आकर्षक होना चाहिए। एक कहावत समाज में बहुत प्रचलित है- First impression is last impression. वस्तुतः किसी कृति, किसी व्यक्ति, किसी स्थान का बाह्य रूपाकार-गैटअप सबसे पहले प्रभावित करता है। किसी किताब की ज़िल्द आकर्षक होने पर उस किताब को उलटपुलट कर देखने का मन अनायास होने लगता है : इसी तरह एक अच्छे इन्ट्रो का प्रभाव जनमन पर बहुत अधिक पड़ता है। आकर्षक होने के साथ इन्ट्रो को विषयानुरूप, प्रामाणिक, समाचार का सार प्रस्तुत करने वाला होना चाहिए और उसे लिखते समय अतिशयोक्ति, काल्पनिकता, अनावश्यक विवरण आदि नहीं होना चाहिए। आमुख में समाचार का सार संक्षेप में आ जाता हैं। यदि आमुख पाठक की रुचि जगाने में सफल होता है तो पाठक पूरा समाचार उत्सुकता से पढ़ जाता है। ऐसे समाचार, समाचार पत्र की बिक्री बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आमुख लिखने के लिए निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

1. सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य का चयन करें।

2. समाचार की मूल संवेदना को अभिव्यक्त करने वाला हो।

3. आमुख संक्षिप्त लेकिन तथ्यपूर्ण हों।

4. भाषा सरल, सहज और विषयानुकूल होनी चाहिये।

5. समाचार यदि किसी वक्तव्य, प्रस्ताव अथवा सूचना से सम्बन्धित हो तो उसका मुख्य बिन्दु आमुख का विषय बनाया जाना चाहिये।

### 21.5.2 लीड

किसी भी सफल पत्रकार की पहचान यह है कि वह अपने समाचार की लीड कैसे बनाता है। प्रश्न उठता है कि लीड क्या है?लीड का शाब्दिक अर्थ है -आगे आगे चलना, नेतृत्व करना, मार्ग दिखाना -&show the wayA इस तरह समाचार लेखन के सन्दर्भ में लीड का मतलब है समाचार का वह रूप, जो समाचार के लिए मार्ग दिखाए। यानी समाचार का सबसे अहम हिस्सा है लीड। लीड की रचना समाचार को आकर्षक बनाने के लिए की जाती है इसके साथ ही लीड में क्या, कब, कहाँ, कौन, कैसे, किसे-आदि प्रश्नों का उत्तर भी होता है। कुछ विद्वान् इन्ट्रों को ही लीड की संज्ञा देते हैं। लेकिन जैसा कि इस शब्द से ही प्रकट होता है -लीड समाचार का वह भाग है, जो समाचार का नेतृत्व करता है और लीडर तो एक ही हो सकता है। इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि किसी समाचार पत्र में विविध प्रकार के समाचार प्रकाशित होते हैं, या रेडियो, टेलीविजन में अनेक प्रकार के समाचार प्रसारित होते हैं। सम्पादक विभाग इन सभी समाचारों में से सबसे मुख्य समाचार को इस रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है कि पाठक श्रोता या दर्शक अन्य समाचार पढ़े सुने अथवा देखे या नहीं, प्रमुख समाचार पर उसका ध्यान अवश्यमेव जाए। इस रूप में लीड से आशय है- समाचार का अग्रांश या आरम्भ, जहाँ समाचार का मुख्य बिन्दु रहता है। जबकि इन्ट्रो में समाचार का सार या समाचार की प्रस्तावना होती है। इससे जाहिर है कि लीड की रचना समाचार के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। लीड अनेक रूपों में लिखी जाती है। यथा- समाचारसार (News summary Lead)] वाक्यांश लीड (Short Sentence Lead)] उद्धरण लीड Quotation Lead)] विरोधाभासी लीड (Contrast Lead)] पिक्चर लीड (Picture s Lead)]हास्यरसात्मक लीड (Humours Lead) आदि।

# 21.6 इलेक्ट्रानिक मीडिया और समाचार लेखन

समाचारों का संकलन करने या उन्हें लिखने का उद्देश्य तभी पूरा होता है, जब वे पाठकों, दर्शकों या श्रोताओं तक सम्प्रेषित हों। इसके लिए समाचार पत्र तो प्रमुख माध्यम हैं ही, न्यूज मैगजीन समाचार पत्रिका भी उतना ही बड़ा माध्यम हैं। कह सकते हैं, न्यूज मैगजीन अन्य पत्रिकाओं की तरह साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि रूप में प्रकाशित होती है और उसमें समाचारों का नियमित कालक्रमानुसार विवरण,उनकी पृष्ठभूमि आदि प्रधानतः प्रकाशित होते हैं। दैनिक समाचारपत्रों से न्यूज मैगजीन इस रूप में भिन्न होती हैं, कि दैनिक समाचारपत्र मुश्किल से चौबीस घण्टों की खबर दे पाते हैं, और समाचारपत्रिकाएँ समाचारों की श्रृंखलाओं को एक दूसरे से जोड़ते हुए विभिन्न दृष्टिकोणों से समाचारों का विश्लेषण, दैनिक समाचारों का तिथिक्रम से विवरणादि प्रस्तुत करती हैं। इस तरह पाठक को एक स्थान पर राजनीतिक, संसदीय, सार्वजनिक, शैक्षणिक समाचार मिल जाते हैं।

### 21.6.1 इलेक्ट्रानिक माध्यम

समाचार पत्र-पत्रिकाएँ समाचारों के सम्प्रेषण के मुद्रित माध्यम हैं तो **रेडियो, टेलीविजन, इन्टरनेट आदि इलेक्ट्रानिक माध्यम।** सिद्धान्ततः इन सभी संसाधनों में समाचार संकलन का काम करीब-करीब समान है, भेद है कार्यप्रणाली और प्रक्रिया का। रेडियो प्रसारण सुनने और टीवी तथा इन्टरनेट (उपग्रह प्रणाली विशेषतः) सुनने और देखने का विषय है। समाचार-पत्र का एक संस्करण सामान्यतः चौबीस घण्टे में एक बार निकलता है, रेडियो, टीवी आदि में लगभग प्रति मिनट समाचार विवरण प्रसारण की व्यवस्था है। रेडियो समाचारवाचन में उच्चारण को बहुत महत्व दिया जाता है, समाचारपत्रों में लिखित शब्दों को। समाचार पत्र में अगर उपलब्ध स्थान का महत्व है तो रेडियो में उपलब्ध समय का। अनेक शोधों से यह निष्कर्ष निकले हैं कि रेडियो में प्रसारित 10 मिनट के बुलेटिन में अधिक से अधिक 11 समाचार ही श्रोताओं के ध्यान को केन्द्रित रख सकते हैं। दूरदर्शन समाचारों में समाचार सुनने के साथ-साथ समाचार वाचक को देखा भी जा सकता है। चित्रात्मकता या दृश्यात्मकता दूरदर्शन समाचारों का प्राण है। शब्दों की अपेक्षा चित्रों,दृश्यों को वहाँ अधिक महत्व दिया जाता है, यानी समाचार प्रस्तुतीकरण वहाँ एक कला है। उपग्रह प्रणाली से समाचार जगत में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। इसके सहारे एक स्थान में आधी रात को तैयार समाचारपत्र हजारों मील दूर स्थान में उसी समय प्रकाशित हो जाता है, अज्ञात स्थानों की भी जानकारी उपग्रह द्वारा मिल जाती है। फोटो ट्रांसमीटर द्वारा एक देश की गतिविधियाँ दूसरे देश में तुरन्त प्रकाशित हो जाती हैं।

### 21.6.2 रेडियो

रेडियो अपनी प्रकृति में मुद्रण और दृश्य-श्रव्य माध्यमों से भिन्न है अतः उसके लिए ऐसी भाषा का प्रयोग आवश्यक होता है, जो श्रोताओं के मन में समाचार, संवाद या वार्ता सुनने के साथ साथ बिम्ब भी निर्मित करती चले। आपको यहाँ यह जानना चाहिए कि रेडियो की शब्दावली तीन प्रकार की सामग्री से निर्मित होती है- वाक् ¼speech½ संगीत सहित ध्वनि प्रभाव¼sound effect including music½ और मौन ¼silence½)। मुद्रित वाक्य दुबारा-तिबारा पढ़कर समझे जा सकते हैं पर रेडियो के श्रोता को यह सुविधा नहीं होती अतः रेडियो की भाषा स्पष्ट, सरल और सहज होनी चाहिए। वक्ता के उच्चारण स्वर और ताल की विविधता के द्वारा रेडियो की भाषा अपना प्रभाव जनमन पर छोडती है। ध्वनि बिम्ब निर्मित करने में सहायक होती है और मौन शब्दों के प्रभाव को बढ़ाने में सहायक होता है। इस दृष्टि से रेडियो लेखन के लिए इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

- सामान्यतः साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- वाक्य बहुत लम्बे या मिश्रित नहीं होने चाहिए।
- विषयानुरूप भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- समय सीमा का ध्यान रखना रेडियो लेखन के लिए अत्यावश्यक है। समाचार, वार्ता, नाटक या किसी भी विषय के लिए निर्धारित समय सीमा में ही अपने लेखन को समेटना चाहिए।

### 21.6.3 दूरदर्शन

रेडियो की ही तरह दूरदर्शन के लिए भी लेखन एक कला है। क्योंकि दूरदर्शन के लिए लिखते समय लेखक को प्रत्येक क्षण दृश्य और बिम्बों का ध्यान रखना होता है और साथ ही निर्माता, निर्देशक, कलाकार आदि दूरदर्शन की पूरी टीम का भी ध्यान रखना होता है अतः टीवी लेखक को बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। रेडियो की तरह वाणी, ध्वनि और मौन का प्रयोग टीवी में भी होता है लेकिन इससे अधिक वहाँ दृश्यबन्ध का ध्यान रखना पहली जरूरत है।

दूरदर्शन के लिए समाचार संयोजन, सृजन और सम्पादन के लिए भाषा का ज्ञान समाचार वाचक का उच्चारण, वाचक की भाषा में प्रवाह, सहजता और सरलता होनी चाहिए। संक्षिप्तता, स्पष्टता, चित्रात्मकता और तारतम्यता दूरदर्शन समाचारलेखन की विशेषताएँ हैं। इस तरह दूरदर्शन के लेखक में एक ओर पूरी टीवी टीम की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लेखन करना चाहिए और दूसरी ओर अपने दर्शकों की रुचि और आवश्यकता का भी ध्यान रखना चाहिए। सहज, प्रवाहयुक्त रोचक, तारतम्यता से सम्पन्न, चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करते हुए उसे टीवी के लिए लेखन करना चाहिए।

**अभ्यास प्रश्न**

**7. निम्न वाक्यों में से कौन सा सही है ?**

क) टी.वी. के लिये समाचार की प्रस्तुति में आने वाले दृश्य बिम्बों के साथ तालमेल होना चाहिये।

ख) टी.वी. के लिये समाचार की प्रस्तुति में आने वाले दृश्य बिम्बों के साथ तालमेल होना जरूरी नहीं है।

8. रेडियो के लिये लिखते समय भाषा बिम्बात्मक होनी चाहिये। (सही / गलत)

# 21.7 मीडिया लेखन की अन्य विधाएँ

### 21.7.1 फीचर तथा मैगजीन के लिए लेखन

फीचर लेखन की एक आधुनिकतम विधा है। सामान्य तौर पर यह अन्तर करना मुश्किल है कि समाचार लेखन से फीचर लेखन में क्या अन्तर है। फीचर समाचार नहीं है, रिपोर्टिंग या लेख या निबन्ध से भी भिन्न है फीचर। ये न कथात्मक होते हैं और न विशुद्ध भावनात्मक। इसमें समाचार की पूर्ण जानकारी होती है, तथ्यों का वर्णन होता है, घटनाक्रम का उल्लेख भी होता है और लेखक द्वारा किया गया विश्लेषण भी होता है। समाचार में घटनाओं का सीधे-सीधे उल्लेख कर दिया जाता है, फीचर में उसी समाचार या किसी घटना को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरणतः एक समाचारपत्र लिखता है-'पिछले चार दिनों से कुमाऊँ के पर्वतीय क्षेत्र में निरंतर बर्फबारी हो रही है, जिससे जनजीवन अस्तव्यस्त हो गया है- यह समाचार है। इसी समाचार को यदि इस रूप में लिखा जाता है- हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी पहाड़ों में ठण्ड अपने चरम पर है बर्फ गिरने के साथ जनजीवन अस्तव्यस्त होने लगा है। लगातार हो रही बर्फबारी ने अपना प्रभाव दिखाना शुरु कर दिया है। कुमाऊँ भर में इससे  यातायात बाधित हो रहा है। कई इलाकों में बिजली गुल है, सुदूरवर्ती इलाकों से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं हो पा रहा है, कई स्थानों पर भूस्खलन हुआ है, कई कच्चे घर ढह गए हैं, अनेक स्थानों पर इस प्राकृतिक आपदा के कारण लोग काल कवलित भी हो रहे हैं, ऐसे समय में जन प्रतिनिधियों, जिला प्रशासन को एकजुट होकर इस समस्या का समाधान करने के लिए कमर कसनी होगी- यह भी समाचार के सभी तथ्यों को प्रस्तुत करता है। लेकिन तथ्यों को मार्मिक रूप में रखने के कारण इस लेखन का प्रभाव पाठकों पर समाचार से अधिक पड़ता है, यहीं पर समाचार फीचर का रूप ले लेता है। घटनाक्रम, घटना की पृष्ठभूमि, प्रस्तुतिकरण का आकर्षण, लेखकीय कौशल और मानवीय संवेदनाएँ- ये सभी तत्व एक सफल फीचर के अनिवार्य अंग हैं। हम समाचार और फीचर में इस रूप में अन्तर कर सकते हैं-समाचार में आमुख,कथाविस्तार और समापन तीन अवस्थाएँ होती हैं

और फीचर में एक आकर्षक शुरुआत की जाती है। फीचर के आमुख से पाठक अनायास उसे पढ़ने के लिए तत्पर हो जाते हैं, फिर विस्तार से विषयवस्तु का वर्णन किया जाता है, इसके बाद उसमें चरम सीमा -यानी कथा का वह हिस्सा-जिसे आज प्रचलित शब्दावली में "पंच" कहा जाता है, आता है, और फिर निष्कर्षात्मक उपसंहार होता है। स्पष्ट है कि फीचर न तो समाचार की तरह संक्षिप्त होता है और न केवल सूचनात्मक। एक रचनात्मक लेख, जिसमें व्यक्तिगत अनुभूतियाँ हों, किसी घटना का विस्तृत वर्णन और विश्लेषण हो, जो पाठक को जानकारी दे रहा हो और उसका मनोरंजन भी कर रहा हो और उसके लिए ज्ञानवर्धक भी हो, फीचर है। लेखक फीचर के माध्यम से जानकारियों को अपनी कल्पना और सर्जनात्मकता से न केवल रोचक बनाकर प्रस्तुत करता है अपितु भावनात्मक दृष्टि से भी प्रस्तुत करता है। फीचर केवल राजनीतिक सन्दर्भों या राजनीतिक घटनाओं से ही जुड़े नहीं होते हैं अपितु साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आस्थाओं, रीतिरिवाजों या अन्य किसी भी विषय पर आधारित हो सकते हैं।

फीचर लेखक के लिए जरूरी है कि वह सबसे पहले अपने विषय को समझे, उसमें गहराई तक जाए, उसका गम्भीरता से तार्किक विश्लेषण करे और मानवीय दृष्टिकोण से फीचर लेखन करे। सकारात्मक सामाजिक सन्दर्भों को बल देने वाले तथ्यों को प्रस्तुत करे और फीचर के चार मूल तत्वों- सच्चाई, जिज्ञासा, रोचकता और विश्वसनीयता - को ध्यान में रखते हुए अपनी बात प्रस्तुत करे। एक और बात का ध्यान फीचर लेखन के लिए रखना बहुत आवश्यक है कि फीचर लेखक का भाषा पर अधिकार होना चाहिए। यदि उसमें अभिव्यक्ति का कौशल नहीं है, तो वह सफल फीचर लेखक नहीं हो सकता। फीचर लेखन का विषय कोई भी व्यक्ति, स्थान, घटना हो सकता है। फीचर लेखक सूक्ष्म दृष्टि, बौद्धिक जिज्ञासा और भाषिक कौशल से किसी भी तरह के संवादफीचर, सूचनाप्रधान फीचर, अनुभव या उपलब्धियों पर आधारित फीचर लिख सकता है। एक फीचर या मैगजीन के लिए लिखे जाने वाले लेख को विलोम पिरामिड तरीके से लिखना जरूरी नहीं है। लेखक इस विषय में स्वतन्त्र है कि वह किस तरह से अपनी बात प्रस्तुत करे, बस पाठक को लेखक के उद्देश्य का ज्ञान होना चाहिए कि वह यह फीचर क्यों लिख रहा है।

### 21.7.2 फीचर फिल्म

आप अक्सर **फीचर फिल्म** शब्द को सुनते हैं। आप यह भी जानते हैं कि फिल्में पूरे विश्व में मनोरंजन का सर्वाधिक लोकप्रिय और व्यावसायिक साधन है। फीचर फिल्म लेखन के लिए सर्वप्रथम कथा विचार, जिसे हम थीम, थॉट प्वाइंट कहते हैं, का चुनाव किया जाता है-जैसे अमीरी-गरीबी सम्बन्धों का द्वन्द्व, प्रेम, पारिवारिक रिश्ते, स्त्री संघर्ष, कानून, गलतफहमी आदि। फिर थीम पर आधारित संक्षिप्त कथा तैयार की जाती है और उसके बाद इस कथा को विकासित किया जाता है, तदुपरान्त पटकथा लिखी जाती है। पटकथा में कथा विस्तार दृश्य के क्रम निर्धारण के साथ किया जाता है। इसके लिए लेखक में चौकन्नापन, जानकारी अभिव्यक्ति कौशल का होना आवश्यक है।

### 21.7.3 विज्ञापन लेखन

आज की दुनिया को विज्ञापनी दुनिया कहा जाता है। वाणिज्यिक और व्यावसायिक फलकों के प्रसार के लिए विज्ञापन जनमत तैयार करते हैं। क्योंकि विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य उत्पाद की बिक्री करना है इसलिए उसके द्वारा उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित करने, उपभोक्ता में उस उत्पाद को खरीदने की रुचि जगाने का कार्य करना होता है और इसके लिए बहुत जरूरी है कि विज्ञापन लेखन कौशल से किया जाय। विज्ञापन तैयार करते समय यह जानना जरूरी है कि जिस वस्तु का विज्ञापन तैयार किया जा रहा है, वह वस्तु कैसी है? इसके प्रयोग क्या हैं ?उसका उपयोग किन लोगों के द्वारा किया जाना है। आवश्यकतानुसार विज्ञापन ब्लॉक, स्लाइड, लघु फिल्म, फोल्डर, पुस्तिका, होर्डिंग आदि विज्ञापन के वे संसाधन हैं, जिनके द्वारा विज्ञापन प्रसारित होता है। फिर बारी आती है विज्ञापन लेखन की।

विज्ञापन लेखन के लिए सबसे अधिक महत्व होता है शीर्षक का। शीर्षक द्वारा ही उपभोक्ता का ध्यान उस उत्पाद के प्रति केन्द्रित हो जाता है, जिसके लिए विज्ञापन तैयार किया गया है। फिर उपशीर्षक और कथ्य का विस्तार किया जाता है। विज्ञापन की भाषा का विज्ञापन की सफलता-असफलता में बहुत अधिक हाथ होता है। अतः विज्ञापन श्रव्य, सुपाठ्य भाषा में विशिष्ट शैली में लिखे जाते हैं। विज्ञापन लेखक को अत्यधिक सावधानी से लिखना चाहिए क्योंकि विज्ञापन के प्रत्येक शब्द पर उपभोक्ता का ध्यान जाता है और एक भी गलत शब्द का प्रयोग पूरे विज्ञापन की महत्ता को समाप्त कर देता है।

## 21.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करते समय आपने जाना कि समाचार लेखन एक कला है। लेकिन लेखन की यह विधा एक वैज्ञानिक विधा है। आपने इस इकाई में समाचार लेखन की तकनीक के बारे में जाना ।अच्छे लेखन के लिये केवल कागजी ज्ञान नहीं निरन्तर अभ्यास जरूरी है। समाचार लेखन एक निरन्तर अभ्यास से निखरने वाली कला है।

अब आप समझ गये हैं कि मीडिया के विविध माध्यमों के लिये लेखन में क्या समानतायें और कौनसी विशिष्टताएँ हैं। समाचार लेखन में भाषा और शैली का विशेष महत्व है। समाचार स्रोतों पर विशेष ध्यान दिया जाना भी जरूरी है। समाचार के महत्व और प्राथमिकता के आधार पर उसकी संरचना की जानी चाहिये।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समाचार और समाचार लेखन की तकनीक के बारे में बता सकते हैं। आप बता सकते हैं कि अच्छा समाचार लेखक बनने के लिये क्या गुण होने चाहिये।

आप समाचार लिखने की शैली के बारे में बता सकते हैं। समाचार का अर्थ, समाचार लेखन में समाचार संकलन की विधि, स्रोत, इन्ट्रो, लीड, छः ककार, श्रेष्ठ समाचार लेखन की विशेषताएँ, विलोम स्तूप , इलेक्ट्रानिक मीडिया और समाचार लेखन मीडिया लेखन की अन्य विधाओं फीचर तथा मैगजीन के लिए लेखन: फीचर फिल्म विज्ञापन लेखन के सम्बंध में बता सकते हैं।

## 21.9 शब्दावली

- **इन्ट्रो:** समाचार लेखन का आरम्भ इन्ट्रो (पूरा शब्द इन्ट्रोडक्शन-यानी विषय परिचय या मुखड़ा या आमुख) से किया जाता है।
- **लीड:** लीड समाचार का वह भाग है, जो समाचार का नेतृत्व करता है किसी समाचार पत्र के प्रथम पृष्ठ में छपने वाला मुख्य समाचार लीड कहलाता है।
- **छः ककार :** समाचार लेखन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं छः ककार। घटना को अंजाम देने वाला कौन था? क्या घटना हुई? घटना कब हुई? कहाँ घटना कहाँ हुई? घटना क्यों हुई? घटना कैसे हुई?
- **विलोम स्तूप:** सामान्य तौर पर लेखन की एक पद्धति(शैली) है। इसमें लेखक आरम्भ में कम महत्वपूर्ण सूचनाएँ देता है, फिर विषयवस्तु का विस्तार करता है और इसके उपरान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण सूचना देकर अपनी बात समाप्त करता है। निबन्ध, समाचार अथवा लेख की इस सरंचना को विलोम स्तूप कहते हैं।
- **फीचर:** लेखन की एक आधुनिक विधा का नाम है फीचर लेखन में किसी सामयिक विषय को तथ्य के साथ-साथ विश्लेषण करते हुए लेखकीय विचार प्रस्तुत किए जाते हैं।
- **क्लिष्ट भाषा :** कठिन और आसानी से समझ में न आने वाली भाषा।

## 21.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** North (उत्तर दिशा) 2. स्वाध्यायी 3. दो 4. सही 5. हाँ

***क्या,*** 1.जंगली हाथियों ने पवलगढ़, मनकंठपुर गांव में फसलें रौंद डाली। 2.मजदूरों ने पक्के मकानों में छिपकर अपनी जान बचाई। 3. घटना से आक्रोशित ग्रामीणों ने वनाधिकारियों से गांव किनारे

सुरक्षा दीवार बनवाने, ग्रामीणों को मुआवजा दिलाने की मांग को लेकर आंदोलन की चेतावनी दी है। (क्या हुआ)

***कब,*** मंगलवार रात *(कब हुआ)*

***कहाँ,*** रामनगर के पवलगढ़, मनकंठपुर गांव में

***कैसे,*** जंगली हाथियों का झुंड आ जाने से।

***क्यों*** 1.जंगली हाथियों के आने से 2.घटना से आक्रोशित ग्रामीणों ने

***किसने,*** 1.जंगली हाथियों ने 2. मजदूरों ने 3.घटना से आक्रोशित ग्रामीणों ने

**6.** अ) गलत ब) सही स) गलत द) सही

**7.** क)

**8.** सही

## 21.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पंत, नवीन चन्द्र,समाचार लेखन और सम्पादन कनिष्क पब्लिशर्स, सं. 2007।

## 21.12 उपयोगी पाठ्यसामग्री

2. गुप्ता, योगेश कुमार, मीडिया के विविध आयाम ,आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, सं. 2006।
3. पंत, नवीन चन्द्र,समाचार लेखन और सम्पादन कनिष्क पब्लिशर्स, सं. 2007।
4. डॉ. हरिमोहन, रेडियो और दूरदर्शन की पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, सं. 2006।
5. George A. Hough, News writing ,Kanishka Publishers, Distributors, Delhi, Edition 2000.
6. Writing for the press , JMC-3,part-3,IGNOU subject material.

## 21.12 निबंधात्मक प्रश्न

**1.** समाचार से क्या आशय है? समाचारों को कितने रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है?

**2.** विस्तार से बताइये की समाचार लेखक को लेखन के लिए किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए ?

# इकाई 22 अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

22.1 प्रस्तावना
22.2 उद्देश्य
22.3 अनुवाद शब्द का अर्थ और व्याख्या
22.4 अनुवाद की परिभाषा
22.5 अनुवाद का महत्व
22.6 अनुवाद की प्रक्रिया
22.7 अनुवाद के प्रकार
22.8 अनुवाद तथा लिप्यंतरण
22.9 अनुवाद कार्य:नमूना विश्लेषण तथा अनुवाद पर्याय
22.10 सारांश
22.11 शब्दावली
22.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
22.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
22.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री
22.15 निबंधात्मक प्रश्न

## 22.1 प्रस्तावना

आपने पिछली इकाईयों में प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूप महत्व तथा इससे जुड़े विविध पक्षों का अध्ययन किया। आप इसका महत्व व प्रयोग स्पष्ट कर सकते हैं। आपको यह ज्ञात ही है कि प्रयोजनमूलक से तात्पार्य किसी विशेष उद्देश्य से है। अनुवाद कार्य भी एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण क्रिया है।

प्रस्तुत इकाई में अनुवाद का अर्थ बताया गया है और उसकी व्याख्या की गयी है। अनुवाद की प्रक्रिया अनुवादक की भूमिका और अनुवाद के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। अनुवाद के विभिन्न प्रकार बताते हुए लिप्यंतरण और अनुवाद का अंतर स्पष्ट किया गया है। उदाहरण के साथ अनुवाद के व्यावहारिक पक्ष को भी दिया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप अनुवाद विधा

के सम्बंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर इसका व्यवहार में उपयोग कर सकेंगे तथा अन्य लोगों को अनुवाद के महत्व तथा बारीकियों को समझा सकेंगे।

## 22.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :-

अनुवाद का अर्थ बतायेंगे और उसकी व्याख्या कर सकेंगे।

अनुवाद की प्रक्रिया को समझा सकेंगे।

अनुवादक की भूमिका स्पष्ट कर सकेंगे।

अनुवाद के महत्व पर प्रकाश डालेंगे।

अनुवाद के विभिन्न प्रकार तथा अनुवाद और लिप्यंतरण का अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे ।

अनुवाद कार्य का व्यावहारिक ज्ञान दे सकेंगे ।

## 22.3 अनुवाद शब्द का अर्थ और व्याख्या

अनुवाद पहले कही गई बात को दुबारा कहना होता है। अनुवाद संस्कृत का तत्सम शब्द है। संस्कृत कोशों में दिए गए अर्थ के अनुसार अनुवाद को पुनर्रुक्ति कहते हैं। पुनरूक्ति का अर्थ होता है फिर से कहना . संस्कृत की वद् धातु में घञ्य प्रत्यय जुड़ने से **वाद** शब्द बनता है। इसका अर्थ हुआ कहना, कहने की क्रिया या कही हुई बात। फिर इसमें पीछे, बाद में आदि के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला उपसर्ग **अनु** लगने से यह शब्द बनता है - अनुवाद । इसका अर्थ हुआ पुनरू कथन । शब्दार्थ चिन्तामणि कोश में अनुवाद अर्थ है प्राप्तस्य पुनरू कथनम् या ज्ञातार्थस्यप्रतिपादनम्। इसका अर्थ है द प्राप्त या ज्ञात बात को एक बार फिर कहना या प्रतिपादन करना। प्राचीन भारत में शिक्षा-दीक्षा की मौखिक परम्परा प्रचलित थी। गुरू जो कहते थे शिष्य उसे दुहराते थे। इस दुहराने को अनुवाद शब्द से जाना जाता था। आजकल हिन्दी में अनुवाद का आशय है एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में कहना इसके लिए उलथा और तरजुमा शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। आजकल अनुवाद शब्द अंग्रेजी के ट्रान्सलेशन के रूप में प्रचलित है। इसका अर्थ है किसी शब्द को एक भाषा से दूसरी भाषा में ले जाना जिसका आशय निकला एक भाषा से दूसरी भाषा में भाव विचार ले जाना। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है मूल कथ्य के अर्थ की पुनरावृत्ति को ही दूसरे शब्दों में और

प्रकारान्तर से अर्थ का भाषान्तरण कहा जा सकता है। इस दृष्टि से अनुवाद के तीन सन्दर्भ हैं - समभाषिक अन्य भाषिक ,द्विमाषिक और अन्तरसंकेतपरक।

समभाषिक संदर्भ में अर्थ की पुनरावृत्ति एक ही भाषा की सीमा के भीतर होती है परन्तु इसके आयाम अलग-अलग हो सकते हैं। मुख्यत: आयाम दो है - कालक्रमिक और समकालिक। कालक्रमिक आधार पर समभाषिक अनुवाद एक ही भाषा के ऐतिहासिक विकास की दो निकटस्थ अवस्थाओं में होता है जैसे पुरानी हिन्दी से आधुनिक हिन्दी में अनुवाद। एककालिक आयाम पर समभाषिक अनुवाद मुख्य रूप से तीन स्तरों पर होता है बोली. शैली और माध्यम । अनुवाद का शाब्दिक अर्थ जानने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुवाद में अनुवादक को मूल लेखक की कही हुई बात को दूसरी भाषा मे कहना होता है। अब आप समझ गये हैं कि अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में किया जाता है। जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है अर्थात् मूल पाठ जिस भाषा में है वह स्रोत है। अत: मूल पाठ की भाषा को मूल भाषा या स्रोत भाषा कहा जाता हैं। उस भाषा से जिस भाषा में अनुवाद करना है वह लक्ष्य होती है। अत: उसे प्रस्तुत भाषा या श्लक्ष्या भाषा कहा जाता है। संक्षेप में अनुवाद के क्षेत्र में जिस भाषा से अनुवाद करना होता है उसे स्रोत भाषा और जिसमें अनुवाद करना होता है उसे लक्ष्या-भाषा कहते हैं। आगे के विवेचन में हम इसी स्रोत भाषा और लक्ष्याभाषा शब्द का प्रयोग करेंगे। अब आपको स्पष्ट हो गया है कि मूल लेखक की कही हुई बात को अनुवादक को दूसरी भाषा में कहना या लिखना होता है। इस प्रक्रिया में उसके लिए मूल रूप में कही गई बात को समझना आवश्यक होता है क्योंकि यदि वह मूल बात को समझेगा ही नहीं तो वह उसे प्रस्तुत कैसे कर पायेगा मूल पाठ के दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं- **1.विषय 2.भाषा**। अच्छे अनुवाद के लिए अनुवादक को विषय , स्रोत भाषा तथा लक्ष्या भाषा तीनों का ज्ञान होना चाहिए यदि अंग्रेजी की किसी कहानी का हिन्दी में अनुवाद करना हो तो यह आवश्यक है कि कहानी में व्यक्त देश काल परिस्थिति और मूल संवेदना की जानकारी हो तथा अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान हो ताकि जो कुछ कहा गया हो और जिस तरह से कहा गया हो उसे अनुवादक पूर्णतया समझ सके। जब आप मूल पाठ में कही गई बात और उसे प्रस्तुत करने के ढंग को समझ लेंगे तभी उस बात को इसी प्रभाव के साथ लक्ष्य भाषा ;जिसमें अनुवाद होना है में कह सकेंगे। अनुवाद एक भाषा की दूसरी भाषा में पुनर्रचना है। इसलिए याद रखें कि मूल रचना के भाव विचार या संदेश को ज्यों का त्यों बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े या कम करे वैसा ही प्रभाव डालते हुए लक्ष्यभाषा ;जिसमें अनुवाद होना है दूसरी भाषा में कहना आवश्यक है। अनुवाद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है कि अनुवाद की प्रक्रिया में यह निश्चित होना चाहिए कि किसी भी दशा में अर्थान्तरण न हो।

एक अच्छे अनुवादक में निम्न गुण होने चाहिए.

1. अनुवाद की जाने वाली सामग्री के विषय का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए।
2. दोनों भाषाओं की प्रकृति और शब्द सम्पदा का अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

3. अभिव्यभक्ति में स्पष्टता अर्थात् सम्प्रेषणीयता का गुण होना चाहिए।

4. विषय सामग्री के प्रति कुछ हद तक तटस्थता का भाव होना चाहिए नहीं तो वह अपने मनोभावों को भी उसमें शामिल करने में नहीं रोक पायेगा।

**बोध प्रश्न**

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. कही हुई बात को दूसरी भाषा में कहना .........................का अनिवार्य अंग होता है।(कहानी,समाचार,लेखन)

2. निम्नलिखित कथनों में सही अथवा गलत लिखिए।

1. प्राचीन भारत में शिक्षा.दिक्षा की मौखिक परम्पवरा प्रचारित थी।

2. अनुवाद की जाने वाली सामग्री के विषय का पर्याप्तम ज्ञान होना आवश्यअक नहीं है।

3. अनुवाद एक भाषा की दूसरी भाषा में पुनर्रचना है।

4. अनुवाद उर्दू भाषा का शब्द है।

## 22.4 अनुवाद की परिभाषा

अनुवाद के स्वनरूप को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाली परिभाषाएं  सहायक हैं। इस संदर्भ में विभिन्न भारतीय एवं विदेशी विचारकों का दृष्टिकोण निम्नवत् है -

1. एक भाषा की पाठ्यसामग्री को दूसरी भाषा की पाठ्यसामग्री द्वारा प्रतिस्थापित करना अनुवाद कहलाता है। - कैटफोर्ड

Translation consists in producing in the receptor language in the chosen natural equivalent in the massage of the source language. First in meaning and secondary in style.

- (The Theory and practice of Traslation-Nida)

The replacement of taxtual material in one language by equivalent taxtual material in another language. - ( Linguistic Theory of Translation J.C. Catford P. 20)

2. मूल भाषा के सन्देश के सममूल्यम संदेश को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुसत करने की क्रिया को अनुवाद कहते हैं। संदेशों की यह मूल्य समता पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि सेए तथा निकटतम एवं स्वाण्भाविक होती है। - नाइडा तथा टेबर,1969

Translation consists in producing in the receptor language in the chosen natural equivalent in the massage of the source language. First in meaning and secondary in style. - (The Theory and practice of Traslation-Nida)

The replacement of taxtual material in one language by equivalent taxtual material in another language. - ( Linguistic Theory of Translation J.C. Catford)

3.ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार - यद् वाचि प्रोदितायाम् अनुब्रूयाद् अन्यस्यैवैनम् उदितानुवाहिनम् दृकुर्यात् - ऐतरेय ब्राहमण 3,15

4. भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था तथा अनुवाद इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन है। अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर कथ्य एवं और कथन की दृष्टि से दूसरी भाषा के समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग अनुवाद कहलाता है. - (अनुवाद विज्ञान पृ0 18)

इस प्रकार अनुवाद निकटतम समतुल्य और सहज भाषान्तारण प्रक्रिया है इसमें 1.भाषान्तारण सदैव ऐसा होना चाहिए कि स्रोत भाषा के कथ्य में लक्ष्य भाषा के आने पर न तो विस्तार न संकोच या अन्य किसी प्रकार का परिवर्तन हो। 2. स्रोत भाषा में कथ्य और अभिव्यक्ति का जैसा सामंजस्य हो लक्ष्य भाषा में अनूदित होने पर भी दोनों का सामंजस्य लगभग वैसा ही हो।
3.मूल पाठ पढ़कर या सुनकर स्रोत भाषा भाषी जो अर्थ और प्रभाव ग्रहण करता है अनूदित सामग्री पढ़ या सुनकर लक्ष्य भाषा भाषी भी ठीक वही प्रभाव ग्रहण कर सके।

**बोध प्रश्न**

3.परिभाषाओं के आधार पर अनुवाद की परिभाषा बताए।

.......................................................................................................................................

.......................................................................................................................................

.......................................................................................................................................

.......................................................................................................................................

.......................................................................................................................................

## 22.5 अनुवाद का महत्व

अनुवाद की परंपरा बहुत पुरानी है पारस्परिक संपर्क की सामाजिक अनिवार्यता के कारण अनुवाद व्यवहार का जन्म भी बहुत पहले हो गया था। लम्बे समय तक मौलिक लेखन न होने के कारण इसे अधिक महत्व नहीं दिया गया। किन्तु वर्तमान समय में विविध स्तरों पर आपसी सम्पर्क को बढ़ावा मिला है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद का पतन होने से कई छोटे-बड़े देश स्वतंत्र हुए और उनकी स्वतंत्र सत्ता बनी। विकास के लिए ज्ञान के नये-नये स्रोतों से परिचित होने तथा विश्वस्तरीय विचारकों का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से आपसी सम्पर्क की आवश्यकता हुई। आज अलग-अलग संस्कृतियों के लोगों में सम्पर्क बढ़ रहा है. लोग विदेशों में शिक्षा के लिए जाते हैं व्यापारिक, औद्योगिक संगठन विभिन्न देशों में कार्य करते हैं विभिन्न भाषा-भाषी लोग सम्मेलनों में एक साथ बैठकर विमर्श करते हैं राष्ट्रों के राष्ट्र प्रमुख दूसरे देशों में सद्भाव यात्रा के लिए जाते हैं। इन सभी में अनुवाद की अनिवार्य रूप से आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत से ऐसे पाठ्यक्रम हैं जो किसी भाषा विशेष में उपलब्ध हैं उन्हें सर्वसुलभ बनाने के लिए भी स्थानीय भाषा में अनुवाद की बहुत आवश्यकता है।

रोजगार के नये-नये अवसर बन रहे हैं पत्रकारिता ने आज जो व्या क रूप ले लिया है उसमें विश्वरस्तरीय सूचनाओं और परिघटनाओं की जानकारी अपने देश को और अपनी भाषा में देने के लिए अनुवाद की आवश्याकता है। यही नहीं विभिन्न धर्मविलम्बियों द्वारा अपने धर्म प्रचार हेतु भी अनुवाद का सहारा लिया जाता रहा है। क्रिश्चियन धर्मावलम्बियों के धर्म ग्रन्थ बाईबिल का विश्व की सर्वाधिक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। भारत में प्रारंभिक अनुवाद को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृतए प्राकृतए पाली तथा उभरते हुए क्षेत्रीय भाषाओं के बीच और उन्हीं भाषाओं का अनुवाद अरबी और फारसी में हुआ है। आठवीं से नौवीं शताब्दी के बीच भारतीय कथ्य और ज्ञानमूलक पाठ जैसे पंचतंत्र, अष्टांगहृदय, अर्थशास्त्र, हितोपदेश, योगसूत्र, रामायण, महाभारत और भगवद्गीता का अनुवाद अरबी में हुआ। उन दिनों भारतीय और फारसी साहित्य मूलपाठों के बीच व्यापक स्तर पर आदान प्रदान हुआ। भक्तिकाल के दौरान संस्कृत मूलपाठ (प्रमुखतः भगवद्गीता और उपनिषद) दूसरे भारतीय भाषाओं के संपर्क में आया जिसके परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण मराठी संत

कवि ज्ञानेश्वर द्वारा गीता का अनुवाद ज्ञानेश्वरी तथा विभिन्न महाकाव्यों का अनुवाद तथा विभिन्न भाषाओं के संत कवि द्वारा रामायण और महाभारत का अनुवाद प्रकाश में आया। उदाहरण स्वरूप पम्पा, कंबर, तुलसीदास, प्रेमानन्द, एकनाथ, बलरामदास और कृत्तिवास आदि की प्रादेशिक रामायण को देखा जा सकता है। विश्व में किसी भी देश की भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र, साहित्य और कला आदि के संचित ज्ञान को दूसरे देश की भाषाओं में अनूदित करके उपलब्ध कराया जा रहा है। यही नहीं एक ही देश के विभिन्न राज्यों और अंचलों की भाषा-बोली में संचित ज्ञान को सामने लाने में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है।

आज के भूमण्डलीकरण के दौर में ज्ञान की पूंजी होना आवश्यक हो गया है यदि ज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में हो रहे नये-नये प्रयोगों से हम आप वाकिफ नहीं होगें तो विकास की दौड़ में पिछड़ जायेंगे। दुनिया का कोई भी देश या कोई भी भाषा-बोली सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार नहीं है। विश्व भर में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार के अनुसन्धान अन्वेषण और साहित्यिक सृजनात्मक कार्य हो रहे है गहन चिन्तन विश्लेषण चल रहे हैं। सबको इनकी अधुनातन जानकारी रहना आज जीवन की अनिवार्यता बन गई है। हर कोई बहुभाषाविद् या विषयविशेषज्ञ नहीं हो सकता इसलिए अनुवाद कार्य का महत्व और भी बढ़ जाता है।

**बोध प्रश्न**

4. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए.

क. भूमण्डलीकरण में आज के दौर में ......................की पूंजी होना आवश्यक हो गया है था (ज्ञान/दान)

ख. ....................... का विश्व की सर्वाधिक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। (बाईबिल/गीता)

## 22.6 अनुवाद की प्रक्रिया

आपने अनुवाद का सामान्य परिचय और इसका महत्व जान लिया है। अब आप अनुवाद की प्रक्रिया जानेंगे अनुवाद की प्रक्रिया का आशय है कि अनुवाद कैसे होता है। आपने पढ़ा कि अनुवाद ज्ञान को बढ़ाने और प्रसार करने में कितना महत्वपूर्ण है। आप जान गये हैं कि अनुवादक के लिए मूल भाषा या स्रोत भाषा में निहित विचारों को समझना आवश्यक होता है। अनुवाद की प्रक्रिया में जिस भाषा से अनुवाद होता है उसे स्रोत भाषा कहा जाता है और जिस भाषा में अनुवाद होता है उसे लक्ष्यै भाषा कहते हैं अनुवाद की प्रक्रिया के दो चरण होते हैं पहले चरण को हम अर्थबोध या अर्थग्रहण कहते हैं। इसमें हम मूल रचना का अर्थ समझते हैं। दूसरे चरण में संप्रेक्षण होता है जिसमें दूसरे तक पहुँचाने के लिए अपनी भाषा में वही बात कही जाती है। सरल शब्दों में समझना और कहना दो चरण हैं। समझने की प्रक्रिया में पढ़ते समय पाठक जो पढ़ता है उसे समझने

की प्रक्रिया भी साथ.साथ चलती रहती है। समझने के कई स्तर हो सकते हैं। सामान्यम पाठक या श्रोता मूल पाठ के सभी शब्दोंर का अर्थ न जानने पर भी एक स्तर तक बात कोध्रचना को समझ सकता है और रचना का आनन्द ले सकता है। लेकिन अनुवादक के रूप में हम किसी शब्द को नहीं छोड़ सकते क्योंकि जैसा पूर्व में हमने आपको बताया है अनुवादक को मूल पाठ में कुछ भी जोड़ने या घटाने की छूट नहीं होती है। भाषिक दृष्टि से इसमें सबसे पहले शब्दबोध फिर वाक्यबोध और अंत में रचनाबोध तक पहुँचना होता है।

**शब्दबोध -** शब्दश रचना की सबसे छोटी इकाई होती है। शब्द किसी भी रचना के अर्थग्रहण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं। कई बार एक ही शब्द के अनेक अर्थ भी होते हैं और एक ही भाव के लिए उसके कई पर्यायवाची भी होते हैं। लेखक या वक्ता शब्द चुनते समय रचना के संदर्भ में उसके अर्थ प्रयोग का ध्यान रखता है और यही ध्यान अनुवादक को भी रखना होता है। इसलिए अनुवादक के रूप में हमें आपको किसी अच्छ शब्दकोश की सहायता लेकर ऐसे शब्दों को स्पष्ट करना होगा। अनुवादक के रूप में शब्दों का अर्थ और प्रयोग समझना बहुत आवश्यक है। जब हम एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्दों का अर्थ कर रहे होते हैं तब कई शब्द ऐसे भी होते हैं जिनका लक्ष्यभाषा में अर्थ नहीं मिलता है। उदाहरणार्थ हिन्दी के धोती शब्द का अंग्रेजी में कोई पर्यायवाची शब्द नहीं . ऐसे ही अंग्रेजी के नेकटाइ जिसके लिए टाई शब्द का प्रयोग होने लगा है जिसका कोई सटीक हिन्दी अर्थ नहीं है। ऐसे शब्दों के प्रयोग में अतिरिक्त सावधानी बरतनी होगी। इन्हें चिह्नित कर अलग से व्याख्यायित किया जाना चाहिए।

**वाक्यबोध -** मूल पाठ के शब्दों का अर्थ जान और समझ लेने के बाद वाक्यनष् को समझने की प्रक्रिया चलती है। वाक्यों से ही भाषा बनती है। शब्दोंय से अर्थ ज्ञान होता है। वाक्य अर्थ को स्पकष्ट करते हैं। अर्थ प्रत्ये क स्वबतंत्र वाक्यद में भी स्पीष्ट् हो सकता है और कई बार एक से अधिक वाक्यों में भी स्पथष्ट होता है। अनुवादक को इसे समझना होता है। वाक्य। में आए शब्दों के प्रयोग को समझना भी नितांत आवश्यरक है। शब्दो का वाक्य में प्रयोग शब्द के चयन का आधार होता है। एक ही शब्द के अनेक अर्थ होने पर वाक्यों के अनुरूप शब्द का चयन या पर्यायवाची शब्दों में से सही चुनाव वाक्य को सार्थक बनाता है। वाक्य में शब्दों का क्रम भी समझना आवश्यक है। विभिन्न भाषाओं में शब्दों का क्रम भिन्न होता है। वह भाषा विशेष के वाक्यानुक्रम में ही सही अर्थ और भाव प्रकट करता है। इसके लिए अनुवादक को स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा दोनों के ही वाक्य विन्यास की जानकारी होना आवश्यक है।

**रचनाबोध -** अभी तक आपने जाना कि अनुवादक के रूप में अनुवादक कोद शब्द के अर्थ को समझना जरूरी होता है फिर वाक्यों में निहितार्थ को समझना होता है। अनुवादक को सम्पूर्ण रचना या वक्तव्य का अनुवाद करना होता है इसलिए अनुवादक के लिए सम्पूर्ण रचना और उसमें व्यक्त

विषय का जानकार होना आवश्यक है। शब्द बोध वाक्यबोध और रचनाबोध का विशेषज्ञ होने पर ही अनुवादक मूल-भाषा की रचना का अर्थग्रहण कर उसे लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्त कर सकता है।

**संप्रेषण -** मूल पाठ को अच्छी तरह समझने के बाद उसे लक्ष्य भाषा में संप्रेषित किया जाता है। यही एक भाषा स्रोत- भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा, लक्ष्य-भाषा में फिर से कहना होगा। जब हम किसी रचना को पढ़ते हैं तब उसे समझने का प्रयास करते हैं। समझकर ही रचना का आनन्द लिया जा सकता है या उसके उद्देश्य तक पहुँचा जा सकता है। इसमें लिखने वाले की बात सीधे पढ़ने वाले तक पहुँचती है। अनुवाद करते समय यह अनुवादक का दायित्व होता है कि वह मूल लेखक की बात को पाठक तक ज्यों का त्यों पहुँचाए। अत: वह हर प्रकार से समतुल्यता का प्रयास करता है। यही समतुल्यता मूल पाठ के भाव को पाठक तक पहुँचाने में सफल होती है।

**शब्द की समतुल्यता -** सम्प्रेषण की दृष्टि से भाषा की सबसे छोटी इकाई शब्द है। आप मूल पाठ के अर्थग्रहण की प्रक्रिया में यह जान चुके हैं कि सबसे पहले अनुवादक को रचना में आये शब्दों के अर्थ समझने होते हैं। अनुवाद करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि शब्द के अर्थ का चयन विषय के अनुरूप हो अंग्रेजी में एक शब्द है Right जिसके विविध संदर्भों में प्रयुक्ति होती है यथा -

Right Direction - दाहिनी दिशा

Right Answer – सही उत्तर

Right Angle – 90° (डिग्री) का कोण

Right Conduct – उचित आचरण

Rightist - दक्षिणपंथी

अनुवाद करते समय मूल भाव के अनुरूप प्रयोग किया जायेगा। यहाँ पर शब्द के अर्थ के स्थान पर प्रतिशब्द का प्रयोग करेंगे। शब्द के अर्थ का सीधा अर्थ है एक भाषा का शब्द दूसरी भाषा में। लेकिन आपने शब्दकोश का प्रयोग करते समय पाया होगा कि एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते हैं. यह अर्थ भी अनेक शब्द हैं। उनमें से हमें उस शब्द - अर्थ का चयन करना होता है जो रचना में सटीक बैठता हो यही प्रतिशब्द है। सही प्रतिशब्द का चुनाव अच्छे अनुवाद का आधार है।

**वाक्य -** अभिव्यक्ति में सम्प्रेषण का दूसरा चरण वाक्य निर्माण के रूप में सामने आता है। वाक्य सही और सार्थक होना आवश्यक है। वाक्य व्याकरण की दृष्टि से भी सही होने चाहिए और मूल भाषा का प्रभाव डालने वाले भी इसके लिए शब्दों का प्रयोग और चुनाव बदलना पड़ सकता है। कभी मूल पाठ के एक वाक्य को एकाधिक वाक्यों में तोड़ना या एकाधिक वाक्यों को एक वाक्य में

संकुचित करना पड़ सकता है। मूल भाषा के शब्दानुक्रम को लक्ष्य-भाषा के शब्दानुक्रम में प्रस्तुत करना होता है। प्रत्येक भाषा का अलग व्याकरण होता है। उसी के अनुरूप वाक्य संरचना होती है। अत: इस बात का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस भाषा में अनुवाद किया जा रहा हो व्याकरण की दृष्टि से वह सही हो क्योंकि वही वाक्य-संरचना पाठक को सहज रूप में मूल पाठ का बोध करायेगी। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि मूल पाठ में व्यक्त विचार व भाव पूरी तरह आ जाये।

**रचना -** अनुवाद की प्रक्रिया में अब तक आपने जाना कि पहले मूल रचना का बोध किया जाता है जिसमें बोधन की प्रक्रिया मूल भाषा के शब्दों, वाक्यों की व्याकरणनिष्ठा और रचना के सही-सही बोधन से होती है। जब अनुवादक तीनों स्तरों पर मूल रचना को समझ लेता है तब वह लक्ष्य-भाषा में सही प्रतिशब्दों का चयन करता है वाक्य संरचना करता है अंतत: मूल रचना की लक्ष्य-भाषा में पुनरर्चना, प्रतिरचना करता है। यही अनुवादक का उद्देश्य है। सफल अनुवाद वह है जिसमें मूल रचना का पूरा-पूरा भाव आ जाए और प्रतिरचना, अनुवादित रचना के रूप में उसमें सहज प्रवाह और ग्राह्यता हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुवाद की पूरी प्रक्रिया में अनुवादक को कई सोपानों से गुजरना पड़ता है और उसे अलग-अलग भूमिका निभानी पड़ती है। सबसे पहले वह पाठक की भूमिका में होता है और मूल पाठ का पाठन व विश्लेषण करता है। अनुवाद करते समय बहुभाषिए के रूप में होता है और अनूदित पाठ या प्रतिरचना प्रस्तुत करते हुए लेखक की भूमिका में होता है। इन सभी भूमिकाओं में दक्षता के स्तर पर ही अनुवादक अनुवाद का स्तर निर्मित करता है।

**बोध प्रश्न**

सही विकल्प चुनिए -

5 निम्न में से अर्थग्रहण के लिए क्या आवश्यक नहीं है ?

क . शब्दबोध ख . तर्कबोध ग . रचनाबोध घ . वाक्यबोध

6 . सफल अनुवाद क्या है ? (संक्षेप में बताईये)

..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................
..................................................................................................................

## 22.7 अनुवाद के प्रकार

आज वैज्ञानिक औद्योगिक और प्रशासनिक आदि सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भाषा का जो रूप उभर रहा है वह प्रयुक्ति के रूप में ही विकसित हो रहा है। इन विषयों से सम्बद्ध विचारणाओं और धारणाओं को व्यक्त करने में सक्षम हिन्दी का रूप प्रयोजन-विशेष के लिए प्रयुक्त रूप को सामने ला रहा है। विषय विशेष से सम्बद्ध शब्दावली की संरचना हो रही है। हम जानते हैं कि प्रयोजनमूलक का एक स्वरूप व्यावहारिक हिन्दी का भी है जिसमें अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है । शायद ही जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र हो जिसमें अनुवाद की उपादेयता प्रमाणित न की जा सके। अनुवाद कई प्रकार का होता है। अनुवाद के प्रकारों का विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है

1 . विषयवस्तु के आधार पर 2 .  प्रकृति या प्रक्रिया के आधार पर।

निम्न तालिका में इसका विस्तार किया जा रहा है :-

| **1 . विषय वस्तु के आधार पर** | **(क) साहित्यिक** | **(ख) कार्यालयी** |
|---|---|---|
| | 1 . काव्यानुवाद | 1 . वैज्ञानिक या तकनीकी |
| | 2 . नाटकानुवाद | 2 . वाणिज्यिक |
| | 3 . कथा-साहित्यानुवाद | 3 . मानविकी एवं समाज - शास्त्रीय |
| | 4 . जीवनी | 4 . सूचना माध्यनम |
| | 5 . आत्मकथा | 5 . प्रशासनिक एवं कानूनी |
| | 6 . निबंध | |
| | 7 . आलोचना | |
| | 8 . डायरी | |
| | 9 . रेखाचित्र | |
| | 10 .संस्मरण | |

**2 . प्रकृति या प्रक्रिया के आधार पर**

| | | |
|---|---|---|
| 1 . शब्दानुवाद | 5 . रूपान्तारण | 9 . सारानुवाद |
| 2 . छायानुवाद | 6 . अनुकरण | 10 . व्याख्यानुवाद |
| 3 . मूलयुक्त | 7 . प्रतिध्वननि | 11. दुभाषिये का अनुवाद |

4 . भावानुवाद 8 . मूल रचना से

**साहित्यानुवाद -** कला और साहित्य किसी भी समाज की पहचान बनाते हैं। किसी भी देश और समाज को जानने के लिए वहाँ के साहित्य को पढ़ना.परखना ज़रूरी होता है। युगीन परिस्थितियों का अंकन साहित्य में होता है। उदाहरण के लिए मक्सिम गोर्की का कथासहित्य तत्कालीन रूस में हुई क्रांति और जनसंघर्ष का जीवन्त दस्तावेज़ हैए उसका अनुवाद करते हुए हम पात्रों या स्थानों आदि के नाम बदलते हुए उसका भारतीयकरण नहीं कर सकते क्योंकि भारतीय स्थितियाँ तत्कालीन रूस से बिल्कुल भिन्न थीं। इसी तरह किसी नोबेल विजेता यूरोपीय सहित्यकार से सम्बन्धित हिंदी समाचार बनाया जा रहा है तो पत्रकार को उस साहित्यकार के परिवेश और युगीन स्थितियों का हिंदी में जस का तस उल्लेख करना होगा क्योंकि उसके साहित्य में उसके देश और समाज की स्थितियों का दस्तावेज़ है, भारत का नहीं।

**कार्यालयी अनुवाद -** कार्यालयी अनुवाद से आशय प्रशासनिक पत्राचार तथा कामकाज के अनुवाद का है। जैसा कि विदित है स्वतंत्रता के पश्चात संविधान ने हिंदी को राजभाषा बनाने का संकल्प तो लिया पर कुछ राजनीतिक और सामाजिक दुविधाओं के चलते वह आज तक कार्यरूप नहीं ले सका। आज राजभाषा के मसले पर भारत में द्विभाषिक नीति लागू है। जिस अंग्रेज़ी को संविधान ने दस साल में अंग्रेजी के बदले हिन्दी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रारूप दिया था वह आज भी पूरी तरह से नहीं हो पाया है। हर राज्य को अपनी राजभाषा निर्धारित करने की स्वतंत्रता संविधान ने दी थी और राज्यों ने उसके अनुरूप राजभाषा का निर्धारण किया भी है किन्तु संघीय सरकारों से उसके प्रशासनिक कार्यव्यहार अंग्रेज़ी में ही होते हैं। हिंदी है लेकिन अंग्रेज़ी भी है और राज्यों के प्रकरण में उनकी अपनी राजभाषाएँ भी हैं। ऐसी स्थिति में अनुवाद की उपयोगिता और महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। सभी जानते हैं कि प्रशासनिक शब्दावली का अपना एक विशिष्ट रूप है जो बहुधा अंग्रेज़ी से अनुवाद पर आधारित होता है। पारिभाषिक शब्द इसी प्रकार की प्रशासनिक शब्दावली का एक प्रमुख हिस्सा हैं। एक अनुवादक के लिए सरकार के कामकाज पर आधारित इस शब्दावली की सामान्य जानकारी का होना अनिवार्य है। अनेक संसदीय शब्दों का हिन्दी में प्रचलन इसी शब्दावली के आधार पर हो गया है।

**विधिक अनुवाद -** न्यायपालिका संविधान में वर्णित लोकतंत्र के तीन स्तम्भों में से एक है। पत्र.पत्रिकाओं में न्याय और उससे जुड़ी प्रक्रिया से सम्बन्धित अनेक लेख व समाचार होते हैं। हिंदी को राजभाषा बनाए जाने के संकल्प के बावजूद उच्च तथा उच्चतम न्यायालय का सारा कामकाज अंग्रेज़ी में ही होता है। सारे निर्णय और अभिलेख अंग्रेज़ी में होते हैं और न्यायालय की कार्यवाही भी अग्रेज़ी में ही सम्पन्न होती है। हिंदी में नकल और समाचार बनाते हुए वह विधिक शब्दावली का तकनीकी रूप से सही अनुवाद करने की आवश्यककता होती है।

**आशु अनुवाद -** यह एक रोचक प्रक्रिया है। आपने आशुलेखन के बारे में सुना होगा इसमें स्थान विशेष पर ही तत्काल कोई विषय दिया जाता है जिस पर उसी समय लिखना होता है ऐसे ही आशु अनुवाद में भी तत्काल अनुवाद किया जाता है। अंग्रेज़ी में सामान्य रूप से इसे Interpretation कहते हैं। जब कोई ऐसा राजनेता देश में आता है जिसे अंग्रेज़ी भी न आती होती हो हमारे देश के राजनेताओं के साथ उसकी वार्ता Interpretation की सहायता से ही सम्भव हो पाती है। दुभाषिया (Interpreter) वह व्यक्ति होता है जो आंगतुक की भाषा का तुरंत और सरल अनुवाद मौखिक रूप से हमारे राजनेता के सम्मुख प्रस्तुत करता है और हमारे राजनेता की भाषा का आगंतुक राजनेता के सम्मुख। वह एक ऐसा भाषिक मध्यस्थ है जिस पर यह उत्तरदायित्व होता कि वह वार्ता को तकनीकी रूप से शतप्रतिशत सही सम्भव बनाए। आशु अनुवाद के कुछ और भी आयाम हो सकते हैं। जैसे फोन पर किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति से की जा रही वार्ता अथवा किसी महत्वपूर्ण व्याक्ति के भाषण को तुरंत अपनी अथवा लक्ष्य-भाषा में में अनुवाद करके लिखते जाना।

**वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद -** जाहिर है कि हमारा मौजूदा समय विज्ञान और तकनीक का युग है। विज्ञान के बहुआयामी विकास ने मानव जीवन की गतिविधियों ही नहीं वरन उसके जीवनमूल्यों को भी कई स्तरों पर बदल दिया है। समाचारपत्रों में विज्ञान और तकनीक से सम्बन्धित गतिविधियों के कई समाचार होते हैं और उनके लिए ज़रूरी होता है कि पत्रकार को वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली की पर्याप्त जानकारी होए जिसके अभाव में अनुवाद हास्यास्पद और विचित्र हो सकता है। rail या train को हिंदी में लौहपथगामिनी जैसे विचित्र और हास्यास्पद अनुवाद की जगह रेल या ट्रेन ही लिखना अनुवादक के हित में होगा। computer के लिए कम्प्यूटर ही लिखना होगा इसी तरह हिंदी संगणक की जगह कैलक्यूलेटर शब्द का ही प्रयोग होता है।

**वाणिज्यिक अनुवाद -** यह क्षेत्र व्यापार के साथ-साथ प्रमुखतः बैकिंग व्यवसाय का है। सभी को विदित है कि समूचे विश्व की संचालक शक्ति अब पूँजी हो चली है। भूमंडलीकरण और विश्वग्राम जैसी उत्तरआधुनिक अवधारणाएँ प्रकारांत से इसी के गिर्द घूमती हैं। आम आदमी के जीवन में बाज़ार का स्थान अब निश्चित है । बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की जानकारी सम्बन्धित विषयवस्तु के अनुवाद द्वारा ही सम्भव है। इस तरह के अनुवाद की अपनी शब्दावली होती है जिसकी प्राथमिक जानकारी अनुवादक को होनी आवश्यक है। आम आदमी के जीवन में बैंकिंग का भी एक निश्चित महत्व है। बैंकिंग के क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग मुख्य रूप से दो स्तरों पर होता है एक राजभाषा के स्तर पर और दूसरा जनभाषा के स्तर पर। हिंदी को राजभाषा के रूप में सम्मान दिलाए जाने के कुछेक औपचारिक प्रयासों में बैंकों द्वारा हिंदी के प्रयोग पर ज़ोर दिए जाने की नीति शामिल है। दरअसल मामला राजभाषा का न होकर जनभाषा का है। बैंकों को अपनी पहुँच जनता तक बनानी होती है और इसके लिए वे हिंदी के इस्तेमाल पर बल देते हैं। हर बैंक में चूँकि महत्वपूर्ण मसौदे अंग्रेज़ी में ही तैयार किए जाते हैं लेकिन जनता तक उन्हें पहुँचाने के लिए उनका सरल हिंदी अनुवाद अनिवार्य होता हैए फलतः हर बैंक में हिंदी अधिकारी तैनात किए गए हैं।

**शब्दानुवाद -** इस तरह के आदर्श अनुवाद में प्रयास किया जाता है कि मूल भाषा के प्रत्येक शब्द और अभिव्यक्ति की इकाई (पद,पदबंध,मुहावरा,लोकोक्ति, उपवाक्य अथवा वाक्य आदि का अनुवाद लक्ष्य भाषा में करते हुए मूल के भाव को संप्रेषित किया जाए। दूसरे शब्दों मेंए अनुवाद न तो मूल पाठ की किसी अभिव्यक्त इकाई को छोड़ सकता है और न अपनी ओर से कुछ जोड़ सकता है। अनुवाद का यह प्रकार गणितए ज्योतिषए विज्ञान और विधि साहित्य के अधिक अनुकूल होता है।

**भावानुवाद -** इस प्रकार के अनुवाद में भाव अर्थ और विचार पर अधिक ध्यान दिया जाता है लेकिन ऐसे शब्दों पदों या वाक्यांशों की उपेक्षा नहीं की जाती जो महत्वपूर्ण हों। ऐसे अनुवाद से सहज प्रवाह बना रहता है।

**सारानुवाद -** यह आवश्यकतानुसार संक्षित या अति संक्षिप्त होता है। भाषणों विचार गोष्ठियों और संसद के वादविवाद की विशद विषयवस्तु के सार का अनूदित प्रस्तुतीकरण इसी कोटि का होता है।

**यांत्रिक अनुवाद -** आधुनिक समय में कम्प्यूटर की सक्षमता और हमारी उस निर्भरता उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। आज ऐसे साफ्टवेयर उपलब्ध हैं जो दो या अधिक भाषाओं बीच अनुवाद करने की क्षमता रखते हैं। गूगल ने ऑनलाइन अनुवाद की सुविधा भी दी है। इन सारी तकनीकी उपलब्धियों के बीच हमें यह भी समझ लेना होगा कि इसकी कुछ निर्णायक सीमाएँ भी हैं। अनुवाद करने वाले साफ्टवेयर अकसर कोरा शब्दानुवाद करते हैं और उनमें वांछित अर्थबोध की प्राप्ति नहीं हो पाती। यानी इस तरह के अनुवाद पर भाषायी पुनर्गठन के स्तर पर आवश्यक स्तर की प्राप्ति के लिए काफी काम करना होता है। अतः शब्दातंरण के लिए इस तरह का यांत्रिक अनुवाद काम का हो सकता है लेकिन पूरी वाक्यरचना के स्तर पर यह बहुधा असफल सिद्व हुआ है। हाँ लिप्यन्तरण के क्षेत्र में कम्प्यूटर साफ्टवेयर्स ने हमारी बहुत सहायता की है।

**पत्रकारिता में अनुवाद -** भूमंडलीकरण जैसी आधुनिक अवधारणाओं के प्रभाव के चलते अनुवाद पत्रकारिता का एक प्रमुख अंग बन गया है। अंग्रेज़ी को आज प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा का दर्ज़ा प्राप्त है और इंटरनेट सूचनाओं,समाचारों के त्वरित अंतरण का प्रमुख माध्यम है इसलिए ज़रूरी होता जा रहा है कि हिंदी समाचारपत्र के डेस्क पर भी कार्य करने वाला कर्मी न सिर्फ़ अंग्रेज़ी के सामान्य कार्यव्यवहार से परिचित हो बल्कि वह प्राप्त सामग्री का एक त्वरित एवं तथ्यपूर्ण अनुवाद भी कर पाए जिससे तत्सम्बन्धी समाचार दिया जा सके। पत्रकारिता के अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, वाणिज्य ,व्यापार,खेल,विज्ञान तथा तकनीक आदि कई पक्ष ऐसे हैं जिनके समाचार निर्माण में इस तरह के अनुवाद की आवश्यकता होती है। अतः पत्रकारिता में एक उज्ज्वल भविष्य के लिए पत्रकार का अनुवाद में कुशल होना मौजूदा परिस्थितियों में अब अनिवार्य हो चला है। आजकल प्रमुख हिन्दी अखबारों में इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी नेट और विदेशों से जुड़ी मनोरंजक और ज्ञानवर्धक सामग्री देखने को मिलती है। अनुवाद में दक्ष पत्रकार के लिए इस काम में बहुत सुविधा होती है कि

वो अंग्रेजी में उपलब्ध इस तरह की सामग्री को तत्काल अनुवाद कर सकता है। इस तरह वह अखबार में अपना महत्व और उपयोगिता बढ़ा सकता है।

**बोध प्रश्न**

**7. एक पंक्ति में उत्तर दीजिए**

1 . अनुवाद को कितने भागों में बांटा गया है

2 . विषयवस्तु तथा प्रक्रिया के आधार पर अनुवाद के कुछ प्रमुख प्रकार बताइये।

3 . वाणिज्यिक अनुवाद किस तरह के अनुवाद के अंतर्गत आता है

4 . कार्यालयी अनुवाद किसे कहते हैं

## 22.8 अनुवाद तथा लिप्यंतरण

अनुवाद (Translation) के साथ ही जुड़ा पद लिप्यतंरण (Transliteration) है। भाषा का रूपांतरण अनुवाद है जबकि लिपिमात्र का परिवर्तन लिप्यंतरण। कई शब्द ऐसे होते हैं जिनका अनुवाद न तो सम्भव है और न ही समीचीन। दैनिक व्यववहार के अनेक शब्द ऐसे हैं जिनका अनुवाद हो नहीं सकता या अटपटा लगता है शब्द को लिप्यंतरित किया जाना चाहिए। विदेशी नामों का अनुवाद नहीं किया जाता उच्चाहरण के आधार पर उसे लक्ष्य-भाषा में लिखा जाता है। विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में इस तरह के कई उदाहरण मिलते हैं। इस स्थिति में लिपि का सामर्थ्य काम आता है। देवनागरी लिप्यतंरण के लिए संसार की सबसे सक्षम लिपि है क्योंकि इसमें हम जैसा बोलते हैं वैसा ही लिखते भी हैं। समाचारों की दुनिया में कई पद यथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों स्थानों संस्थानों विज्ञान एवं तकनीकी उपकरणों और प्रक्रियाओं आदि के नाम सटीक लिप्यंतरण द्वारा ही हिंदी में प्रस्तुत किए जाते हैं। लिप्यंतरण का प्रयोग खेल के क्षेत्र में बहुत अधिक होता है। खेल से जुड़े विभिन्न क्षब्द हिन्दी में अंग्रेजी से जस के तस ले लिए जाते हैं और फिर वह खेल प्रेमियों की जुबान पर इस तरह चढ़ जाते हैं कि यह सोचना भी मुश्किल हो जाता है कि ये शब्द हमारी भाषा के नहीं हैं। फुटबाल, क्रिकेट ,बॉल,गोल्फ, टाई ,ड्रा आदि अनेक ऐसे शब्द हैं जो हिन्दी में हिन्दी शब्दों की तरह ही रच बस गए हैं।

लिप्यंतरण में इस बात का खास ध्यान देना चाहिए कि व्यक्तिपरक शब्दों का लिप्यंतरण वैसा ही हो जैसा मूल भाषा मे उसका उच्चारण होता है। अनेक बार किसी स्पेनिश, डच या दक्षिण

अमेरिकी देश के किसी महत्वपूर्ण कवि लेखक या कलाकार के अचानक प्रसिद्धि पा जाने पर अलग-अलग अखबारों व पत्रिकाओं में उनके नाम अलग-अलग तरह से लिखे जाते हैं।

## 22.9 अनुवाद कार्य : नमूना विश्लेषण तथा अनुवाद पर्याय

अनुवाद की बारीकियों और अनुवाद के बेहतर विकल्पों को समझने के लिए निम्नलिखित नमूने का भली प्रकार अध्ययन करें समझें और अभ्यास करें -

It may seem unnecessary to teach college students, who have been reading for years, how to read stories, plays and poems. But works of imaginative literature differ from personal letters, newspaper articles; and business reports. Literary works are likely to be complex and understanding and judging them may well require giving close attention to details, considering some of its relevant historical background, and even re-interoperating the essential meaning, before passing judgment

विश्ले षण तथा अनुवाद पर्याय

1. (a) It may seem unnecessary to teach college students.

क . कॉलेज के छात्रों को शायद यह बताने की आवश्यजकता नहीं कि .........................................

ख . कॉलेज के छात्रों को शायद यह बताना अनावश्ययक लग सकता है कि .................................

ग . हो सकता है कि कॉलेज के छात्रों को यह बताने की आवश्यकता न हो कि ...............................

घ . क्या कॉलेज के छात्रों को यह बताने की जरूरत है कि .........................................................

ड . सम्भकवतरू कॉलेज के छात्रों को यह दिशानिर्देश अनावश्यक प्रतीत हो कि .............................

(b) How to read stories, plays or poems.

कहानी नाटकों और कविताओं का वाचन कैसे किया जाये / को कैसे पढ़ा जाए / का वाचन कैसे किया जाता है / को कैसे पढ़ा जाता है के / वाचन की उचित विधि क्या है / को पढ़ने का सही तरीका क्या है ?

(c) Who have been reading for years.

क . जो इन्हें वर्षों से पढ़ रहे हैं।

ख . जिन्हें/इन्हें पढ़ने का वर्षों का अनुभव है।

ग . क्योंकि/कारण वे इन्हें वर्षों से पढ़ रहे हैं।

घ . क्योंकि/कारण उन्हें तो ये सब पढ़ते वर्षों बीत गए।

ड . क्योंकि/कारण उन्हें ये सब पढ़ते वर्षों जो बीत गए।

2. . But works of imaginative literature differ from personal letters, newspaper articles; and business reports.

क . साहित्यिक रचनाएं व्यतक्तिगत पत्रो, प्राइवेट चिट्ठियों, समाचार-पत्र के लेखों, अखबारी लेखों व्यापारिक प्रतिवेदनों व्यापारिक रिपोर्टों से भिन्न कोटि की होती हैं, अलग तरह की होती हैं।

ख . साहित्यिक रचनाएं वैसी नहीं होतीं जैसे व्यक्तिगत-पत्र, अखबारी-लेख और व्यापारिक रिपोर्ट।

3. (a) Literary works are likely to be complex.

क . साहित्यिक रचनाएं प्राय: जटिल होती हैं।

ख . साहित्यिक रचनाओं का ढांचा प्राय: जटिल होता है / कि संरचना प्राय: जटिल होती है।

(b) and understanding and judging them.

क . और उनके बोधन और परीक्षण में।

ख . और उन्हें समझने और परखने में/के लिए।

(c) before passing judgment

क . अन्तिम बात कहने/निर्णय देने से पहले।

ख . इससे पहले कि हम अन्तिम बात कहें/निर्णय दें।

(d) May well require

क . इस बात की आवश्यकता हो सकती है कि

ख . यह आवश्यक/जरूरी हो सकता है कि

ग सम्भव है कि यह आवश्यकता हो कि

(e) giving close attention to details

क . विवरणों को सूक्ष्मता से देखने की

ख . ब्यौरों को बारीकी से देखने की/छानबीन करने की

ग . विवरणों को सूक्ष्मता से देखा जाए।

;घद्ध ब्यौणरोंध्विवरणों को बारीकी से देखा जाएध्छानबीन की जाए।

(f) considering some of its relevant historical background

क . ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जरूरी बातों पर ध्यान देने की।

ख . ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आवश्यक तथ्यों पर ध्यान देने की।

ग . कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जरूरी बातों पर ध्यान दिया जाए।

घ . कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में आवश्यक तत्वों पर ध्यान दिया जाए।

(g) and even re-interoperating the essential meaning

क . और यहाँ तक कि मूल अभिप्राय के पुनराख्यान की।

ख . और यहाँ तक कि मूल उद्देश्य् की दुबारा व्याण्ख्या करने की।

ग . और यहाँ तक कि उनमें मूल अभिप्राय का पुनराख्यान किया जाए।

घ . और यहाँ तक कि उनके मूल उद्देश्य की दुबारा व्याख्या की जाए।

**अनुवाद** 1 सम्भावत: कॉलेज के छात्रों को यह दिशानिर्देश अनावश्य्क प्रतीत हो कि कहानी नाटकों और कविताओं का वाचन कैसे किया जाता है क्योंकि उन्हें पढ़ने का वर्षों का अनुभव है। परन्तु साहित्यिक रचनाएं, व्यक्तिगत-पत्रों,समाचार-पत्र के लेखों और व्यापारिक प्रतिवेदनों से भिन्न कोटि की होती हैं और उनमें बोधन और परीक्षण में अन्तिम निर्णय देने से पहले विवरणों को सूक्ष्मता

में देखने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आवश्यक तथ्यों पर ध्यान देने की और यहाँ तक कि उनमें मूल अभिप्राय का पुनराख्यान करने की आवश्यकता होती है।

**अनुवाद 2** हो सकता है कॉलेज के छात्रों को यह बताने की जरूरत न हो कि कहानी नाटकों और कविताओं को पढ़ने का सही तरीका क्या है ये सब पढ़ते उन्हें बरसों बीत गए हैं। मगर सच्चाई यह है कि साहित्यिक रचनाएं वैसी नहीं होती जैसी प्राइवेट चिट्ठियाँ अखबारी लेख और व्यापारिक रिपोर्टें उनके बारे में अन्तिम ढांचा प्राय: जटिल होता है और उनके बारे में अन्तिम बात कहने से पहले उन्हें समझने और परखने के लिए इस बात की जरूरत हैं कि ब्यौरों की बारीकी में छानबीन की जाए और यहाँ तक कि उनके उद्देश्य की दुबारा व्याख्या की जाए।

अब आप भली प्रकार समझ गए होंगे कि अनुवाद करते समय आपको किन-किन बातों को ध्याप में रखना चाहिए । अच्छा अनुवाद और उचित माध्यम जैसे पत्र-पत्रिकाए शोधग्रन्थ दूरदर्शन रेडियों के लिए अनुवाद करते समय आपको ध्यान देना होगा कि लक्ष्य-भाषा में आप शब्द वाक्य और प्रस्तुति किस प्रकार की करेंगे। कालजयी कृतियों जैसे प्रसिद्ध उपन्यास ग्रन्थ आदि के अनुवाद में शास्त्रीय पद्धति नमूना १ को ही आधार बनाना समीचीन होगा।

## 22.10 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करते समय आपने अनुवाद शब्द की व्युत्पत्ति और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को जाना। अनुवाद की प्रक्रिया को आप समझ गये हैं। अनुवाद कितने प्रकार के होते हैं? और उनका आधार क्या है ? अब आप इसका सम्यक विश्लेषण कर सकते हैं। अच्छे अनुवाद की विशेषतायें बता सकते हैं। अनुवाद का महत्व समझा सकते हैं और स्वयं इसके आधार पर अभ्यास से अच्छे अनुवादक बन सकते हैं। आपने जाना अनुवाद के क्षेत्र में कार्य करने वाले लोगों की भाषा पर अच्छी पकड़ होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। इससे भावों की अभिव्यक्ति सरलता से हो पाती है और भाषा में प्रवाह बना रहता है। शब्दों का सही चयन भी आवश्यक है। भाषा पर पकड़ के अभाव में अर्थ का अनर्थ हो जाने की बहुत आशंका रहती है।अनुवाद की कला की जानकारी विविध संदर्भों में आवश्यक है। चाहे जब लेखक दूसरी भाषा की किसी संदर्भ सामग्री का सहारा लेकर अपनी कोई मौलिक रचना, समाचार, लेख, रिपोर्ताज, विश्लेषण ,व्यंग्य अथवा कुछ और लिख रहा हो किसी मूल कृति का हूबहू अनुवाद कर रहा हो। वह कार्यालयी अनुवाद कर रहा हो या दुभाषिये का कार्य कर रहा हो या फिर पत्रकारिता के क्षेत्र में सभी स्थितियों के अनुकूल अनुवाद अच्छे अनुवाद की पहचान है।

## 22.11 शब्दावली

| | |
|---|---|
| प्रतिपादन | किसी विषय का सप्रमाण कथन निरूपण,विषय का स्थापन |
| तरजुमा | उर्दू में अनुवाद को तर्जुमा कहते हैं। |
| पुनरावृत्ति | किए हुए काम या बात को फिर से करने या दोहराने की क्रिया या भाव। |
| पुनर्रचना | मूल के अधार पर फिर से रचना करना |
| क्रिश्चियन | इसाई धर्म को मानने वाले। |
| वाकिफ | परिचित |
| बहुभाषाविद् | अनेक भाषाओं को जानने वाला |
| अभिव्यक्ति | प्रकट करना |
| प्रतिशब्द | किसी शब्द के बदले प्रयुक्त होने वाला शब्द |

## 22.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 . अनुवाद

2. √

2. ×

3. √

4. ×

3. परिभाषा स्वयं बनायें।

4. क- ज्ञान

ख- बाईबिल

5.ब -तर्कबोध

6 . सफल अनुवाद वह है जिसमें मूल रचना का पूरा-पूरा भाव आ जाए और प्रतिरचना ;अनुवादित रचना के रूप  में उसमें सहज प्रवाह और ग्राह्यता हो।

7 . 1 - अनुवाद को मुख्यतः दो भागों में बांटा गया है. 1- विषयवस्तु के आधार पर 2- प्रक्रिया के आधार पर।

2 - विषयवस्तु तथा प्रक्रिया के आधार पर अनुवाद के 10 प्रमुख प्रकार होते हैं।

3 - वाणिज्यिक  अनुवाद विषयवस्तु पर आधारित अनुवाद के अंतर्गत आता है।

4 - कार्यालयी अनुवाद से आशय प्रशासनिक पत्राचार तथा कामकाज के अनुवाद से है।

## 22.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय, डा. कैलाशनाथ, प्रयोजनमूलक हिन्दी की नयी भूमिका, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।

2. गुप्ता, डा. दिनेश, डा. रामप्रकाश, प्रयोजनमूलक हिन्दी, राधाकृष्ण  प्रकाशन, दिल्ली।

3. शाही, डा. विनोद, प्रयोजनमूलक हिन्दी, आधार प्रकाशन, पंचकूला।

4. कुमार डा. सुरेश, अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

## 22.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. रावत चन्द्रभान सिंह तथा सिंह दिलीप ,अनुवाद अवधारणा और अनुप्रयोग

2. गोस्वामी कृष्णाकुमार, अनुवाद विज्ञान की भूमिका

3. तिवारी डा. भोलानाथ, अनुवाद विज्ञान शब्द अकार प्रकाशन दिल्ली।

4. नौटियाल, जयंती प्रसाद, अनुवाद:सिद्धांत और व्यवहार

## 22.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. अनुवाद की परिभाषा बताते हुए सफल अनुवाद की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिये। तथा अनुवाद अनुवाद कार्य का महत्व बताइये।

2. अनुवाद के विविध क्षेत्र कौन-कौन से हैं? विस्तार से बताइये।

3. लिप्यन्तरण  किसे कहते हैं तथा लिप्यंतरण का प्रयोग कब किया जाता है यह बताते हुए अनुवाद में लिप्यंतरण का महत्व बताइये।